॥ ॐ नमः सिद्धेभ्य ॥

श्री तारणतरणस्वामी विरचित—

आध्यात्मिक चौवीसठाणा टीका।

(अन्वयार्थ, भावार्थ और विशेषार्थ सहित)

टीकाकारः—
श्रीमान् जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी।

"जैनविजय" प्रिन्टिग प्रेस, गाधीचौक-सूरतमें
मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६५ [प्रति १०००

मूल्य-एक रुपया।


जैन विजय प्रेस - सूरत

भूमिका।

श्री जिन तारणतरणस्वामी रचित यह चौबीस ठाणा ग्रंथ है। इसमें भी स्वामीने आध्यात्मीक मननका रस भर दिया है। इस ग्रंथके लिखनेका प्रयोजन यह झलकता है कि आत्माके निज शुद्ध स्वभावको पर भावोंसे या कर्म द्वारा रचित अवस्थाओंसे भिन्न पहचान लिया जावे। मनमें वे ही भाव आते हैं जो कर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। इन सबसे भेदज्ञान होनेपर अपना स्वभाव भिन्न झलकने लग जायगा जो स्वभाव स्वसंवेदन गम्य है, मन वचन कायसे अगोचर है। यह भी दिखलाया है कि मुमुक्षुको व्यवहाराश्रित आत्माकी सर्व अवस्थाओंको भी जानना चाहिये कि कर्मोंके संयोगमें रहते हुए क्या क्या अवस्थाएं होजाती हैं, जो सर्व अवस्थाएं केवल शुद्ध स्वभावमें नहीं हैं। भेद विज्ञान होनेके लिये तत्वार्थसूत्र व श्री गोम्मटसारका ज्ञान बहुत जरूरी है। फिर समयसार ग्रंथसे आत्माको स्वभावसे शुद्ध जानकर इन कर्मजनित व कर्म सापेक्ष भावोंको दूर किया जावे। चौबीस स्थान या विशेष अवस्थाएं संसारी जीवोंकी होती हैं ये सब विकल्प शुद्ध आत्माके स्वभावमें नहीं हैं। इसलिये नीचेप्रकार भावना भानी चाहिये—

(१) मैं नरकादि चार गतिसे भिन्न स्वभाव मात्रका धारी शुद्धात्मा हूं।
(२) मैं पांचों इन्द्रियोंसे भिन्न अतीन्द्रिय स्वभावधारी शुद्धात्मा हूं।
(३) मैं छः कायोंसे भिन्न अकाय व अमूर्तीक शुद्धात्मा हूं।
(४) मैं १५ प्रकार भोगोंकी चंचलतासे शून्य समुद्रवत् निश्चल हूं।
(५) मैं तीनों वेदोंके काम विकारसे परे ब्रह्मचर्यका धारी परब्रह्म स्वरूप हूं।
(६) मैं क्रोधादि पच्चीस कषायोंसे रहित वीतराग शांत आत्मा हूं।
(७) मैं मतिज्ञानादि आठ ज्ञानके भेदोंसे रहित एक अभेद शुद्ध सहज ज्ञानका धारी हूं।
(८) मैं सामायिकादि सात प्रकार संयमकी श्रेणीसे परे परम संयमी आत्मरमी हूं।
(९) मैं चार प्रकार दर्शनके भेदोंसे बाहर एक अभेद दर्शन गुणका धारी हूं।
(१०) मैं कृष्णादि छहों लेश्याओंसे रहित परम शुद्ध निर्मल भावका धारी हूं।

(११) मैं भव्य आसकी कल्पनासे शून्य एक   द्ध जीवत्व भावका स्वामी हूं ।
(१२) मैं छह प्रकार सम्यक्त भेदोंसे रहित सदा ही एक शुद्ध सम्यग्दृष्टी हूं ।
(१३) मैं सैनी असैनीकी कल्पनासे शून्य, मनसे गोचर स्वानुभवगम्य आत्म वस्तु हूं ।
(१४) मैं आहारक अनाहारकके मार्गसे परे सदा ही निरास्रव स्थिर आत्मा हूं ।
(१५) मैं चौदह गुणस्थानोंकी श्रेणीसे दूरवर्ती परम कृतकृत्य शुद्ध बुद्ध परमात्मा हूं ।
(१६) मैं उन्नीस जीव समासोंसे दूरवर्ती परम शुद्ध अशरीरी आत्मा हूं ।
(१७) मैं आहारादि छः पर्याप्तियोंसे शून्य परम निरंजन ज्ञानाकार आत्मा हूं ।
(१८) मैं दस प्राणोंसे रहित मुख्य सत्ता चैतन्य बोध प्राणोंका धारी अमर आत्मा हूं ।
(१९) मैं चार प्रकार संज्ञासे रहित सदा ही तृप्त परम निस्पृह व निर्भय आत्मा हूं ।
(२०) मैं बारह प्रकार उपयोगके भेदोंसे रहित शुद्ध सहज ज्ञान दर्शन उपयोगका धारी हूं ।
(२१) मैं सोलह प्रकार ध्यानके प्रपचसे दूरवर्ती सदा ही स्वानुभूति रमणकारी राम हूं ।
(२२) मैं सत्तावन आस्रवोंसे रहित सदा ही निर्बंध व स्वतंत्र परमेश्वर हू ।
(२३) मैं चौरासीलाख योनियोंके गमनसे रहित सदा ही अजन्मा अजर अमर परमात्मा हूं ।
(२४) मैं १९७॥ लाख कुल कोडिकी सज्ञाओंसे दूरवर्ती परम चैतन्य कुलवान परम शुद्ध सहज स्वभावधारी आत्मा हूं ।

इसतरह मनन करनेसे अपना आत्मा देव अपने शरीररूपी मंदिरमें प्रगट दिखलाई पड़ेगा। शुद्ध नय या शुद्ध दृष्टिसे हरएक आत्मा निर्बंध व परम शुद्ध सिद्धके समान है। यही श्रद्धान, यही ज्ञान, यही ध्यान मोक्षमार्ग है व परमानन्दका कारण है।

इस ग्रंथकी टीका लिखनेमें शुद्ध प्रतिका मिलना बडा कठिन था। भाई मथुराप्रसाद बजाज सागरने दो गुटके भिजवाए, जिससे ग्रंथ समझमें आसका।

१ गुटका १०० वर्षके अनुमानका लिखा होगा उसमें लिपि संवत नहीं है।

दूसरा गुटका बहुत पुराना है व बहुत शुद्ध है। इसकी प्रशस्ति यह है जो पृष्ठ २६० पर ममलपाहुड़ ग्रंथकी समाप्तिमें दी हुई है। चौवीस ठाणा गुटकेके अंतमें है—

भूमिका

प्रशस्ति ।

संवत् १६६४ (**सोलहसौ चौसठ**) वर्षे पुस्तक आरम्भ ज्येष्ठ सुदी ७ का । समाप्त श्रावण वदी ७ का ग्रन्थ समाप्तमिति। तत् वास्तव्य स्थान **देवगढ़नगरे** तत् महाराजाध्यराजा.... ... .व्रतधारी पांडे **रैणचंद** तत् पट्टे शिष्य पाडे **असोले** पुस्तक लिखापितं आत्म पठणार्थं । तत् चैत्यालये साहिपति साहि श्री **उदोतकारी** श्री साहि अधिकारी तत् पुत्र सुखानन्द न्यानी श्री अधिकारी णजु पुस्तक लिखापितोयं । दत्तं मनःकामना सिद्धयर्थं परोपकारार्थं धर्मफल प्राप्त्यर्थं । लिखितं लेखक भट्ट राघवदास स्वहस्त लिषितः ।

इस ग्रंथमें गद्य बहुत है । आत्म मननके वाक्य हैं । मूल प्रति सम्हालकरके नकल करके नम्बर देकर अर्थ लिखा है । तुच्छ बुद्धिके अनुसार समझके लिखा है। कहीं भूलचूक हो तो ज्ञानीजन सुधार लें व अल्पज्ञपर क्षमा करें । श्री जिन तारणतारण स्वामीका स्वर्गवास १५७२ में हुआ । मल्हारगढ नसियामें स्मारक स्थापित है । चौवीस स्थानोंके कोष्ठकोंका मिलान **चौवीस ठाणा** चर्चा पुस्तकसे किया है जिसे वीर सं० २४५६ में जैन साहित्य प्रचारक कार्यालय हीराबाग बम्बईने प्रसिद्ध किया है ।

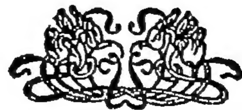
मुलतान शहर।
दासूराम सुखानन्द जैन बाग,
ता० २७-९-१९३८ ।

अध्यात्मरसीक—
ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद ।



प्रशस्ति
॥ ५॥

विषय-सूची ।



शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
२	१२	आचरण	आवरण
५	१४	मनको	मन जो
,,	१५	ज्ञानं	ज्ञानं
६	४	वर्णन	वर्ण
,,	१६	पर्याप्त पद	अपर्याप्त पद
१०	१५	वेदना	वेद
११	१०	—०—	(११) इतर निगोद सूक्ष्म (१२) इतर निगोद बादर
१५	७	कर्ममें	कर्म थे
१७	१५	आचरण	आवरण
२१	२२	में शून्य	से शून्य
२६	१७	केवल	कमल
३०	७	है व	है तब
३२	४	आवरेण	आयरेण
३३	११	अशुद्ध	शुद्ध
३५	१५	पुण्य	तुष्य
३७	९	बिम्ब	स्वरूप
४१	१५	आवरण	आयरण
४३	१५	वन्दनयुक्त	बन्धनमुक्त
४५	१४	भय २	भव्य २
,,	२१	अलस्य	अलक्ष्य
४६	१०	आवरण	आयरण
,,	११	,,	,,
४७	४	दर्शनीय योग	दर्शनोपयोग
५१	१५	तब	रमण करता है तब १६
५२	२	१७	ज्ञान मूर्ति अविनाशी कमलमें रमण होरहा है १७
,,	१९	भव्य	भव
५३	१९	अप	अब
५४	९	कासु	फासु
,,	११	आवरण	आयरण
,,	१७	कीर्ति	कांति
५५	१०	आवरण	आयरण
५६	११	भय	मय
,,	१३	अव्या	अष्या
,,	१४	माया	मात्रा
५७	६	रहित	सहित
,,	२१	भाव	भाव, शरीर रंजन भाव

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२२	बल	मल
६०	१६	छियो	पियो
६१	अन्तमें	तप	तय
६२	६	द्वेष	प्रेम
६३	६	वाय	काय
,,	८	वाइ	काइ
,,	१०	बाईस	बारह
,,	१४	रमण	रमणता
६४	२०	यायु	वायु
६५	१	आवरण	आयरण
,,	५	मुक्त	भुक्त
,,	६	आवरण	आयरण
,,	१६	,,	,,
६९	७	आयरण	आवरण
,,	९	सुनाई	सुभाइ
७२	१	आवरण	आयरण
,,	६	मुक्ति	भुक्ति
,,	९	आवरण	आयरण
,,	११	,,	,,
७४	७	आवरण	आयरण

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
७४	११	भय	मय
७५	१६	प्रक्षादिक	क्षायिक
,,	अन्तमें	२३	२२
७६	१०	मद	पद
७८	११	६३	६६
७९	१३	परिण	परिणय
८०	५	मुक्त	भुक्त
,,	१९	लेंगी	लेगा
८२	१६	लोयनं	लोपनं
८५	१२	लोयन	लोपन
८६	२	निस्वास	विस्वास
९४	८	८८३३६	६६३३६
,,	९	३७७६	३७७३
९८	१	ध्यान ६	ध्यान ८
१००	९	अडग	षड्ग
१०१	१४	मुक्त	भुक्त
१०५	४	सुमन	सुपन
,,	५	मिषाय	विषय
१११	४	स्वाध्यायिक	स्वाभाविक
११७	१०	मुक्ति	उक्ति



शुद्धिपत्र ॥ ८ ॥



श्रीतारणतरणस्वामी विरचित—

चौबीस ठाणा टीका।

प्रथम अध्याय।

मङ्गल अर्हत सिद्ध मुनि, जिन भाषित जिन धर्म।
लोकोत्तम रक्षक परम, नमहुँ कटैं सब कर्म ॥ १ ॥

ॐ उवन उवन विंद विंद भवनं, विन्यान विनय सुयं।
उत्पन्नंतानन्त सुयं च सुरयं, सुद्धं च सुद्धात्मनं ॥
उवन उवन सुभाव मनस्य ममलं, मय मूर्ति न्यानं सुयं।
लोकालोक सुयं सुरं च सुरयं, सुन्नं सहावं सुरं ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ उवन उवन विंद विंद भवन) ॐ मंत्र द्वारा प्रकाशित परमात्मा ज्ञानमई है व ज्ञानमें रमण कर रहे हैं (विन्यान विनय सुयं) जो स्वयं आप अपने ज्ञानकी विनय कर रहे हैं अर्थात् ज्ञानाराधनमें तत्पर हैं (उत्पन्नंतानंत सुयं च सुरयं) जहां अनन्तानन्त प्रकाश धारी ज्ञान सूर्य स्वयं उत्पन्न होरहा है (सुद्धं च सुद्धात्मनं) जो कर्म रहित शुद्ध आत्मा है (उवन उवन सुभाव मनस्य ममलं) जहां स्वभावका प्रकाश है व जहां शुद्धोपयोग है (मय मूर्ति न्यानं सुयं) जो ज्ञान मूर्ति है, स्वयं ज्ञान स्वरूप है (लोकालोक सुयं सुर च

सुरयं) लोकालोकको दिखानेके लिये स्वयं सूर्य हैं (सुन्न सुहावं सुरं) वे सर्व पर भावोंसे शून्य स्वभावधारी हैं व परम सूर्य हैं।

भावार्थ—इसमें ॐ शब्द द्वारा श्री अरहन्त परमात्माका स्मरण किया गया है जो केवलज्ञानमई वीतराग स्वभावमें है व स्वानुभवमें तत्पर है।

मनुव मन उववन्न उवन उवनं, विंदस्य त्रितियं सुयं।
आचरनं तं न्यान सुद्ध विमलं, दस च अदरसं सुयं॥
दर्सं नन्त नन्त सुद्ध विमलं, आचर्नं दर्सं सुयं।
मननं तं विसेष सुद्ध विमलं, परमप्प परमं ध्रुवं॥ २॥

अन्वयार्थ—(मनुव मन उववन्न उवन उवनं) मनके द्वारा शुक्लध्यानका मनन करनेसे जहां केवलज्ञानका उदय होगया है (विंदस्य त्रितियं सुयं) जो तीसरा ज्ञान नेत्र स्वयं प्रकाशित होता है (आचरनं तं न्यान सुद्ध विमलं) वह परमात्मा निर्मल शुद्ध ज्ञानमें रमण कर रहे हैं (दर्सं च अदरस सुयं) उन्होंने स्वयं ही आत्माके दर्शनको देख लिया है (दर्सं नन्त नन्त सुद्ध विमलं) वहां शुद्ध आचरण रहित अनन्त दर्शन प्रकाशित है (आचर्न दर्सं सुय) वे स्वयं अपने दर्शन गुणमें आचरण कर रहे हैं (मनन तं विसेष सुद्ध विमल) वहां शुद्ध निर्विकार शुद्धोपयोग है (परमप्प परमं ध्रुव) वे ही अविनाशी उत्तम परमात्मा हैं।

भावार्थ—अरहन्त परमात्माके अनन्त ज्ञान व अनन्त दर्शन गुण हैं, वे अपने ही ज्ञान दर्शनमें ही रमण कर रहे हैं।

आचरनं तं मान सुयं च सुरयं, विंदस्य रमनं परं।
न्यानं न्यान विन्यान न्यान ममलं, अंतर सुरं अंतरं॥
विंद त्रितिय विसेष सुयं च रमनं, सद्भाव भावं सुरं।
संसारं सुरयंति सहस रवनं, आचन न्यानं परं॥ ३॥

अन्वयार्थ—(आचरनं त मान सुय च सुरयं) वह केवलज्ञान प्रमाण स्वयं सूर्यके समान आप ही शोभा-

यमान है (विंदस्य रमनं परं) वहां उत्कृष्टपने ज्ञानमें ही रमण है (न्यान न्यान विन्यान न्यान ममल) वह निर्मल ज्ञान परम विज्ञान है जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म पर्यायको जानता है (अतर सुरं अतर) वह अंतरंगमें प्रकाशित सूर्य है (विंद त्रितिय विसेष सुय च रमनं) वह तीसरा ज्ञान नेत्र है जो आपमें रमण कर रहा है (सद्भाव भाव सुरं) वह स्वभावसे प्रकाशित सूर्य है (संसारं सुरयति सहस रवन) हजार किरण धारी संसारिक सूर्य है (आचर्न न्यान परं)वह ज्ञान उत्कृष्ट सूर्य है आपमें ही आचरण कर रहा है।

भावार्थ—यहां भी केवलज्ञानका ही महात्म्य है।

उवनं उवन स विंद विंद भवनं, विन्यान न्यानं मयं।
उत्पन्नं उववन्न उवन उवनं, उत्पन्नं श्रियं सास्वतं॥
उत्पन्नं हियहेय एय ममलं, हितकारं श्रीयं सुरं।
उत्पन्न सहयार रंज रमनं, सहयार श्रीयं परं॥ ४॥

अन्वयार्थ—(उवनं उवन स विंद विंद भवनं) स्वानुभवमें परिणमन करता हुआ प्रकाशका उदय होरहा है (विन्यान न्यान मय) यह केवलज्ञान प्रमाण है (उत्पन्न उववन्न उवन उवनं) जो कुछ प्रकाश झलकना था सो झलक गया है, कोई अन्धकार नहीं है (उत्पन्नं श्रियं सास्वत) अविनाशी ज्ञान-लक्ष्मीका उदय होगया है (उत्पन्नं हिय हेय एय ममलं) उस शुद्ध ज्ञानमें उपादेय हेय व ज्ञेय सब झलक रहा है। क्या ग्रहण करने योग्य है, क्या त्यागने योग्य है, क्या जानने योग्य है (हितकारं श्रीय सुरं) यह सूर्यके समान हितकारी ज्ञानका ऐश्वर्य है (उत्पन्न सहयार रंज रमन) इसीकी सहायतासे आनन्दमें रमण होरहा है (सहयार श्रीयं परं) यह आत्माका हितकारी ईश्वर स्वरूप ज्ञान है।

भावार्थ—केवलज्ञानका महात्म्य है कि उसमें कोई आवरण नहीं है, वह अविनाशी है, सर्व हेय, उपादेय, ज्ञेय तत्वोंको बतानेवाला है। यह स्वानुभव रूप है, परमानन्दमय है।

उत्पन्नं तं न्यान नन्त विमलं, पयं च पद विंदं सुरं।
उत्पन्नं तं दिष्ट इष्ट ममलं, सब्दं असब्दं सुरं॥

उत्पन्नं उत्पन्न प्रान ममलं, इन्द्री अतिन्द्री सुरं ।
उत्पन्नं नन्त विसेष भाव सहजं, सहजं सहावं परं ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्नं त न्यान नत विमलं) निर्मल अनन्तज्ञान पैदा होगया है (पयं च पद विंद सुरं) जो प्रत्येक पदमें स्वानुभव रूप हैं व सूर्यके समान हैं (उत्पन्नं तं दिष्ट इष्ट ममलं) निर्मल प्रिय अनन्तदर्शनका प्रकाश होगया है (सब्द असब्द सुर) उस केवलज्ञानीके जो शब्द प्रगट होता है वह शब्द रहित सूर्यसम ज्ञानको ही बतानेवाला है (उत्पन्नं उत्पन्न प्रान ममल) अरहंत भगवानके सुख, सत्ता, चैतन्य, बोध इन शुद्ध आत्मीक प्राणोंका विकाश होगया है (इन्द्री अतिन्द्री सुरं) केवलीके अतीन्द्रिय ज्ञान सूर्यसम प्रगट है, ज्ञान ही इन्द्रिय है और स्पर्शनादि पांच इन्द्रियोंकी सहायता नहीं है (उत्पन्न नंत विसेष भाव सहज) केवलीके सहज स्वाभाविक अनन्तशक्तिधारी विशेष भावकी शुद्धि प्रगट है (सहजं सहाव परं) अरहंतका आत्मा सहज स्वरूपमें है व परम उत्कृष्ट है ।

भावार्थ—यहां भी अरहंत भगवानकी स्तुति है ।

उत्पन्नं गय इंद्रि काय रवनं, जोगं च वेयं सुरं ।
उववन्नं कषाइ न्यान ममलं, दर्सं अदर्सं परं ॥
दंसन संजम लेस्य भव्य भवनं, भयं सि विलयं परं ।
सम्मतं सहकार नंत ममलं, सैनी असयनी सुरं ॥ ६ ॥
आहारं गुनठान न्यान ममलं, जीवस्य पज्जय परं ।
मन विगयं तं नंत नंत चपलं, कम्मस्य रमनं परं ॥
ज्ञानं चि पच्चय विहज्ञ रवनं, जायं कुल कोटि सुरं ।
सुर विंजन सज्ञोय ऐत वैन ममलं, चौवीसठाणं सुरं ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्नं गय इंद्रि काय रवनं) केवली भगवानके मनुष्यगति उत्पन्न होचुकी है । पांच इंद्रियां

हैं, त्रस काय सुन्दर है (जोग च वेय सुरं) मन वचन कायके १५ योगोंमेंसे सत्य व अनुभय मन, सत्य अनुभय वचन, औदारिक काय, औदारिक मिश्र काय, कार्माण काय ऐसे सात योग हैं। वेद तीनों नहीं हैं ज्ञानका ही वेद है, काय वेद नहीं है (उववन्नं कषाय न्यान ममल) कषाय चार या पचीस पहले थे अब ज्ञान कषाय रहित निर्मल है, मात्र एक केवलज्ञान है (दर्सं अदर्सं पर) जिस ज्ञानसे अतीन्द्रिय उत्कृष्ट आत्माको देख रहे हैं (दंसन संजम लेस्य भव्य भवन) चार दर्शनमेंसे केवलीके अनन्त दर्शन है, सात संयममेंसे एक यथाख्यात संयम है, छः लेश्यामेंसे एक शुक्ल लेश्या है, भव्य भावका व्यवहार है (भयसि विलयं परं) केवलज्ञानीके कोई भय नहीं रहा। वे परमात्मा होगए (सम्मत्त सहकार नन्त ममल) छः सम्यक्तमेंसे क्षायिक अनन्त शुद्ध सम्यक्त परम सहकारी है (सैनी असयनी सुरं) सैनी असैनीसे रहित ये निर्मल ज्ञान सूर्य हैं (आहारं गुनठान न्यान ममलं) सयोग गुणस्थानमें केवली आहारक है, कर्म नोकर्म ग्रहण करते हैं इसतरह चौदह मार्गणाओंके चौदह स्थान हैं। गुणस्थान तेरहवां सयोगकेवली जिन शुद्ध ज्ञानमय है यह पंद्रहवां स्थान है (जविस्य पज्जय पर) सोलहवां स्थान जीव समास है, केवली पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय सैनी हैं। १७ वा स्थान पर्याप्ति है केवली पर्याप्त हैं।१८ वां स्थान प्राण है। केवलीके वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास चार प्राण हैं। १९ वां स्थान संज्ञा है, केवलीके कोई नहीं है। २० वां स्थान उपयोग है केवलीके केवलज्ञान केवलदर्शन उपयोग है (मन विगयं तं नन्त नन्त चपलं) चंचल मनको अनन्तानन्त विकल्पोंका करनेवाला है, केवलीके नहीं है (कम्मस्य रमन पर) केवल अघातीय कर्मोंका सम्बन्ध है (ज्ञानं चि पच्चय विह च रवनं) २१ वां स्थान ध्यान है, केवलीके शुक्लध्यान होता है। २२ वां स्थान प्रत्यय या आस्रव है, केवलीके ५७ आस्रवोंमेंसे ७ योग ही आस्रव है (जाय कुल कोटि सुरं) २३ वां स्थान योनि ८४ लाख हैं केवलीके यथासम्भव मनुष्य योनि है। कुल कोटि १९७॥ लक्ष कोटि कुलमेंसे केवलीके मनुष्य सम्बन्धी कुल है। यह २४ वां स्थान है (सुर विजन सेजोय ऐत वैन ममलं चौवीसठाणं सुरं) ऐसे २४ स्थानके धारी केवलीके सुरव्यंजनके संयोग रहित शुद्ध निरक्षर वचन निकलते हैं।

भावार्थ—जिन स्थानोंमें संसारी जीवोंकी अवस्थाओंको जाना जावे ये स्थान कुल चौवीस हैं उनको चौवीस ठाण या चौवीस स्थान कहते हैं। इनका विस्तारसे कथन, गोम्मटसार जीवकांडमें है।

चौवीस स्थानोंका विस्तार।

(१) गति ४—प्राणीके शरीरादिकी अवस्था विशेष। वे चार हैं-नरक, तिर्यंच, देव, मनुष्य। संसारी जीव इनमेंसे किसी गतिमें मिलेगा।

(२) इन्द्रिय ५—जिनके द्वारा मतिज्ञान स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णन शब्दको जान सके। ये पांच हैं-स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राणइंद्रिय, चक्षुइंद्रिय, कर्णइन्द्रिय। संसारी जीव कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो, कोई तीन, कोई चार, कोई पांच इंद्रिय धारी हैं।

(३) काय ६—शरीरकी रचनाकी अपेक्षा संसारी प्राणियोंके जाति भेद-ये छः हैं-पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय।

(४) योग १५—आत्माके कर्म नोकर्म पुद्गल ग्रहण करनेकी शक्तिको योग कहते हैं। जब आत्माके प्रदेश चञ्चल होते हैं तब यह योगशक्ति काम करती है। आत्माके प्रदेश पंद्रह योगोंमेंसे किसी एक योगके निमित्त होनेपर हिलते हैं। एक समयमें कोई एक योग होता है। चार मनके-सत्य (जहां सच्चा विचार हो), असत्य, उभय (जहां सच्चा झूठा मिला हुआ विचार हो, अनुभय (ऐसा विचार जिसके सत्य या असत्य कुछ भी नहीं कह सक्ते हैं, जैसे विचार करना वह क्या पूछते थे, वे क्यों बुलाते थे,) इसी तरह चार वचनके-सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। कायके योग सात-औदारिक काय (मनुष्य व तिर्यंचोंके) औदारिक मिश्र काय (इनहीके अपर्याप्त अवस्थामें) वैक्रियिककाय (देव नारकियोंके) वैक्रियिक मिश्र (इनहीके पर्याप्तपदमें) आहारक काय (मुनिके मस्तकसे आहारक शरीर निकलता है तब) आहारक मिश्र काय (आहारक शरीरके बनते हुए) कार्माण काय योग विग्रह गतिमें सबके होता है, समुद्घात केवलीमें भी होता है।

(५) वेद ३—कामभावको वेद कहते हैं। स्त्री वेद, पुंवेद, नपुंसक वेद। जहांतक वेदका अभाव न हो वहांतक कोई न कोई वेद रहेगा।

(६) कषाय २५—जो आत्माके ज्ञानको मैला, कलुषित, कलंकी व कषायला करदे। वे कषाय कुल पचीस हैं।

४–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ—जो सम्यग्दर्शन व स्वरूपाचरण चारित्रको रोके, न होने दे।

४–अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ—जो श्रावकके बारह व्रतरूप देश चारित्रको न होनेदे, रोके। अप्रत्याख्यानका अर्थ कुछ त्यागके हैं।

४–प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ—जो साधुके महाव्रतको रोके। प्रत्याख्यान नाम पूर्ण त्यागका है, उसको जो न होनेदे।

४–संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ—जो संयमको घात न करे, संयमके साथ साथ रह सके। परन्तु यथाख्यात चारित्र व वीतरागताको रोके।

९–नोकषाय, कुछ कषाय—जो कषायकी सहायताके विना काम न कर सके। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (घृणा), स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद। इनमेंसे संसारी जीवोंके यथासंभव कषायें एक समयमें पाई जाती हैं। जैसे किसी जीवको अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन चारों ही कषायोंके साथ अरति, शोक, भय, जुगुप्सा व पुंवेद हो अर्थात् एक साथ ९ कषायें उदयमें रह सकती हैं।

(७) ज्ञान ८—तीन कुज्ञान–कुमति, कुश्रुति, कुअवधि, पांच सम्यग्ज्ञान।

मति श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान।

सम्यक्त सहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं, मिथ्यात्वसहित ज्ञानको कुज्ञान कहा है। इंद्रियोंसे या मनसे सीधा किसी पदार्थको जानना मतिज्ञान है।

मतिज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थके द्वारा दूसरे पदार्थको जानना श्रुतज्ञान है। द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा पूर्वक रूपी पदार्थोंको आत्माके द्वारा प्रत्यक्ष जानना अवधिज्ञान है।

दूसरोंके द्वारा विचार किये जानेवाले रूपी पदार्थोंको आत्मा द्वारा प्रत्यक्ष जानना मनःपर्यय ज्ञान है।

सर्व द्रव्योंकी सर्व गुण पर्यायोंको एक काल प्रत्यक्ष क्रम रहित जानना केवलज्ञान है। एक अकेला केवलज्ञान होता है। मति श्रुत दो किसी जीवके होते हैं, किसीके अवधि या मनःपर्यय सहित तीन या दोनों सहित चार ज्ञान एक साथ होते हैं।

(८) संयम ७—पांच अहिंसादि व्रतोंको पालना, इंद्रियोंको व मनको रोकना संयम है। उसके सात भेद हैं—

१–असंयम—संयमका बिलकुल न होना। चार गुणस्थान तक असंयम रहता है।

२–देश संयम—श्रावकका चारित्र पालना। पांचवां गुणस्थान।

३–सामायिक—समभावसे ध्यानमें रहना।

४–छेदोपस्थापन—समभावसे गिरकर फिर समभावमें स्थिर होना।

५–परिहारविशुद्धि—जिस संयममें विशेष जीव हिंसाका त्याग हो।

६–सूक्ष्मसांपराय—केवल सूक्ष्म लोभके होते हुए संयम रहना।

७–यथाख्यात—नमूनेदार वीतराग चारित्र।

एक समयमें एक जीवके एक प्रकार संयम मिलेगा। पिछले पांच मुनियोंके होते हैं।

(९) दर्शन ४—विशेष रहित सामान्य ग्रहणको दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं—

१–चक्षु दर्शन—आंखके द्वारा सामान्य ग्रहण।

२–अचक्षु दर्शन—आंखके सिवाय अन्य चार इंद्रिय व मनसे सामान्य ग्रहण।

३–अवधि दर्शन—जो सम्यक्तीके अवधिज्ञानसे पहले होता है।

४–केवलदर्शन—सबको ग्रहण करना। केवलीके होता है।

तीन इंद्रिय तक अचक्षु दर्शन चार व पांच इंद्रियोंके चक्षु अचक्षु दोनों दर्शन होते हैं। अवधिदर्शन सहित तीन दर्शन अवधिज्ञानीको होंगे, केवलीके एक केवलदर्शन होगा।

(१०) लेश्या ६—जिन भावोंसे पाप या पुण्यका बन्ध हो। ऐसे भाव लेश्या कहलाते हैं, आत्म प्रदेश कम्पन रूप योग कषाय सहित या कषाय रहितको लेश्या कहते हैं। ये छः हैं—

१–कृष्णलेश्या–अशुभतम भाव—मूलसे नाश करनेवाले भाव।

२–नील–अशुभतर भाव—मूल रखकर नाश करनेवाले भाव।

३–कापोत–अशुभ भाव—कुछ बिगाड़ करनेवाले भाव।

४–पीत–शुभ भाव—परोपकारके भाव।

५–पद्म–शुभतर भाव—अपनी हानि सहकर परोपकारके भाव।

६–शुक्ल–शुभतम भाव—रागद्वेष रहित समभाव या वैराग्य भाव, निःपक्षपात भाव। एक काल एक लेश्या, एक जीवके पाई जाती है।

(११) भव्य २—जो सम्यक्तको प्राप्त कर सके वह भव्य, जो सम्यक्तको न पाप्त कर सके वह अभव्य। ऐसे दो भेद।

(१२) सम्यक्त ६—जीवके श्रद्धानको सम्यक्त कहते हैं। इसके छः भेद हैं—

१–मिथ्यात्व—मिथ्या श्रद्धान।

२–सासादन—सम्यक्तसे छूटकर मिथ्यात्वमें आते हुए भाव।

३–मिश्र—सम्यक्त व मिथ्यात्वके मिश्रभाव।

४–उपशम—चार अनन्तानुबन्धी कषाय व दर्शनमोहके उपशम या दबनेसे जो सम्यक्त हो। इसका काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं है।

५–वेदक या क्षयोपशम—चार अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व, मिश्र इन ६ के उदय न होनेपर केवल सम्यक्त प्रकृतिके उदय होनेपर जो मलीन श्रद्धान हो वह वेदक सम्यक्त है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट ६६ सागर काल है।

६–क्षायिक—सातों प्रकृतियोंके क्षयसे जो हो, अनन्त कालतक रहनेवाला, एक कालमें एक जीवके छः मेंसे एक भाव होगा।

(१३) सैनी २—मन सहित सैनी, मन रहित असैनी कहलाते हैं। हृदयमें आठ पत्तेके कमलाकार द्रव्य मन द्वारा तर्क करनेकी जो शक्ति धरे उसे सैनी कहते हैं।

(१४) आहारक २—औदारिक, वैक्रियक व आहारक। किसी भी शरीरके योग्य आहारक वर्गणाको जो ग्रहण करे वह आहारक है। जो इनको न ग्रहण कर सके वह अनाहारक है। जैसे विग्रहगतिका जीव, अयोगकेवली।

(१५) गुणस्थान १४—मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम तथा योगके निमित्तसे होनेवाले जीवके भावोंको गुणस्थान कहते हैं। वे चौदह इस क्रमसे हैं कि एकसे दूसरेमें ऊपर ऊपर भावोंकी निर्मलता है। इन चौदह सीढ़ियोंको पार कर जीव सिद्ध परमात्मा होता है।

१-मिथ्यात्व—जहां आत्माका श्रद्धान न हो, मोहमें भूला हुआ हो।

२-सासादन—सम्यक्तसे गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थानमें पड़ते हुए बीचके भाव, कुछ देर मात्र, उत्कृष्ट छः आवली। यहां अनन्तानुबन्धी कषायका उदय रहता है, मिथ्यात्वका नहीं।

३-मिश्र—सम्यक्त व मिथ्यात्वके मिले भाव। अन्तर्मुहूर्त तक।

४-अविरत सम्यक्त—संयम रहित तत्वका श्रद्धान जहां हो, यहां अनन्तानुबन्धी चार कषाय व मिथ्यात्व व मिश्रका छः का उदय नहीं होता है। उपशम या क्षायिक सम्यक्तीके सम्यक्त प्रकृतिका उदय भी होता है जब कि क्षयोपशम या वेदकके सम्यक्त प्रकृतिका उदय होता है।

५-देशविरत—श्रावकके व्रतोंको पालनेवाला, दर्शन आदि ग्यारह प्रतिमाओंके पालनेवाला। यहां चार अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका उदय भी नहीं होता है।

६-प्रमत्तविरत—साधुके महाव्रतोंको पालनेवाला। प्रमाद सहित इस गुणस्थानमें साधु आहार, विहार, उपदेशादि करते हैं। इसके आगेके सब गुणस्थान ध्यानमई अप्रमत्त हैं। यहां प्रत्याख्यानावरण चार कषायका उदय नहीं होता है।

७-अप्रमत्तविरत—यहां चार संज्वलन कषाय व नौ नोकषायोंका मन्द उदय होता है।

८-अपूर्वकरण—अपूर्व शुद्ध भाव। यहां भी १३ कषायोंका मन्दतर उदय है।

९-अनिवृत्तिकरण—खास शुद्ध भाव। यहां चार संज्वलन व तीन वेदनाका उदय रहता है सो धीरे २ मिटता जाता है।

१०-सूक्ष्म लोभ या सूक्ष्म सांपराय—यहां मात्र सूक्ष्म लोभका ही उदय है।

११-उपशांत मोह या उपशांत कषाय—यहां सर्व कषाय शांत हैं। यहां वही आता है जो कषायोंको उपशम करता हुआ उपशम श्रेणीसे चढ़ता है। यहांसे गिरता अवश्य है, फिर सातवें तक क्रमसे लौट जासक्ता है।

१२-क्षीण मोह—यहां सर्व मोह क्षय होचुका है। यह क्षपकश्रेणीसे मोहको क्षय करता हुआ ८, ९, १० गुणस्थानसे १२वेंमें आता है।

१३-सयोग केवलि जिन—चार घातीय कर्म रहित विहार करनेवाले केवली अरहन्त भगवान।

१४-अयोग केवलि जिन—योग क्रिया रहित केवली। कुछ देरमें ही चार अघातीय कर्मका क्षय करके फिर सर्व शरीर रहित सिद्ध होजाते हैं।

एक कालमें जीवके एक गुणस्थान ही होता है।

(१६) जीव समास १९—जहां जीवोंको जातिकी अपेक्षा संग्रह किया जाय ऐसे जीव समास १४ प्रसिद्ध हैं—

(१) पृथ्वीकाय सूक्ष्म, (२) पृथ्वीकाय बादर।

(३) जलकाय सूक्ष्म, (४) जलकाय बादर।

(५) अग्निकाय सूक्ष्म, (६) अग्निकाय बादर।

(७) वायुकाय सूक्ष्म, (८) वायुकाय बादर।

(९) नित्य निगोद साधारण वनस्पति सूक्ष्म, (१०) नित्य निगोद बादर।

(११) प्रत्येक वनस्पति बादर प्रतिष्ठित (निगोद सहित), (१२) प्रत्येक वनस्पति बादर अप्रतिष्ठित।

(१३) द्वेन्द्रिय, (१४) तेन्द्रिय, (१५) चौन्द्रिय, (१६) पंचेन्द्रिय असैनी, (१७) पंचेन्द्रिय सैनी। पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे ३८ भेद होजांयगे। कोई जीव किसी समासमें गर्भित होगा।

(१७) पर्याप्ति ६—शरीरादि बननेकी शक्तिको पर्याप्ति कहते हैं। ये छः हैं—१-आहार-पुद्गलको मोटा महीन करनेकी शक्ति, २-शरीर, ३-इंद्रिय, ४-श्वासोछ्वास, ५-भाषा, ६-मन।

एकेन्द्रियमें पहली चार, २ से पंचेद्रिय असैनी तक पहली ५, सैनीके छहों होती हैं।

(१८) प्राण १०—जिनके कारण जीव वर्ताव कर सके, काम कर सके वे प्राण हैं। वे १० होते हैं—५ इंद्रिय प्राण, ३ बल मन वचन काय, १ आयु, १ श्वासोछ्वास।

एकेन्द्रियके स्पर्शनेन्द्रिय, काय बल, आयु, श्वास, चार प्राण।

द्वेन्द्रियके-रसना इंद्रिय वचनबल अधिक छः प्राण।

तेन्द्रियके-घ्राणेंद्रिय सहित सात प्राण।

चोन्द्रियके-चक्षु इंद्रिय अधिक आठ प्राण।

पंचेन्द्रिय असैनीके-कर्ण इंद्रिय सहित नौ प्राण।

पंचेन्द्रिय सनीके–मन बल सहित दश प्राण होते हैं।

(१९) संज्ञा ४—कर्मोंके उदयसे विशेष प्रकारकी इच्छाओंको संज्ञा कहते हैं। ये चार हैं—१ आहार संज्ञा-भोजनकी इच्छा, २ भय संज्ञा-भयका भाव, ३ मैथुन संज्ञा-काम विकार, ४ परिग्रह संज्ञा-मूर्छाभाव। ये सर्व संसारी जीवोंके होती हैं, साधुओंके कम होती जाती हैं।

(२०) उपयोग १२—चेतना गुणके परिणमनको, जो वस्तुको जाननेमें लगे उपयोग कहते हैं, बारह भेद हैं। ज्ञान आठ, दर्शन ४, पहले पढ़ चुके हैं।

(२१) ध्यान १६—दुःखरूप परिणाम आर्तध्यान है, उसके चार भेद हैं-१-इष्टवियोगज, २-अनिष्ट संयोगज, ३-पीड़ाजनित, ४-निदान (भोग वांछा) दुष्ट परिणाम रौद्रध्यान है, इसके भी चार भेद हैं।

५-हिंसानन्दी, ६-मृषानन्दी, ७-चौर्यानन्दी, ८-परिग्रहानन्दी। धर्मका चिंतवन सो धर्मध्यान है। इसके चार भेद हैं।

९-आज्ञा, १०-अपाय (कर्मनाश विचार), ११-विपाक (कर्मफल), १२ संस्थान (आत्मा व लोकका स्वरूप)। शुद्ध ध्यान शुक्लध्यान है, इसके भी चार भेद हैं—

१३-पृथक्त्व वितर्क वीचार (जहां पलटन हो), १४-एकत्व वितर्क अवीचार (जहां थिरता हो); १५-सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति (सूक्ष्म काययोग हो), १६-व्युपरत क्रिया निवृत्ति (योग रहित होजावे)।

कोई ध्यान एक जीवके पाया जायगा।

(२२) प्रत्यय या आस्रव ५७—मिथ्यात्व पांच प्रकार—

१-एकांत मिथ्यात्व—वस्तुमें अनेक स्वभाव होनेपर भी एक ही मानना।

२-विनय—निर्णय न करके सत्य असत्यको एकसा मानना।

३-विपरीत—असत्यको सत्य मानना।

४-संशय—शङ्काशील रहना। ५-अज्ञान—जानना ही नहीं।

१२ अविरति भाव-पांच इंद्रिय व मनको वश न रखना तथा छःकायके प्राणियोंकी दया न पालना।

२५ कषाय-पहले कह चुके, १५ योग पहले कह चुके। इसतरह ५+१२+२५+१५=५७ आस्रव हैं।

(२३) योनि ८४ लाख—जिन स्थानोंमें जीव जन्मते हैं उनके गुणोंकी अपेक्षा भेदोंको योनि कहते हैं। वे ८४ लाख नीचे प्रमाण हैं—

(१) नित्य निगोद सात लाख, (२) इतर निगोद ७ लाख, (३) पृथ्वीकाय ७ लाख, (४) जल काय ७ लाख, (५) अग्नि काय ७ लाख, (६) वायु काय ७ लाख, (७) प्रत्येक वनस्पति १० लाख, (८) द्वेंद्रियं २ लाख, (९) तेन्द्रिय २ लाख, (१०) चौन्द्रिय २ लाख, (११) पंचेन्द्रिय तिर्यंच ४ लाख, (१२) देव ४ लाख, (१३) नारकी ४ लाख, (१४) मनुष्य १४ लाख=८४ लाख।

(२४) कुल १९७॥ लाख कोड—एक प्रकारकी योनिसे जितने प्रकारके जीव जन्मते हैं उन प्रकारोंको कुल कहते हैं। जैसे एक खेतकी मिट्टीसे जौ, गेंहू, चने होना। ऐसे कुल एकसौ साढेसतानवें लाख कोड नीचे प्रकार हैं—

(१) पृथ्वी काय	...	...	...	२२ लाख कोड कुल
(२) जल काय	..	...	...	७ ,, ,,
(३) अग्नि काय	..	...	..	३ ,, ,,
(४) वायु काय	..	...	...	७ ,, ,,
(५) वनस्पति काय	...	...	...	२८ ,, ,,
(६) दोइंद्रिय	...	...	...	७ ,, ,,
(७) तेइंद्रिय	...	...	...	८ ,, ,,
(८) चौइंद्रिय	...	..	...	९ ,, ,,
(९) पंचेन्द्रिय तिर्यंच	...	...	...	४३॥ ,, (जलचर १२॥ लाख, थलचर १९ लाख, नभचर १२ लाख)
(१०) नारक	...	...	...	२५ ,, ,,
(११) देव	...	...	...	२६ ,, ,,
(१२) मनुष्य	...	...	...	१२ ,, ,,
				१९७॥ लाख कोड कुल

४ गतियोंके २४ स्थान।

कुल स्थान	नरक गतिमें	तिर्यंच गतिमें	देव गतिमें	मनुष्य गतिमें
(१) गति ४	१ नरक	१ तिर्यंच	१ देव	१ मनुष्य
(२) इन्द्रिय ५	१ पंचेन्द्रिय	पांचों इन्द्रियवाले	१ पंचेन्द्रिय	१ पंचेन्द्रिय
(३) काय ६	१ त्रस काय	छहों काय	१ त्रस काय	१ त्रस काय
(४) योग १५	११ (४ मन ४ वचन वै० २) १ कार्मण	११ (४ म + ४ व + औदा० २ कार्मण १)	११ (४ म + ४ व + वै० २ + कार्मण १)	१३ (वै० २ विना,
(५) वेद ३	१ नपुंसक	तीनों वेद	२ स्त्री पुवेद	तीनों वेद
(६) कषाय २५	२३ (स्त्री पुवेद नहीं)	२५ कषाय	२४ (नपुंसक वेद विना)	२५ कषाय
(७) ज्ञान ८	६ (कुज्ञान ३ सुज्ञान ३)	६ (कुज्ञान ३ + सुज्ञान ३)	६ (कुज्ञान ३ + सुज्ञान ३)	८ ज्ञान
(८) संयम ७	१ असंयम	२ असंयम, देश संयम	१ असंयम	७ संयम
(९) दर्शन ४	३ (केवल विना)	३ (केवल विना)	३ (केवल विना)	४ दर्शन
(१०) लेश्या ६	३ (कृष्ण, नील, कापोत)	छहों लेश्या	पर्याप्त अपेक्षा ३ पीत पद्म शुक्ल अपर्याप्तके छहों	छहों लेश्या
(११) भव्य २	दोनों	दोनों	दोनों	दोनों
(१२) सम्यक्त ६	छहों	६ सम्यक्त	६	६
(१३) सैनी २	सैनी	२ सैनी, असैनी	सैनी	सैनी
(१४) आहारक २	दोनों	दोनों	दोनों	दोनों
(१५) गुणस्थान १४	पहले ४	पहले ५	पहले ४	सब १४
(१६) जीव समास १९	पंचेन्द्रिय सैनी	सब १९	पंचेन्द्रिय सैनी	पंचे० सैनी
(१७) पर्याप्ति ६	६ पर्याप्ति	६ तक	६	६
(१८) प्राण १०	१० प्राण	१० तक	१०	१०
(१९) संज्ञा ४	४	४	४	४
(२०) उपयोग १२	९ (ज्ञान ६ दर्शन ३)	९ (ज्ञान ६ दर्शन ३)	९ (ज्ञान ६ + दर्शन ३)	१२
(२१) ध्यान १६	९ (आर्त ४+रौद्र ४ + धर्म १)	११ (आर्त ४+ रौद्र ४ + धर्म ३)	१० (आर्त ४+ रौद्र ४+धर्म २)	१६
(२२) आस्रव ५७	५१ (स्त्री, पुवेद औदा० २ + आहारक २ = ६ छोड़कर)	५३ (आहारक २+वै०२=४ विना)	५२ (नपुं० वेद औदा० २ आहारक २=५ विना)	५५ (वै० २ विना)
(२३) योनि ८४ लाख	४ लाख	६२ लाख	४ लाख	१४ लाख
(२४) कुल १९७॥ लाख कोड	२५ लाख कोड	१३४॥ लाख कोड	२६ लाख कोड	१२ लाख कोड

उत्पत्ति तं षिपति मुक्ति रवनं, न्यानं च उवनं सुरं ।
उत्पन्नं तं न्यान नन्त विमलं, उत्पन्न कम्मं विलं ॥
भुक्तं न्यान विसेष नन्त विमलं, भुक्तस्य कम्मं गलं ।
संसारे सरयं विनन्द विलयं, न्यानं च न्यानं सुरं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ-(उत्पत्ति तं षिपति मुक्ति रवन) जब मोक्षका लाभ होता है तब फिर संसारमें जन्मका अभाव होजाता है (न्यानं च उवनं सुरं) वहां सूर्यके समान ज्ञान प्रगट रहता है (उत्पन्नं तं न्यान नन्त विमल) वह ज्ञान अनन्त है व शुद्ध है, सदा प्रकाशरूप है (उत्पन्न कम्म विलं) जो संचित कर्ममें ये सब क्षय होगये हैं (भुक्त न्यान विसेष नन्त विमल) मोक्ष प्राप्त परमात्मा अनन्त शुद्ध ज्ञान स्वभावका ही भोग करते हैं (भुक्तस्य कम्मं गलं) कर्मोंके फलका भोग उनके क्षय होगया है (संसारे सरयं विनन्द विलय) संसारके भ्रमणका सर्व कष्ट नाश होगया है (न्यानं च न्यान सुर) ऐसा ज्ञानमई सूर्य झलकता है।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा कर्म रहित होजाते हैं, शुद्ध ज्ञान स्वभावमें लीन होकर ज्ञानानन्दका भोग करते हैं। उनका भव भ्रमण बन्द होगया है। वे परम सुखी हैं। कोई सांसारिक दुःख नहीं है।

उववन्नं उववन्न न्यान रवनं, उत्पन्न कम्मं विलं ।
उववन्नं हिययार न्यान रवनं, हियार कम्मं विलं ॥
उववन्नं सहकार न्यान चरन, सहयार कम्मं गलं ।
उववन्नं तं जान न्यान उवनं, जानं अनिष्ट विलं ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(उववन्नं उववन्न न्यान रवन) सिद्ध भगवानमें रमणीक प्रकाशका ज्ञानका उदय रहता है (उत्पन्न कम्मं विलं) जन्मके कारण सर्व कर्म क्षय होगए हैं (उववन्नं हिययार न्यान रवनं) यह सुन्दर ज्ञान बड़ा ही हितकारी है (हिययार कम्म विलं) आत्माको शुभ संयोगोंमें रखनेवाला हितकारी पुण्यकर्म गल गया है (उववन्न सहकार न्यान चरनं) सिद्धोंके सदा आत्माको सहकारी ज्ञानमें चलनारूप ज्ञानाचार प्रगट है (सहयार कम्मं गलं) संसारमें सहायकारी पुण्यकर्मका क्षय होगया है (उववन्नं तं जान न्यान उवनं) सिद्धोंके

ज्ञानमई रथका आरोहण है (नान अनिष्ट विलं) मरणरूप क्षणिक चार गतिरूपी रथका चढ़ना बन्द होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके शुद्ध ज्ञानका प्रकाश है इससे सिद्धोंके परम निराकुलता है, बाधक सर्व कर्म क्षय होगये हैं, पुण्य भी कोई नहीं है इसलिये स्वाभाविक ज्ञान परिणतिमें रमण करते हैं। क्षणिक चार गतिमें गमनसे सदाके लिये छूट गए हैं।

उववन्नं पय पंच न्यान विमलं, पयं च कम्मं विलं।
उवन्नंत सुकिय सुभाव षिपनं, कम्म सुभावं विलं॥
उवन्नंत विसेष न्यान रवनं, कम्म स्वनन्तं विलं।
जं जं कम्म उवन्न असेस रवनं, न्यानस्य नन्तं विलं॥ १०॥

अन्वयार्थ—(उववन्न पयं पच न्यान विमल) निर्मल पंचम केवलज्ञानका प्रकाश परमात्मामें रहता है (पयं च कम्म विल) ज्ञानावरण पांचों कर्म क्षय होगए हैं (उवन्नत सुकिय सुभावं षिपनं) सिद्धोंके अपना ही क्षायिक स्वभाव प्रगट होगया है (कम्म सुभावं विल) कर्मोंकी सब प्रकृतियें विला गई हैं, न भावकर्म है न द्रव्यकर्म है न नोकर्म है (उवन्नत विसेष न्यान रवनं) उनके रमणीक अनन्तज्ञानका प्रकाश है (कम्म स्वनन्त विल) अनन्त कर्मोंका क्षय होगया है (ज ज कम्म उवन्न असेस रवनं न्यानस्य नंत विल) जो जो कर्म संसारी गतिमें उत्पन्न होते थे वे सब अनन्त कर्म शुद्ध रमणीक ज्ञानके प्रतापसे विला गए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके स्वरूपकी महिमा है। वे कर्म रहित स्वभावसे ही विराजित हैं। वे परम निराकुल हैं, क्षायिक शुद्ध स्वभावमें लीन हैं, शरीरादि रहित अमूर्तीक हैं।

अन्मोयं तं न्यान नन्त अचलं, विषयस्य विलयं सुयं।
जं जं विषय चरन सहाव उवनं, अन्मोय न्यानं विलं॥
न्यानं न्यान सुयं सुरं च रवनं, बाधस्य विलयं सुयं।
अव्याबाह अनन्त न्यान रवनं, चरन सुयं सासुतं॥ ११॥

अन्वयार्थ—(अन्मोय तं न्यान नन्त अचलं) वे सिद्ध भगवान अनन्त ज्ञानमें निश्चल रहते हुए परमानन्दमय हैं (विषयस्य विलयं सुय) उनके पांच इंद्रिय व मनका विषय सुख सब नाश होगया है (जं जं विषय चरन सहाव उवनं) विषयोंके भीतर भोग करनेसे जो जो विभाव पैदा होते हैं (अन्मोय न्यानं विलं) वे सब ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे विला गए हैं (न्यानं न्यान सुय सुरं च रवनं) वे स्वयं ज्ञान सूर्यके होते हुए अपने ही ज्ञानमें रमण करते हैं (बाधस्य विलयं सुयं) सुखके बाधाकारक कर्म या भाव स्वयं विला गए हैं (अव्यावाह अनन्त न्यान रवनं) उनके रमणीक अव्याबाध व बाधा रहित अनन्त ज्ञान है (चरनं सुयं सासुतं) तथा उनके स्वयं ध्रुव रूपसे अपने ही स्वभावमें आचरण है।

भावार्थ—सिद्धोंके अतीन्द्रिय बाधा रहित स्वाभाविक आनन्द है। सांसारिक विषय सुखकी न वांछा है, न भोग है। वे शुद्ध ज्ञानमें ही रमण करते हुए ज्ञानानन्दका ही स्वाद लेते हैं। वे शाश्वत् स्वरूप रमण चारित्रके धारी हैं।

अर्कं तु जु विसेष नन्त विमलं, सुद्धं च सुद्धात्मनं।
न्यानं न्यान सुयं समं च ममलं, चरनं च सुद्धं ध्रुवं ॥
तत्कालं रवनं तवं च ममलं, सम्यक्त सार्धं सुयं।
नन्तानन्त चतुष्टयं सुसमयं, अन्मोय मुक्ति ध्रुवं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(अर्कं तु जु विसेष नन्त विमलं) वे सिद्ध भगवान विशेष अपूर्व सूर्य हैं जो मल व आचरण रहित अनेक काल तक उदय रहते हैं (सुद्धं च सुद्धात्मनं) वे कर्म रहित शुद्ध परमात्मा हैं (न्यानं न्यान सुय सम च ममलं) उनके भीतर स्वयं प्रकाशित ज्ञान है व समभाव परम शुद्ध है (चरनं च सुद्धं ध्रुवं) व उनमें शुद्ध अविनाशी चारित्र है या वीतराग भाव है (तत्काल रवनं तव च ममलं) वे सदाकाल अपने स्वभावमें तपते रहते हैं यही निर्मल तप हैं (सम्यक्त सार्धं सुयं) वे स्वयं क्षायिक शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारी हैं (नन्तानन्त चतुष्टयं सु समयं) वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यके धारी स्वसमय या स्वात्मरमण रूप परमात्मा हैं (अन्मोय मुक्ति ध्रुवं) वे सदाकाल मुक्तिके आनन्दका विलास करते हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान अपूर्व व अनुपम सूर्य हैं जो सदा वीतराग भावसे प्रकाशित रहते हैं। वे रत्नत्रयके स्वामी सदा मोक्षमें रहते हुए आनन्द भोगते हैं।

(आगे गद्य है उसको लिखकर अर्थ किया गया है।)

गति चारि ४ नर्क गति, तियच गति, देवगति, मनुष्य गति नर्कगति निरूपनं।

अर्थ—गति चार हैं-नर्क, तिर्यंच, देव, मनुष्य। उनमेंसे नर्कगतिका विवरण करते हैं—

अर्क न दिस्यते नक, अर्कस्य नन्त सुभावं, अर्क उत्पन्न अर्क १, कंठ कमल ठहकार अर्क २, हितकार अर्क ३, गहिर अर्क ४, गुपित गुहिज अर्क ५।

अर्थ—यहां अध्यात्मदृष्टिसे वर्णन है। नर्क वही है जहां आत्मारूपी सूर्यका या शुद्ध ज्ञान सूर्यका प्रकाश न दिखलाई पड़े अर्थात् मिथ्यादृष्टीका आत्मा नर्कके समान दुःख भोगता है। वह घोर अज्ञानके अन्धकारमें पड़ा हुआ इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा सम्बन्धी दुःख व विषय भोगोंकी तृष्णाकी दाहमें जलता हुआ महा दुःखी है। इस शुद्धात्मा रूपी सूर्यके अनन्त स्वभाव हैं। सूर्यके ध्यानसे सूर्यका प्रकाश होजाता है। जो कोई अशुद्धात्मा शुद्धात्माका ध्यान करता है वह स्वयं शुद्धात्मा होजाता है ॥ १॥ कण्ठमें कमलको विराजित करके उसके मध्यमें ॐ या श्रीं मन्त्रको रखकर उसके द्वारा शुद्धात्म सूर्यका ध्यान किया जाता है॥२॥ शुद्धात्मा ही सर्व हितकारी सूर्य है। जो मनन करता है उसको सच्ची सुख शांति मिलती है, पाप क्षय होता है, पुण्य बन्धता है ॥ ३॥ शुद्धात्मा परम गम्भीर सूर्य है जिसमें सब लोकालोकका ज्ञान व्याप्त है ॥ ४॥ शुद्धात्मा हरएक आत्मामें गुप्त गुफामें विराजित सूर्य है अर्थात् हरएक आत्माका स्वभाव शुद्ध है। हरएकमें परमात्मापदकी शक्ति भरी है ॥ ५॥

अर्कस्य विसेष—उत्पन्न अर्क १, उत्पन्न उत्पन्न नो उत्पन्न २, दर्स उत्पन्न ३, न्यान विन्यान उत्पन्न ४, उत्पन्न सूषम सुभाव ५, सूषम क्रांति ६, सुषेन रमन ७, सुषेन षिपक ८, दुषेन विलयं गत ९।

अर्थ—आत्मीक सूर्यका विशेष वर्णन करते हैं। वह ज्ञानमई शुद्धात्मारूपी सूर्य सदा उदयरूप है ॥ १ ॥ वह शुद्धात्मा व्यवहारनयसे या पर्यायार्थिकनयसे तो, भव्यके भीतर उत्पन्न होकर उदय होते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनयसे सदा ही हैं, कभी नये उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ २ ॥ उनमें अनन्तदर्शन प्रकाशित रहता है ॥ ३ ॥ उनमें अनन्तज्ञान झलकता रहता है ॥ ४ ॥ उनमें अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभाव प्रगट रहता है ॥ ५ ॥ उनमें सूक्ष्म अतीन्द्रिय ज्ञानमई ज्योतिका प्रकाश है ॥ ६ ॥ वे आनन्दसे आपमें ही रमण करते हैं ॥ ७ ॥ वे अद्रश्य होते हुए कर्मरहित क्षायिक भावमें लीन हैं ॥ ८ ॥ उनके सर्व दुःख व चिंताएँ व वांछाएँ विलय होगई हैं ॥ ९ ॥

उत्पन्न न्यान मिलन रञ्ज रमन भय विनस्य नन्द सनन्द रूव १० । उत्पन्न न्यान अषर सुर विंजन पद अर्थति अर्थ समय अर्थ सहकार सदर्थ अवकास अन्मोद दिस्टि, अदिस्टि दिस्टि इष्टि अइष्टि, इष्टि इष्टि ॥ ११ ॥

अर्थ—सिद्ध भगवानमें ज्ञानके साथ आनन्द मिला है। वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं, सर्व भयोंसे रहित हैं, परमानन्द स्वरूप हैं ॥ १० ॥ सिद्धमें अविनाशी ज्ञान है तथा अक्षर स्वर व्यंजन पदके द्वारा उसी ज्ञानका ग्रहण होता है। वे रत्नत्रयमई पदार्थ हैं, वे समय या आत्मारूप पदार्थ समयसार हैं, आपमें ही रमणरूप हैं व बड़े सहकारी सत्य पदार्थ है। उनके ध्यानसे हित होता है। उनके अनन्त दर्शन, आनन्द रूप बिराजित है। उन्होंने इन्द्रिय अगोचर तत्वको देख लिया है। जो संसारियोंको विषयभोग इष्ट है वह उनको इष्ट नहीं है। जो अतीन्द्रिय सुख इष्ट है वह उनको उपादेय है ॥ ११ ॥

उत्पन्न इस्ट दर्स १, उत्पन्न दर्स इस्ट इस्ट २, उत्पन्न इस्ट सब्द ३, उत्पन्न इस्ट सब्द असब्द ४, उत्पन्न असब्द गुपित ५, उत्पन्न गुपित सब्द हितकार गुपित सब्द हितकार इस्ट हितकार ६ ।

अर्थ—सिद्धोंके प्रिय सम्यग्दर्शनका प्रकाश है ॥ १ ॥ सिद्धोंके परमप्रिय आत्मदर्शनका प्रकाश है ॥ २ ॥ अरहन्त परमात्माके प्रिय दिव्यवाणीका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥ उस इष्ट दिव्यवाणीसे शब्द रहित आत्मतत्वका प्रकाश होता है ॥ ४ ॥ उससे गुप्त शब्द रहित आत्मतत्व झलकता है ॥ ५ ॥ अरहन्तोंसे गम्भीर गुप्त शब्द प्रगट होते हैं, वे हितकारी गुप्त शब्द हितकारी इष्ट आत्म लाभमें सहायक होते हैं ॥ ६ ॥

उत्पन्न हितकार लष्य इस्ट लष्य १, उत्पन्न लष्य इस्ट जीवस्य अहवानं २ ।

अर्थ—हितकारी जानने योग्य निश्चय तत्वका प्रकाश हुआ है ॥ १ ॥ यह जानने योग्य तत्व प्रिय जीव पदार्थका स्वरूप अपनेमें लानेवाला है, झलकानेवाला है ऐसा प्रगट हुआ है ॥ २ ॥

तत्काल रमन १, दर्स अदर्स दर्स २, सब्द असब्द, सब्द ३, वयन अवयन वयन ४, इच्छ अइच्छ इच्छ ५, लष्य अलष्य लष्य ६, पेष्य अपेष्य पेष्य ७, रमन अरमन रमन ८, गहन अगहन गहन ९, धरन अधरन धरन १०, सहन असहन सहन ११, साहन असाहन साहन १२, अवकास अनन्त १३, अवकास समय १४, असमय समय १५, अन्मोद परम १६, अन्मोद षिपक १७, पर्म षिपक १८, मुक्ति १९, परम मुक्ति २०, सुख २१ परम सुख २२ ।

अर्थ—जब जीव तत्व अनुभवमें आता है तब उसी समय उसमें रमण होजाता है ॥१॥ तब इंद्रिय अगोचर आत्माका दर्शन देख लिया जाता है ॥२॥ शब्दोंके द्वारा शब्द रहित आत्माका भाव प्रगट होता है ॥ ३ ॥ वाक्योंके द्वारा वाक्य रहित आत्माका मनन होता है ॥ ४ ॥ भावना करनेसे भावनासे अगोचर आत्मीक तत्व मिल जाता है ॥ ५ ॥ जीव तत्वपर लक्ष्य देनेसे जिसका कोई इंद्रिय व मनमें स्वरूप प्रगट नहीं होता है उस आत्माका स्वरूप जान पड़ता है ॥ ६ ॥ जीव तत्वका दर्शन करनेसे अनुभवगम्य आत्माका दर्शन होता है ॥ ७ ॥ जीव तत्वमें रमण करनेसे जो सिवाय आपके किसीमें रमण नहीं करता है, उसमें रमण होजाता है ॥ ८ ॥ जीव तत्वका ग्रहण करनेसे जो इंद्रिय व मनसे ग्रहण योग्य नहीं है उसका ग्रहण होजाता है ॥ ९ ॥ जीव तत्वको धारणामें लेनेसे जो मनकी धारणासे रहित है उसका धारण होजाता है ॥ १० ॥ जिस तत्वपर आत्मबल लगानेसे जो मन व इंद्रियोंसे नहीं जाना जाता है वह तत्व जम जाता है ॥ ११ ॥ जिसका साधन करनेसे जो किसी बाहरी साधनसे नहीं सिद्ध होता है वह साध लिया जाता है ॥१२॥ उस जीव तत्वमें अनन्त ज्ञानका प्रकाश है ॥१३॥ वह जीवतत्व ज्ञानमय है ॥१४॥ वह आत्मा ऐसा है जिसके समान दूसरा पदार्थ नहीं है व जिसमें दूसरा आत्मा नहीं है ॥ १५ ॥ यह परमानन्दमय है ॥१६॥ यह आनन्दमय क्षायिक भाव सहित है ॥१७॥ वह परम क्षायिक भाव धारी है

॥१८॥ वही मुक्ति है ॥१९॥ वही परम मुक्ति है ॥२०॥ वही सुख है ॥२१॥ वही परम सुख है ॥ २२ ॥

तत्काल उत्पन्न न्यान विन्यान भय विनस्य भय सल्य संक विलयंति १, दिस्टि इस्टि भय विलयंति उत्पन्न भय विलयंति झडव भय विलयंति २, चेत अचेत अचेत ३, गम्य अगम्य गम्य ४, अनन्त गुप्ति रमन ५, सर्वार्थ ६, सर्वन्य ७, सर्वदिष्टि ८, अर्थ ९, अर्थस्य सब्द अर्थ १०, विन्यान विंद सहकार ११, सुन्य प्रवेस १२, मुक्ति सुयं १३ ।

अथ—जिस काल आत्माके ज्ञानमें रमण होता है सर्व भय नाश होजाते हैं, सर्व शङ्काएँ व सर्व माया मिथ्या निदान शल्यें चली जाती हैं ॥ १ ॥ परम प्रिय आत्माका दर्शन होते ही भय दूर होजाते हैं, उदय होनेवाले भय भी चले जाते हैं, शीघ्र ही सर्व भय लुप्त होजाते हैं ॥ २ ॥ वह आत्मा चेतन अचेतन सर्वका चेतनेवाला है ॥ ३ ॥ स्थूल सूक्ष्म सबका जाननेवाला है ॥ ४ ॥ वह अनन्त सूक्ष्म आत्मीक गुफामें रमण करनेवाला है ॥ ५ ॥ वह परम कृतार्थ है, सर्व आत्म प्रयोजनको सिद्ध कर चुका है ॥६॥ वह सर्वज्ञ है ॥७॥ वह सर्वदर्शी है ॥८॥ वही एक पदार्थ है ॥९॥ सर्व पदार्थोंमें वही एक सत्य पदार्थ है ॥१०॥ आत्मज्ञानके अनुभवमें वह सहकारी है ॥११॥ वह निर्विकल्प भावमें, पर रागादिमें शून्यभावमें सदा प्रवेश करता है ॥१२॥ वह स्वयं मोक्षमार्ग है, आत्मा स्वयं ही आपमें रमण करनेसे परमात्मा होता है ॥१३॥

अर्कस्य अर्क सुभाव १, सुयं रमनं २, सुयं दर्स ३, सुयं दिष्टि ४, सुयं इष्टि ५, सुयं न्यान ६, सुयं विन्यान ७, अर्क मुक्ति सुभाव सुयं ८, अर्क प्रगट ९, कमल अक १०--१ ।

अथ—आत्मा अनुपम सूर्य है, प्रकाशमान वीतराग स्वभाव सूर्य समान रखता है ॥ १ ॥ वह स्वयं आपमें रमणशील है ॥ २ ॥ वह स्वयं आपको देखता है ॥ ३ ॥ वह स्वयं आप ही दृष्टि है जिससे आपको देखता है ॥ ४ ॥ वह स्वयं आपको प्यारा है ॥ ५ ॥ वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है ॥ ६ ॥ वह स्वयं भेद-विज्ञान स्वरूप है ॥ ७ ॥ वह स्वयं सूर्यसम मोक्षका स्वभाव धारक है ॥ ८ ॥ वह प्रगट सूर्य सदा प्रकाशमान है ॥ ९ ॥ वही कमल समान शांत व प्रफुल्लित सूर्य है ॥ १० ॥

कमल सहकार कण्ठ अर्क १, ठहकारस्य मुक्ति २, सूक्ष्म परिणाम ३, सुकीय सुभाव ४,

सुयं दर्स ५, उत्पन्न दर्स ६, मुक्ति सुभाव दर्स ७, मुक्ति रमन दर्स ८, उत्पन्न श्रीदर्स ९, उत्पन्न मुक्तिश्री दर्स १०, समय सहकार ठहकार ११, मुक्ति सभाव दर्स १२, कललंकृत कम्म विली १३, कमल ठहकार मुक्ति सुभाव सुर्क १४, सूक्ष्म सुयं कलन ठहकार मुक्ति अर्क १५, सुद्ध सुभाव उत्पन्न १६, इस्ट उत्पन्न प्रमाण १७, उद्देस परिणै प्रमाण १८, उत्पन्न उद्देस १९, उत्पन्न परिणै २०, उत्पन्न प्रमाण २१, गम्य अगम्य प्रमाण २२, गम्य अर्क २३, इस्ट अर्क २४, उत्पन्न अर्क २५, प्रमाण अक २६, अर्कस्य कण्ठ अर्क २७--२ ।

अर्थ—कण्ठमें कमलको विराजमान करके उसके भीतर परमात्माका तत्व सूर्यके समान चमकता है ॥ १ ॥ जो स्वरूपमें स्थित होता है उसीको मुक्ति प्राप्त होती है ॥२॥ मुक्ति अतीन्द्रिय सूक्ष्म आत्माका परिणाम है ॥ ३ ॥ मुक्ति अपना ही स्वभाव है ॥ ४ ॥ वह स्वयं देख ली जाती है ॥ ५ ॥ वहां आत्माका दर्शन प्रगट रहता है ॥ ६ ॥ मुक्तिका स्वभाव स्वयं दिखलाई पड़ता है ॥ ७ ॥ वहां दृष्टि मुक्तिमें ही रमणरूप रहती है ॥ ८ ॥ परमैश्वर्यका दर्शन मुक्तिमें होता है ॥ ९ ॥ परसे मोक्षरूप स्वयंका ऐश्वर्य वहां दिखता है ॥ १० ॥ जब शुद्धात्माकी सहायतासे स्वरूपमें ठहरना होता है ॥ ११ ॥ तब मोक्षका स्वभाव दीख पड़ता है ॥ १२ ॥ तब सर्व शरीर व कर्म क्षय होजाते हैं ॥ १३ ॥ आत्मारूपी कमलमें ठहरनेसे मोक्षका स्वभाव अनुपम सूर्यसम झलक जाता है ॥ १४ ॥ आत्मा सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है, जब कोई स्वयं उसमें ठहर जाता है व अनुभव करता है तब मुक्ति सूर्य प्रगट होता है ॥ १५ ॥ तब शुद्ध स्वभाव प्रकाशमान होजाता है ॥ १६ ॥ परमप्रिय केवलज्ञान प्रमाण प्रगट होजाता है ॥ १७ ॥ वही उद्देश्य अर्थात् प्राप्त योग्य पदार्थ है, यही परिणमन रहने योग्य है, यही प्रमाण है ॥ १८ ॥ मोक्ष स्वरूपमें उद्देश्य झलक जाता है ॥१९॥ शुद्ध परिणमन रह जाता है ॥२०॥ सत्य ज्ञान या सत्य पदार्थ रह जाता है ॥२१॥ शुद्धात्माका प्रमाण ज्ञान स्थूल सूक्ष्म सबको जानता है ॥ २२ ॥ वही अनुभव करने योग्य सूर्य है ॥ २३ ॥ वही प्रिय सूर्य है ॥ २४ ॥ वहीं सूर्यका प्रकाश है ॥ २५ ॥ वहीं प्रमाणीक सत्य सूर्य है ॥ २६ ॥ वही सर्व सूर्योंमें महान् श्रेष्ठ सूर्य है ॥ २७ ॥

हितकार अर्क १, हितमित परिणै कोमल अर्क २, सुभाउ अर्क ३, हितकार अर्क अर्क ४, विंद विन्यान अक ५, आगन्तु अर्क ६, अर्घ ऊर्घ अर्क अर्क ७, हितकार अक ८, हुंतकार अक ९, रमन्न अर्क १०, अक सुभाव हितकार अर्क ११, रंज हितकार रंज १२, जिन रमन १३, अमिय रमन १४, जिननाथ नन्द आनन्द परमानन्द अर्क १५, सुभाव सहकार दिस्टि १६, हितकार उत्पन्न रमन हितकार अक १७, हितकार मुक्ति १८, हितकार सिद्धि १९, हितकार सिद्ध बुद्ध २०, हितकार अर्क केवल सुभाव २१, हितकार तव २२, तत्काल उत्पन्न न्यान हितकार २३, धृति उत्पन्न न्यान हितकार २४, परम तत्तु तिअर्क प्रमाण दिस्टि हितकार २५, दर्स अदर्स दस हितकार २६, दिस्टि अदिस्टि दिस्टि हितकार २७, इस्टि अइस्टि इस्टि २८, लब्धि अलब्धि लब्धि २९, अर्क सुभाव केवल लब्धि ३०, लब्धि मुक्ति ३१, लब्धि अर्कस्य हितकार अक ३२--३ ।

अथ—आत्मारूपी सूर्य हितकारी है ॥ १ ॥ यह ज्ञान सूर्य आत्मा कोमल स्वभावी स्वहितमें व अपनी मर्यादामें लीन है ॥ २ ॥ यह स्वभाव ही से ज्ञान सूर्य है ॥ ३ ॥ यह हितकारी सर्व सूर्योमें प्रधान ज्ञानमई सूर्य है ॥ ४ ॥ यह स्वानुभव रूप सूर्य है ॥ ५ ॥ सम्यग्दृष्टीके भीतर अकस्मात् प्रकाशमान होनेवाला सूर्य है ॥६॥ आत्माके नीचेसे ऊपर तक सर्व प्रदेशोंमें ज्ञान सूर्यका प्रकाश है ॥७॥ यह आत्माको सुखदाई ज्ञान सूर्य है ॥ ८ ॥ यह कर्मोको होम करनेवाला सूर्य है ॥ ९ ॥ यह आपसे आपमें रमण करनेवाला ज्ञान सूर्य है ॥ १० ॥ यह ज्ञान स्वभावी आत्मा हितकारी सूर्य है ॥ ११ ॥ इसमें आनन्दवर्द्धक आनन्द है ॥ १२ ॥ यह कम विजयी भावमें रमण करता है ॥ १३ ॥ यह आनन्दामृतमें रमण करता है ॥१४॥ यही आत्मा जिनेन्द्र है व आनन्दमग्न परमानन्दमई सूर्य सम प्रकाशित है ॥ १५ ॥ आत्मदृष्टि या समदृष्टि स्वभावके प्रकाशमें सहकारी है ॥१६॥ शुद्ध हितकारी भावको उदय रूप है, उसमें रमण करनेवाला वह हितकारी ज्ञान सूर्य है ॥१७॥ इसीमें हितकारी मुक्ति रहती है ॥ १८ ॥ यहीं हितकारी सिद्धि

वसती है ॥ १९ ॥ यह आत्मा हितकारी है सिद्ध है व ज्ञानी है ॥ २० ॥ यह हितकारी सूर्य केवलज्ञान स्वभावी है ॥२१॥ उसीमें तपना हितकारी तप है ॥२२॥ इसीमें रमण करनेसे उसी समय स्वात्म ज्ञान हितकारी झलकता है ॥ २३ ॥ इसीमें धैर्य या थिरता रखनेसे हितकारी ज्ञान प्रगट होता है ॥ २४ ॥ यही परम तत्व है, रत्नत्रयमई है, यही सम्यग्ज्ञानकी प्रमाण दृष्टि है, यही मोक्षमार्गमें हितकारी है ॥ २५ ॥ इंद्रिय मनसे देखनेयोग्य व न देखनेयोग्य पदार्थोंके दर्शनमें यही हितकारी है ॥ २६ ॥ यही सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि भावके देखनेमें हितकारी है ॥२७॥ इसीके प्रेमसे उस तत्वमें प्रेम होता है जो अज्ञानियोंको इष्ट नहीं है ॥२८॥ इसीके लाभसे अपूर्व लाभका लाभ होता है ॥२९॥ यह ज्ञान सर्व स्वभाव हीसे केवलज्ञानकी लब्धिको रखनेवाला है ॥३०॥ इसीसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है ॥३१॥ इसीकी प्राप्तिसे आत्मारूपी सूर्यको हितकारी ज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ३२ ॥

अर्कस्य गहिर अर्क १, गम्य अगम्य गम्य अर्क २, इच्छ अइच्छ इच्छ अर्क ३, ग्रहण अग्रहण ग्रहण अर्क ४, लष्य अलष्य लष्य अर्क ५, ध्रुवस्य उत्पन्न ध्रुव अर्क ६, रहण उत्पन्न रहण अर्क ७, सहन असहन सहन उत्पन्न अर्क ८, साहन असाहन साहन उत्पन्न अर्क ९, रिष्टि अरिष्टि उत्पन्न अर्क १०, रिष्टि अरिष्टि रिष्टि अर्क समय ११, इष्टि असमय इष्टि समय इष्टि अर्क १२, सहइष्टि असह इष्टि सहइष्टि उत्पन्न अर्क १३, उत्पन्न इष्टि उत्पन्न अर्क १४, उत्पन्न इष्टि अर्क पद १५, अपद पद उत्पन्न अर्क १६, अर्थति अर्थ अर्थ उत्पन्न अर्क १७, अर्थ समर्थ अर्थ उत्पन्न अर्क १८, अर्थ समय अर्थ असमय समय उत्पन्न अर्क १९, सहकार अर्थ असहकार सहकार उत्पन्न अर्क २०, अर्थ अवकास अनन्त अवकास उत्पन्न अवकास अर्थ २१, तदर्थ उत्पन्न सदर्थ अर्क २२, अर्थ अर्थ अन्मोद अर्थ २३, अर्थ अन्मोद अन्मोद अर्थ उत्पन्न अर्क २४, अर्थ षिपक अर्क २५, षिपक उत्पन्न षिपक उत्पन्न अर्क २६, मुक्ति हितकार उत्पन्न मुक्ति उत्पन्न अर्क २७; हितस्य उत्पन्न हित अर्क हितकार अर्क २८--४

अर्थ—आत्मारूपी सूर्य गम्भीर ज्ञानका धारी है ॥ १ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमें स्थूल सूक्ष्म सर्व पदार्थ एक साथ झलकते हैं ॥ २ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमें जगतको इष्ट व अनिष्ट सर्व ही समभावसे इष्ट रूप वस्तु स्वभावसे झलक रहा है ॥ ३ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमें जगतको हेय या उपादेय सर्व पदार्थ समरूपसे झलक रहे हैं ॥ ४ ॥ यह ऐसा ज्ञान सूर्य है जिसमें इन्द्रियोंसे देखने योग्य व न देखने योग्य सब प्रकाशमान है ॥५॥ अविनाशी आत्माके भीतर ही अविनाशी ज्ञान सूर्य झलकता है ॥६॥ परसे भिन्न परम शुद्ध आत्माके अनुभवसे ही परसे भिन्न शुद्ध ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥७॥ जो योगी सहने योग्य व न सहने योग्य सर्व उपसर्गोंको सहन करता है, उसीके ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥८॥ जो योगी सुगम साधन व कठिन साधन दोनोंको समभावसे साधन करता है उसीके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥९॥ जो अनुपम आत्मध्यान रूपी तलवार चलाते हैं वे ही कर्मोंका नाश करके ज्ञान सूर्यको प्रगट करते हैं ॥१०॥ यह आत्मा रूपी सूर्य स्वयं तलवार रूप है। साधन अवस्थामें कर्म काटनेका काम करती है, साध्य अवस्थामें तलवारका काम न करके भी बनी रहती है ॥११॥ यह वह प्यारा ज्ञान सूर्य है जो अपने सर्व ज्ञेयोंको झलकानेमें इष्ट है, चाहे वह आत्मा हो व अनात्मा हो ॥१२॥ जो योगी सहने योग्य व असहने योग्य सबमें एक साथ समभाव रखता है उसीके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥१३॥ जब हितकारी शुक्लध्यान होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥१४॥ जब इष्ट शुद्धोपयोग प्रगट होता है तब ही आत्म-सूर्यका पद झलकता है ॥१५॥ सर्व पदोंमें अनुपम पद जो शुद्धात्म पद है उससे ही ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥१६॥ नौ पदार्थ व रत्नत्रय धर्ममें निश्चय करनेसे व उनमें झलकते हुए शुद्धात्माके अनुभवसे ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥१७॥ जो समर्थ कारण रूप शुद्ध कारण समयसारका लाभ है उससे ज्ञान सूर्य झलकता है ॥१८॥ आत्मा पदार्थको अनात्मा पदार्थसे भिन्न करके शुद्धात्मानुभवसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥१९॥ यद्यपि नौ पदार्थका विचार सहकारी है परन्तु इसका भी सहकारित्व छोड़कर जो केवल शुद्धात्माका अनुभव है उसीसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २० ॥ आत्मा पदार्थमें केवलज्ञान शक्तिरूप रहता है, उसीका प्रकाश होना ज्ञान सूर्यका उदय है ॥२१॥ सत्य आत्मा पदार्थका अनुभव करनेसे सच्चा ज्ञान सूर्य झलकता है ॥२२॥ आत्मामें वारवार आनन्दका अनुभव होनेसे आत्माका प्रकाश होता है ॥ २३ ॥ आत्मा रूपी पदार्थमें आनन्द लेते लेते परमानन्द भावसे ही ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ २४ ॥

आत्माके द्वारा क्षायिक भाव प्रगट होता है तब क्षायिक ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २५ ॥ क्षायिक सम्यक्ती क्षपक श्रणीपर चढकर चार घातीय कर्मोंको क्षय करके ज्ञान सूर्यको झलकाता है ॥ २६ ॥ यह केवलज्ञान सूर्य ही मुक्ति लाभमें हितकारी है, इसीसे मुक्ति प्रगट होती है ॥ २७। यह ज्ञान सूर्य परम हितकारी है ॥ २८ ॥

सहकार गुपित अर्क १, गुहित गुपित न्यान उत्पन्न अक २, गुपित विन्यान उत्पन्न अर्क ३, गुपित कमल उत्पन्न अक ४, गुपित रमण रंज नन्द चिदानन्द परम परमानन्द उत्पन्न अर्क ५, जिन रमण जिन रंज जिननाथ रमण उत्पन्न अर्क ६, तीर्थंकर प्रभाव तिअर्थ आयरन रमण अन्मोय अवलवली इस्टि परमिस्टि चौवीस चतुष्टे चौवीस अन्मोद रमन अवल विषय अनन्तविली उत्पन्न अर्क ७, सहकार सहजोपनीत सहज सुकीय सूक्ष्म उत्पन्न अर्क ८, आचरण चरण न्यान चरण दर्स अवहि सम्मत उवसम बीज अनन्त उत्पन्न अर्क ९, विन्यान वीय पय पदार्थ वीय उत्पन्न अर्क १०, अंगदि अंग स्थान दिस्टि उत्पन्न अर्क ११, दिप्ति अनन्त विसेष दिस्टि अनन्त विसेष उत्पन्न अर्क १२, लष्य अलष्य लष्य उत्पन्न अर्क १३, तिअर्थ अर्थ उत्पन्न तीर्थंकर सुभाइ अर्क १४, पदवी सुद्ध उत्पन्न अर्क १५, योग आचरण उत्पन्न अर्क १६ श्री अनन्त श्री सम्यक्चरण उत्पन्न अर्क १७, अर्कस्य गुपित गुहित उत्पन्न अर्क १८—५।

अर्थ—ज्ञान सूर्य आत्मा गुप्त अनुभवगम्य मोक्षमार्गमें सहकारी है ॥ १ ॥ जो अपने ज्ञानको आत्माकी गुफामें लीन कर देता है, आत्मामय होजाता है, वहीं ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ जो भेदविज्ञान द्वारा आत्मामें लीन होता है उसीके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३ ॥ जो केवल समान प्रफुल्लित शुद्ध आत्मामें गुप्त होजाता है, वहीं ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥४॥ जो तीन गुप्तिको रोककर आपमें रमण करता है तब आनन्द होता है। यह ज्ञानादि बढ़ते हुए परमानन्द या अनन्त सुख होजाता है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥५॥ जो वीतरागभावमें रमण करता है वहीं आनन्द मानता है। शुद्ध परमा-

त्मामें रमण करता है उसीके ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ जो तीर्थंकरके प्रभावसे रत्नत्रय धर्मको समझकर उनमें आचरण करता है, रम जाता है, आनन्द पाता है तथा अनन्तबली प्रिय परमेष्ठी, चौवीस तीर्थंकरोंके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त सुख इन चार चतुष्टय व अन्य चौवीसों तीर्थंकरोंके गुणोंका स्मरण कर आनन्द भोगता है उसमें मगन होता है उसके भीतरसे अत्यन्त बलवती विषयवासनाकी अनन्तशक्ति क्षय होजाती है तब ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥ ७ ॥ सहकारी ऐसा जो सहजमें झलकनेवाले स्वाभाविक अपने ही सूक्ष्म अतीन्द्रिय भावमें जो ठहरता है उसके ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥८॥ जो चारित्रमें आचरण करता है, ज्ञानमें आचरण करता है, उसे अवधिदर्शन होजाता है, वहीं सम्यग्दर्शन होता है, शांतभाव होता है, तब वीर्य अनन्त प्रगट होता है, तब ही केवलज्ञान सूर्य चमकता है ॥ ९ ॥ भेदविज्ञानके बीजसे व श्रुतज्ञानके पद द्वारा आत्मा पदार्थके अनुभवसे ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ द्वादशांग वाणीके मनन करनेसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥११॥ जब अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शन प्रगट होता है तब आत्मा सूर्यमय होजाता है ॥ १२ ॥ जब इन्द्रिय व मनसे जानने योग्य स्थूल व न जानने योग्य सूक्ष्मको जान लिया जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १३ ॥ रत्नत्रयमें रमण करनेसे तीर्थंकरके स्वभावके समान ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १४ ॥ जब शुद्धोपयोगकी पदवीपर पहुँचता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ १५ ॥ जब योगाभ्यास किया जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १६ ॥ जब आत्माके अनन्त ऐश्वर्यमें भलेप्रकार आचरण होता है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥ सूर्यके समान आत्माकी गुप्त गुफामें जब थिरता होती है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ १८=५ ॥

अर्कस्य पंच अर्क १, सुभाव उत्पन्न अर्क २, अर्क सुभावेन अनन्त चतुष्टय छयालीस गुण सिद्ध सुद्ध तीथकर उत्पन्न अर्क सुभाव ।

अर्थ—आत्मारूपी ज्ञान सूर्यके पांच तरहके विवेचन ऊपर किये गये। यह ज्ञान सूर्य स्वयं स्वभावसे पैदा होता है। आत्मारूपी सूर्यके स्वभावसे अनन्त चतुष्टय सहित छियालीस गुण सिद्ध स्वभावी शुद्ध वीतराग तीर्थंकर भगवानमें प्रगट होते हैं, वे सूर्य स्वभावको झलका चुके हैं।

अर्क न द्रिस्यते सुभाव सव सुभाव अक न द्रिस्यते नर्क गत पंचम छठम सप्तम नक गति नीची इतर सुभावे नरक प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ प्रभावना भवति। नर्क ७।

अर्थ—जहां ज्ञान सूर्य नहीं दिखलाई पड़े वही नर्क है, जहां आत्माका सर्व स्वभाव न दिखलाई पड़े वही नर्क है। पांचमा, छठा, सातमा नर्क बहुत नीच है क्योंकि वहांसे निकलकर कोई मोक्ष नहीं जा सक्ता। पहले, दूसरे, तीसरे व चौथेसे निकलकर मोक्ष जासक्ता है, इसलिये ये चार उच्च हैं। सर्व नर्क ७ हैं।

अर्क सुभाव दिष्टि, इष्टि सुभाव, अनन्त दिस्टि एको उद्देस महूर्त समय भय सल्य संक आसा स्नेह लाज लोभ भय गारव आलस प्रपञ्च विभ्रम जनरञ्जन कलरञ्जन, मनरञ्जन दर्सन मोहंध आवर्ण न्यान दर्सन मोह अन्तर सुभाव सहित जेनं केनापि अर्क सुद्ध औकास संक सल्य एको उद्देस न द्रिस्यते सर्व भाव सहित एको उद्देस सहितं प्रथम नरय प्रवेसं भवति। सुद्ध दिस्टि अर्क पंचमओ संपूर्ण महूर्त्त भय विलीय कछु संका जे जीव असुद्ध दिस्टि अर्क सुभाव एको उद्देस न द्रिस्यते। सर्व सहकार महूर्त समय प्रथम नरय।

अर्थ—ज्ञान सूर्य स्वभावका दर्शन अपना प्रिय स्वभाव है, अनन्त दर्शन सहित है, एक देश दो घड़ी भी जिनको नहीं दिखता है, जो भय, शल्य, शङ्का, आशा, स्नेह, लाज, लोभ, घमण्ड, आलस्य, जगप्रपञ्च, भ्रमजाल, मानवोंको रागी करनेका भाव, शरीरके सुखमें मगन रहनेका भाव, मनको राजी रखनेका भाव, दर्शन मोहसे अज्ञान भाव, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, चारित्रमोह व अन्तरायके उदयका स्वभाव। इत्यादिके वशीभूत हैं, उनको शुद्ध ज्ञान सूर्य शङ्का व शल्यके कारण कुछ भी नहीं दिखता है, वे जीव प्रथम नरकमें जाते हैं। शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित पांच प्रकार ज्ञान सूर्य पूर्ण स्वभाव भयरहित है, उसको जो शङ्काशील होनेसे संयमी भी एक देश नहीं अनुभव कर सक्ते हैं, क्योंकि वे मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिये वे ऊपर कथित भावोंके कारण महूर्तके भीतर नरकायु बांधकर प्रथम नर्क जाते हैं।

नोट—यहां नर्कगति सम्बन्धी २४ स्थान कहे हैं जिनको हम पहले नकशेमें देचुके हैं।

सुद्ध दृष्टि क्षीन सुभाई अर्क सुभाव अनन्त अन्तर रहित दुःष असहनी सुभाइ अर्क न दृश्यते नर्क।

अर्थ—नर्क वही है जहां शुद्ध सम्यग्दर्शन सहित क्षायिक स्वभावधारी सूर्य स्वभावके समान, बीतराग, अन्तर रहित अनन्त कालतक दुःखको नहीं प्राप्त करनेका स्वभाव अर्थात् अनन्त सुख स्वभावी सूर्यसम आत्माका अनुभव नहीं होता है।

जे जीवा अर्क अनन्त सुभाव सुद्ध दिस्टि एकोद्देसन द्रिस्यते ते नर्क।

अथ—जिन जीवोंको अनन्त स्वभावधारी शुद्ध दर्शन सहित ज्ञान सूर्यमई आत्मा नहीं दिखलाई पड़ता है, वे ही नर्कमें रहनेवाले जीव हैं, नारकीके समान हैं।

नर्क गति आंउ गलण तुच्छ रहै आगतस्य दिष्टि आउ क्षीण मनुष्य गति।

अर्थ—नर्कगतिमें आयुके भीतर जब छः मास शेष रहते हैं, तब वहां यदि मनुष्य आयु बांधलें तो वहांसे निकलकर नर्कायु क्षय होनेपर मनुष्य गतिमें जीव आसक्ता है।

अर्क सुभाव ग्रहण अनन्त विसेष न्यान प्रकारेण न्यान विसेष सुयं सद्भाव निरूपणं।

अर्थ—जिसको ज्ञान सूर्य स्वभावी आत्माका ग्रहण या अनुभव होजाता है उसमें अनन्त विशेष होते हैं, ज्ञानके अनेक भेदोंमें ज्ञानके विशेष होते हैं। उसका स्वयं यथार्थ स्वभाव कहा जाता है।

अर्क सुभाव दर्स १, अदर्स दर्स उत्पन्न अर्क २, दर्स सर्व परिणाम उत्पन्न अर्क ३, दर्स कमल सुभाव उत्पन्न अर्क ४, भय विनस्य परिणाम सुभाव उत्पन्न अर्क ५, दर्स कमल कन्द अगु उत्पन्न अर्क ६, दर्स गिरिकन्द अग्र परिणाम उत्पन्न अर्क ७, दर्स अंगदि अंग सर्वन्य परिणाम सुभाव उत्पन्न अर्क ८, दर्स कमल कलन न्यान विन्यान परिणाम उत्पन्न अर्क ९, न्यान योग उत्पन्न दिस्टि उत्पन्न अर्क १०, इस्ट परमेस्टि उत्पन्न अर्क ११, अवधिलै उत्पन्न अर्क १२, अन्यान अन्मोय उत्पन्न षिपक अर्क १३, अन्यान विरोधक दिस्टि अर्क १४, अन्यान विलयन्ती उत्पन्न

अर्क १५, न्यानेन न्यान अन्मोद रमण कम्म विलयं गत १६, उत्पन्न मिलि उत्पन्न कम्म विली उत्पन्न अर्क सुभाइ १७, उत्पन्न दर्स हितयार सहकार दिस्टि उत्पन्न अर्क १८, मनपर्जय सुभाव उक्त दर्स उत्पन्न अर्क १९, लब्धि केवलन्यान विमल अर्क २०, न्यान अनन्त दर्स अनन्त लब्धि उत्पन्न अर्क २१, दान लाभ लब्धि अनन्त उत्पन्न अर्क २२, भोग उपभोग लब्धि उत्पन्न अर्क २३, वीर्ज विन्यान समकित सुभाव समय सहकार समय बाधा रहित २४।

अर्थ—ज्ञान सूर्यमें आत्माके स्वभावका दर्शन होता है ॥ १ ॥ जब इंद्रिय व मनसे न देखने योग्य आत्माका अनुभव होता है व ज्ञान सूर्यका प्रकाश होता है ॥ २ ॥ जब सर्व गुण व पर्यायोंका समूह रूप आत्माका दर्शन होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३ ॥ जब प्रफुल्लित कमलके समान स्वभाव धारी आत्माका दर्शन होता है तब ज्ञान सूर्यका उदय होता है ॥ ४ ॥ जब सर्व भय रहित निर्भय स्वभावमें परिणमन होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ५ ॥ जब आत्मारूपी कमलके मूल स्वभावका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ६ ॥ जब आत्माके सम्यग्दर्शन रूपी पर्वतकी गुफामें विश्राम होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ७ ॥ जब द्वादशांग वाणीके द्वारा सर्वज्ञ स्वभावी आत्माका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ८ ॥ जब आत्मारूपी कमलमें ठहरकर भेद विज्ञानके द्वारा आत्मानुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ९ ॥ ज्ञान योगके द्वारा आत्मदर्शन होनेसे ज्ञान सूर्य प्रकाश होता है ॥ १० ॥ पांच परमेष्ठियोंके स्वरूपके ध्यानसे ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ११ ॥ अवधिज्ञानको लेकर ज्ञान सूर्य एक देश प्रगट होता है ॥ १२ ॥ अज्ञानमें रमण भाव जो पैदा होता है उसके क्षय कर देनेसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १३ ॥ जब मिथ्या ज्ञानको रोकनेवाली सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि पैदा होती है तब ज्ञान सूर्यका उदय होता है ॥ १४ ॥ अज्ञानका क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १५ ॥ ज्ञानसे ज्ञानके भीतर आनन्दित होकर रमण करनेसे कर्मोंका क्षय होता है ॥ १६ ॥ जैसे जैसे ज्ञानकी शुद्धि बढ़ती है कर्मोंका आस्रव दूर होता है व ज्ञान सूर्यका स्वभाव प्रगट होता है ॥ १७ ॥ सम्यग्दर्शनके प्रकाशसे हितकारी व सहकारी आत्माका दर्शन होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १८ ॥ मनः-

पर्यय ज्ञान स्वभावके प्रगट होनेपर जब आत्म दर्शन होता ह उससे ज्ञान सूर्य चमकता है ॥ १९ ॥ उस विमल ज्ञान सूर्यमें केवलज्ञानकी लब्धि प्रगट होती है ॥२०॥ उस ज्ञान सूर्यमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शनकी लब्धि होजाती है ॥ २१ ॥ उस ज्ञान सूर्यमें अनन्त दान व अनन्त लाभकी लब्धि प्रगट होती है ॥ २२ ॥ उस ज्ञान सूर्यमें अनन्त भोग अनन्त उपभोगकी लब्धि प्रगट होती है ॥ २३ ॥ उस ज्ञान सूर्यमें अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्रकी लब्धि होजाती है। ऐसी नौ लब्धियोंका धारक ज्ञान सूर्य केवली अरहन्त भगवान बाधा रहित निराकुल रहता है ॥ २४ ॥

सहकार उत्पन्न अर्क २५, राग जन रंजन विली उत्पन्न अर्क २६, कलरंजन दोष विली उत्पन्न अर्क २७, मनरंजन गारव विली उत्पन्न अर्क २८, न्यान आवर्न विली उत्पन्न अर्क २९, दर्सन आवन विली उत्पन्न अर्क ३०, मोहन आवन विली उत्पन्न अर्क ३१, न्यान अन्तराय विली उत्पन्न अर्क ३२, आशा स्नेह लाज लोभ गारव आलस प्रपंच विभ्रम विलयं गत उत्पन्न अर्क ३३, मिथ्या कषाय मल दोष विली उत्पन्न अर्क ३४, भय सल्य संक विलयंति उत्पन्न अर्क ३५, दर्स अनन्त दर्स सुभाव उत्पन्न अर्क ३६, अनन्त सुभाव दर्स नृत अन्मोद न्यान उत्पन्न अर्क ३७, अनन्त दर्स विसेष नृत अन्मोद न्यान उत्पन्न अर्क ३८, लष्य अलष्य लष्य अन्मोय न्यान उत्पन्न अर्क ३९, जीवंता अनन्त परिणाम नृत ध्रुव न्यान अन्मोद तदि अनन्त न्यान अन्मोद चरण सुभाव अर्क ४०, दर्सन न्यान चरण भेद उत्पन्न अर्क ४१, सम्यक् दर्स लोय अवलोक सम्यक् उत्पन्न अर्क ४२, लोकालोक नृत ध्रुव न्यान सम्यक् उत्पन्न अक ४३, लोक नृत्य आचरण न्यान अन्मोद उत्पन्न अक ४४, सम्यक् अवलोक नृत्य चरण अनन्त दर्स अर्क ४५, अनन्तानन्त दर्स नृत अनन्त न्यान उत्पन्न अर्क ४६, अनन्त नृत सुभाव आचरण चरण न्यान अन्मोद अवल बली विषय गलिणं न्यान चरण वीजे विन्यान उत्पन्न अर्क ४७, श्री अनन्तानन्त उत्पन्न श्री हितकार श्री सहकार श्री मुक्ति श्री समदर्स श्री समकित दर्स उत्पन्न अक ४८, श्री

समकित ध्रुव रमण न्यान जिननाथ अन्मोद न्यान उत्पन्न न्यान अर्क ४९, श्री सम्यक् चरण चरिय गुपित न्यान अन्मोद अवल चरण श्री सम्यक् चरण नन्तानन्त चतुष्टय सहित उत्पन्न अर्क ५०, विमल केवल न्यान विमल सुभाव अर्क ५१, श्री मुक्ति श्री अन्मोद न्यान श्री सुभाव मुक्ति ५२, श्री अर्थ तिअर्थ श्री अन्मोद न्यान तीर्थंकर भवति तिअर्थ आवरेण तीर्थंकर मुक्ति प्रवेस सिद्ध तीर्थंकर अर्क ५३, सुभावेन न्यान विन्यान सुद्ध अर्क ५४, सुयं षिपक भावेन उत्पन्न नंतानन्त नंत चतुष्टै सहित अर्क ५५, हितकार न द्रिस्यते स नर्क गतिं ५६, अनन्तानन्त दुःख दारुण असहनी संसारिणो सुभाव नरकादि दुःख संतत अनन्त विसेष नरक दुतिय ५७।

अर्थ—ध्यानकी सहायतासे ज्ञान सूर्य प्रकट होता है ॥ २५ ॥ जनसमूहको राजी रखनेका राग जब विला जाता है तब ज्ञान सूर्य उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥ शरीरके सुखमें मगनताका दोष जब दूर होजाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २७ ॥ मनके भीतर मद रखके प्रसन्न होनेका भाव जब चला जाता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ २८ ॥ ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥२९॥ दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य चमकता है ॥ ३० ॥ मोहनीय कर्मके क्षय होनेपर ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ३१ ॥ जब ज्ञानादिमें अन्तराय कारक कर्म क्षय होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३२ ॥ भोगोंकी आशा, स्नेह, लज्जा, लोभ, माया, घमण्ड, प्रमाद, प्रपंच, भ्रमभाव ये सब जब विला जाते हैं तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३४॥ सात भय, तीन शल्य व शंकाएँ जब चली जाती हैं तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३५ ॥ जब अनन्त दर्शन स्वभाव धारी आत्माका अनुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रकाश करता है ॥ ३६ ॥ अनन्त दर्शन स्वभावी आत्माका सत्य स्वरूप अनुभव करते हुए आनन्द झलकता है उससे जो ज्ञान होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ३७ ॥ अनन्त दर्शनधारी आत्मामें विशेष लीनतासे जो सच्चा आनन्द व ज्ञान होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥३८॥ इन्द्रिय मनसे गोचर व अगोचर पदार्थोंको जानते हुए आनन्दमई ज्ञानसे ज्ञान सूर्य चमकता है ॥ ३९ ॥ सदा जीनेवाले सत्य अविनाशी अनन्त शक्तिमें परिणमन करनेवाले आत्माका ज्ञानमें जब आनन्दका अनुभव होता है तब

अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, वीतराग चारित्र स्वभावधारी ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ४० ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र ऐसे भेदरूप रत्नत्रयके द्वारा ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ४१ ॥ जब सम्यक्दर्शनके प्रकाशसे लोकालोकको द्रव्य दृष्टिसे यथार्थ देखा जाता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ४२॥ लोकालोकके भीतर सत्य अविनाशी पदार्थोंका जब ज्ञान होता है तब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ४३ ॥ लोकके द्रव्योंको सत्य देखकर स्वरूपमें आचरण करनेसे जो ज्ञानानन्द होता है उससे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ४४ ॥ सम्यक्चारित्रके द्वारा लोकको सत्य देखते हुए वीतराग भावसे अनन्त दर्शन गुणधारी ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ४५ ॥ जब यथार्थ अनन्तदर्शन व अनन्तज्ञान प्रगट होते हैं तब ज्ञान सूर्य प्रकाशित होता है ॥४६॥ आत्माके अनन्त सत्य स्वभावमें आचरण करनेसे ज्ञानानन्द झलकता है तब बड़ी बलवती विषयवासना गल जाती है तब ज्ञानका वीर्य सहित अनुभव करनेसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥४७॥ अनन्तानन्त शक्तिधारी परम हितकारी परम सहकारी परमैश्वर्यधारी मोक्षरूपी लक्ष्मीको समभावसे देखते हुए जब सम्यक् आत्मानुभव होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥४८॥ जब अशुद्ध सम्यग्दर्शनमें निश्चित रूपसे रमण करते हुए श्री जिनेन्द्रके स्वभावके भीतर आनन्द सहित ज्ञान रमण करता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ४९ ॥ जब सम्यग्दर्शनका आचरण करते हुए गुप्त आत्मज्ञानसें आनन्द प्रगट होता है, तब अनुपम बल सहित चारित्र होता है, उसीमें भलेप्रकार रमण करनेसे अनन्त ज्ञानादि चार चतुष्टय सहित ज्ञान सूर्य प्रगट होजाता है ॥ ५० ॥ निर्मल केवलज्ञान स्वभावको रखनेवाला ज्ञान सूर्य है ॥५१॥ श्री मोक्ष-लक्ष्मीके आनन्द सहित व ज्ञान सहित आत्माका स्वभाव ही मुक्ति है ॥ ५२ ॥ रत्नत्रय सहित परम पदार्थ आत्मामें जो आनन्द सहित ज्ञानानुभव करते हैं, वे तीर्थंकर होजाते हैं, वे ही तीर्थंकर निश्चय रत्नत्रयका आचरण करते हुए मोक्षमें प्रवेश करके सिद्ध तीर्थंकर होजाते हैं, वे ही ज्ञान सूर्य हैं ॥ ५३ ॥ शुद्ध ज्ञान सूर्यमें स्वाभाविक ज्ञान रहता है ॥ ५४ ॥ स्वयं क्षायिक भाव सहित होनेसे उस सूर्यके अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य चतुष्टय प्रकाशमान रहते हैं ॥ ५५ ॥ ऐसा हितकारी सूर्य जहां न दिखलाई पड़े वहीं नर्क है ॥ ५६ ॥ जहां अनन्तानन्त भयानक दुःख है जिनका सहन करना ठिन है ऐसी सांसारिक अवस्था दुःखोंकी परिपाटीके अनन्त भेदोंको रखनेवाली सो ही दूसरा नर्क है ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जहां आत्मज्ञान नहीं है वहीं अनन्त क्लेश है, वहीं नर्क है, नर्क समान असहनीय कष्टोंको मिथ्यात्वी जीव पाते हैं।

जे जीव सुद्ध दिष्टिनो उत्पन्न, अर्कस्य सर्व विसेष अनन्तानन्त हितकार। उत्पन्न न्यान १, सुद्ध न्यान २, समय न्यान ३, परिणै न्यान ४, उत्पन्न न्यान ५, न्यान हितकार ६, न्यान सहकार ७, न्यान विन्यान ८, न्यान पद न्यान ९, अर्थ न्यान १०, तिअर्थ न्यान ११, समर्थ न्यान १२, समय अर्थ न्यान १३, सहकार न्यान १४, अवकास न्यान १५ अन्मोद न्यान १६, कम्म षिपक न्यान १७, मुक्ति सुभाव अर्क विसेष दृष्टते १८, सर्व सर्वेपि हितकार अर्क १९, किछु विसेष किछु ससंक, सत्य, असत्य, आसा, स्नेह, लाज, भय, गारव, आलस, प्रपंच, विभ्रम, जनरंजन, राग कलरंजन दोष मनरंजन गारौ दर्सन मोहंध न्यानावर्णि दसनावर्णि मोहन आवर्न अंतर सहकार किछु सुभाव अर्क सुभाव महूर्त दोइ अर्क सुभाव विलीयते सभव्य नकगता, दुतीय नर्क पतनं भवति–जावत नर्क दूजे तावत व अर्क सुभाव सहित दिष्टि, दुष असहनी सहित स्थिति आउ विलीयते तुच्छ आउ प्रवर्तते आउ गति चय मनुष्य गति ॥ २० ॥

अर्थ—जिस जीवको शुद्ध सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं है वह ज्ञान सूर्यको ठीक नहीं जानता। ज्ञान सूर्य अनन्तानन्त गुण पर्यायका धारी है, हितकार है, जहां यथार्थ ज्ञान झलकता है ॥ १ ॥ जो शुद्ध ज्ञान स्वरूप है ॥२॥ आत्मज्ञान सहित है ॥३॥ स्वसंवेदन रूप है ॥४॥ ज्ञानके प्रकाश सहित है ।५॥ आत्म हितकारी ज्ञान रूप है ॥६॥ केवलज्ञानको सहकारी ज्ञान सहित है ॥७॥ भेद विज्ञान मय है ॥८॥ जहां ज्ञानमें ज्ञानकी स्थिति है ॥ ९ ॥ जो परम पदार्थके ज्ञान सहित है ॥ १० ॥ रत्नत्रय सहित ज्ञानमय है ॥११॥ समर्थ ज्ञानमय है ॥१२॥ परमात्म ज्ञान सहित है ॥१३॥ आत्माको सहायक ज्ञानमय है ॥१४॥ अनन्त ज्ञान शक्ति धारक है ॥१५॥ आनन्द सहित ज्ञानमय है ॥१६॥ कर्म क्षयकारी ज्ञान सहित है ॥१७॥ जहां मोक्षका स्वभाव विशेष ज्ञान सूर्य अनुभवमें आता है ॥१८॥ सर्व प्राणियोंका हितकारी सूर्य ज्ञान

नेमें आता है ॥१९॥ ऐसे ज्ञान सूर्य आत्माका स्वरूप कुछ विशेष जान ले कि यह तो जगत रूप है, जड़ कुछ है ही नहीं, या कुछ शंकारूप जाने कि आत्मा है या नहीं या कैसा है, सत्य असत्य मिला हुआ जाने। ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव आशा, स्नेह, लज्जा, भय, मद, प्रमाद, प्रपञ्च, भ्रम, जन रंजन राग, शरीर रंजन दोष, मन रंजन भेदमें फंसा, दर्शन मोहके उदयसे अन्ध ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण, चारित्र मोह, अन्तरायके उदय सहित होता हुआ दो घड़ी भी ज्ञान सूर्यके स्वभावको अनुभव नहीं करता है। उसका ज्ञान स्वभाव मलीन होता है। वह भव्य जीव नर्क जाता है, दूसरे नर्कमें पतन पाता है। जबतक दूसरे नर्कमें है तबतक मिथ्यात्व भावमें ज्ञान सूर्यके स्वभावको अनुभव नहीं कर सक्ता है, असह्य कष्ट भोगता है। स्थिति पूरी करके जब छः मासकी आयु शेष रहती है तब मनुष्य आयु बांधकर आयुके क्षयके पीछे मनुष्यगतिमें आकर जन्म धारण करता है ॥ २० ॥

अवधिलै उत्पन्न अर्क सुभाव १, सर्व हितकार न्यान अन्मोद २, सुयं उत्पन्न न्यान अन्मोद ३, पिपक अन्यान विरोध दिस्टि ४, न्यान अन्मोद अवलवली विषय गली ५, अन्मोद अन्मोद न्यान ६, अवलवली न्यान ७, अन्मोद न्यान समय न्यान ८, अवगाहन न्यान वाधा रहित ९, अवगाहन अगुरुलघु सुकीय सुभाव समय सहकार १०, तारणतरण हित मित परिनै ११, कोमल विसेष अर्क सुभाव १२, उक्त अन्मोद अनन्तानन्त १३, सल्य संक विवर्जित राग विगत पुष्य विली गारौ षिपक १४, दर्स अदर्स दर्स १५, माया मिथ्या निदान सल्य रहित १६, कषाय मल विली १७, कषाय जिन १८, कषाय राग जनरंजन रमण आनन्द सहित विषय मन विली १९, दर्स अनन्त दर्स न्यान अनंत नृत चरण अनंत चरण चारित्र २०, श्री समय दर्स २१, श्री समय हितकार २२, नृत श्री सम चरण चरित्र हितकार २३, यस्य स्थान कर्मादि सहित तस्य स्थान न्यान अन्मोद कम्म विलयंति २४, हितकार न्यान २५, अन्मोद न्यान २६, दिस्टि न्यान २७, इस्टि न्यान २८, रस्टि न्यान २९, रिस्टि न्यान ३०, सम इस्टि न्यान ३१, सह

इस्टि न्यान ३२, उत्पन्न दिस्टि न्यान ३३, सहकार दिस्टि न्यान ३४, अवकास इस्टि न्यान ३५, अनन्त इस्टि न्यान ३६, अन्मोद इस्टि न्यान ३७, कम्म विलीतं मुक्ति इस्टि न्यान ३८, सब्दपर न्यान ३९, असब्दसर न्यान ४०, गुपित सर न्यान ४१, प्रगट सर कमल हितकार ४२, स्थान हितकार ४३, अर्थ हितकार ४४, परिणाम हितकार ४५, उद्देस उत्पन्न हितकार ४६, परिणै उत्पन्न हितकार ४७, प्रमाण उत्पन्न हितकार ४८, उत्पन्न उत्पन्न हितकार ४९, उत्पन्न हितकार हितकार ५०, उत्पन्न सहकार हितकार ५१, उत्पन्न विन्यान हितकार ५२, उत्पन्न सहकार हितकार ५३, उत्पन्न जिन हितकार ५४, उत्पन्न परम जिन हितकार ५५, हितकार कोडाकोडी हितकार ५६, न्यान सुन्य सुन्य प्रवेस ५७, कोडाकोडी सहकार हितकार ५८, कोडि अन्मोद न्यान ५९, संक सल्य भय विली उत्पन्न केवल सुभाइ ६०, मनपर्जय दिप्ति ६१, केवल अन्मोद न्यान ६२, तिअर्थ आयरन तीर्थङ्कर भवति ६३, तिअर्थ हितकार आयरन तीर्थङ्कर ६४, सुयं कलित सुक्कलेस्या तीथकर भवति ६५, अर्कस्य अनन्त विसेष दिस्यते न्यान विन्यान अर्क सुभाव ६६, किछू संक सल्य राग दोष वंधान सहकार न्यान उत्पन्न अर्क सुभाव किछु विसेष महूर्त त्रितियं अन्तर न्यान उत्पन्न अर्क न दिस्यते विस्मरण भवति तदि त्रितिय नरय पतनं भवति ६७।

अर्थ—मनुष्य जन्ममें कुछ कालकी मर्यादा पीछे सम्यग्दर्शन होता है तब ज्ञान सूर्यका प्रकाश होजाता है ॥ १ ॥ सर्व हितकारी ज्ञानमें आनन्द झलक जाता है ॥ २ ॥ वह ज्ञानानन्द स्वयं आत्मासे परकी सहायता विना होता है ॥ ३ ॥ अज्ञानकी व विपरीत ज्ञानकी श्रद्धा मिट जाती है ॥ ४ ॥ ज्ञानमें आनन्द अनुभव करनेसे बड़ी बलवती विषयसुखकी वासना गल जाती है ॥ ५ ॥ तब ज्ञानमें वारवार आनन्द आता है ॥ ६ ॥ ज्ञान अनुपम बलधारी होजाता है ॥ ७ ॥ ज्ञानानन्दमें आत्माका ज्ञान होता है ॥ ८ ॥ यह अनुभव होता है कि ज्ञान अनन्त शक्तिधारी बाधा रहित है ॥ ९ ॥ आत्माके स्वभावमें अव-

गाहन गुण है, अगुरु लघु गुण है, यह अगुरु लघु गुण आत्माके स्वभाव परिणमनमें सहकारी है ॥ १० ॥ इस आत्मामें अरहन्त पदके होनेकी शक्ति है जो तारणतरण है व हितमित वाणी कहते हैं ॥ ११ ॥ इस ज्ञान सूर्यका स्वभाव परम कोमल मार्दव गुण सहित है ॥ १२॥ आत्मामें अनन्त आनन्द भरा है ॥१३॥

आत्माके स्वभावमें शल्य, शंका, भय नहीं है, न कोई राग है, न दुःख है, न कोई मद है ॥१४॥ आत्मा अतीन्द्रिय भावको देखनेवाला है ॥ १५ ॥ इसमें माया, मिथ्या, निदान शल्यें नहीं हैं ॥ १६ ॥ कषायका मैल भी नहीं है ॥१७॥ यह कषायोंको जीतनेवाला है ॥१८॥ इसके अनुभवसे कषायका राग व लोगोंको राजी करनेका आनन्द व विषयोंकी इच्छा व मनकी चञ्चलता विला जाती है ॥१९॥ अनुभवमें ऐसा आता है कि यह आत्मा अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व यथाख्यात चारित्र व अनन्त काल तक स्वरूपाचरण चारित्रका धारी है ॥ २० ॥ यह आत्माके ऐश्वर्यको आपसे देखनेवाला है ॥ २१ ॥ आत्माके विम्बके प्रकाशके लिये यही आत्मज्ञान हितकारी है ॥ २२ ॥ यथार्थ परम सम भाव रूप चारित्रमें हितकारी है ॥ २३ ॥ जिसके प्रदेशोंमें कर्मोंकी सत्ता होती है उसके प्रदेशोंसे कर्म ज्ञानानन्दके अनुभवसे क्षय होजाते हैं ॥ २४ ॥ आत्मज्ञान बड़ा हितकारी है ॥ २५ ॥ आनन्दमय ज्ञान है ॥ २६ ॥ यही सम्यग्ज्ञान है ॥२७॥ यही प्रिय ज्ञान है ॥ २८ ॥ यही रसीला स्वादिष्ट ज्ञान है ॥ २९ ॥ यही ज्ञान कर्म क्षयको खड्गके समान है ॥ ३० ॥ यही समभाव सहित प्रिय ज्ञान है ॥ ३१ ॥ यह सदा साथ रहनेवाला प्रिय ज्ञान है ॥ ३२ ॥ इसीसे दर्शनज्ञान बढ़ते हैं ॥ ३३ ॥ दर्शनज्ञानके प्रकाशको यही सहकारी है ॥ ३४ ॥ अनन्त ज्ञानके लाभके लिये यही प्रिय ज्ञान है ॥ ३५ ॥ इसके प्रिय ज्ञानमें अनन्त शक्ति है ॥ ३६ ॥ यह प्रिय ज्ञान आनन्द सहित है ॥ ३७ ॥

यह वह प्रिय आत्मज्ञान है जिससे कर्मका क्षय करके मोक्षका लाभ होता है ॥ ३८ ॥ शब्दोंके द्वारा शब्दोंके सरोवरमें मगन होनेसे यह आत्मज्ञान प्रगट होता है ॥ ३९ ॥ शब्द रहित मनन रूपी सरोवरमें डूबनेसे भी यह आत्मज्ञान प्रगट होता है ॥ ४० ॥ मनन रहित गुप्त आत्मामें लय होनेसे यह आत्मज्ञान प्रगट होता है ॥ ४१ ॥ इसीके द्वारा प्रकाशित आत्मा रूपी सरोवरमें आप ही कमलके समान हितकारी प्रगट होता है ॥ ४२ ॥ जिस पदमें हो वहीं यह आत्मज्ञान हितकारी है ॥४३॥ आत्मा पदार्थका यह ज्ञान परम हितकारी है । ४४ ॥ शुद्ध परिणामोंके रखनेमें यह आत्मज्ञान हितकारी

है ॥ ४५ ॥ इसीसे अपना मोक्षका हितकारी प्रयोजन सिद्ध होता है ॥ ४६ ॥ इसीसे हितकारी आपसे आपमें परिणमन रहता है ॥ ४७ ॥ यही आत्मज्ञान केवलज्ञान आदि प्रमाण ज्ञानोंके उत्पन्न करनेमें हितकारी है ॥ ४८ ॥ इस आत्मज्ञानसे सदा ही हितकारी परिणति होती है ॥ ४९ ॥ इससे बारबार हित होता है ॥ ५० ॥

यह आत्मज्ञान सर्व हितमें सहायक है ॥ ५१ ॥ विशेष ज्ञानके होनेमें यह आत्मज्ञान हितकारी है ॥ ५२ ॥ आत्मीक शुद्ध पदके उत्पन्न होनेमें यह ज्ञान हितकारी है ॥ ५३ ॥ इसीसे वीतरागी साधुभाव पैदा होता है ॥ ५४ ॥ इसी आत्मज्ञानके अनुभवसे जिनेन्द्र अरहन्त होता है ॥ ५५ ॥ करोड़ों हितकारी ऋद्धियोंके उत्पन्न होनेमें यह ज्ञान हितकारी है ॥ ५६ ॥ वीतराग शून्य ज्ञानके द्वारा रागादिसे शून्य शुद्ध आत्मामें लीनता होती है ॥५७॥ करोड़ों प्रकारके हितोंमें यह आत्मज्ञान सहायक है ॥ ५८ ॥ इसी आत्मज्ञानसे करोड़ शक्तिधारी आनन्द होता है ॥ ५९ ॥ इसी आत्मज्ञानके अनुभवसे जब सर्व शंकाएँ शल्यें व भय विला जाते हैं, तब केवलज्ञानका स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ ६० ॥ इसी आत्मज्ञानसे मनःपर्यय तक झलक जाता है ॥६१॥ इसीसे शुद्ध केवल आनन्दमय ज्ञान होजाता है ॥६२॥

इसीके द्वारा रत्नत्रयमें आचरण करनेसे तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है तब ही तीर्थंकर होता है ॥६३॥ इसी आत्मज्ञानसे रत्नत्रयमें यथार्थ आचरण करनेसे तीर्थंकर होजाता है ॥६४॥ जहां स्वयं आपसे आपका अनुभव हो व शुक्ललेश्या हो, ऐसा तेरहवां गुणस्थान हो वहीं तीर्थंकर आत्मज्ञानसे ही होता है॥६५॥ तब अरहन्त तीर्थंकरमें ज्ञान सूर्यके अनन्त विशेष दिखलाई पड़ते हैं। ज्ञानमयी सूर्यका स्वभाव झलक जाता है ॥६६॥ जब कोई तीर्थंकर नामकर्म बांधनेवाले भव्यको जो क्षयोपशम सम्यक्ती हो, क्षायिक न हो, कोई शंका या शल्य पैदा होजाती है। रागद्वेष सहित ज्ञान होजाता है, सूर्य स्वभाव मलीन होजाता है। मिथ्यात्वका उदय आजाता है। तीन मुहूर्त कुछ अधिक तक अंतरंगमें ज्ञान सूर्यका अनुभव नहीं रहता है। वह आत्माके शुद्ध स्वभावको भूल जाता है तब नर्क आयु बांधनेवाला तीर्थंकर नाम कर्मकी सत्तावाला जीव तीसरे नर्क चला जाता है।

भावार्थ—तीसरे नर्कसे निकल कर तीर्थंकर होसक्ता है। ऐसा क्षयोपशम सम्यक्ती मनुष्य मरनेके मुहूर्त पहले मिथ्यादृष्टी होजाता है, फिर नर्क जाकर एक अंतर्मुहूर्त अपर्याप्त अवस्थामें रहता है। पर्याप्त

होनेपर सम्यक्ती होजाता है। इसी अपेक्षासे यहां कहा गया है कि तीन मुहूर्त कुछ अधिक तक वह ज्ञानी अज्ञानी होजाता है, आत्माका अनुभव नहीं कर पाता है।

जदि त्रितिय अर्क तदि अर्क सुभाव सहित दुःख दिस्टि उत्पन्न सहित अनन्तानन्तं सहित अर्कस्य न्यान सहकार स्थिति आउ बंधान षिपक तुच्छ उत्पन्न मुक्त अर्क सुभावेन चै मनुष्य गति उत्पन्न।

अर्थ—तीसरे नर्क जाकर वहां ज्ञान सूर्यका अनुभव सम्यक्त होनेपर होजाता है। तीसरे नर्कका अनन्त दुःख तो वह जीव सहता है परन्तु आत्मज्ञान साथमें रहता है। नर्ककी स्थिति पूरी करके छः मास शेष रहनेपर मनुष्य आयु बांधकर सम्यग्दर्शनके साथ आत्मज्ञानको लिये हुये नर्कसे चयकर मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है।

ते अर्क रमण १, न्यान सहकार अर्क २, न्यान कमल अर्क ३, न्यान उक्त अर्क ४, न्यान परिणै अर्क ५, न्यान प्रमाण अर्क ६, न्यान वयण अर्क ७, न्यान दर्स अर्क ८, न्यान सुभाव अर्क ९, न्यान रंज अर्क १०, न्यान रमण अर्क ११, न्यान आनंद अर्क १२, न्यान अन्मोद अर्क १३, न्यान हितकार अर्क १४, न्यान सहकार अर्क १५, न्यान पयोग अर्क १६, न्यान दिस्टि अर्क १७, न्यान कमल अर्क १८, न्यान कलन अर्क १९, न्यान मिलन अर्क २०, न्यान इस्टि अर्क २१, न्यान रस्टि अर्क २२, न्यान रिस्टि अर्क २३, न्यान सम इस्टि अर्क २४, न्यान सह इस्टि अर्क २५, न्यान उत्पन्न इस्टि अर्क २६, न्यान सहकार अर्क २७, न्यान अवकास अर्क २८, न्यान अनंत अर्क २९, न्यान अन्मोद अर्क ३०, न्यान षिपक अर्क ३१, न्यान लंकृत अर्क ३२, न्यान विन्यान अर्क ३३, न्यान मई अर्क ३४, न्यान अर्क ३५, अर्क नंत प्रकार ३६, अर्क सुयं रमण अर्क ३७, अर्क सुयं मिलन अर्क ३८, अर्क अन्मोद मुक्ति अर्क ३९, आचरण न्यान

अन्तर रहित अर्क ४०, सहकार रहित अर्क ४१, सल्य रहित अर्क ४२, भय रहित अर्क ४३, मल रहित अर्क ४४, कषाय रहित अर्क ४५, मिथ्या रहित अर्क ४६, विषय रहित अर्क ४७, विली मन विषय अर्क ४८, अन्यान विली अर्क ४९, न्यान अन्मोद तीर्थंकर ५०, तिअर्थ आयरण तीर्थंकर ५१, सहकार अर्क तीर्थंकर ५२, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ५३, अन्मोद न्यान ५४।

अथ—मनुष्य गतिमें तीर्थंकर नाम कर्म बन्ध प्राप्त सम्यग्दृष्टी जीव ज्ञान सूर्यमें रमण करते हैं ॥१॥ उनका आत्म सूर्य ज्ञानी होता है ॥ २ ॥ ज्ञानमय प्रफुल्लित कमल समान ज्ञान सूर्य होता है ॥ ३ ॥ जैसा कहा गया है वैसे ज्ञान सहित आत्म सूर्य उनको झलकता है ॥ ४ ॥ उनका ज्ञान सूर्य ज्ञानमें परिणमन करता है ॥ ५ ॥ ज्ञान प्रमाण ज्ञान सूर्य प्रकाशता है ॥ ६ ॥ ज्ञानमें एकमेक सटा हुआ ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ ७ ॥ ज्ञान दर्शन सहित ज्ञान सूर्य प्रकाशता है ॥ ८ ॥ ज्ञान स्वभावी सूर्य प्रगट भासता है ॥ ९ ॥ ज्ञानमें रंगा हुआ सूर्य चमकता है ॥ १० ॥ ज्ञानमें रमण करता हुआ सूर्य दिखता है ॥ ११ ॥ ज्ञानानन्द-मई सूर्य झलकता है ॥ १२ ॥ ज्ञानमें मगन सूर्य प्रकाशता है ॥ १३ ॥ ज्ञानमय हितकारी सूर्य चमकता है ॥ १४ ॥ आत्मज्ञानकी सहायता सहित आत्म सूर्य अनुभवमें आता है ॥ १५ ॥ ज्ञानोपयोगमय आत्म-सूर्य रहता है ॥ १६ ॥

ज्ञानकी दृष्टि सहित सूर्य चमकता है ॥ १७ ॥ ज्ञानमय कमल सहित सूर्य झलकता है ॥ १८ ॥ ज्ञानके अनुभव सहित सूर्य होता है ॥ १९ ॥ ज्ञानके साथ मिला हुआ सूर्य दिखता है ॥ २० ॥ ज्ञानका इष्ट रखनेवाला सूर्य होता है ॥ २१ ॥ ज्ञानके आस्वादमें मगन सूर्य होता है ॥ २२ ॥ ज्ञानरूपी खड्ग सहित सूर्य दिखता है ॥ २३ ॥ ज्ञान व समभावको इष्ट रखनेवाला सूर्य चमकता है ॥२४॥ ज्ञानका प्रेमी सूर्य होता है ॥ २५ ॥ ज्ञानकी वृद्धि करता हुआ ज्ञान प्रेमी सूर्य होता है ॥ २६ ॥ ज्ञानका सहकारी सूर्य दिखता है ॥ २७ ॥ ज्ञानमें गर्भित सूर्य चमकता है ॥ २८ ॥ अनन्त ज्ञान सहित सूर्य झलकता है ॥ २९ ॥ ज्ञानमें मगन सूर्य चमकता है ॥ ३० ॥ ज्ञानसे कर्मोंको क्षय करनेवाला आत्म सूर्य चमकता है ॥ ३१ ॥ ज्ञानसे भूषित सूर्य दिखता है ॥ ३२ ॥ भेदविज्ञान सहित सूर्य होता है ॥ ३३ ॥ ज्ञानमई सूर्य चमकता है ॥ ३४ ॥ ज्ञानी सूर्य दिखता है ॥ ३५ ॥

विचार करते हुये आत्मा सूर्यके अनेक प्रकार होसकते हैं ॥ ३६ ॥ आत्म सूर्य आपमें ही रमण करनेवाला है ॥ ३७ ॥ आत्मा सूर्य आपसे आपमें मिलनेवाला है ॥ ३८ ॥ आत्म सूर्य आनन्द सहित परसे भिन्न दिखता है ॥ ३९ ॥ ज्ञान स्वभावमें निरन्तर आचरण करनेवाला सूर्य झलकता है ॥ ४० ॥ परकी सहायता रहित केवल आत्म सूर्य चमकता है ॥४१॥ यह ज्ञानमई आत्म सूर्य शल्य रहित है ॥४२॥ यह सूर्य भय रहित है ॥ ४३ ॥ यह सूर्य रागादि मल व कर्ममल रहित है ॥ ४४ ॥ यह सूर्य कषाय रहित है ॥ ४५ ॥ यह सूर्य मिथ्यात्व रहित है ॥ ४६ ॥ यह सूर्य विषयवासना रहित है ॥४७॥ इस सूर्यके पास विषयोंकी चिन्तासे रहित मन है ॥ ४८ ॥ इस सूर्यमें अज्ञान नहीं है ॥४९॥ यह तीर्थंकर पदधारी ज्ञानमें मगन है ॥ ५० ॥ यह तीर्थंकर रत्नत्रयमें आचरण करते हैं ॥ ५१ ॥ सहकारी ज्ञान सूर्य सहित तीर्थंकर हैं ॥ ५२ ॥ यह तीन लोकके नाथ तीर्थंकर है ॥ ५३ ॥ आनन्द व ज्ञानमई हैं ॥ ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्य तीर्थंकर सम्यग्दृष्टीका स्वरूप झलकाया है। सम्यग्दृष्टी तीर्थंकर जन्मसे ही स्वात्मानुभवके अतिशय प्रेमी होते हैं, उनको आत्मीक आनन्द निरन्तर रहता है, वे गृहस्थमें निर्लेप रहते हैं। दृष्टि स्वरूपपर रहती है।

अर्कस्य अर्क सुभाव संस्थान विन्यान विंद अर्क १, षिपक अर्क २, सुयं स्कंध अर्क ३; ध्रुव रमण अर्क ४, कुन्यान विली अर्क ५, स्थान हितकार अक ६, पद उत्पन्न अर्क ७, उत्पन्न उत्पन्न अर्क ८, चेत उत्पन्न अर्क ९, स्थान आवरण अर्क १०, इच्छ गम्य अगम्य गुपित रमण अर्क ११, पद ईजजाता उत्पन्न तिअर्थ अर्क १२, मध्यमपद पट् रमण अर्क १३, उत्पन्न उत्पन्न न्यान विन्यान अर्क १४, अर्कस्य इष्ट दर्स अर्क १५, विंद सुभाव इस्ट अर्क १६, तदि उत्पन्न अर्क १७, तदि षिपक अर्क १८, न्यान विन्यान अर्क १९, अर्क सुभाव भय विलय विषय विलय अर्क २०, अर्कस्य मुक्ति अर्क २१, तदि अर्क सुभाव न दिस्टते तदि नर्कस्य वीय पततं भवतु। जदि अर्क सुभाव सम्पूर्ण न दिस्टते तदि नर्क अन्तर रहित दुष्य अनन्त सहित संसारिणो जीव २२, जदि अर्क अर्क सुभावेन अनन्त विसेष प्रति पूर्ण दिस्टयन्ति जदि कौन एक

सुभाव सम्यक्ती जीव सल्यसंक भय कषाय रागदोष गारौ दर्सन मोहंध विसेषं पर्जाय अर्क महूर्त ४ चौऊन दिस्टते विस्मर भवति तदि नर्क चौथे पतनं करोति २३ ।

अथ—ज्ञान सूर्यका ज्ञान सूर्यरूप ही स्वभाव होता है, आकार चिदाकार होता है। वह स्वानुभव रूपी सूर्य है ॥ १ ॥ वह कर्म क्षयकारक सूर्य है ॥ २ ॥ स्वयं गुण समूह अभेद आत्म सूर्य है ॥ ३ ॥ वह शाश्वत स्वभावमें रमण करनेवाला सूर्य है ॥ ४ ॥ सर्व मिथ्याज्ञानका नाश करनेवाला सूर्य है ॥ ५ ॥ हर जगह या पदमें वह हितकारी आत्म सूर्य है ॥ ६ ॥ परमात्मपदका प्रकाशक ज्ञान सूर्य है ॥ ७ । ज्ञानके अनुभवसे ज्ञान सूर्य उदय होता है ॥ ८ ॥ स्वसंवेदन ज्ञानसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ९ ॥ वह अपने ही प्रदेशोंमें आचरण करनेवाला सूर्य है ॥ १० ॥ जिसमें स्थूल व सूक्ष्म पदार्थ सब झलकते हैं, ऐसे गुप्त स्वभावमें रमण करनेवाला आत्मसूर्य है ॥ ११ ॥ सरल समभावके द्वारा प्रगट जो रत्नत्रय स्वभाव उससे प्रगट होनेवाला आत्म सूर्य है ॥ १२ ॥

द्वादशांग वाणीके मध्यम पदोंके सार जो छः पद ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः हैं। इस मंत्रके द्वारा आत्मामें रमण करनेवाला सूर्य है ॥ १३ ॥ भेद विज्ञानसे ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ १४ ॥ जब ज्ञान सूर्यको प्रेमसे देखा जाता है तब वह झलकता है ॥ १५ ॥ स्वसंवेदन स्वभावमें मगन सूर्य है ॥ १६ ॥ जब ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ १७ ॥ तब कर्मोंको क्षय करता हुआ झलकता है ॥ १८ ॥ वह ज्ञानमई सूर्य है ॥ १९ ॥

आत्माके स्वभावमें रहनेसे सर्व भय व सर्व पंचेन्द्रियोंके विषयके भाव विला जाते हैं तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ २० ॥ ज्ञान सूर्यके अनुभवसे ही कर्मोंसे मुक्त सूर्य प्रगट होता है ॥ २१ ॥ जिसको ऐसा शुद्ध ज्ञान सूर्य नहीं दिखलाई पडता है वह मिथ्यात्वभावसे नर्ककी आयु बांधकर नर्कमें गिरता है। जिस किसीको पूर्ण व यथार्थ आत्मारूपी सूर्यका अनुभव नहीं होता है ऐसा नारकी संसारी मिथ्यात्वी जीव नर्कके निरन्तर अनन्त कष्टोंको सहता है ॥ २२ ॥

जिस किसी सम्यक्ती जीवको अनन्त गुण पर्यायधारी आत्मसूर्यका दर्शन या अनुभव होता है, वही जीव मिथ्यात्वके उदयसे, शल्यमें, भयमें, शङ्कामें, व अनन्तानुबन्धी कषायमें, रागद्वेषमें, मदमें, दर्शन मोहकी अन्धतामें, अपने परिणामोंको चार महूर्त तक रखता है, आत्माको भूल जाता है, पहले

वह नर्कायु बांध चुका है, इसलिये मिथ्यात्व अवस्थामें मरकर वह चौथे नर्कमें जाता है ॥ २३ ॥

भावार्थ—यहां किसी क्षयोपशम या उपशम सम्यक्तीका वर्णन है। जो मिथ्यात्व गुणस्थानमें नर्कायु बांध चुका है वह नर्क जानेके पहले दो व तीन मुहूर्त मिथ्यात्वी होजाता है और तब मरकर चौथे नर्क चला जाता है।

अर्क सुभाव दिस्टि सम्पूर्ण लै उत्पन्न नक स्थिति क्षीण आउ तुच्छ आऊ मुक्त मानसिक दिस्टि सुभाव द्रव्य सहित चै उत्पन्न मनुष्यगति भवतु १, अर्क सुभाव उत्पन्न उत्पन्न अर्क २, हितकार उत्पन्न उत्पन्न हितकार अर्क ३, कमल ठहकार अर्क ४, षिपक इस्टि अर्क ५, षिपक उत्पन्न अर्क ६, जान इस्टि अर्क ७, जान उत्पन्न अर्क ८, पद परम तत्तु परम उत्पन्न ९, परम तत्त विसेष उत्पन्न १०, अवधि न्यान सुरमण ११, मुक्ति सुभाव संसार सरणि १२, न्यान विन्यान सरयंति सरणि १३, मुक्त सभाव न्यानस्य अन्तरं विमुक्त विलयति १४, मुक्ति सुभाव भय सल्य सकराग दोष गारौ दर्स मोहन्ध आवरण घात कम्म मल कषाय मिथ्या विलयंति १५, सुद्ध बुद्ध ममल केवल न्यान विसेष सुभावेन न्यान अन्मोद वंदन युक्त न्यान अन्मोद अवलवली विषय विलय न्यानेन न्यान अन्मोद मुक्ति गत मुक्त सुभाव मुक्ति सिद्धं भवति १६।

अर्थ—नर्कमें जाकर पर्याप्त अवस्थामें कभी सम्यग्दर्शन होजावे तब ज्ञान सूर्यका स्वभाव सम्पूर्ण अनुभवमें आजावे। उस सम्यक्तको लिये हुए रहे। आयु क्षय होते हुए जब छः मास बाकी रहें तब मनुष्यायु बांधकर सम्यग्दर्शन सहित व नर्क दुःख सहित मरकर मनुष्य गतिमें उत्पन्न होजाता है ॥ १ ॥ ऐसा सम्यग्दृष्टी जीव मनुष्य गतिमें अपने ज्ञान सूर्यके अनुभवसे ज्ञानका प्रकाश बढ़ाता है ॥ २ ॥ हितकारी आत्मानुभवसे हितकारी ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥३॥ आत्मारूपी कमलमें ज्ञान सूर्यको देखता है ॥४॥ कर्मको क्षय करनेवाला क्षायिक सम्यक्तरूपी ज्ञान सूर्य होजाता है ॥५॥ इस क्षायिक भावसे ज्ञान सूर्यका प्रकाश चमकता है ॥ ६ ॥ मोक्षका मार्गरूप हितकारी ज्ञान सूर्य अनुभवमें आता है ॥ ७ ॥

उस स्वानुभवके मार्गसे आत्म सूर्यका प्रकाश बढ़ता है ॥ ८ ॥ परम तत्वका अनुभव करते हुए

उत्तम भाव झलकता है ॥ ९ ॥ परम तत्वके अनुभवसे विशेष शुद्ध भाव होता है ॥ १० ॥ अवधिज्ञान प्रगट होजाता है। सुअवधिकी निर्मलतामें रमण करता है ॥ ११ ॥ मोक्षका स्वभाव संसार नाशक अनुभवमें आता है ॥ १२ ॥ ज्ञान स्वभाव बढ़ता जाता है ॥ १३ ॥ मुक्त स्वभाव प्रगट होता जाता है ज्ञानका विघ्नकारक भाव व सांसारिक भाव क्षय होजाता है ॥ १४ ॥ मोक्ष स्वभावमें रमणसे भय, शल्य, शङ्का, राग, द्वेप, मद, मोह, कर्म, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, चारों घातीय कर्म, सब कषाय, मिथ्याभाव सर्व क्षय होजाता है ॥ १५ ॥ तब आत्मा शुद्ध निर्मल केवलज्ञान स्वभावसे प्रगट होता है। ज्ञानमें मगन रहता है, सर्व बन्धनसे छूटकर ज्ञानकी मगनतासे अनन्तवली होता है। सर्व विषय विला जाते हैं। ज्ञानके द्वारा ज्ञानमें आनन्द भोगता हुआ मोक्षमें जाकर मोक्ष स्वभावमें रहकर मुक्त व सिद्ध होजाता है।

भावार्थ—चौथे नर्कसे निकलकर सम्यक्ती जीव तीर्थंकर नहीं होता है, परन्तु सामान्य केवली होकर सिद्ध गति पालेता है।

तथाहि अर्क न दिस्यते नर्क जीव अनन्तानन्त संसार भ्रमणं करोति अनन्त दुःख जदि अर्क सुभाव भ्रमत भ्रमत अर्क सुभाव उत्पन्न तदि मनुष्य भवतु। मनुष्य मन पिपत अर्क सुभाव न्यान विन्यान कालंतर विली अर्क सुभाव मुक्ति गमनो भवतु। नरकस्य सुभाव भेद गति—१।

अर्थ—जैसा ऊपर कहा है—इस तरह जिस आत्माको ज्ञान सूर्य आत्माका दर्शन नहीं होता है, वही जीव नर्कमें है। वास्तवमें मिथ्यादृष्टी नारकी समान है वह संसारमें अनन्तानन्त कालतक भ्रमण करता है, अनन्त दुःख सहन करता है। स्वभाव तो आत्माका सूर्यसम बना रहता है। यदि भ्रमण करते करते कभी मिथ्यात्वके अन्धकारके हटनेपर आत्म सूर्यका स्वभाव प्रगट होजाता है, सम्यक्ती होजाता है और मनुष्य जन्ममें होता है तब वह मनुष्य संकल्प विकल्परूपी मनका क्षय करके ज्ञान सूर्यका स्वभाव प्रगट कर देता है। केवलज्ञानी होजाता है। कालको पूर्ण करके सूर्य स्वभावमें झलकता हुआ मोक्षमें पधार जाता है। इस तरह नर्क अवस्थाका स्वभाव मिट जाता है।

॥ ४४ ॥

द्वितीय अध्याय।

एकेन्द्रिय स्थावर चौवीस स्थान।

(१) गति–तिर्यंच।
(२) इंद्रिय–एकेन्द्रिय।
(३) काय–पांच- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति।
(४) योग ३- औदारिक, औ० मिश्र, कार्मण।
(५) वेद १–नपुंसक।
(६) कषाय २३–(२५–स्त्री० पुंवेद)
(७) ज्ञान २–कुमति, कुश्रुत।
(८) संयम १–असंयम।
(९) दर्शन १–अचक्षु।
(१०) लेश्या ३–कृष्ण, नील, कापोत।
(११) भय २–भव्य, अभव्य।
(१२) सम्यक्त–मिथ्यात्व।
(१३) सैनी १–असैनी।
(१४) आहारक २–आहारक, अनाहारक।
(१५) गुणस्थान १–मिथ्यात्व।
(१६) जीव समास–एकेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त।
(१७) पर्याप्ति ४-आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वास।
(१८) प्राण ४–स्पर्शनइं., कायबल, आयु, श्वास।
(१९) संज्ञा ४-आहार, भय, मैथुन, परिग्रह।
(२०) उपयोग ३–२ कुज्ञान + १ दर्शन।
(२१) ध्यान ८–आर्त ४, रौद्र ४।
(२२) आस्रव ३८–मिथ्यात्व ५ + अविरति ७ (स्पर्श १ + प्राण वध ६) + कषाय २३ + योग ३=३८।
(२३) योनि-५२ लाख।
(२४) कुल कोडि–६७ लाख।

स्थावर स्वभाव विशेष निरूपण—स्थान परिणाम १, अनन्त न्यान मई न्यान २, सुभाव न्यान रमण ३, न्यान नन्द ४, न्यान रंज ५, न्यान लब्धि ६, दर्स अनन्त ७, दर्स न्यान ८, दर्स विन्यान ९, दर्स सुभाव १०, दर्स उत्पन्न ११, दर्स हितकार दर्स सहकार १२, दर्स षिपक १३, दर्स इष्ट १४, दर्स उत्पन्न १५, इष्ट दर्स १६-१, जान दर्स १६-२, पद परम तत्तु दर्स १७, लष्य दर्स १८, अलस्य दर्स १९, गुपित दर्स २०।

चष्य अचष्य अवधि केवल दस २१, लब्धि दर्स २२, सूर्य लब्धि २३, नृत न्यान २४, कमल सुभाव २५, कमल रमण २६, कमल उक्त २७, कमल परिणै २८, कमल प्रमाण २९, कमल अर्थ ३०, कमल तिअर्थ ३१, कमल सम अर्थ ३२, कमल समय अर्थ ३३, कमल सहकार अर्थ ३४, कमल औकास अर्थ ३५, कमल अन्मोद अर्थ ३६, कमल षिपक अर्थ ३७, कमल मुक्ति अर्थ ३८, कमल रमण ३९, कमल लंकृत ४०, कमल विन्यान ४१, कमलमई कमल ४२, न्यान कमल ४३ ।

नानाप्रकार कमल ४४, अनन्त कमल ४५, परिणाम कन्द अर्क ४६, गिरा कन्द अग्र परिणाम ४७, भय विलय परिणाम ४८, स्थान अंगदि अंग ४९, स्थान स्थान न्यान ५०, विन्यान उत्पन्न कमल ५१, कण्ठमति कमल ५२, हितकार श्रुत कमल ५३, गुपित अवहि कमल ५४, न्यान मनपर्जय कमल ५५, पय केवल परिणाम ५६, ममल अनन्त ५७, तिअर्थ आवरण ५८, तीथकर तिअर्थ आवरण ५९, स्थावर स्थान अर्थ ६०, लोकालोक अनन्त परिणाम ६१, न्यान विन्यान अनन्तानन्त केवल सुभाव ६२, अनन्त चतुष्टै शरीर स्थान परिणाम ६३, दिप्ति अनन्त ६४, जं दिप्ति तं दिस्टि ६५, जं अनन्त दिप्ति तं अनन्त दिस्टि ६६, तस्य आवरण थावर पञ्च भेद उत्पन्न ६७ ।

अर्थ—आत्मामें स्थिर परिणामको स्थावर कहते हैं ॥ १ ॥ वह अनन्त ज्ञानमई है ॥ २ ॥ स्वाभाविक ज्ञानमें रमणरूप है ॥ ३ ॥ ज्ञानमें आनन्दरूप है ॥ ४ ॥ ज्ञानमें मगनरूप है ॥ ५ ॥ अनन्त ज्ञानकी लब्धिरूप है ॥ ६ ॥ अनन्त दर्शनमय है ॥ ७ ॥ ज्ञानका वहां दर्शन या अनुभव है ॥ ८ ॥ भेद विज्ञानका जहां श्रद्धान है ॥ ९ ॥ स्वभावका जहां प्रकाश है ॥ १० ॥ सम्यग्दर्शन झलक रहा है ॥ ११ ॥ हितकारी व सहकारी सम्यग्दर्शन है ॥ १२ ॥ क्षायिक सम्यग्दर्शन रूप है ॥ १३ ॥ निज इष्ट तत्वका जहां दर्शन

है ॥ १४ ॥ ऐसा सम्यक्त प्रगट है ॥ १५ ॥ प्रिय सम्यग्दर्शन है ॥ १६-१ ॥ मोक्षमार्गको जिसने देख लिया है ॥ १६-२ ॥ परमात्म रूप परम तत्वका जिसने अनुभव किया है ॥ १७ ॥ देखने योग्यको देख लिया है ॥ १८ ॥ सूक्ष्म अतीन्द्रिय तत्वको देख लिया है ॥ १९ ॥ गुप्त आत्म स्वभावका अनुभव किया है ॥२०॥

जिसमें चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, चारों दर्शनीय योगकी शक्ति है ॥ २१ ॥ आत्मदर्शनकी लब्धि प्रगट है ॥ २२ ॥ स्वयं ही निज स्वरूपकी प्राप्ति है ॥ २३ ॥ वहीं सच्चा ज्ञान है ॥ २४ ॥ वही प्रफुल्लित कमलके समान स्वभावधारी है ॥ २५ ॥ वही आत्मारूपी कमलमें रमण कर रहा है ॥ २६ ॥ वही जैसा कहा गया वैसा कमल है ॥ २७ ॥ वह कमल स्वभावमें परिणमन कर रहा है ॥ २८ ॥ वही कमल प्रमाणीक यथार्थ है ॥ २९ ॥ वही आत्मा कमलरूप पदार्थ है ॥ ३० ॥ वही आत्मा कमल रत्नत्रय स्वरूप है ॥ ३१ ॥ यह कमल समभाव सहित पदार्थ है ॥ ३२ ॥ यह कमल यथार्थ समय पदार्थ या समयसार आत्मा है ॥ ३३ ॥ इस प्रफुल्लित कमल स्वभावसे ही आत्मा पदार्थका सहकार है ॥ ३४ ॥ इस कमलको अनन्त पदार्थोंके जाननेका अवकास है ॥ ३५ ॥

यह कमल आनन्दमय पदार्थ है ॥ ३६ ॥ यह कमल क्षायिक भाव सहित पदार्थ है ॥ ३७ ॥ यही कमल मोक्षरूप पदार्थ है ॥३८॥ यह कमल आपमें रमण रूप है ॥ ३९ ॥ यह शोभनीक कमल है ॥४०॥ यह कमल ज्ञानमय है ॥ ४१ ॥ यह कमल आपमें आपरूप ही विराजित है ॥ ४२ ॥ यह ज्ञान स्वरूपी कमल है ॥ ४३ ॥ इस आत्मा कमलके नाना भेद होसक्ते हैं ॥ ४४ ॥ यह अनन्त गुण पदार्थ धारी आत्मा कमल है ॥ ४५ ॥ यह शुद्ध भावोंका धारी सूर्य ही है ॥ ४६ ॥ भगवानकी वाणीका मूल या मुख्य सार यह आत्म कमल है ॥ ४७ ॥ इसके भावोंसे सर्व भय विला गए हैं ॥ ४८ ॥ यह कमल अपने मूल स्थान या पदमें विराजमान है ॥ ४९ ॥ इसके हरएक प्रदेशमें अनन्तज्ञान है ॥ ५० ॥

भेदविज्ञानके द्वारा इस कमलका प्रकाश होता है ॥ ५१ ॥ कंठमें ज्ञान स्वभावी आत्माको धारण करनेसे यह कमल प्रगट होता है ॥५२॥ हितकारी श्रुतज्ञानके द्वारा इस कमलका विकास होता है ॥५३॥ इस कमलमें अवधिज्ञान गर्भित है ॥ ५४ ॥ इस कमलमें मनःपर्यय ज्ञान गर्भित है ॥ ५५ ॥ यह कमल केवलज्ञान पदमें परिणमनशील है ॥ ५६ ॥ यह अनन्त कालतक शुद्ध रहनेवाला है ॥ ५७ ॥ यह आत्मारूपी कमल रत्नत्रयमें आचरण कर रहा है ॥ ५८ ॥ यही कमल तीर्थंकर रूप हो तौ भी रत्नत्रयमें आचरण

करता है ॥ ५९ ॥ यह सच्चा स्थावर पदार्थ है जो अपने पदमें स्थिर है ॥ ६० ॥ यह लोकालोकके पदार्थोंके अनन्त परिणामोंको जाननेवाला है ॥ ६१ ॥ यह केवल स्वभावी है, जहां अनन्तज्ञान है ॥ ६२ ॥ यह अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य चार चतुष्टय धारी अपने अनन्त प्रदेशोंमें निश्चल स्थित है ॥ ६३ ॥ इसमें अनन्त ज्योति है ॥ ६४ ॥ जैसे ज्ञान है वैसे दर्शन भी है ॥ ६५ ॥ इसमें अनन्त ज्ञान व अनन्त दर्शन है ॥ ६६ ॥ जिस आत्माके ऊपर कर्मोंका ऐसा आवरण है कि शुद्धात्माका स्थावर स्वभाव प्रगट नहीं है वह मिथ्यादृष्टी जीव पांच प्रकार स्थावरोंमें जन्म धारण करता है ॥ ६७ ॥

अथ अपकाय निरूपण—अप्प सुभाव उत्पन्न लब्धि १, गम्य अगम्य परिणाम २, अनन्त न्यान दर्स विन्यान षिपक सूक्ष्म रमण ३, न्यान सुयं सुरमण परिणाम ४, उत्पन्न न्यान रमण सुभाव ५, कमल ठहकार रमण परिणाम ६, ठहकार मुक्ति परिणाम ७, रह रमण इष्ट परिणाम ८, रह रमण उत्पन्न परिणाम ९, अनन्त रह रमण न्यान परिणाम १०, न्रृत वीर्य रमण परिणाम ११, तत्काल रमण परिणाम १२, इष्ट उष्ट परिणाम १३, उत्पन्न इष्ट उष्ट परिणाम १४, इष्ट दर्स सुयं रमण १५, उत्पन्न दर्स परिणाम १६, इष्ट लष्य परिणाम १७, उत्पन्न लष्य परिणाम १८, दर्स लष्य न्यान परिणाम १९, जीव उत्पन्न आह्वान परिणाम २०, जिन उक्त रमण उत्पन्न रमण परिणाम २१, अनन्त रमण कमल कन्द परिणाम २२, कमल अग्र परिणाम २३, गिरा कन्द परिणाम २४, गिरा अग्र परिणाम २५, मूल इच्छ परिणाम २६, गुपित इच्छ परिणाम २७, जातीय उत्पन्न ध्रुव अर्क परिणाम २८, गम्य अगम्य लंकृत इष्ट परिणाम २९, गम्य अगम्य लंकृत उत्पन्न परिणाम ३०, रमण न्यान सहकार सिद्ध रमण परिणाम ३१, सुयं स्कंध रमण परिणाम ३२, दूर स्कन्ध विली सुयं स्कन्ध परिणाम ३३, न्यान श्रुति इस्ट उत्पन्न परिणाम ३४, न्यान श्रुति उत्पन्न इष्ट परिणाम ३५, रमण परश्रेष्ट सहकार उत्पन्न परिणाम ३६, दिस्टि इस्टि दिस्टि—३७।

अर्थ—अप कायका अध्यात्म दृष्टिसे कथन है (अप्प नाम आत्माका है) आत्माके स्वभावकी प्राप्ति होना परम लब्धि है ॥ १ ॥ वह परिणाम अनुभवगम्य है, मन व इंद्रियोंसे अगम्य है ॥ २ ॥ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, क्षायिकभाव स्वरूप सूक्ष्म तत्वमें रमणरूप है ॥ ३ ॥ ज्ञान अपने ज्ञान स्वभावमें स्वयं रमण करता है तब आत्मीक भाव झलकता है ॥ ४ ॥ वहां ज्ञानमें रमण करनेका स्वभाव झलक जाता है ॥ ५ ॥ आत्मीक कमलमें स्थिरतासे रमण स्वरूप भाव है ॥ ६ ॥ वही स्थिर मुक्तिका भाव है ॥७॥ परसे भिन्न स्वरूपमें रमण करनेसे इष्ट शुद्धोपयोग होता है ॥ ८ ॥ परसे भिन्न स्वरूपमें रमण करनेसे भावोंकी शुद्धि होती है ॥ ९ ॥ अनन्त काल तक परसे भिन्न स्वरूपमें रमण करनेसे ज्ञान परिणाम रहता है ॥ १० ॥

सत्य आत्मवीर्यमें रमण करनेरूप यह परिणाम है ॥ ११ ॥ जब आत्मामें रमण होता है तब आत्मारूप रहता है ॥ १२ ॥ यही प्रिय व कर्म दग्ध करनेवाला भाव है ॥ १३ ॥ आत्मरमणसे प्रिय व कर्मको भस्मकारी परिणाम पैदा होता है ॥ १४ ॥ जब अपने इष्ट स्वभावका श्रद्धान होता है तब आप ही अपनेमें रमण करने लगता है ॥ १५ ॥ वहां सम्यग्दर्शनका परिणाम प्रकाशित है ॥ १६ ॥ अनुभवने योग्य इष्ट परिणाम यही है ॥ १७ ॥ अनुभवने योग्य भाव प्रगट होगया है ॥ १८ ॥ अनुभवने योग्य ज्ञान भावको देख लिया है ॥ १९ ॥ जीवमें जीवत्व भाव पैदा होगया है ॥ २० ॥

जिनेन्द्र कथित तत्वमें रमण करनेसे आत्मानुभव उत्पन्न होता है ॥२१॥ अनन्त गुणधारी आत्मामें रमण करनेसे आत्मा कमलका मूल भाव झलकता है ॥२२॥ शुद्धोपयोग आत्मा कमलका मुख्य परिणाम है ॥ २३ ॥ जिनवाणीका मूल भाव यही है ॥ २४ ॥ जिनवाणीका सार भाव यही है ॥ २५ ॥ यह मूल स्वाभाविक इष्ट भाव है ॥ २६ ॥ यही गुप्त अनुभव गोचर इष्ट परिणाम है ॥ २७ ॥ यही जीवका जातीय अविनाशी उत्कृष्ट परिणामका झलकाव है ॥२८॥ यही सूक्ष्म स्थूल सर्व ज्ञानसे शोभित इष्ट उपादेय भाव है ॥ २९ ॥ यही सूक्ष्म स्थूल ज्ञानसे शोभित प्रकाशमान भाव है ॥ ३० ॥ आत्मज्ञानमें रमण करनेकी सहायतासे सिद्ध स्वभावमें रमणका भाव उत्पन्न होता है ॥३१॥ स्वयं आत्मा द्रव्यमें रमणरूप भाव है, आत्मा गुणोंका समूह है ॥ ३२ ॥ पर पुद्गल स्कन्धको क्षय करके स्वयं द्रव्यका गुण समूहमें परिणमन है ॥ ३३ ॥ सम्यग्ज्ञानकी भाव स्तुति करनेसे यह प्रिय भाव उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ आत्मज्ञानकी स्तुतिसे

इष्ट शुद्ध भाव झलकता है ॥ ३५॥ श्रेष्ठ शुद्ध भावमें रमण करनेसे यह आत्मीक भाव झलकता है ॥३६॥ इष्ट आत्माका दर्शन देख लिया गया है ॥ ३७ ॥

परिणाम दिस्टि उत्पन्न इस्टि १, परिणाम झडप इष्ट उत्पन्न २, न्यान परिणाम भय विलय इस्ट उत्पन्न झडप इष्ट न्यान परिणाम ३, भय विलय भय इष्टि विलय भय उत्पन्न विलय परिणाम ४, रमण न्यान सुय रमण अर्क परिणाम ५, रमण सवन्य सर्व दिस्टि सर्व अर्थ नन्त विसेष अर्थ तिअर्थ समर्थ अष्यर सुर पद सब्द अर्थ सब्दर्थ सहकार अर्थ औकास अन्मोद षिरक मुक्ति सौख्य अनन्त सर्व अर्थ परिणाम ६, रमण इस्ट उत्पन्न विंद विन्यान सुद्ध परिणाम ७, सून्य सुभाव रमण ८, सूष्यम सरि इस्ट रमण ९, सर उत्पन्न रमण १०, मय मूर्ति गम्य अगम्य मुक्ति रमण ११, सर्वन्य सुरमण १२, मूल उत्पन्न कमल रओ त्कीर्ण रमण १३, कमल न्यान परम तत्तु टंकोति ईर्ज रमण १४, इस्ट कमल न्यान परम तत्तु टंकोत ईर्ज रमण १५, सुर सर्वन्य उत्पन्न रमण १६, मय मूर्ति श्री सास्वत कमल रमण १७, विन्यान न्यान नृत ईर्ज सुभाव रमण १८, केवल सहकार रमण १९, इष्ट उत्पन्न ऊंकार रमण २०, विंद विन्यान नय उत्पन्न न्यान नय जिन सुभाव २१, मय मूर्ति उत्पन्न न्यान उत्पन्न न्यान परिणाम २२, अनन्त श्री सहकार श्री न्यान श्री मुक्ति सुभाव २३, मुक्ति श्री धुव रमण न्यान अन्तर रहित धुव सिद्ध २४, अप्प परमप्प हितकार षिपक जान इस्ट उत्पन्न इष्ट मुक्ति रमण २५, न्यान आयरण तीर्थंकर मुक्ति सिद्ध २६, अप्प सहकार न्यान रमण २७।

जदि केन विसेषपर्णि, जनरंजन, कलरंजन, मनरंजन, दर्स अन्ध आवरण न्यान भय सल्य संक कषाय मल मिथ्या सहकार न्यान रमण आवर्ण अन्तर दिप्ति रमण स्थान न्यान परमिष्टि चतुष्टय रमण त्रय अन्मोद सहकार एन विसेष आवर्ण अन्तर समय महूर्त आवर्ण अन्तर सुभाई

अन्तर हितकार आवर्ण सहकार आवर्ण हितकार आवर्ण जान आवर्ण रमण न्यान आवर्ण तदि अप्प काय जीव उत्पन्न पयोग चतुष्टै ही ण तदि सुभाव अन्तर्मुहूर्त बारह सहस्र चौ[illegible]स भ्रमण अनन्त-काल कलण विसेषन दिस्टंति। भ्रमत भ्रमत जदि कदि परिणाम रमण न्यान स्थ[illegible]न उत्पन्न देइ काल तदि महूर्त तदि समय अप्प सुभाव न्यान रमण उत्पन्न देइ, तदि आप काय महूर्त षिपनिक लै जस्स परिणाम आयरण स्थान जदि काल आयरण उत्पन्न रमण भवंति तदि न्यान रमण विसेष कम्म षिपनिक मुत्ति जन्ति इति अपकाय जीव निरूपणं बारा सहस्र चौवीस वास मृत्यु जन्म १२०२४ ॥ २८ ॥

अर्थ—जब अपने शुद्ध भावोंपर श्रद्धा होती है तब इष्ट स्वानुभव पैदा होता है ॥ १ ॥ परिणामोंको आत्माके तत्वमें जोड़ते ही इष्ट भाव झलकता है ॥ २ ॥ आत्मज्ञानमें परिणमन करनेसे सर्व भय दूर होजाता है, इष्ट स्वानुभव झलकता है व जैसे ही इष्ट स्वानुभव होता है ज्ञानमें परिणमन रहता है ॥ ३ ॥ भयोंके दूर होनेपर, इष्ट पदार्थोंके सम्बन्धमें भय मिटनेपर, भयके उदयके हटनेपर निर्भय भाव होता है ॥ ४ ॥ ज्ञानमें रमण करनेसे स्वयं आत्मामें रमण होता है तब ज्ञान सूर्य प्रगट होता है ॥ ५ ॥ जब कोई सर्वज्ञ, सर्वदर्शी व सर्व पदार्थोंके अनन्त विशेषोंको रखनेवाले आत्म पदार्थमें, रत्नत्रयमई अनन्त वीर्यमई पदार्थमें जो आत्मा पदार्थ अक्षर स्वर पद शब्द व शब्दोंके अर्थसे झलकता है जिसमें अनन्त ज्ञानका अवकास है, जो आनन्दमय है, क्षायिक है, मोक्षके अनन्त सुखसे भरपूर है तब शुद्ध परिणाम होता है ॥ ६ ॥

इष्ट आत्मतत्वमें रमण करनेसे ज्ञानके अनुभवसे शुद्ध भाव होता है ॥ ७ ॥ यह भाव रागादिसे शून्य स्वभावमें रमण रूप है ॥ ८ ॥ सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्मारूपी सरोवरमें प्रेमसे रमण होरहा है ॥ ९ ॥ आत्म सरोवरमें मगन होनेसे ही स्वात्मरमण होता है ॥ १० ॥ ज्ञान मूर्ति आत्मा सूक्ष्म स्थूलके विकल्पसे रहित तत्वमें रमण कर रहा है ॥ ११ ॥ वह सर्वज्ञ भावमें रमण कर रहा है ॥ १२ ॥ आत्मारूपी कमलके मूलसे उत्पन्न कमलमें दृढ़तासे रमण होरहा है ॥ १३ ॥ आत्मारूपी कमलके भीतर जो परम-

तत्वका ज्ञान है उसमें दृढ़तासे व सरलतासे व शांतिसे रमण होरहा है ॥ १४ ॥ हितकारी आत्म-कमलके परम ज्ञानमें दृढ़तासे रमण होरहा है ॥ १५ ॥ सर्वज्ञ सूर्यसे प्रगट भावमें रमण होरहा है ॥१७॥ भेद विज्ञानके द्वारा प्रगट सत्य सरल समभावमें रमण होरहा है ॥ १८ ॥ केवलज्ञानके सहकारी भावमें रमण होरहा है ॥ १९ ॥ इष्ट भावको झलकाने वाले ॐ मंत्रके द्वारा रमण होरहा है ॥ २० ॥ भेद विज्ञा-नसे शुद्ध नयके द्वारा प्रगट ज्ञानमय वीतराग स्वभाव झलकता है ॥ २१ ॥ ज्ञान मूर्ति आत्मामें प्रगट ज्ञानके अनुभवसे ज्ञानका भाव बढ़ता है ॥ २२ ॥ अनन्त आत्मीक लक्ष्मीको सहकारी ऐश्वर्यशाली ज्ञान है वही श्री मोक्षके स्वभाव रूप है ॥ २३ ॥ मोक्ष-लक्ष्मीमें ध्रुव भावसे रमण करता हुआ ज्ञान निरन्तर अविनाशी सिद्धपदमें तिष्ठता है ॥ २४ ॥ परमात्म स्वरूप आत्माको हितकारी क्षायिक भाव रूपी इष्ट मोक्षमार्गसे इष्ट मुक्तिमें रमण प्रगट होता है ॥ २५ ॥

ज्ञानमें आचरण करनेसे ही तीर्थंकर सिद्ध व मुक्त होता है ॥ २६ ॥ आत्माको सहकारी आत्म-ज्ञानमें रमण यथार्थ है ॥ २७ ॥ जिस किसीको ऊपर प्रमाण आत्माका अनुभव नहीं प्राप्त है, जो जनरंजन भावमें, शरीररंजन भावमें, मनरंजन भावमें, दर्शनमोहके मिथ्यात्व भावमें, ज्ञानावरणके उदयमें, भय, शल्य, शङ्कामें, कषायके मलमें फंसा है, मिथ्या ज्ञानमें रमण करता है, जिसके अन्तरायका उदय है, व जिसके ऐसा कर्मोंका आवरण है जिससे उसको ज्ञानमें रमण नहीं है, स्व स्वरूपका ज्ञान नहीं है, अनन्त चतुष्टयमें रमण नहीं है, रत्नत्रयका आनन्द नहीं है, पापोंका विशेष उदय है, अन्तर्मुहूर्तके लिये भी आवरण हटता नहीं है, अन्तरंग स्वभावका हितकारी भाव छिप रहा है, उस ज्ञानके सहकारी कार्योंका भी निमित्त नहीं है, मोक्षमार्ग विरोधीभानमें रमण होरहा है, ज्ञानावरणका विशेष उदय है तब वह जीव जलकायमें उत्पन्न होता है। वहांपर मात्र स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा उपयोग है, अन्य चार इंद्रियोंके द्वारा उपयोग नहीं है। ऐसे जलकायमें क्षुद्र भव्य अन्तर्मुहूर्तमें लगातार सूक्ष्मके ६०१२, स्थूलके ६०१२ कुल १२०२४ होते हैं इनका एक श्वासमें अठारह दफे जन्म मरण होता है। ऐसे अपर्याप्त जीव साधारण वनस्पति निगोदमें भी जाते हैं। अनन्त काल तक संसारमें भ्रमण रहता है, स्वानुभवका दर्शन नहीं होता है। भ्रमण करते करते यदि कभी पंचेन्द्रिय सैनी होजाता है मानव होता है और वहां सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान पैदा होकर अन्तर्मुहूर्तके लिये आत्माके स्वाभाविक ज्ञानमें रमण होता है उपशम सम्यक्त जब पैदा होता है

तब अन्तर्मुहूर्त आत्मानुभव बना रहता है। फिर वेदक सम्यक्त होकर आत्मा क्षायिक सम्यक्ती होजाता है तब वह क्षायिक भावमें आचरण करता है। चारित्र बढ़ते बढ़ते यथाख्यात चारित्र होजाता है। फिर केवलज्ञान उत्पन्न होकर शुद्ध ज्ञानमें रमण होता है। फिर शेष सर्व कर्म क्षय करके वह मोक्ष जाता है। इसतरह अपकायका निरूपण किया। जलकायके क्षुद्र भव एक अन्तर्मुहूर्तमें १२०२४ होते हैं, १२०२४ दफे जन्म मरण होता है ॥ २८ ॥

तेज काय निरूपणं—थावर गति स्थान न्यान आवरण थावर तेज काय निरूपणं १, गति तियत्र स्थान न्यान आवरण थावर भवति २, स्थान आवरण सुद्ध मुक्ति गामिणं ३, कस्य आयरण उत्पन्न ४, उत्पन्न आयरण उत्पन्न विंद ५, उत्पन्न विन्यान ६, उत्पन्न पद ७, उत्पन्न अर्थ ८, उत्पन्न औकास ९, उत्पन्न अन्मोद १०, उत्पन्न षिरक ११, उत्पन्न मुक्ति रमण १२, उत्पन्न न्यान रमण आनन्दनन्द १३, उत्पन्न दिस्टि इस्टि १४, उत्पन्न सूषम सुयं षिपन सुभाव १५, उत्पन्न श्री रमण आयरण श्री मुक्ति सुभाव १६, जदि विसेष-उत्पन्न सर्वेपि अप्प सहकार १७, उत्पन्न उत्पन्न हितकार आयरण हितकार १८, उत्पन्न स्थान हितकार १९, इष्ट भय विनस्य हितकार २०, उत्पन्न भय विनस्य अचष्य २१, भय इष्ट विनस्य अचष्य उत्पन्न २२, भय इष्ट विनस्य सुयं न्यान आवरण २३, रमण काए रमण २४।

अर्थ—अप तेज कायका निरूपण करते हैं। इस तेज कायमें स्थावर गति होती है। ज्ञानावरणका उदय विशेष है ॥ १ ॥ तिर्यंच गति होनेसे यथार्थ ज्ञानका आवरण होता है, तेज काय स्थावर है ॥ २ ॥ जो कोई अपने स्वभावमें स्थिर होके आचरण करता है वह शुद्ध होकर मुक्त होजाता है ॥ ३ ॥ किसके आचरणसे क्या होता है ॥ ४ ॥ स्वरूपाचरण होनेसे स्वानुभव होता है ॥ ५ ॥ विशेष आत्मज्ञान होता है ॥ ६ ॥ महान् पद उत्पन्न होता है ॥७॥ परमार्थ तत्व झलकता है ॥८॥ अनन्त ज्ञान प्रगट होता है ॥९॥ अनन्त सुखका प्रकाश होता है ॥ १० ॥ नौ क्षायिक लब्धियां प्रगट होती हैं ॥ ११ ॥ मोक्षभावमें रमण होता है ॥ १२ ॥ ज्ञानानन्दमें मगनता रहती है ॥ १३ ॥ परम इष्ट आत्माकी दृष्टि होजाती है ॥ १४ ॥

अतीन्द्रिय सूक्ष्म निज क्षायिक स्वभाव प्रगट होजाता है ॥ १५ ॥ परमैश्वर्यमें रमण होते हुए मोक्षका स्वभाव होजाता है ॥ १६ ॥ यदि विशेष कहें तो आत्माके सहकारी सर्व गुण प्रगट होजाते हैं ॥ १७ ॥ हितकारी स्वरूपमें आचरण सदा बना रहता है ॥ १८ ॥ अपना निज स्थान हितकारी प्रगट रहता है ॥ १९ ॥ सर्व भयोंका विनाश होजाता है, निर्भयता हितकारी प्रगट होती है ॥ २० ॥ भयोंके क्षयसे अतीन्द्रिय भाव प्रगट होता है ॥ २१ ॥ इष्ट भावके सम्बन्धसे सर्व भय दूर होजाता है। अतीन्द्रिय तत्व प्रगट होता है ॥ २२ ॥ निर्भयताके साथ इष्ट अपने ही ज्ञानमें रमण रहता है ॥ २३ ॥ रमण स्वरूप आत्मामें रमण रहता है ॥ २४ ॥

क्रांति–इष्ट न्यान विन्यान श्री आयरण क्रांति १, उत्पन्न इष्ट अपूर्व सहकार पुरिस क्रांति २, रमण आयरण कासु स्फटिक ३, कासू स्फटिक अन्यान विली न्यान अन्मोद स्वरूवी सुभाव ४, न्यान प्रियो ५, न्यान इष्ट ६, न्यान कमल ७, न्यान रमण ८, श्री अनन्त न्यान फटिक सुभाव रमण ९, आवरण उत्पन्न स्फटिक सिद्ध सुभाव फासु सरूव सूक्ष्म अवगाहण हितमित परिणै १०, कोमल कांति सिद्ध स्वरूप ११, न्यान मुक्ति श्री सुद्ध सुभाव १२, फासु आवरण रूव अरूवी रूवी विलय १३, अरूव रूव रूवी विविक्त १४, अनरूइ प्रियो १५, न्यान रूवी न्यान विन्यान रमण १६, आयरण न्यान सुद्ध सुकीय सुभाव १७, दिष्टि रूव उत्पन्न ओकास अन्मोद षिपक रूवेन तदि मुक्ति सुख्य १८ ।

अर्थ—शुद्ध स्वरूपको शोभा कहते हैं । इष्ट भेद विज्ञानके द्वारा स्वरूपाचरण होना ही एक क्रांति है । १ ॥ इष्ट भाव उत्पन्न होनेसे अपूर्व परम हितकारी आत्माकी कीर्ति होती है ॥ २ ॥ स्वरूपमें आचरण करनेसे आत्मा स्फटिकरत्नके समान पवित्र होजाता है ॥ ३ ॥ स्फटिकके समान निज स्वभाव झलकनेसे अज्ञान दूर होजाता है, ज्ञानानन्द स्वभाव झलक जाता है ॥ ४ ॥ तब ज्ञान ही प्रिय है ॥ ५ ॥ ज्ञान ही इष्ट है ॥ ६ ॥ ज्ञान कमलके समान प्रफुल्लित रहता है ॥७॥ ज्ञानका ज्ञानमें रमण होता है ॥८॥ परमैश्वर्यशाली अनन्त ज्ञानमयी निर्मल स्फटिक समान भावमें रमण होता है ॥ ९ ॥ स्वरूपाचरणसे

स्फटिकके समान सिद्धका स्वभाव प्रगट होजाता है जो निर्मल है, सूक्ष्म अतींद्रिय है, अवगाहन गुण सहित है, मर्यादारूप अपने ही स्वभावमें परिणमन करता है ॥ १० ॥ बड़ी ही शांत शोभा सिद्धके स्वरूपकी है ॥ ११ ॥ ज्ञानमई परसे मुक्त परमैश्वर्यशाली सिद्धका शुद्ध स्वभाव है ॥ १२ ॥ शुद्ध स्वभावमें आचरण करनेसे अमूर्तीक स्वभाव प्रगट होता है, रूपी पुद्गलका संग छूटता है ॥ १३ ॥ सिद्धका स्वरूप अरूपी है, मूर्ति रहित है ॥ १४ ॥ अमूर्तीक स्वभाव सुहावना है ॥ १५ ॥ सिद्ध ज्ञान स्वरूपी है व ज्ञानमें ही रमण करते हैं ॥ १६ ॥ ज्ञानमें आचरण करनेसे अपना शुद्ध स्वभाव प्रगट रहता है ॥ १७ ॥ अपने स्वरूपको देख लेनेसे अनन्तज्ञान व अनन्त सुख उत्पन्न होता है, सर्व कर्मका क्षय किये हुए वे सिद्ध भगवान सदा मुक्तिका सुख भोगते हैं ॥ १८ ॥

अन्मोद न्यान हितकार आयरण १, सब्दस्य विसेष सब्दस्य जिन सब्द असब्द न्यान २, असब्द गुपित सब्द न्यान उत्पन्न ३, सब्द न्यान सरूव न्यान विन्यान आवरण ४, लब्धि अलब्धि लब्धि ५, सुय लब्धि ६, विसेष न्यान विन्यान श्री मुक्ति श्री सुभाव ७, पुरिस सिद्ध सुभाव अव्वावाह अवगाह हितकार रमण आयरण सुद्ध बुद्ध सुभाव ८, मन विसेष–इष्ट मन ९, न्यान मन १०, उत्पन्न मन न्यान रंज ११, मन न्यान रमण १२, मन न्यान विन्यान रमण १३, श्री न्यान सुभाव मुक्ति श्री सहकार १४, सिद्ध अर्क उत्पन्न १५, हितकार विंद विन्यान उत्पन्न १६, हितकार आगन्तु न्यान १७, हितकार हित न्यान १८, उत्पन्न हित हुंतकार न्यान १९, उत्पन्न हितकार रंज २०, जिन रंज रमण २१, जिननाथ रमण २२, अचष्य दर्सन न्यान परिणाम २३, अनन्त अलष्य २४, सरस्य सर उत्पन्न २५, न्यान रमण विसेष २६, षिपक विसेष २७, जानपद विन्यान रमण २८, ग्रहण अनन्त बाधा रहित तीर्थंकर सुभाव २९।

जदि अतीन्द्रिय सुभाव केन विसेष--मनरंजन गारो सुभाव जनरंजन सुभाव मनरंजन सुभाव कलरंजन सुभाव, कषाय मल सुभाव पर्जाव दिष्टि सुभाव, पर्जाव इष्टि सुभाव, दर्स अदर्स अन्ध

सूष्यम सुभाव मिथ्या सुभाव प्रकृति राग प्रकृति दोष प्रकृति न द्रिस्यते ३०, अतीन्द्रिय उत्पन्न अतीन्द्रिय सुभाव ३१, अतीन्द्रिय मिलण ३२, अतीन्द्रिय रमण ३३, अतीन्द्रिय रंज ३४, अतींद्रिय आनन्द ३५, अतींद्रिय विसेष ३६. अतींद्रिय उक्त ३७, अतींद्रिय वयण ३८, अतींद्रिय दिस्टते, ३९, अतींद्रिय गम्यते ४०, अतींद्रिय अगम्यते ४१, अतींद्रिय सुवते ४२, अतींद्रिय आहार ४३, अतींद्रिय ठिदि ४४, अतींद्रिय चलण ४५, अतींद्रिय वलण ४६, अतींद्रिय निद्रा ४७, अतींद्रिय आमनु ४८, अतींद्रिय सुर सब्द ४९, अतींद्रिय अदिस्ट सर ५०, अतींद्रिय गुपित सर ५१, अतींद्रिय उत्पन्न सर ५२, अतींद्रिय कमल सर ५३, अतींद्रिय आयरण ५४, अतींद्रिय अचष्य ५५, अतींद्रिय चष्य ५६, अतींद्रिय गुपित ५७, अतींद्रिय मन ५८, अतींद्रिय वचन ५९, अतींद्रिय क्रांति ६०, अतींद्रिय सयनासन ६१, अतींद्रिय ग्रह ६२, अतींद्रिय हितकार ६३, अतींद्रिय औगास ६४ ।

अतीन्द्रिय अबाधा सुभाव ६५, अतीन्द्रिय भय ६६, अतीन्द्रिय उत्पन्न मय ६७, अतीन्द्रिय इष्टि मय ६८, अतीन्द्रिय झड़प मय ६९, अतीन्द्रिय रमण ७०, अतीन्द्रिय विन्यान रमण ७१, अतीन्द्रिय प्रियो ७२, अतीन्द्रिय रूव ७३, अतीन्द्रिय अष्या अतीन्द्रिय सुर, अतीन्द्रिय विंजन, अतीन्द्रिय माया, अतीन्द्रिय कानो, अतीन्द्रिय पद ७४, अतीन्द्रिय अर्थ ७५, अतीन्द्रिय तिअर्थ ७६, अतीन्द्रिय सहकार ७७, अतीन्द्रिय समय ७८, अतीन्द्रिय औकास ७९, अतीन्द्रिय रमण ८०, अतीन्द्रिय लंकृत ८१, अतीन्द्रिय मई ८२, अतीन्द्रिय न्यान प्रकार ८३, अतीन्द्रिय सुभाव स्थान आवरण भवतु ८४, अनन्त अतीन्द्रिय सुन्य अतीन्द्रिय अनन्तानुवन्ध, अतींद्रिय सुभाव तेज काय जीव उत्पन्न उपयोग हीन संजोग चतुष्टे हीन भ्रमण अन्तर्मुहूर्त १२०२४ अन्तर्मुहूर्त तेज काय मरइ जन्मइ ८५ ।

अर्थ—आनन्द और ज्ञान जो हितकारी है उनमें ज्ञानीका रमण होता है ॥ १ ॥ शब्दका विशेष कहते हैं। शब्दोंमें जिन शब्द है इससे शब्द रहित परमात्माका ज्ञान होता है ॥२॥ शब्द रहित आत्मामें लवलीन होनेसे शब्द ज्ञान या श्रुतज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥ शब्दके द्वारा ज्ञान स्वरूपी आत्माके ज्ञानमें आचरण होता है ॥ ४ ॥ तब अपूर्व लब्धियोंकी या शक्तियोंकी प्राप्ति होती है ॥५॥ स्वयं आत्माकी शक्तियें प्रगट होती जाती हैं ॥ ६ ॥ विशेष ज्ञानके द्वारा परमैश्वर्ययुक्त मोक्षके स्वभावका अनुभव होता है ॥ ७ ॥ पुरुषाकार सिद्ध भगवानका स्वभाव जाना जाता है, जो अव्याबाध है, अवगाहन गुण रहित है, हितकारी स्वभावमें रमणशील है, व शुद्ध व बुद्ध स्वभाव है ॥ ८ ॥ मनका चिंतवन विशेष आत्मा सम्बन्धी होता है वही मन प्रिय है ॥ ९ ॥ वही मन ज्ञानी है ॥ १० ॥

इस मनके द्वारा आत्माके ज्ञानमें मगनता होती है ॥ ११ ॥ तब मन स्वयं ज्ञानमें रमण कर जाता है ॥ १२ ॥ मन तब भेदविज्ञानके द्वारा आत्मामें रमण कर जाता है ॥ १३ ॥ परमैश्वर्ययुक्त ज्ञान स्वभावमें मोक्ष-लक्ष्मीका स्वभाव चमकता है ॥ १४ ॥ वहां सिद्धरूपी ज्ञान सूर्य झलकता है ॥ १५ ॥ तब हितकारी ज्ञानका अनुभव प्रगट होता है ॥ १६ ॥ तब हितकारी ज्ञान आपसे ही अकस्मात् पढ़ता जाता है ॥ १७ ॥ यही हितकारी उपादेय ज्ञान है ॥ १८ ॥ यह ज्ञान कर्मोंको होम करनेवाला है ॥ १९ ॥ यह ज्ञान आत्माके हितमें मगन रहता है ॥ २० ॥ यही वीतराग स्वभावमें मगनरूप है ॥ २१ ॥ यही जिनेन्द्रके गुणोंमें रमणरूप है ॥ २२ ॥ यही अतींद्रिय ज्ञान व दर्शनका भाव है ॥ २३ ॥ यही अनन्त अविनाशी अतींद्रिय भाव है ॥ २४ ॥ आत्माके सरोवरमें मगन होनेसे आत्माका सरोवर बढ़ता जाता है। आत्माके गुण प्रगट होते जाते हैं ॥ २५ ॥ तब विशेष आत्मज्ञानमें रमण होता है ॥ २६ ॥ यह भाव क्षायिक है जो कर्मोंका क्षय करता है ॥ २७ ॥

यही मोक्षमार्ग है जिस विज्ञानमें रमण होता है ॥ २८ ॥ तब वह शुद्ध भाव बाधा रहित व अनंत तीर्थंकर अरहन्तके स्वभावको अनुभव करता है ॥ २९ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावका प्रकाश यह है कि मनरंजनमय भाव, जनको रंजायमान करनेवाला स्वभाव, मनको रंजायमान करनेका भाव, क्रोधादि कषायोंका बल, पर्याय बुद्धिका मिथ्यात्व भाव, पर्यायमें रमण भाव, दर्शन मोहका अन्धपना, सूक्ष्म मिथ्यात्व भाव, मिथ्यात्व प्रकृति, राग भाव, द्वेष भाव ये सब कोई जहां अनुभवमें नहीं आते हैं ॥ ३० ॥

अतीन्द्रिय भावमें रमण करनेसे अतीन्द्रिय स्वभाव प्रगट होता जाता है ॥ ३१ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावसे मिलान बढ़ता जाता है ॥ ३२ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण होता जाता है ॥ ३३ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें मगनता होती जाती है ॥ ३४ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें ही सच्चा सुख है ॥ ३५ ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव आत्माका विशेष गुण है ॥ ३६ ॥ अतींद्रिय समय उसे कहते हैं, जैसा जिनवाणीमें कहा गया है ॥ ३७ ॥ अतींद्रिय स्वभावमें ही ज्ञानी उलझा रहता है ॥ ३८ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावको ही देखता है ॥ ३९ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावको ही जानता है ॥ ४० ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव मनसे अगोचर है ॥ ४१ ॥ अतीन्द्रिय भावमें ज्ञानी परिणमन करता है ॥ ४२ ॥

अतीन्द्रिय सुखका ही ज्ञानी भोजन करता है ॥ ४३ ॥ अतींद्रिय भावमें ही ठहरता है ॥ ४४ ॥ अतींद्रिय स्वभावमें ही चलता है ॥ ४५ ॥ अतींद्रिय भावमें प्रकाशता है। ध्यानमय अग्नि यही है, जो कर्मोंको जलाती है ॥ ४६ ॥ अतींद्रिय स्वभावमें ज्ञानी मगन होकर जगतके व्यवहारसे शून्य हो निद्रा लेता है ॥ ४७ ॥ अतींद्रिय स्वभावमें ही ज्ञानी आसन जमाता है ॥ ४८ ॥ अतींद्रिय स्वभावको प्रकाशक स्वर व शब्दोंका ज्ञानी सहारा लेता है ॥ ४९ ॥ अतींद्रिय स्वभाव एक ऐसा सरोवर है, जो इंद्रियोंसे देखनेमें नहीं आता है ॥ ५० ॥ अतीन्द्रिय भावमें रमना गुप्त सरोवरमें स्नान करना है ॥ ५१ ॥ अतींद्रिय भावसे आत्मारूपी सरोवर बढ़ता जाता है ॥ ५२ ॥ अतींद्रिय सरोवरमें अतींद्रिय भावरूपी कमल खिलता है ॥ ५३ ॥ अतींद्रिय भावमें रहना ही आचरण है ॥ ५४ ॥ अतींद्रिय भाव इंद्रियगोचर नहीं है ॥ ५५ ॥ अतीन्द्रिय ज्ञान ही सच्ची आंख है, देखनेयोग्य दृश्य है ॥ ५६ ॥ अतीन्द्रिय भाव गुप्त गुफा है, अनुभवगम्य है ॥ ५७ ॥ अतीन्द्रिय भावका विचार करे, वही मन है ॥ ५८ ॥ अतींद्रिय भावका शब्द है वही वचन है ॥ ५९ ॥ अतीन्द्रिय भावमें रमण करनेसे शरीरकी शोभा है ॥ ६० ॥ अतीन्द्रिय भाव ही शय्याका आसन है ॥ ६१ ॥ अतीन्द्रिय भाव ही घर है जहां रहना चाहिये ॥ ६२ ॥ अतींद्रिय भाव ही हितकारी मोक्ष साधक है ॥ ६३ ॥ अतींद्रिय ज्ञानमें अनन्त अवकाश है ॥ ६४ ॥ अतींद्रिय भावमें कोई बाधा नहीं है ॥ ६५ ॥ आत्मा अतींद्रिय स्वभावमय है ॥ ६६ ॥ अतीन्द्रिय भावसे अतीन्द्रियभाव बढ़ता है ॥ ६७ ॥

अतीन्द्रिय भाव ही परम प्यारा है ॥ ६८ ॥ अतीन्द्रिय भावमें रमण करनेसे तुर्त स्वानुभव होता

है ॥ ६९ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें ही ज्ञानमें रमण है ॥ ७० ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें ही भेद विज्ञान द्वारा रमण होता है ॥ ७१ ॥ अतीन्द्रिय भाव ही प्रिय है ॥ ७२ ॥ अतीन्द्रिय आत्माका रूप है ॥ ७३ ॥ अक्षर, स्वर, व्यंजन, मात्रा, अनुस्वरादिसे व पदसे अतीन्द्रिय आत्माका ही मनन कर अनुभव करना चाहिये ॥ ७४ ॥ आत्मा पदार्थ अतीन्द्रिय है ॥ ७५ ॥ रत्नत्रय भी अतीन्द्रिय है ॥ ७६ ॥ अतीन्द्रिय अनुभव ही मोक्षका सहायक है ॥ ७७ ॥ अतीन्द्रिय स्वरूप ही समय या आत्मा है ॥ ७८ ॥ अतीन्द्रिय भावमें अनंत आकाश है ॥ ७९ ॥ अतीन्द्रिय भावमें ही रमण मोक्षमार्ग है ॥ ८० ॥ अतीन्द्रिय भाव ही आभूषण है ॥ ८१ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें बुद्धिको प्रवेश करना चाहिये ॥ ८२ ॥ अतीन्द्रिय ज्ञानके ही अनेक भेद होजाते हैं ॥ ८३ ॥ जब अतीन्द्रिय निज शुद्ध स्वभावका आवरण या आच्छादन होता है ॥ ८४ ॥ तब अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञानादिसे शून्य जीव होता है। इंद्रिय द्वारा ही ज्ञान रहता है, अतीन्द्रिय स्वभाव अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे ढक जाता है, स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता है तब तेज या अग्निकायमें जीव पैदा होता है जहां शुद्ध आत्माकी तरफ उपयोग नहीं जाता है। एक स्पर्शन इंद्रिय द्वारा स्पर्श करने योग्य पदार्थ पर उपयोग किया जाता है, चार इंद्रियोंके उपयोग नहीं होते हैं, तेजकायमें लब्ध्य पर्याप्तक जीव क्षुद्र भवके धारी श्वासके अठारहवें भागमें जन्म मरण करनेवाले बादर व सूक्ष्मके लगातार भव एक अंतर्मुहूर्तमें १२०२४ होते हैं ॥ ८५ ॥

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव अग्निकायमें जन्मता है। वहां १२०२४ भव लगातार क्षुद्र भवके पाता है। जन्म मरणके घोर कष्ट सहता है।

अनन्त काल कालंतर जामन मरनं भवतु। अनन्त काल अतिंद्री सुभाव जदि कालंतर अतिंद्री विरच १, कोमल सहकार न्यान औगाह २, दर्सन न्यान अदर्स ३, अचष्य न्यान गुपित रमण ४, न्यान नन्तानन्त ५, मल विली ६, विषय विली ७, विनन्द विली ८, अतींद्री उत्पन्न विली ९, अतिंद्री मुक्त विली १०, अतिंद्री अन्मोद विली ११, न्यान रमण उत्पन्न अन्मोद मिली १२, विषय विलयं गता १३, तदि मुक्त सुभाव रमण न्यान मुक्ति गमनं भवतु १४।

अर्थ—तेजकाय आदि स्थावरोंमें अनन्त कालतक यह जीव जन्म मरण करता रहता है। तौभी आत्मामें अनन्त काल अतींद्रिय स्वभाव बना रहता है, उसका अभाव नहीं होता है। यदि पंचेन्द्रिय सैनी मानव होकर काललब्धि आनेपर अतींद्रिय स्वभावमें विशेष प्रेमालु होजावे, सम्यग्दृष्टी होजावे ॥१। कोमल या नम्र भावसे आत्माके इस स्वभावमें अवगाहन करे ॥ २ ॥ दर्शन ज्ञानमई देखे ॥ ३ ॥ अतींद्रिय ज्ञानमें गुप्त होकर रमण करे ॥ ४ ॥ तब अनन्त ज्ञानका प्रकाश होजावे ॥ ५ ॥ सर्व कर्ममल क्षय होजावे ॥ ६ ॥ विषयवासना मिट जावे ॥७॥ विषयसुख विलय होजावे ॥८॥ अतींद्रिय सुख पैदा होजावे व उसमें लय होजावे ॥९॥ अतींद्रिय सुखके भोगमें तन्मय होजावे ॥१०॥ अतीन्द्रिय आनन्दमें मगनता होजावे ॥ ११ ॥ आत्मज्ञानमें रमण करके आनन्दका लाभ होजावे । १२ ॥ सर्व पर सम्बन्धी विषयसुख छूट जावे ॥ १३ ॥ तब मोक्षके स्वभावमें रमण करके ज्ञानमय होकर मोक्षको चला जावे ॥ १४ ॥

भावार्थ—वही तेज काय जीव भ्रमण करते करते काल पाकर मानव होकर व क्षायिक सम्यक्ती होकर उसी भवसे आत्मध्यान द्वारा कर्मोंसे मुक्त हो सिद्धगति पासक्ता है। उस तेजकाय जीवमें आत्मा अतीन्द्रिय स्वभावका धारी ही है।

वात काय निरूपणं—उत्पन्न उत्पन्न इष्ट १, उत्पन्न उत्पन्न इष्ट इष्ट २, दर्स दर्स इष्ट ३, उत्पन्न दर्स दर्स इष्ट ४, इस्ट उत्पन्न इस्ट इस्ट रमण ५, उत्पन्न इस्ट रमण ६, इस्ट रंज लष्य ७, उत्पन्न लष्य इस्ट चेय ८, उत्पन्न चेय इस्ट चेय ९, उत्पन्न चेय इस्ट इच्छ १०, उत्पन्न इस्ट वियो उत्पन्न पियो ११, इस्ट रहनि उत्पन्न रहनि १२, इस्ट गहणि उत्पन्न गहणि १३, इस्ट विलखि उत्पन्न मिलणि १४, इस्ट सहनि उत्पन्न सहनि १५, इस्ट वेषु उत्पन्न वेषु १६, इस्ट हित उत्पन्न हित १७, इस्ट अवगाह उत्पन्न अवगाह १८, इस्ट अगुरुलघु उत्पन्न अगुरुलघु १९, इस्ट अबाधा उत्पन्न अबाधा २०, इस्ट षिपक उत्पन्न षिपक २१, इस्ट जान उत्पन्न जान २२, इस्ट गुपित उत्पन्न गुपित २३, इस्ट गुहिज उत्पन्न गुहिज २४, इस्ट पद उत्पन्न पद २५, इस्ट विंद

उत्पन्न विंद २६, इस्ट स्थान उत्पन्न स्थान २७, इस्ट आयरन उत्पन्न आयरन २८, इस्ट लब्धि उत्पन्न लब्धि २९, सुयं षि।क उत्पन्न षिपक ३०, इस्ट स्कंध उत्पन्न स्कंध ३१, इस्ट धुव उत्पन्न धुव ३२, इस्ट मै रमण उत्पन्न मै रमण ३३, इस्ट औकास रमण उत्पन्न औकास रमण ३४, गम्य अगम्य रमण गम्य अगम्य उत्पन्न रमण ३५, कुन्यान विली उत्पन्न कुन्यान विली ३६, इस्ट उस्ट कुमति विली उत्पन्न कुमति विली इस्ट ३७, कुश्रुत विली उत्पन्न कुश्रुत विली इस्ट ३८, कुअवधि विली उत्पन्न कुअवधि विली हितकार ३९।

अर्थ—जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता ह ॥ १ ॥ तव शुद्ध इष्ट ध्येयका प्रकाश होने लगता है ॥ २ ॥ इष्ट शुद्धात्माका वारवार दर्शन होता है ॥ ३ ॥ आत्मदर्शनके पैदा होनेसे इष्टपदका साधन होता है ॥ ४ ॥ आत्मानुभवके उद्योतसे इष्ट शुद्धभावमें भलेप्रकार रमण होता है ॥ ५ ॥ इसीसे इष्ट आत्मीक रमण होता है ॥ ६ ॥ देखने योग्य आत्मामें परमानन्द होता है ॥ ७ ॥ शुद्ध लक्ष्य जो आत्मा है इसका अनुभव होनेपर चेतने योग्य प्रभुका प्रकाश प्रगट होता है ॥ ८ । जैसे जैसे चेतने योग्य परमात्माका जानपना होता है वैसे वैसे इष्टपद प्रगट होता है ॥ ९ । इष्टपदके प्रकाशसे जो साध्य था उसको प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥ साधने योग्य शुद्ध भावका प्रकाश होनेपर इष्टपद प्रिय भासता है व प्रिय पद प्रगट होजाता है ॥ ११ ॥ इष्ट वैराग्यमें रहनेसे वैराग्य बढ़ता जाता है ॥ १२ ॥ इष्ट पदको ग्रहण करनेसे ग्रहण योग्य पद प्रगट होता है ॥ १३ ॥ इष्ट स्वात्मामें मिलनेसे स्वात्माका लाभ होता है ॥ १४ ॥ इष्ट आत्माको आत्मबलसे धारण करनेसे इष्टभाव झलकता जाता है ॥ १५ ॥ इष्टको देखनेसे इष्टका दर्शन बढ़ता जाता है ॥ १६ ॥ इष्ट ध्येयमें हित करनेसे हित झलकता जाता है ॥ १७ ॥ इष्टमें मगन होनेसे मगनता बढ़ती जाती है व सिद्धके ध्यानसे अवगाहन गुणधारी सिद्धभाव प्रगट होता है ॥ १८ ॥ अगुरु लघु गुणधारी सिद्धका इष्ट करनेसे अगुरु लघु गुण सहित सिद्धभाव प्रगट होता है ॥ १९ ॥ बाधा रहित का प्रेम करनेसे बाधारहितपना पैदा होता है ॥ २० ॥ क्षायिक भावसे प्रेम करनेसे क्षायिक भाव ता जाता है ॥ २१ ॥ मोक्षमार्गमें इष्ट करनेसे मोक्षमार्ग तप होता जाता है ॥ २२ ॥ गुप्त आत्मामें

इष्ट भाव करनेसे गुप्त आत्मा प्रगट होता जाता है ॥ २३ ॥ आतम गुफामें प्रेम करनेसे आत्मीक गुफामें प्रवेश होता जाता है ॥२४॥ सिद्धपदमें प्रेम करनेसे सिद्धपद प्रगट होता है ॥२५॥ स्वानुभवसे प्रेम करनेसे स्वानुभव बढ़ता जाता है ॥२६॥ शुद्ध मोक्ष स्थानका प्रेम करनेसे शुद्ध स्थानका ध्येय सफल होता जाता है ॥ २७ ॥ स्वरूपाचरण चारित्रसे प्रेम करनेसे चारित्र बढ़ता जाता है ॥ २८ ॥ आत्माकी शक्तियों पर प्रेम करनेसे आत्माकी शक्तियां प्रगट होती हैं ॥ २९ ॥ स्वयं क्षायिक सम्यग्दृष्टी होनेसे क्षायिक भाव प्रगट होता है ॥ ३० ॥ गुण-समूह आत्मामें द्वेष करनेसे आत्माका विकास होता है ॥ ३१ ॥

ध्रुव अविनाशी तत्वमें प्रेम करनेसे ध्रुव तत्व झलकता जाता है ॥ ३२ ॥ ज्ञानमें रमणताका प्रेम करनेसे ज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ॥ ३३ ॥ अनन्त ज्ञानमें रमणका प्रेम करनेसे अनन्त ज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ॥३४॥ स्थूल सूक्ष्म ज्ञाता आत्मामें रमण करनेसे आत्माका रमण बढ़ता जाता है ॥३५॥ कुज्ञानके दूर होनेसे इष्ट सुज्ञान प्रगट होता है ॥ ३६ ॥ कुमति ज्ञानके जानेसे इष्ट सुमति ज्ञान प्रगट होता है ॥ ३७ ॥ कुश्रुत ज्ञानके जानेसे इष्ट सुश्रुत ज्ञान प्रगट होना है ॥३८॥ कुअवधिज्ञानके जानेसे इष्ट सुअवधिज्ञान प्रगट होता है ॥ ३९ ॥

स्थान थुति पद उत्पन्न हितकार स्थान थुति पद ४०, इस्ट उत्पन्न पद ४१, उत्पन्न उत्पन्न रमण ४२, उत्पन्न उत्पन्न इस्ट रमण ४३, उत्पन्न उत्पन्न इस्ट इस्ट रमण ४४, चेत औकास इस्ट रमण ४५, चेत औकास उत्पन्न रमण ४६, स्थान इस्ट आयरन स्थान उत्पन्न आयरण ४७, रमण रंज नन्द आनन्द इस्ट गुपित न्यान रमण ४८, इस्ट इच्छ गुपित उत्पन्न इच्छ न्यान रमण ४९, पद ईजंति अर्थ इस्ट रमण पद ईजंति अर्थ उत्पन्न रमण ५०, मध्य गुपित अनन्त इस्ट रमण मध्य गुपित अनन्त इस्ट उत्पन्न रमण ५१, उत्पन्न ममल इस्ट रमण उत्पन्न सुद्ध ममल ५२, उत्पन्न रमण आतम गुण गुपित ठहकार इस्ट रमण ५३, आतम गुण गुपित ठहकार मुक्ति उत्पन्न रमण ५४, स्थान स्थान इस्ट उत्पन्न आयरण मुक्ति तीर्थंकर उत्पन्न सुभाव ५५, तस्य स्थान स्थान आवरन न्यान इस्ट उत्पन्न आवरण करोति ५६, किंविसेष-जया अनिष्ट वय तत्र क्रिया

क्लिस्ट ५७, अनिष्ट तव दान पूजा क्लिष्ट ५८, अर्थ विद्या व्याकरण सिष्या तर्क निरीष्यण ज्योतिष वेदांग छन्द वेद अनिष्ट ५९, मीमांसा न्याय अनिष्ट ६०, धर्म अधर्म अनिष्ट ६१, पुरान विकथा कला अनिष्ट ६२, काव्य अनिष्ट ६३, उच्चाटन मोहण स्थंभन विषय विसेष प्रपंच विभ्रम अनंत ६४, अमर मरह पिंगल अंक अर्थ सूरचंद संक्रम अग्नि पंचाग्नि जट नारक श्रुत अनन्त ६५, जिन अजिन पद लेपन कषाय मल मिथ्या सल्य भय जनरंजन कलरंजन मनरंजन दर्सन मोहध आर्त रौद्र अनन्त ६६, विषय इष्ट उत्पन्न सहित वात वाय विसेष स्थान उत्पन्न हितकार सहकार जान पद वेद अनन्त आवरण, न्यान आवरण, दर्सन आवरण, मोहन आवरण, अन्तराय आवरण जं स्थान न्यान उत्पन्न तं स्थान आवरण न्यान वातवाइ सुभाव वातकाइ जीव उत्पन्न प्रवेस भवतु वातकाइ विसेष ६७, जदि कदि कालंतर भ्रमण सहकार भ्रमण उपयोग रहित दुःख अन्तर्मुहूर्त बाइस सहस्र चौवीस वार जामण मरण भवति—६८ ।

अर्थ—पांच परमेष्टीके पदोंकी स्तुति करनेसे हितकारी पांचों पद स्तुति योग्य उत्पन्न होते हैं ॥४०॥ इष्ट परमात्मपद झलक जाता है ॥ ४१ ॥ आत्मामें रमण बढ़ता जाता है ॥ ४२ ॥ इष्ट पदका रमण बढ़ता जाता है ॥ ४३ ॥ परमेष्टीपदका रमण बढ़ता जाता है ॥ ४४ ॥ अनुभवने योग्य अनन्त ज्ञानके इस्ट पदमें रमण होती है ॥ ४५ ॥ अनुभवने योग्य अनन्त ज्ञानका रमण बढ़ता जाता है ॥ ४६ ॥ गुणस्थान गुणस्थानमें जैसे २ आत्मीक तत्वमें रमण होता है वैसे ही चारित्र बढ़ता जाता है ॥४७॥ आत्मानंदकी मगनता जैसे जैसे होती है गुप्त आत्मज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ॥ ४८ । साधने योग्य शुद्ध पदका जैसा जैसा प्रेम होता है वैसे वैसे शुद्ध ज्ञानमें रमण बढ़ता जाता है ॥ ४९ ॥ रत्नत्रयमें परिणमन होनेवाले आत्मीक इष्ट पदमें रमण होनेसे रत्नत्रयमई पदमें रमण बढ़ता जाता है ॥ ५० ॥ अनन्त गुण सहित आत्माके भीतर जैसे प्रेमसे रमण होना है अनन्त गुण सहित आत्मामें रमण बढ़ता जाता है ॥ ५१ ॥ इष्ट शुद्धोपयोगमें रमण करनेसे शुद्ध निरंजन भाव झलकता जाता है ॥ ५२ ॥ आत्माके गुणोंमें रमण होनेसे गुप्त स्थिर आत्मतत्वमें रमण होता है ॥ ५३ ॥

आत्माके गुणोंमें स्थिति होती है तब मोक्ष सुभावमें रमण झलकता है ॥ ५४ ॥ हरएक पद या अवस्थामें इष्ट आत्मामें आचरण करनेसे मोक्षका व तीर्थंकरका स्वभाव प्रगट होता है ॥ ५५ ॥ जिस जीवके भीतर हरएक पदमें इष्ट आत्माके ज्ञानपर परदा होता है, वह मिथ्यादृष्टी, मिथ्याज्ञानी होता है ॥ ५६ ॥ विशेष यहां वह व्रत, तपका आचरण मिथ्यात्व सहित करके इष्ट भावको न पाता हुआ क्लेश उठाता है ॥ ५७ ॥ मिथ्यात्व सहित अनिष्ट तप करता है, दान करता है, पूजा करता है, क्लेश उठाता है ॥ ५८ ॥ उसका अर्थ शास्त्रका ज्ञान व्याकरण, शिक्षा, तर्क, न्याय, ज्योतिष, वेदांत, छन्दका ज्ञान लाभकारी नहीं होता है ॥ ५९ ॥ मीमांसा व नैय्यायिक शास्त्रज्ञान हानिकारक होता है ॥ ६० ॥ मिथ्या-दृष्टीका धर्म व अधर्म साधन दोनों अनिष्ट हैं, हानिकारक हैं ॥ ६१ ॥ पुराण कथा आदि सब अहितकारी होते हैं ॥ ६२ ॥ काव्यज्ञान व कवितापना अनिष्ट होता है ॥६३॥ वह उच्चाटन मंत्र, मोहनमंत्र, स्तम्भन मंत्र करता है, विषयोंकी विशेष प्रीति होती है। उनके लिये प्रपंच व चिंताएँ अनन्त प्रकारकी होती हैं ॥ ६४ ॥ वह मिथ्यात्वी अमरकोष, महाभारत, पिंगलशास्त्र, अङ्कगणित, अर्थ विद्या, सूर्य व चन्द्रमाके भ्रमणसे ज्योतिषका ज्ञान, पञ्चाग्नि तप तपना, नट करना, नाटक खेलना, आदि अनन्त प्रकारके कार्य करता है ॥ ६५ ॥ वह अजित वीतराग पदका लोप करता है, कषायोंके मलसे मैला रहता है, मिथ्यात्वमें भरा होता है, माया, मिथ्या, निदान, शल्य सहित होता है, भयवान होता है, मनरंजन, शरीर रंजन, मन-रंजन भावोंमें फँसा रहता है, दर्शन मोहमें अन्धा होता है, आर्त व रौद्र ध्यानके अनन्त जालोंमें फँसा रहता है ॥ ६६ ॥

वह इंद्रियोंके इष्ट विषयोंको पैदा करता रहता है उसीसे कर्म बांधकर वायुकायमें पैदा होता है, वहां हितकारी सहकारी मोक्षमार्गके ऊपर अनन्त आवरण रहता है। उसको ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय चारोंका प्रबल आवरण होता है, आत्मज्ञान जहां पैदा होता है। उस सम्यक्त भावपर आवरण होता है, उसका स्वभाव वातकायवाला होजाता है, वह वायुकायमें उत्पन्न होता है ॥ ६७ ॥ कालांतरमें भ्रमण करते करते उपयोगकी शुद्धता विना महान् दुःख भोगता है। कभी लब्ध्य पर्याप्त वायु-कायमें पैदा होता है तब एक अन्तर्मुहूर्तमें लगातार स्थूलमें ६०१२ सूक्ष्ममें ६०१२ सब १२०२४ दफे क्षुद्र भव धार जन्म मरण करता है ॥ ६८ ॥

जदि कदि कालंतर स्थान आवरण विसेष सुभाव उत्पन्न लब्धि भवति तदि कालत्रय विकल स्थान आवरण, सुभाव ग्रहण ग्रहतै अनन्त चतुष्टै सुभाव दर्सन न्यान चरण, सम्यक्दर्शन सम्यक् न्यान सम्यक् चरण, अनन्त दर्सन, अनन्त न्यान, अनन्त वीय, अनन्त सौख्य, श्री सम्यक्दर्शन श्री सम्यक् न्यान श्री सम्यक चरण, बल वीर्ज विन्यान, सक्र सल्य भय राग दोष रहित, घाति कर्म आवरण विली उत्पन्न मिली मुक्त विली विनद विली सुपन विली अन्मोद न्यान अवल वली विषय गली जेन केन स्थान आवरण सुभाव उत्पन्न सुभाव न्यान अन्मोद जेन केनापि आवरण सुभाव मुक्ति गत।

अथ—उसी वायु काय जीवको भ्रमण करते करते जब सैनी पंचेन्द्रिय मनुष्य गति प्राप्त हो और वह सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति करे, विशेष स्वभावको प्रकाश करे। आत्मीक स्वभावमें आचरण करे तब तीन कालमें सदा ही शुद्ध आत्माके भीतर रमण करते ही स्वभावका ग्रहण हो, शुद्धोपयोग होजावे। अनन्त चतुष्टय स्वभावको स्मरण करे, निश्चय रत्नत्रयमें अनुभवशील हो तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रकी पूर्ण प्रगटता हो। अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त सुखका प्रकाश हो, रत्नत्रय स्वभावमें आचरण हो, आत्मबलका व आत्मज्ञानका झलकाव हो। सर्व शङ्काएँ, शल्य, भय, रागद्वेष दूर होजावे। चार घातीय कर्मोंका क्षय हो, जन्मका नाश हो, इंद्रियभोगोंका क्षय हो, दुःखका नाश हो, स्वप्न अवस्थाका नाश हो, स्वरूपमें जागृत रहे, आनन्द व ज्ञान व अनुपम वीर्य प्रगट हो, विषयोंकी कांक्षा नहीं रहे। अपने शुद्ध प्रदेशोंमें ही आचरण करे, तब ज्ञानानन्द स्वभावके भीतर आचरण करता हुआ मुक्तिको प्राप्त होजावे।

पृथ्वी काय निरूपणं—स्थान आवरण थावर जेन केनापि स्थान आवरण जिनवर आवरण विसेष १, स्थान उत्पन्न उत्पन्न न्यान अन्मोद दिस्टि २, इस्ट प्रियो दिष्टि ३, उत्पन्न प्रियो इष्टि ४, इष्ट प्रियो ५, इष्टि उत्पन्न प्रियो ६, दर्स इष्ट प्रियो ७, दर्स उत्पन्न प्रियो ८, लष्य

इष्ट प्रियो ९, लष्य उत्पन्न प्रियो १०, अर्थ इष्ट प्रियो ११, अर्थ उत्पन्न प्रियो १२, सुयं अर्क १३, इस्ट सुर रमण प्रियो १४, सुयं अर्क इस्ट सुयं रमण उत्पन्न प्रियो १५, कमल इस्ट प्रियो १६, कमल उत्पन्न इस्ट प्रियो १७, तत्काल इस्ट रमण प्रियो १८, तत्काल इस्ट उत्पन्न उत्पन्न प्रियो १९, कमल ठहकार इस्ट प्रियो २०, कमल ठहकार इस्ट उत्पन्न प्रियो २१, प्रियो उत्पन्न प्रियो २२, प्रियो ठहकार मुक्ति प्रियो २३, दिस्टि ईर्जं चेत इस्ट प्रियो २४, दिस्टि ईर्जं चेत उत्पन्न प्रियो २५, न्यान सहकार इस्ट कलन प्रियो २६, न्यान सहकार इस्ट कलन उत्पन्न प्रियो २७, विन्यान षिपक दंड उत्पन्न इस्ट प्रियो २८, विन्यान षिपक दंड उत्पन्न उत्पन्न प्रियो २९, रिति ईर्जं इस्ट रमण प्रियो ३०, रिति ईर्जं इस्ट उत्पन्न रमण प्रियो ३१, कषाय मल कम्म विषय पय इस्ट प्रियो ३२, कषाय मल कम्म षिपक उत्पन्न न्यान अन्मोद प्रियो ३३, निसंक न्यान इस्ट प्रियो ३४, निसक न्यान इस्ट उत्पन्न प्रियो ३५, संक सल्य संक भय विली इस्ट प्रियो ३६, संक सल्य संक भय विली इस्ट उत्पन्न प्रियो ३७, व्रति सरणि विली निवृति सरणि व्रिति न्यान अन्मोय प्रियो ३८, गम्य अगम्य इच्छ इस्ट प्रियो ३९, गम्य अगम्य इच्छ इस्ट उत्पन्न प्रियो ४० ।

अर्थ—जिसके आत्मापर आवरण विशेष होता है वह स्थावर कायमें जन्मता है । परन्तु जो कोई आत्मामें आचरण करता है, जिनेन्द्रके स्वभावमें विशेष आचरण करता है ॥१॥ उसके आत्माके रमणसे ज्ञानानन्दकी दृष्टि पैदा होजाती है ॥ २ ॥ हितकारी प्यारी दृष्टि झलक जाती है ॥ ३ ॥ प्यारा इष्ट प्रयोजन पैदा होजाता है ॥ ४ ॥ जहां सिद्धपद ही इष्ट व प्रिय हो ॥ ५ ॥ अपने इष्टके द्वारा ही प्रियपद पैदा होता है ॥ ६ ॥ जहां इष्ट व प्रिय आत्मीक पदका दर्शन हो ॥७॥ उस आत्मदर्शनसे प्यारा पद झलकता हो ॥८॥ जहां इष्ट प्यारे पदपर लक्ष्य हो ॥ ९ ॥ तब इस लक्ष्यसे प्रियभाव पैदा होता है ॥ १० ॥ आत्मा पदार्थ ही इष्ट व प्यारा माने ॥ ११ ॥ उसी आत्म पदार्थके सेवनसे अपना आत्मपद प्रगट होता है ॥ १२ ॥

यह आत्मा स्वयं ही सूर्य समान तेजस्वी है ॥ १३ ॥ उसी आत्माके सूर्य समान स्वभावमें रमण प्रिय भासता है ॥ १४ ॥ स्वयं ही आत्मा सूर्य है । इस इष्ट भावमें स्वयं रमण करनेसे अपना प्रियपद प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥ आत्मारूपी कमल ही इष्ट व प्रिय है ॥ १६ ॥ इसी कमलके द्वारा इष्ट प्रियपद प्रगट होता है ॥ १७ ॥ जिस समय इष्ट भावमें रमण होता है तब ही प्रियपद प्रगट होता है ॥ १८ ॥ जिस समय इष्टपदमें रमण होता है, तब प्रिय भाव बढ़ता जाता है ॥ १९ ॥

आत्मारूपी कमलमें स्थिति करनेसे इष्ट प्रिय भाव प्रगट होता है ॥ २० ॥ आत्मा कमलमें स्थित होनेसे इष्ट प्रिय भाव बढ़ता जाता है ॥ २१ ॥ जैसा जैसा उपादेय शुद्ध भाव हो जाता है वैसे वैसे वह भाव बढ़ता जाता है ॥ २२ ॥ उपादेय प्रिय शुद्धोपयोगमें ठहरनेसे मुक्ति प्यारी भासती है ॥ २३ ॥ जब दृष्टि चेतने योग्य आत्मामें परिणमन करती है तब अपना प्रिय पद इष्ट प्रगट होता है ॥ २४ ॥ जब चेतने योग्य आत्मामें दृष्टि रमण करती है तब प्रिय पद प्रगट होता जाता है ॥ २५ ॥ आत्मीक ज्ञानकी मददसे इष्ट भावमें अभ्यास होता है तब प्रिय भाव होता है ॥ २६ ॥ ज्ञानकी मददसे उपादेय शुद्ध भावके अभ्याससे प्रिय भाव बढ़ता जाता है ॥ २७ ॥ जब आत्मज्ञानके द्वारा क्षायिक भाव होजाता है तब इष्ट प्रिय पद प्रगट होता है ॥ २८ ॥ ज्ञानमई क्षायिक भावके द्वारा प्रिय शुद्ध भाव प्रगट होता है ॥ २९ ॥ इष्ट भावमें परिणमन करनेसे प्रिय शुद्ध भावमें रमण होता है ॥ ३० ॥ इष्ट भावमें परिणमन करनेसे प्रिय शुद्ध भावमें रमण बढता जाता है ॥ ३१ ॥ कषाय मल पैदा करनेवाले कर्मोंके क्षय करनेसे इष्ट प्यारा पद प्रगट होता है ॥ ३२ ॥ कषाय मलके कारण कर्मोंके क्षयसे ज्ञानानन्दमय प्रिय भाव पैदा होता है ॥ ३३ ॥ शङ्का रहित ज्ञानसे इष्ट प्रिय पद झलकता है ॥ ३४ ॥ शङ्का रहित ज्ञानसे इष्ट प्रिय पद चमकता है ॥ ३५ ॥ सर्व शङ्का, शल्य, भयसे रहित वह इष्ट प्रिय पद है ॥ ३६ ॥ शंका शल्य भयके चले जानेसे इष्ट प्रिय पदका प्रकाश बढता जाता है ॥ ३७ ॥ संसार व्यवहारके छोड़नेसे व मोक्षमार्गमें वर्तन करनेसे ज्ञानानन्द प्रिय भाव झलकता है ॥ ३८ ॥ वह स्थूल सूक्ष्म सबको जाननेवाला इष्ट प्रिय पद है ॥ ३९ ॥ स्थूल सूक्ष्मको जाननेवाले ज्ञानमें रमण करनेसे इष्ट प्रिय पद चमकता है ॥ ४० ॥

मूढ सुभाव विलयंति प्रियो ४१, अमूढ दिस्टि इस्ट इस्ट प्रियो ४२, अमूढ दिस्टि इस्टि उत्पन्न

न्यान अन्मोद प्रियो ४३, न्यानी दोस अनन्त विलीय प्रियो ४४, इस्ट न्यानी दोष उत्पन्न विली इस्ट प्रियो ४५, न्यानी ममल सुभाव इस्ट प्रियो ४६, न्यानी ममल अन्मोद उत्पन्न प्रियो ४७, न्यान विन्यान स्तुति इस्ट प्रियो ४८, न्यान विन्यान स्तुति उत्पन्न न्यान अन्मोद प्रियो ४९, न्यान विन्यान इस्ट इच्छ प्रियो ५०, न्यान विन्यान इस्ट उत्पन्न प्रियो ५१, परम तत्तु इस्ट सुभाव प्रियो ५२, परम तत्तु उत्पन्न इस्ट सूक्ष्म सुभाव अन्मोद न्यान प्रियो ५३, दिस्टि कमल सब्द अचष्य हितकार गुप्ति गुहिज न्यान विन्यान पद विंद इस्ट अन्मोद प्रियो ५४, दिस्टि कमल सब्द अचष्य हितकार गुपित गुहिज न्यान विन्यान पद विंद इस्ट उत्पन्न अनन्त न्यान अन्मोद परमेस्टि चतुस्टय रयनत्तय रमण अनन्त अन्मोद रमण विषय गलन अन्मोद न्यान प्रियो ५५ ।

जिन इस्ट उत्पन्न लब्धि प्रियो ५६, रमण प्रियो रमण सुभाव प्रियो ५७, रमण रंज प्रियो ५८, रमण कमल प्रियो ५९, रमण दिस्टि प्रियो ६०, रमण इस्टि प्रियो ६१, रमण रिस्टि इष्टि प्रियो ६२, रमण दिस्टि इस्टि रस्टि उत्पन्न प्रियो ६३, रमण समय रमण सह इस्टि प्रियो ६४, रमण समय रमण सह इस्ट उत्पन्न प्रियो ६५, रमण उत्पन्न सहकार औकास दिस्टि इस्टि प्रियो ६६, रमण उत्पन्न सहकार औकास उत्पन्न न्यान प्रियो ६७, रमण अनन्त अन्मोद षिपक दिस्टि इस्ट प्रियो ६८, रमण अनन्त अन्मोद षिपक दिस्टि उत्पन्न रमण न्यान अन्मोय प्रियो ६९, रमण मुक्ति रमण जिननाथ रंज जिन नंद परम नंद नंत विसेप इस्ट प्रियो ७०, रमण मुक्ति रमण जिननाथ रंज जिन नंद परम नद उत्पन्न उत्पन्न हितकार सहकार गुपित गुहज इस्ट वज्र वृषभ नाराज संहनन सुभाव चतुस्टे चेत उपत्न तत्काल उत्पन्न रमण चतुस्टय सुयं रयन कमल दिस्टि

सुख्य अनन्त सुयं कम्म विलय सुयं बुद्ध न्यान रमण सुयं चेत ऊर्ध तिअथ मिलन परिणाम न्यान अन्मोद उत्पन्न प्रियो उत्पन्न हितकार रमण उत्पन्न सहकार रमण जिननाथ प्रियो ७१।

अमर प्रियो प्रमाण प्रियो ७२, जिन प्रमाण प्रियो ७३, इच्छ प्रमाण प्रियो ७४, पय परम पय प्रियो ७५, मुक्ति सौष्य विंद विन्यान प्रियो ७६, अनन्त चतुस्टय सुभाव प्रियो ७७, संस्थान प्रियो ७८, प्रीति प्रियो उत्पन्न अन्मोद अमल वली प्रियो ७९, विनंद विली उत्पन्न वेद अभेद प्रियो ८०, स्थान आयरण जिन परम जिन जिननाथ मुक्ति सुभाव सिद्धं ध्रुवं ८१, तस्य स्थान आयरण न्यान प्रियो अप्रियो भवति ८२, किंतु विसेष राग दोष गारौ दर्स अन्ध न्यान आवरण मिथ्या सल्य संक भय इस्ट उत्पन्न विसेष कषाय मल अनन्त विभ्रम प्रपंच संक सुभाव स्थान विप्रियो भवतु ८३, अर्पण सुनाई जदि आवरण स्थान उत्पन्न हितकार सहकार विन्यान पद दिगंत अनन्त स्थान न्यान उत्पन्न विषय संक प्रपंच विभ्रम सहकार स्थान आवरण अप्रियो भवतु तस्य सुभावेन स्थावर पृथ्वीकाय सन्मूर्छन उत्पन्न भवति पयोग उत्पन्न न भवति तस्य सुभाव भ्रमण बारहसहस्र चौवीस वार १२०२४। अंतमुहूर्त मध्यम जनम मरण सुभाव भ्रमण करोति।

अर्थ—मिथ्यात्वभावके दूर होनेसे प्रिय सम्यक्त भाव प्रगट होता है ॥ ४१ ॥ अमूढ़ दृष्टि अङ्ग होनेसे अर्थात् मूढतासे देखादेखी किसी भी धर्म क्रियाको न माननेसे विवेक पूर्वक धर्ममें प्रेम करनेसे इष्ट प्रिय भाव झलकता है ॥ ४२ ॥ अमूढ़दृष्टि भावमें प्रेम करनेसे व शुद्धात्माको यथार्थ मनन करनेसे ज्ञानानन्दसे पूर्ण प्यारा शुद्ध भाव पैदा होता है ॥ ४३ ॥ आत्मज्ञानीके अनन्त दोष दूर होजाते हैं, प्यारा शुद्ध भाव झलकता है ॥ ४४ ॥ आत्मज्ञानी ही यथार्थ है, उसके सर्व दोष जो रागादि भाव पैदा होते हैं वे सब दूर होजाते हैं व इष्ट प्यारा वीतराग भाव चमकता है ॥ ४५ ॥ आत्मज्ञानीका निर्मल स्वभाव इष्ट व प्यारा होता है ॥ ४६ ॥ जब ज्ञानी शुद्ध भावमें मगन होता है तब प्यारा उपादेय मोक्ष-

मार्ग प्रगट होता है॥ ४७ ॥ भेदविज्ञान पूर्वक आत्माकी स्तुति करनेसे इष्ट प्यारा शुद्ध भाव प्रगट होता है ॥ ४८ ॥ भेद विज्ञान पूर्वक परमात्माकी स्तुति करनेसे ज्ञानानन्दमय शुद्ध भाव प्रगट होता है ॥ ४९ ॥ भेद विज्ञानसे इष्ट उपादेय प्रिय शुद्ध भाव झलकता है ॥ ५० ॥ भेद विज्ञानका प्रेम करनेसे प्रिय पर्याय आत्मज्ञान पैदा होता है ॥ ५१ ॥

परमात्मके तत्वमें प्रेम करनेसे प्यारा स्वभाव प्रगट होता है ॥ ५२ ॥ परमात्मतत्वके द्वारा इष्ट व उपादेय सूक्ष्म स्वभावधारी आनन्दमय व ज्ञानमय प्रिय आत्मतत्व झलकता है ॥ ५३ ॥ सम्यग्दर्शन रूपी कमल इस शब्दसे अतीन्द्रिय आत्माका बोध होता है। इस हितकारी ज्ञानसे आत्माकी गुफामें गुप्त होनेसे ज्ञान व आनन्दमय पदका अनुभव होता है व इष्ट आनन्दमय प्रिय भाव झलकता है ॥५४॥ सम्यग्दर्शन रूपी कमल इस शब्दसे अतीन्द्रिय आत्माका बोध होता है, इस ज्ञानके द्वारा आत्मारूपी गुफामें गुप्त होनेसे शुद्ध ज्ञानका अनुभव करनेसे अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, परमेष्टीपद, अनन्त चतुष्टय रमण व आत्मीक तत्वमें रमण, अनन्त सुखमें रमण, विषय सुखसे भिन्न आनन्द व ज्ञानमय प्यारा शुद्धोपयोग होता है ॥ ५५ ॥ वीतराग भावमें प्रेम करनेसे शुद्ध लब्धियां प्यारी झलकती हैं ॥ ५६ ॥ जैसे २ शुद्ध भावमें रमण होता है वैसे २ स्वभावका झलकाव होता है ॥५७॥ आनन्दमें रमण होता है ॥५८॥ कमल स्वभावी आत्मामें रमण होता है ॥ ५९ ॥ सम्यग्दर्शनमें रमण होता है ॥ ६० ॥ इष्ट तत्वमें रमण होता है ॥ ६१ ॥ खड्ग समान कर्मनाशक शुद्ध भावमें रमण होता है ॥६२॥ शुद्धोपयोग रूपी खड्गमें रमण करनेसे सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ६३ ॥ स्वरमण स्वरूप आत्माके भीतर रमण करनेसे उपादेय शुद्ध भाव चमकता है ॥ ६४ ॥ स्वरमण स्वरूप आत्माके भीतर रमण करनेसे शुद्ध भावका झलकाव बढ़ता जाता है ॥ ६५ ॥ आत्मामें रमणकी मददसे अनन्त ज्ञानकी ओर दृष्टि होनेसे प्रिय शुद्ध भाव होता है ॥ ६६ ॥

आत्मामें रमणसे अनन्त ज्ञानकी ओर दृष्टि होनेसे प्यारा अनन्तज्ञान प्रगट हो जाता है ॥ ६७ ॥ अनन्त आनन्द व क्षायिक सम्यग्दर्शनमें रमण करनेसे उपादेय शुद्ध भाव रहता है ॥६८॥ अनन्त आनन्द व क्षायिक सम्यग्दर्शनमें रमण करनेसे ज्ञानानन्दमें रमण रूप शुद्ध भाव झलकता है ॥६९॥ आत्मामें रमणसे मुक्तिमें रमण होता है, तब जिनेन्द्रका परमानन्द रूप स्वरूप अनन्त गुणपर्याय मय प्रगट होता

है ॥७०॥ आत्माके भीतर रमण करनेसे मुक्तिमें रमण होता है तब जिनेन्द्रका परमानन्द मय स्वभाव प्रगट होता है। वहां आत्मा आत्माकी गुफामें गुप्त रहता है। वज्र वृषभ नाराच संहननके समान न मिटनेवाला स्वभाव प्रगट होता है। अनन्त ज्ञानादि चतुष्टयके साथ सदा ही उन हीमें रमण रहता है अर्थात् स्वयं आत्मीक कमलमें रमण रहता है। स्वयं अनन्त सुखका वेदन होता है, कर्मोंका क्षय होता है, स्वयं बुद्ध केवलज्ञानमें रमण होता है। उत्कृष्ट स्वानुभव होता है। रत्नत्रयकी एकता रूप भाव ज्ञानानन्दमय रहता है। आत्माके रमणसे ही सिद्धपद प्रगट होता है ॥७१॥ उत्कृष्ट भाव ही उत्तम प्रमाण है या सम्यग्ज्ञान स्वरूप है ॥ ७२ ॥ यही वीतराग यथार्थ भाव है ॥७३॥ यही उपादेय सम्यग्ज्ञान है ॥७४॥ यही उपादेय परमात्मा पद है ॥ ७५ ॥ यही मोक्षके सुखका अनुभव है व ज्ञानका यथार्थ प्रेम है ॥ ७६ ॥ यही अनन्तज्ञानादि चतुष्टय स्वभाव है ॥ ७७ ॥ यही उपादेयभूत रूपातीत आत्माका ध्यान है ॥ ७८ ॥ यही प्रीति करने योग्य प्यारा तत्व है, जिससे अनुपम बलमय आनन्द झलकता है ॥७९॥ सर्व दुःखोंका विलय होकर परमानन्दका प्रकाश होता है ॥ ८० ॥

अपने ही शुद्ध प्रदेशोंमें आचरण करनेसे परम जिनेन्द्र मुक्त स्वभावी अविनाशी सिद्ध पद होता है ॥ ८१ ॥ जब आत्माके प्रदेशोंपर कर्मोंका आवरण होता है तब प्रिय आत्मज्ञान प्यारा नहीं भासता है ॥ ८२ ॥ विशेष यह है कि जब कि राग द्वेष मद व दर्शन मोहका उदय, ज्ञानावरणका उदय, मिथ्या शल्य, शंका, भय रहता है, तथा अपने इष्ट स्वभावमें कषायका मल प्रगट रहता है अनन्त प्रकारके भ्रामक प्रपञ्च भाव शंकाशील भाव होते हैं तब अपना निज स्थान प्यारा नहीं भासता है ॥ ८३ ॥ स्वभाव पर आवरण होता है, जबतक आवरण रहता है तबतक आत्माका हितकारी सहकारी भेदविज्ञान जिससे अनन्त ज्ञान उत्पन्न होता है वह विषयवासनासे शंकासे अनेक भ्रमरूप प्रपञ्चसे छिपा रहता है तब भेद विज्ञान प्रिय नहीं भासता है। इस मिथ्यात्व भावके कारण स्थावर पृथ्वीकायमें आकर जन्म धारता है, सन्मूर्छन उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शनका उपयोग पैदा नहीं होसक्ता है। मिथ्यात्व स्वभावसे भ्रमण करते हुए क्षुद्र भव सूक्ष्मके ६०१२ स्थूलके ६०१२ ऐसे कुल बारह हजार चौवीस एक अन्तर्मुहूर्तमें धारण करता है। श्वासके अठारह भागमें जन्म व मरण करता है। इसतरह यह जीव भ्रमण करता है।

जदि कदि कालंतर भ्रमण किंविसेष—स्थान आवरण सुभाव उत्पन्न १, आवरण न्यान अन्मोद प्रियो २, स्थान रमण रंज आनन्द रमण स्थान प्रियो ३, उत्पन्न उत्पन्न हितकार ४, उत्पन्न उत्पन्न सहकार ५, उत्पन्न न्यान विन्यान ६, उत्पन्न पद परम पद ७, दिगंत दिस्टि ८, सब्द असब्द गुपित गुहिज न्यान स्थान प्रियो ९, आवर्ण विली १०, जन रंजन कल रंजन मन मंगल दर्स अंध विली ११, आसा स्नेह लाज, लोभ भय गारव आलस्य प्रपंच विभ्रम विली १२, मिथ्या संक सल्य भय इस्ट उत्पन्न विली १३, मुक्ति विनन्द विली १४, न्यान अन्मोद अवल वली १५, विषय विली १६, अनृत अनिष्ट आचरण तव क्रिया अनिस्ट स्रुत अन्यान विली १७, स्थान न्यान अन्मोद १८, स्थान आयरण न्यान प्रियो १९, आनन्द जिन रंज जिननाथ रमण नन्द परमानन्द २०, स्थान आवरण सुभाव जेन केनापि जीव विकल अनन्त चतुष्टय सुख्य सत्ता बोध चेतन स्थान आवरण २१, नन्त विसेष जिन उत्त जिन वयण जिन दस जिन अलष्य जिन इच्छ जिन रंज जिन रमण जिन सुभाव २२, जिन सूष्म सुभाव कम्म सुयं विलय २३, स्थान न्यान आवरण सुभाइ जेन तेन निर्वाण पद सिद्धं धुवं ॥ २४ ॥

अर्थ—यही पृथ्वीकायिक जीव कालांतर भ्रमण करते करते मानव गति पावे, वहां विशेषता यह है कि अपने आत्माके भीतर आचरण करनेका स्वभाव अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट हो १, तब ज्ञानानन्द मय उपादेय स्वभावमें आचरण करे ॥ २ ॥ स्वरूपमें रमण करते हुए आनन्दमें रमण हो व आत्मा ही उपादेय प्रगट हो ॥ ३ ॥ वारवार हितकारी आत्मानुभव हो ॥ ४ ॥ वारवार इसीकी सहायता हो ॥ ५ ॥ जिससे ज्ञानका प्रकाश बढ़ता जावे ॥ ६ ॥ जिससे परमात्म पद झलक सके ॥ ७ ॥ अनन्त दर्शन इष्ट भासे ॥ ८ ॥ ॐ आदि शब्दोंके द्वारा शब्द रहित गुप्त आत्माकी गुफामें ज्ञान रमण करे, आत्मा ही उपादेय भासे ॥ ९ ॥ ज्ञानावरण दर्शनावरणकी शक्ति क्षय होती जावे ॥ १० ॥ जन रंजन भाव, शरीर रंजन भाव, मन रंजन भाव आदि मिथ्या दर्शनका अन्धकार क्षय होजावे ॥ ११ ॥ आशा, स्नेह, लाज, लोभ, भय, मद,

आलस्य, प्रपञ्च व विभ्रम सब चला जावे ॥ १२ ॥ मिथ्या शङ्का, शल्य, भय आत्माके सम्बन्धमें विला जावे ॥ १३ ॥ भोगोंका झूठा सुख जो दुःखरूप है उसकी इच्छा मिट जावे ॥ १४ ॥ ज्ञान आनन्दके भीतर अनुपम बल प्रगट होजावे ॥ १५ ॥ सर्व इंद्रियोंके विषयोंकी कामना विला जावे ॥ १६ ॥ झूठा पापकारी चारित्र, तप व क्रियाकांड, अहितकारी शास्त्रका मिथ्या ज्ञान ये सब विला जावे ॥ १७ ॥ आत्माके भीतर ही ज्ञान आनन्द सहित रमण करे ॥ १८ ॥ स्वरूपाचरण चारित्रसे आत्मा ही प्यारा भासे ॥ १९ ॥ वीतरागभावमें परमानन्द सहित मग्नता हो ॥ २० ॥ स्वभावके भीतर आचरण करनेसे जब कभी यह जीव शरीर रहित होजावे, अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रगट करे, सुख, सत्ता, चैतन्य, बोध, निश्चय चार प्राणोंमें रमण करे ॥ २१ ॥ अनन्त गुण प्रगट हो, जैसा जिनेन्द्रने कहा है, जैसा जिनवाणीमें है, जैसा जिनेन्द्रने देखा है, जैसा जिनेन्द्रका अनुभव है, जैसा जिनेन्द्रको उपादेय है, जिसमें जिनराज रमण करते हैं जो जिन भगवानका स्वभाव है ॥ २२ ॥ ऐसे अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभावके प्रगट होते ही सब कर्म स्वयं क्षय होजाते हैं ॥ २३ ॥ अपने ही भीतर ज्ञानका आचरण होता है, स्वभावका प्रकाश होता है, इसीको निर्वाणपद, सिद्धपद, ध्रुव अविनाशी पद कहते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—पृथ्वीकायिक जीव भी कभी उन्नति करते करते मनुष्य होकर सम्यग्दर्शनको पा गुणस्थानोंमें चढकर साधुके चारित्र द्वारा कर्मोंका क्षय करता हुआ पहले शरीर सहित अरहन्त फिर शरीर रहित सिद्ध होजाता है, निर्वाण नाथ होजाता है।

वनस्पति काय विवरण—अथ वनस्पति काय उत्पत्ति स्थान विन्यान सहकार पतनं करोति १, तिअर्थ विन्यान आवरण करोति वनस्पति काय जीव भवति विन्यान न्यान सुद्ध निरूपनं २, उत्पन्न न्यान विन्यान विंद ३, परिणइ प्रमाण इस्ट उत्पन्न उत्पन्न न्यान विन्यान विंद ४, उत्पन्न इस्ट उत्पन्न दिस्टि इस्टि इस्ट विन्यान विंद ५, इस्ट इस्ट ज्योति उत्पन्न उत्पन्न दिस्टि इस्ट विन्यान विंद ६, उत्पन्न उत्पन्न सब्द असब्द गुपित सब्द कमल विन्यान इस्ट उत्पन्न सर ७, सात विन्यान सब्द उत्पन्न दिस्टि इस्टि ८, चौदह इस्ट उत्पन्न विन्यान सुयं कमल इस्ट उत्पन्न

विन्यान विंद ९, उत्पन्न सुयं कमल उत्पन्न दस इस्ट दर्स उत्पन्न विन्यान विंद १०, कमल इस्ट उस्ट इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद ११, सुयं उत्पन्न सुय लब्धि इस्ट उत्पन्न विन्यान १२, सुयं हितकार रमण इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद १३, हितकार सुयं लब्धि इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद १४, सुयं हितकार काए २ कासे २ रूवे ४ सब्दे ४ मनपर्जय ४ सोलही सुयं लब्धि इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद १५, सुयं सुयं लब्धि षिपक इस्ट उत्पन्न विन्यान विंद १६, सुयं षिपक स्कन्ध धुव गुण कुन्यान तीन विली १७।

स्थान हितकार पद उत्पन्न चेत १८, स्थान आवरण इच्छ गम्य अगम्य पद १९, ईर्जति अर्थ मध्य रमण आरूह २०, उत्पन्न उत्पन्न अर्थ गुप्ति ठहकार मुक्ति २१, इस्ट उत्पन्न विसेप विन्यान २२, सुयं उत्पन्न गुहिज गुपित गुहिज रमण २३, जिननाथ कमल रमण २४, वज्र वृषभ नाराच संहनन रंज जिन रंज नंद २५, परम विन्यान न्यान इस्ट उत्पन्न २६, विसेप विन्यान सुयं सद्भाव प्रियो २७, अनन्त भय अवकास रमण २८, ठहकार मुक्ति विन्यान २९, कांष्या कम्म विली न्यान ३०, निःकषाय इस्ट उत्पन्न विन्यान ३१, कमल डंड हितकार तत्काल रेठ टंकोत्कीर्ण इस्ट उत्पन्न विन्यान प्रियो ३२, रमण कमल डंड रमण इस्ट उत्पन्न दिस्टि इस्टि विन्यान ३३, सुयं सुभाव चरण वीर्ज अनन्त सम्मत्त उत्पन्न सम पद्वी ३४, साधु आचरण वीर्ज दस अवहि न्यान अवहि लेश्या पीत इत्यादि।

अर्थ—अब वनस्पतिकायमें जीवकी उत्पत्तिको कहते हैं, जो जीव आत्मज्ञानसे गिर जाता है। जिसके रत्नत्रय धर्म पर आवरण होता है वह जीव मिथ्यात्वी वनस्पतिकायमें आकर जन्म धारण करता है ॥ १ ॥ शुद्ध आत्मज्ञानका कथन करते हैं ॥ २ ।। जब भेदविज्ञानके द्वारा आत्माका अनुभव पैदा होता है ॥ ३ ॥ तब सम्यग्ज्ञानमें परिणमन करता हुआ उसके आत्माका अनुभव बढ़ता जाता है ॥ ४ ॥ शुद्ध

स्वरूप ही उपादेय है, इस इष्ट भावसे आत्माका दर्शन इष्ट भासता है व प्रिय आत्मानुभव जागृत रहता है ॥ ५ ॥ जैसे जैसे आत्मज्योतिका प्रेम बढ़ता जाता है वैसे २ आत्मदर्शन व आत्मानुभव बढ़ता जाता है ॥ ६ ॥ ॐ आदि शब्दोंके द्वारा शब्द रहित आत्मा आत्माके भीतर झलकता है। शब्दोंकी सहायतासे कमल समान विकसित ज्ञान भावको उत्पन्न करनेके लिये शुद्धात्मीक रमण रूपी सरोवर प्रगट होता है ॥ ७ ॥ सात भङ्ग रूप स्याद्वाद वाणीके ज्ञानसे जो पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान हुआ है उसमें आत्मज्ञान उपादेय है या सात तत्वोंके ज्ञानमें आत्मज्ञान इष्ट है ॥ ८ ॥ चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा स्थान, चौदह जीव समासके ज्ञानसे जो बोध होता है उसमें कमल समान शुद्धात्माका ज्ञान सार है, उसीके द्वारा आत्माका अनुभव होता है ॥ ९ ॥ आत्मारूपी कमलमें स्वयं सम्यग्दर्शन पैदा होनेसे आत्माका अनुभव होता है ॥१०॥ आत्मारूपी कमलके प्रकाशसे अत्मानुभव होता है ॥११॥ जब आत्मामें स्वयं सम्यग्दर्शनकी लब्धि होती है तब आत्माका यथार्थ ज्ञान होता है ॥ १२ ॥ तब हितकारी छः अक्षरी मन्त्र (ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः) में या छः द्रव्योंमें विचार करनेसे आत्माका अनुभव होता है ॥ १३ ॥ हितकारी आत्माकी शक्तिसे ही आत्माका अनुभव होता है ॥ १४ ॥ सोलह तरह मन वचन कायके निरोधसे स्वयं स्वात्मानुभवका लाभ होता है। काय दो अर्थात् कायका आसन पद्मासन है या कायोत्सर्ग है, कासे २ अर्थात् भूमिका स्पर्श कठोर या कोमल है, रूवे ४ अर्थात् आंखसे सुन्दर, असुन्दर, दीर्घ, लघु देखना। शब्दे ४ अर्थात् वचन सत्य, असत्य, उभय या अनुभय कहना। मनपर्जय ४ अर्थात् सत्य आदि ४ प्रकार मनका विचार, इन १६ प्रकार मन वचन कायकी ये क्रिया छोड़कर मन वचन काय रुकते हैं ॥ १५ ॥

जब यह जीव स्वयं क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है तब विशेष आत्माका अनुभव होता है, ज्ञानज्ञानमें रमण करता है ॥ १६ ॥ जब यह जीव प्रक्षादिक भावरूप आत्मामें या द्रव्यके अविनाशी गुणोंमें रमण करता है तब तीन मिथ्या ज्ञान, कुमति, कुश्रुति कुअवधि नहीं रहते हैं ॥ १७ ॥ आत्मानुभवके द्वारा चेतनशक्तिका प्रकाश होता है ॥ १८ ॥ आत्मामें ही आचरण करनेसे स्थूल व सूक्ष्म पदार्थोंका ज्ञान होजाता है ॥ १९ ॥ निश्चय रत्नत्रयके भीतर रमण करता हुआ गुणस्थानोंपर चढ़ता है ॥ २० ॥ जैसे जैसे आत्मामें ध्यान निश्चल होता है, मुक्ति निकट आती जाती है ॥ २१ ॥ तब ज्ञानका विशेष प्रकाश होता जाता है ॥ २२ ॥

स्वयं आत्मीक गुफामें गुप्त रूप निर्मल आत्मीक रमण होता है ॥ २३ ॥ तब यह परमात्मा जिनेन्द्ररूपी कमलके भीतर रमण करता है ॥ २४ ॥ वज्रवृषभ नाराच संहननके समान दृढ़तासे वीतराग भावमें आनन्द अनुभव करता है ॥ २५ ॥ परम ज्ञान इसीसे उत्पन्न होता है ॥ २६ ॥ जितना २ विशेष ज्ञान होता है अपने स्वभावमें दृढ़ता–रमणता बढ़ती जाती है ॥ २७ ॥ तब अनन्त ज्ञानके भीतर रमण होता है ॥ २८ अनन्त ज्ञानके प्रकाशसे निश्चल मुक्तिका ज्ञान होता है ॥ २९ ॥ इस शुद्ध केवलज्ञानके भीतर कोई इच्छा नहीं रहती है, इच्छाको पैदा करनेवाला मोह कर्म क्षय होगया है ॥ ३० ॥ कषाय रहित वीतराग विज्ञान झलकता है ॥ ३१ ॥ आत्मारूपी हितकारी कमलमें व उसके निश्चल टंकोत्कीर्ण स्वभावमें रमण करनेसे उपादेय केवलज्ञान पैदा होता है ॥ ३२ ॥ आत्मारूपी कमलके भीतर रमण करनेसे अनन्त दर्शन व अनन्त ज्ञान पैदा होता है ॥ ३३ ॥ स्वयं आत्माके स्वभावमें आचरण करनेसे व उसके अनन्त वीर्य स्वभाव, सम्यक्त स्वभावमें रमण करनेसे समभावका मद प्रगट होता है, सामायिक चारित्र होता है ॥ ३४ ॥ साधुओंको चारित्रके बलसे अवधि दर्शन व अवधि ज्ञान प्रगट होता है तब छठे व सातवें गुणस्थानमें पीत, पद्म, शुक्ल तीन लेश्याएँ प्रगट होती हैं ॥ ३५ ॥

इस्ट उत्पन्न न्यान विन्यान ३६, सुयं सूषम सुभाव ३७, चेत उत्पन्न दंड कपाट ३८, इस्ट उत्पन्न सूषम ३९, सुयं न्यान विन्यान जग्त ४०, उत्पन्न नो उत्पन्न न्यान टंकोत्कीर्ण कमल कलण ४१, इच्छ न्यान उत्पन्न न्यान विन्यान ४२, सुयं सूषमघण आखहु उत्पन्न टंकोति पद परम पद ४३, तत्काल रमण पद इच्छ गुपित रमण पद परम ४४, उत्पन्न तिअर्थ ईर्ज मध्य रमण पद ४५, उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न पद कमल रमण ४६, आतम गुण गुपित उत्पन्न ठहकार मुक्ति इस्ट ४७, इस्ट उत्पन्न इस्ट उत्पन्न न्यान विन्यान ४८, सुयं सूषम सुभाव विन्यान विंद ४९, सुय पद विंद परम तत्तु परम सुकीय सुभाव ५०, सूषम क्रांति सुयं लब्धि अलब्धि लब्धि विन्यान विंद ५१, अंग उत्पन्न दिस्टि सुक षिपक ५२, हृदय गहिर गुहिज जान पद विन्यान विंद ५३, परिणाम कलित विन्यान ५४, दिशा पूव सिर अग्र सुर्क दिस्टि दर्स षिपन न्यान नृत कमल प्रियो ५५।

इच्छ हृदय पच्छिम विक्त रूव गुप्ति ५६, वाइय गुहिज रमण उत्पन्न रमण ५७, उत्तर ईर्जे सहकार गुहिज सहकार न्यान ५८, ईसान उत्पन्न ऊर्ध रमण ध्रुव उत्पन्न ५९, अर्थ अर्थ रमण दिस्टि दिप्ति ६०, इस्ट उत्पन्न दिस्टि ६१, उत्पन्न दिप्ति रमण ६२, इस्ट उत्पन्न विन्यान ६३, सिद्धं ध्रुवं तीर्थंकर रमण मुक्ति ६४, सिद्धं ध्रुव रोम रोम प्रियो रमण ६५, न्यान विन्यान मुक्ति रमण सिद्धं ध्रुवं ६६, तस्य विन्यान किं न ६७, सुभावेन जनरंज राग कलरंज दोष मनरंज गारौ दस मोहध न्यान आवरण, दर्स आवरण, मोहण आवरण, अन्तराय न्यान संक सल्य संक भय सहकार कषाय भय मन वचन दिस्टि झडप सहकार कषाय मल मिथ्या त्रितय समल उत्पन्न सहकार मिथ्या देव गुरु धर्म, कुदेव कुगुरु कुधर्म कुमति कुसंजम कुन्यान परिणय, मिथ्या देव मिथ्या गुरु मिथ्या धर्म मिथ्या संजम मिथ्या परिणय, मिथ्या प्रमाण, मिथ्या उद्देस मिथ्या परिणय मिथ्या प्रमाण मिथ्या संजम मिथ्या तप मिथ्या परिणय विसेष विन्यान पतनं करोति विन्यान लब्धि न भवति विन्यान न्यान पतनं प्राण मुख्य तस्य सहकार वनस्पति काय उत्पन्न भवति पयोग मलिन भवतु पतनं करोतु तस्य सहकार अठारह हजार छत्तीस १८०३६ अंतर्मुहूर्त जामण मरणं भवतु ॥ ६८ ॥

अर्थ—जब उपादेय आत्म तत्वपर लक्ष्य होता है तब आत्मज्ञान उत्पन्न होता है ॥३६॥ स्वयं सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभाव अनुभवमें आता है ॥ ३७ ॥ आत्मानुभवके ही अभ्याससे दण्ड कपाट समुद्घात करनेवाले केवलज्ञानीका स्वभाव प्रगट होता है ॥३८॥ इष्ट आत्मीक भावसे ही सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभाव झलकता है ॥ ३९ ॥ तब ज्ञानका प्रकाश स्वयं बढ़ता जाता है ॥ ४० ॥ बढ़ते बढ़ते टंकोत्कीर्ण निश्चल कमल समान आत्मामें रमण होता है ॥ ४१ ॥ यथार्थ ज्ञानसे ही केवलज्ञान प्रगट होता है ॥ ४२ ॥ स्वयं सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माके स्वरूपमें आरूढ़ होनेसे परमात्माका निश्चल पद प्रगट होता है ॥ ४३ ॥ जिस समय शुद्ध पदके ध्यानमें तल्लीनता होती है तब ही गुप्त परमात्मपद प्रगट होता है ॥ ४४ ॥ तब ही

रत्नत्रयमें परिणमन होता हुआ आत्म रमण पद प्रगट होता है ॥ ४५ ॥ आत्म रमणसे बढ़ते बढ़ते शुद्धात्मारूपी कमलमें रमण प्रकट होजाता है ॥ ४६ ॥

आत्मामें एक भावसे रमण होनेसे निश्चल मोक्षपद प्रकाश होता है ॥ ४७ ॥ उपादेय तत्वके अनुभवसे ही ज्ञानका प्रकाश होता है ॥ ४८ ॥ स्वयं ही अतीन्द्रिय स्वभावका अनुभव होता है ॥ ४९ ॥ स्वयं ही आत्माके अनुभवसे परमतत्त्व अपने आत्माका स्वभाव झलकता है ॥ ५० ॥ सूक्ष्म ज्ञानके चमकनेसे स्वयं अपूर्व लब्धियें या शक्तियें प्रगट होतीं हैं, केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है ॥ ५१ ॥ द्वादशांग वाणीके मननसे क्षायिक सूर्य समान अर्हंत पद प्रकट होता है ॥ ५२ ॥ मनकी गहरी गुफाके भीतर मोक्षमार्ग स्वरूप आत्मानुभव छिपा है जो मनके भीतर स्थिर होनेसे प्रगट होता है ॥ ५३ ॥ तब आत्माका परिणाम शुद्ध ज्ञानका ही स्वाद लेता है ॥ ५४ ॥ जैसे पूर्वदिशामें सूर्य उदय होता है तब कमल फूल जाता है वैसे पूर्वोक्त अभ्यास द्वारा आत्मानुभवरूपी सूर्यके प्रकाशसे क्षायिक ज्ञानका धारी कमल समान प्रिय अरहन्त पद प्रगट होजाता है ॥ ५५ ॥

मनके पश्चिम भागमें होनेसे अर्थात् मनके छिपनेसे गुप्त आत्म स्वभाव प्रगट होता है ॥ ५६ ॥ वायव्यदिशाकी गुफामें अर्थात् पवनको रोककर आत्माकी गुफामें रमण करनेसे आत्मानुभव उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥ उत्तरदिशामें परिणमनसे अर्थात उत्तम शुद्ध भावसे रमण करनेसे भीतर छिपा हुआ ज्ञान प्रगट होता है ॥ ५८ ॥ ईशानदिशासे उत्पन्न अर्थात् परमात्माके स्वभावसे प्रगट जो शुद्ध भाव उसमें रमण करनेसे अविनाशी स्वभाव झलकता है ॥ ५९ ॥ परम पदार्थ आत्मामें रमणसे दर्शन ज्ञान प्रगट होता है ॥ ६० ॥ उपादेय तत्वसे ही दर्शन गुण प्रगट होता है ॥ १ ॥ व ज्ञान उत्पन्न होता है उसीमें रमण रहता है ॥ ६२ ॥ उपादेय तत्वमें रमण करनेसे केवलज्ञान होता है ॥ ६३ ॥ तब सिद्ध पद, अविनाशी पद, तीर्थंकर या रत्नत्रयमें रमण पद या मोक्षपद प्रगट होता है ॥ ६४ ॥ सिद्ध पद ध्रुव है, सिद्धका हरएक प्रदेश आपमें रमण कर रहा है ॥ ६५ ॥ वे ही ज्ञानमें रमण करते हैं, वे ही मुक्तिमें रमण करते हैं, वे ही सिद्ध हैं, ध्रुव हैं ॥ ६६ ॥ ऐसे शुद्ध तत्वका ज्ञान जिसको नहीं होता है उसका कारण क्या है ॥६७॥

उसका कारण यह है कि आत्माका स्वभाव जनरंजन रागसे, शरीररंजन दोषसे, मनरंजन मदसे, दर्शन मोहसे अन्ध होरहा है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय चारों घातीय कर्मोंका ही

उदय है। ज्ञानमें शङ्का होनेसे, शल्य होनेसे, भय होनेसे, कषायोंके उदयसे, मन वचनका परिणमन विभाव रूप होता है। कषायका मैल भावोंमें छाया रहता है। मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चारित्र तीनों मलीन होते हैं, इससे मिथ्या देव मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्मको मानता है। कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी संगतिसे कुमति ज्ञान होता है, मिथ्या संयम पालता है, मिथ्या ज्ञानसें रमण करता है, उसके भीतर मिथ्या देव, मिथ्या गुरु, मिथ्या धर्मकी श्रद्धा होती है, मिथ्या संयम होता है, मिथ्या परिणति होती है, मिथ्या प्रमाणमें उत्साह रहता है, मिथ्या प्रयोजन संसारवर्द्धक होता है, मिथ्या परिणति व मिथ्याज्ञानसे संयम झूठा पालता है, झूठा तप करता है, मिथ्या भावोंमें परिणमन करनेसे भेदविज्ञानसे गिरा हुआ रहता है, भेदविज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है, भेदविज्ञानके पतनसे प्राणधारीकी अवस्था यह होती है कि मिथ्यात्वकी मददसे वनस्पतिकायमें जन्म प्राप्त करता है। जब उपयोग अशुद्ध रहता है अपर्याप्त होकर एक अंतर्मुहूर्तमें अठारह हजार छत्तीस वार जन्म मरण करता है, सूक्ष्म साधारण निगोदके ६०१२, बादर निगोदके ६०१२, प्रत्येक वनस्पतिके ६०१२, इसतरह वनस्पतिकायके १८०३६ क्षुद्र भव एक अन्तर्मुहूर्तमें धारण करके जन्म मरणके कष्ट उठाता है।

भ्रमण अनन्तकालं तत्र जेन केनापि जीव विन्यान न्यान महकार उद्देस परिण प्रमाण दिस्टि उत्पन्नं भवतु तदि निकल १, अतींद्री राग जिन राग दिस्टि जिन दिस्टि २, मन जिन मन ३, वयन जिन वयन ४, उक्त जिन उक्त ५, सहकार जिन औकास ६, जिन अन्मोद ७, जिन षिपक ८, जिन मुक्ति ९, जिन सौख्य १०, जिन कमल ११, जिन रमण १२, जिन न्यान १३, जिन लंकृत १४, जिन विन्यान १५, जिन न्यान विसेष १६, जिन विषय १७, जिन मिथुन १८, जिन उत्पन्न १९, जिन हितकार २०, उत्पन्न जिन सहकार २१, उत्पन्न जिन न्यान विन्यान २२, जिन पद परम तत्तु २३, जिन सुभाव २४, जिन सर्वाथ २५, जिन आसर २६, जिन सुर रमण २७, जिन विंजन २८, जिन जिन पद २९, जिन अथ ३०, जिन तिथअ ३१, जिन समर्थ ३२, जिन समय अन्मोद ३३, जिन सहकार ३४, जिन औकास ३५, अर्थ जिन

३६, अनन्त जिन ३७, अन्मोद जिन ३८, षिपक जिन ३९, मुक्ति जिन ४०, सुयं लब्धि जिन ४१, तस्य सुभाव सुद्ध सार्थं करोति ४२, तस्य जीवस्य विन्यान सहकार निकलै सुद्ध विसेष ४३, अनन्त चतुष्टय ४४, सुख सत्ता बोध चैतन्य प्राण लब्धि विसेष ४५, राग दोष विलयंति ४६, आवर्ण घाति कम्म विलयति ४७, मिथ्या कषाय सल्य संक भय विलयंति ४८, उत्पन्न विली ४९, मुक्त विली ५०, विनन्द विली ५१, सुपन विली ५२, संसय विली ५३, पुग्गल विली ५४, पर्जाय विली ५५, पर सुभाव विली ५६, अन्यान विली ५७, न्यान आचरण परमेष्ठी न्यान विन्यान अन्मोद ५८, अवल वली ५९, विषय विली ६०, अन्मोद न्यान अवल वली अनन्त चतुष्टै सूक्ष्म प्रतिपाद न्यान अन्मोद मुक्ति सुद्ध सुद्धं भवति ॥ ६१ ॥

अर्थ—इसतरह वनस्पतिकाय आदिमें अनन्तकाल भ्रमण करते करते मानव जन्म पावे तब किसी जीवको भेदविज्ञानकी मददसे मोक्षका प्रयोजन होजाय, सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि होजावे अर्थात् सम्यग्दृष्टी होजावे तो संसारसागरसे निकल जावे ॥ १ ॥ तब अतीन्द्रिय-आत्माके स्वभावमें प्रेम होजावे, वीतराग-मय सम्यग्दर्शन होजावे, वीतरागभाव झलक जावे ॥ २ ॥ तब मन जिनेन्द्रमें लवलीन हो ॥ ३ ॥ वचनोंसे वीतराग जिनेन्द्रका वचन उच्चारण करे ॥ ४ ॥ जिनेन्द्र कथित कथनको ही बोले ॥ ५ ॥ अनन्त गुणधारी जिनेन्द्रको अपने मनमें विठाले ॥ ६ ॥ वीतराग भावमें आनन्द भोगे ॥ ७ ॥ वीतराग क्षायिक भावको भावे ॥ ८ ॥ वीतरागतासे पूर्ण मुक्तिका लाभ करे ॥ ९ ॥ वीतराग सुखमें मगन रहे ॥ १० ॥ जिनेन्द्ररूपी कमलमें बस जावे ॥ ११ ॥ जिन स्वभावमें रमण करें ॥ १२ ॥ वीतरागता गर्भित ज्ञान रक्खे ॥ १३ ॥ वीतराग भावको आभूषण बनावे ॥ १४ ॥ वीतरागमय भेद विज्ञानको साधे ॥ १५ ॥

तब वीतरागतामय ज्ञान बढता जायगा ॥ १६ ॥ वीतराग भावको ही अपना विषय भोग बना लेगीं ॥ १७ ॥ वीतराग भावमें ही लिपटा रहेगा ॥ १८ ॥ तब वीतराग भाव ही इस वीतराग मैथुनसे उत्पन्न होगा ॥ १९ ॥ वीतराग भाव ही हितकारी है ॥ २० ॥ वही भाव अरहन्त पदकी उत्पत्तिमें

सहकारी है ॥२१॥ इसीसे वीतरागमय ज्ञान होता जायगा ॥२२॥ तब वीतराग परमात्मतत्त्व प्रगट होगा ॥२३॥ वही अरहन्त जिनका स्वभाव है ॥२४॥ यह जिनपद सर्व पुरुषार्थसे पूर्ण है ॥२५॥ वीतराग जिनेन्द्रका स्वभाव अविनाशी है ॥ २६ ॥ तब वीतरागमय ज्ञान सूर्यमें रमण होता है ॥ २७ ॥ वीतरागभाव प्रत्यक्ष प्रगट होता है ॥ २८ ॥ वही परम जिनका पद है ॥ २९ ॥ वही यथार्थ आत्मा पदार्थ है ॥३०॥ वहीं निश्चय रत्नत्रय भाव है ॥ ३१ ॥ वहीं जिनेन्द्र प्रभु अनन्त वीर्यवान हैं ॥ ३२ ॥ वहीं वीतराग आनन्दमय परमात्मा हैं ॥ ३३ ॥ वहीं मोक्षका कारण वीतरागभाव है ॥ ३४ ॥ वही अनन्त वीतरागभाव है ॥३५॥ वही वीतराग पदार्थ है ॥ ३६ ॥ वही अनन्त शक्तिधारी जिनराज हैं ॥ ३७ ॥ वह आनन्दमय जिन हैं ॥ ३८ ॥ वही क्षायिक जिन हैं ॥ ३९ ॥ वही मोक्षरूप जिन हैं ॥ ४० ॥ जिन्होंने जिनपदको स्वयं प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥ उनका स्वभाव शुद्ध रहता है ॥ ४२ ॥ उस जीवके भेदविज्ञानकी सहायतासे विशेष शुद्धि प्रगट होजाती है ॥ ४३ ॥ अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होजाते हैं ॥ ४४ ॥ सुख सत्ता ज्ञान व स्वानुभूति मय चैतन्य ऐसे चार निश्चय प्राण प्रगट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ राग द्वेष भाव दूर होजाते हैं ॥४६॥ चारों घातीय कर्म क्षय होजाते हैं ॥ ४७ ॥ मिथ्यात्व कषाय, शङ्का, भय, शल्यादि चले जाते हैं ॥ ४८ ॥ जन्म मरण बन्द होजाते हैं ॥ ४९ ॥ विषयभोग नहीं रहता है ॥ ५० ॥ विषय सुख नहीं रहता है ॥५१॥ स्वप्न समान क्षणिक अवस्था नहीं रहती है ॥५२॥ सब संशय मिट जाता है ॥५३॥ पुद्गलोंका संयोग या शरीरका संयोग छूट जाता है ॥ ५४ ॥ सांसारिक पर्याय नहीं रहती है ॥ ५५ ॥ पर स्वभाव चला जाता है, स्वस्वभाव बना रहता है ॥ ५६ ॥ सब अज्ञान क्षय होजाता है ॥ ५७ ॥ ज्ञानमें आचरण होता है, परम पदमें रहनेवाला आत्मा ज्ञानानन्दको भोगता है ॥ ५८ ॥ अनुपम बलका धारी होता है ॥ ५९ ॥ सर्व विषयोंका भाव क्षय होजाता है ॥६०॥ अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य आदि अनन्त चतुष्टयका धारी सूक्ष्म अतींद्रिय स्वभावका धारी ज्ञानानन्दमय मुक्तिको पाकर परम शुद्ध व सिद्ध होजाता है ॥६१॥

नीच निगोद सुभाव—नीच निगोद सुभाव, जिन उक्तं न दिस्टते १, जिन उक्त सुद्ध बाध विन्यान विंद २, जिन उक्त उत्पन्न उत्पन्न हितकार न्यान ३, उत्पन्न सहकार न्यान ४, उत्पन्न न्यान विन्यान पद ५, उत्पन्न न्यान दिस्टंति नीच सुभावेन नीच निगोद ६, जिन उक्त

सम्मत्त सम ७, उक्त समय सम दिस्टि न्यान अंकुर ८, सम दिस्टि दर्सि न्यान ९, सम दिस्टि वीर्ज उत्पन्न १०, सम दिस्टि सुद्ध सुभाव ११, सम दिस्टि न्यान अन्मोद १२, हितमित परिणै कोमल १३, अवगाहन न्यान जिन बली दिस्टि १४, अवगाहन न्यान सुय रमण १५, जिन विंजन सुर अगुरु लघु न दिस्टते १६, बाधा विलय शरीर बाधा रहित १७, एवं प्रभाव जिन उक्त १८, जिन उक्त न दिस्टि न समय न सहकार १९, न दिस्टि विप्रियो करै विप्रियो बोले २०, जिन समय, जिन सुभाव, जिन मिलन, न्यान रमण न दिस्टइ न रमइ न सुभावं न सहइ असहनी २१, नीच सुभाव जिन उक्त विली करै नीच निगोद जिन उक्त गुरु न मूल सेवइ इत्यादि २२ ।

न्यान व्रत अहिंसा इत्यादि सूक्ष्म सुभाव तत्काल उत्पन्न तप आचरण चरण २३, कुन्यान विवर्जितं आयरण २४, सुद्ध पडिमा तिअर्थ २५, दान अनन्त विसेष २६, परम व्यक्त रूप २७, जाति उत्पन्न लंकृत गम्य अगम्य २८, अन्यान असुत न्यानं न २९, सुत रमण ३०, दर्सि रमण ३१, न्यान रमण ३२, चरण रयण तप ३३, जिन उक्त सूष्म सुभाव सूष्म क्रांति ३४, तस्य प्रभाव न द्रिस्यते न सहइ न समइ न सहकारै ३५, जनरंजन राग बंध आक्रांत करण प्रिय ३६, उक्त व्रत करण गुण छंडै ३७, तव करण, पडिम्रा करण, दान करण, पानी गालन करण, अन्यान थुति करण, रयण तय करण, नीच मिथ्या सहाइ, भय सहाइ, सल्य सहाव, संक सहाइ, सूष्य करण उवएसनं करोति जिनवयण लोयनं करोति ३८, करण सुभाव दिस्टि करण सहकार नीच सुषिणी सुभाइ जिन उक्त लोपनं नीच निगोद ॥ ३९ ॥

अथ—अब नीच निगोद स्वभावको कहते हैं। जिन परिणामोंसे साधारण वनस्पति निगोद पर्याय पानेका बन्ध पड़ता है उन भावोंको दिखाते हैं। जिसका नीच स्वभाव निगोदमें जानेयोग्य होता है वह

जिनेन्द्र कथित तत्वपर श्रद्धा नहीं लाता है ॥ १ ॥ जिनेन्द्रने कहा है शुद्ध ज्ञान स्वभावका अनुभव करना चाहिये । २ ॥ जिन कथित तत्वोंका मनन करते करते हितकारी ज्ञान पैदा हो जाता है ॥ ३ ॥ यह ज्ञान केवलज्ञानका कारण है ॥ ४ ॥ इसीसे केवलज्ञान पद प्रगट होता है । ५ ॥ परन्तु नीच स्वभाव होनेके कारण मिथ्यात्वीके भीतर आत्मज्ञानकी श्रद्धा नहीं होती है । ऐसा जीव नीच निगोदकी गति बांध लेता है ॥६॥ जिनेन्द्रने कहा है कि सम्यग्दर्शन एक सम या वीतराग भाव है ॥ ७ ॥ ऐसी बताई हुई आत्माकी समदृष्टि ही केवलज्ञानका अंकुर है ॥ ८ ॥ समदृष्टिसे दर्शन ज्ञान प्रकाश होते हैं ॥ ९ ॥ समदृष्टिसे आत्म वीर्य प्रगट होता है ॥ १० ॥ समदृष्टिसे शुद्ध स्वभाव चमकता है ॥ ११ ॥ समदृष्टिसे ज्ञानमें आनन्द भासता है ॥ १२ ॥ इसीसे हित रूप व मर्यादा रूप व कोमल नम्र भाव रूप परिणमन रहता है ॥ १३ ॥ इसीसे अनन्तज्ञान धारी वीतरागका बलवानपना झलकता है ॥ १४ ॥ ज्ञानमें डूबना स्वयं आपमें रमण करना है ॥ १५ ॥

वीतरागी आत्माका प्रगट सूर्य सम स्वभाव अगुरुलघुरूप मिथ्यातीकी श्रद्धामें नहीं आता है ॥ १६ ॥ सिद्ध स्वभावमें कोई बाधा नहीं है, उनका ज्ञान शरीर अव्याबाध है ॥ १७ ॥ ऐसा जिन कथित आत्माके तत्वका प्रभाव है ॥ १८ ॥ परन्तु जिन कथित तत्वपर मिथ्यात्वीकी श्रद्धा नहीं होती है, उसे आत्माका तत्व भाता नहीं, वह अध्यात्मिक तत्वको सहन नहीं कर सक्ता है ॥ १९ ॥ उसे आत्माकी चर्चा प्यारी नहीं लगती है, वह विरुद्ध वर्ताव करता है व विरुद्ध ही बोलता है ॥ २० ॥ उसकी श्रद्धा वीतराग आत्मापर, जिन स्वभावपर, जिनकी भक्तिपर, ज्ञानके रमनेपर नहीं होती है, उसे वे सब बातें रुचिकर नहीं प्रगट होती हैं, वह तत्व चर्चाको सहन नहीं कर सक्ता है, उसका भाव असहनेका होजाता है ॥ २१ ॥ उसका ऐसा नीच स्वभाव होता है । वह जिनवाणीका कथन नहीं जानता है, वह नीच निगोद स्वभावोंके कारण जिन कथित सच्चे गुरुकी जरासी सेवा नहीं करता है इत्यादि उसे सच्चा देव गुरु शास्त्र नहीं सुहाता है ॥ २२ ॥ ज्ञान पूर्वक अहिंसा व्रत आदि व सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माके स्वभावसे उत्पन्न तपमें आचरण करना ॥ २३ ॥ मिथ्या ज्ञान रहित चारित्र ॥ २४ ॥ शुद्ध रत्नत्रयमई आदर्श ॥ २५ ॥

अनन्त परिणमन रूप दान अर्थात् आपमें आपका सुख देना ऐसा परिणमन ॥ २६ ॥ आप ही दान लेनेवाला पात्र प्रगट है ॥ २७ ॥ जो स्वभावसे स्थूल सूक्ष्म सर्व ज्ञानसे शोभित है ॥ २८ ॥ जहां

न कुमति है न कुश्रुत ज्ञान है ॥ २९ ॥ जो शास्त्रमें रमण करता है ॥ ३० ॥ जो सम्यग्दर्शनमें रमण करता है ॥ ३१ ॥ जो ज्ञानमें रमण करता है ॥ ३२ ॥ जो रत्नत्रयमें आचरण करता है ॥ ३३ ॥ वहां जिन कथित सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें ही अतीन्द्रियपनेकी शोभा है ॥ ३४ ॥ नीच निगोद स्वभाव-धारी मिथ्यादृष्टीके भीतर ऐसा आत्मप्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता है, उसको आत्मकथन नहीं रुचता है वह सहन नहीं कर सक्ता है ॥ ३५ ॥ वह जनरंजन रागमें बन्धा हुआ इंद्रियोंके द्वारा भोगकी क्रिया करता है ॥ ३६ ॥ जिनवाणी कथित व्रत क्रिया व गुणोंको छोड़ देता है, ध्यानमें ही नहीं लेता है ॥ ३७ ॥ इस मिथ्यात्वीको इन बातोंका उपदेश नहीं लगता है कि तप करो, श्रावककी प्रतिमाएँ पालो, दान करो, पानी छानकर पीओ, जिन आज्ञाकी प्रशंसा करो, रत्नत्रयका आचरण करो, नीच मिथ्यात्व स्वभावके कारण भय स्वभाव, शल्य स्वभाव, शङ्काशील स्वभावसे यह सब सुखकारी उपदेश नहीं रुचता है। वह जिन वचनका लोप करता है, आज्ञा उल्लंघन करता है ॥ ३८ ॥ इंद्रियोंके भीतर रमनेका श्रद्धान रखता है उसका स्वभाव सुखिया होजाता है। जो जिनवाणीका लोप करता है वह नीच निगोदगति बांधता है ॥ ३९ ॥

जिन उक्त जनरंजन राग, कलरंजन दोप, मनरंजन गारो, न्यान आवर्ण, दर्सि आवर्ण, मोहक आवर्ण, न्यान अन्तर, संक सल्य संक भय, कपाय, मिथ्या कुन्यान, त्रिविहि कम्म, अन्मोय विरोध १, विलय न दिस्टि न सब्द न उत्पन्न न सहकार न औकास, न अन्मोद न विषय न समय न सहकार, सुभाव न करोति २, केन सुभावेन जनरंज कलरंज मनरंज दस मोहंध सुभाई जिन उक्त न दिस्टते ३, न्यान उक्त न समाइ न सुहाइ न सहकार, जिन उक्तपद लोपनं नीच सुभाव, नीच निगोद ४ ।

जिन उक्त अष्यरं, अषय रमण, परम अष्यर, परम अष्यर, परम सुर रमण ५, विंजन रमण, पद रमण, अर्थ रमण, तिअर्थ रमण ६, समर्थ रमण ७, समय रमण, सहकार रमण ८, औकास रमण ९, अन्मोद रमण १०, न्यान षिपक रमण ११, मुक्ति रमण १२, सूक्ष्म सुख

रमण १३, रंज रमण १४, उत्पन्न रंज १५, उत्पन्न सुयं लब्धि रंज १६, सोलही रंजन १७, जं षिपिय रमण १८, तं नन्द रूव १९, हितकार रंज २०, हितकार सुयं लब्धि रंज २१, सोलही रंज कमल परिणाम २२, ममल अनन्त तं अमिय रमण २३, रोम प्रियो रमण २४।

तं नन्द आनन्द सहकार रंज २५ सुयं लब्धि षिपक इष्ट उत्पन्न २६, सोलही गुपिज गुहिज परिणाम २७, ममल अनन्त नन्त रंज २८, तं चेय दिष्टि दिस्टि २९, नन्त दिष्टि रमण ३०, तं नन्द आनन्द चिदानन्द ३१, विन्यानु रंज जान ३२, सुयं लब्धि इस्ट उत्पन्न सोलही परिणाम ३३, इष्ट उत्पन्न ममल नन्तानन्त रंज तं रमण ३४, जिन रमण ३५, तं नन्द आनंदे चिदानन्द तं सहजानन्द ३६, रंज जिन रंज समर्थ ३७, अंगदि अनन्तानन्त पद विंद ३८, सर्वांग लोक अवलोक अनन्तानन्त परिणाम ३९, जिन उक्त मुक्ति ४०।

तस्य सुभाव मनरंज गारौ बन्धान मोहंध दस दिष्टि, जनरंज कलरंज विषय दिस्टि करण क्रिया, उद्देस करण क्रिया, गारौ करण क्रिया, राग करण क्रिया, दर्स मोहंध करण क्रिया, वय-करण क्रिया, तवकरण क्रिया, गारौ जिन उक्त लोयन नीच सहकार पर्जाय, गारौ जिन उक्त न दिस्टउ न सहउ न वयन न उक्त न समई न सहकार नीच सहाइ मिथ्या भयभीत जिन उत्तु लोपनं करोति, तं नीच निगोद, जिन उत्त नन्त चतुष्टै गारव सहकार लोपनं करोति, नीच सहकार नीच उत्पन्न मन नीच सब्द वयण नीच ४१।

क्रिया सहकार क्रांति नीच ४२, जाति उत्पन्न नीच ४३, कलण नीच ४४, रुचि प्रिये नीच ४५, मान अभिमान नीच ४६, न्यान नीच ४७, करणतव नीच ४८, बल बीर्ज नीच ४९, सहकार नीच ५०, पद नीच ५१, स्पर्सन नीच ५२, रसन नीच ५३, घ्राण नीच ५४, चषु सोत्र नीच ५५, सब्द नीच ५६, सुभाव इन्द्री इष्ट विषय नीच ५७, नीचश्री ५८, नीच

राग ५९, नीच भय ६०, नीच पद ग्रहण ६१, नीच जोइ ६२, न समय मै मूर्ति ६३, नीच सुर रमण ६४, विषय नीच ६५, निस्वास विषय नीच ६६, पर्जाव दिष्टि सहकार विषय रिद्धि नीच ६७, नीच सहाउ ६८, नीच चेत ६९, नीच उत्पन्न पर्जाव ग्रहण अन्मोद ७०, विषय प्रपंच पर्जाव विभ्रम सहकार रमण ७१, शिष्य अशिष्य उत्पन्न उपाय नीच ७२, नीच सब्द ७३, नीच अलाप सुभाव ७४, सभावेन अनन्त नीच सहाउ, नीच निगोद भ्रमणं करोति, इतर सुभावेन जिन उत्त लोपन इतर निगोद नीच इतर सुभाउ जिन उत्त लोपनी नीच इतर गति अनादिकाल भ्रमणं करोति ७५ ।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवानने कहा है कि जनरंजन राग, शरीर रंजन दोष, मनरंजन अभिमान, ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म, मोहनीय कर्म, अन्तराय कर्मके वशीभूत हो, शङ्का शल्य भयमें पड़-कर, कषायोंके आधीन हो, मिथ्याज्ञान धारकर, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, तीन प्रकार कर्मोंमें गृसित रहकर सच्चे आनन्दका लाभ इस जीवने नहीं किया ॥ १ ॥ इन सब पर भावोंका नाश नहीं हुआ। क्योंकि इस जीवने कभी अपने स्वभावपर दृष्टि नहीं दी। न शब्द सुने, न ज्ञान पैदा हुआ, न कोई सहायता मिली, न स्वभावमें प्रवेश किया न स्वभावका आनन्द लिया, न उस तरफ ध्यान ही लगाया ॥ २ ॥ क्यों ऐसा हुआ, कारण यही है कि जहां जनरंज, शरीर रंज, मनरंज भाव होता है व दर्शनमोहसे श्रद्धान अन्धा होता है वहां जिनेन्द्र कथित उपदेशपर श्रद्धा या रुचि नहीं होती है ॥ ३ ॥ ज्ञानकी बातें उसे नहीं सुहाती हैं। वह ज्ञानकी संगति नहीं करता है, वह जिनवाणीके कथनका लोप करता है, जिन आज्ञाको नहीं मानता है, ऐसे नीच स्वभावको नीच निगोदमें जाने लायक स्वभाव कहते हैं ॥ ४ ॥ जिनेन्द्र भगवानकी वाणीमें ये अक्षर प्रगट हुए हैं कि अक्षय या अविनाशी आत्माके स्वभावमें रमण करना चाहिये। उनका श्रेष्ठ उपदेश यही है कि परम अक्षर स्वभाव अविनाशी परमेश्वर स्वभावमें या परम सूर्यमें रमण करो ॥ ५ ॥

किसी शब्दके व्यञ्जनमें रमण व पदमें रमणका यही भाव है कि आत्मा पदार्थमें रमण किया जावे या रत्नत्रय स्वभावमें रमण किया जावे ॥ ६ ॥ स्वरूपमें रमण करना ही शक्तिशाली रमण है ॥ ७ ॥

उसीको समय या आत्मामें रमण कहते हैं ॥ ८ ॥ यही मोक्षमार्गमें रमण है ॥ ९ ॥ यही अनन्त गुणोंमें रमण है ॥ १० ॥ यही आत्मानन्दमें रमण है ॥ ११ ॥ यही मोक्षस्वभावमें रमण है ॥ १२ ॥ यही सुक्ष्म अतीन्द्रिय सुखमें रमण है ॥ १३ ॥ यही आनन्दमें रमण है ॥ १४ ॥ इसीसे आनन्द गुण बढ़ता है ॥ ५ ॥ इसीसे स्वयं प्राप्त होनेवाला अनन्त सुख होता है ॥ १६ ॥ स्वरूपमें रमण सो ही दर्शनविशुद्धि आदि षोड़शकारण भावनाओंमें रमण है ॥ १७ ॥ यही निर्मल पदमें रमण है ॥ १८ ॥ वहीं आनन्द स्वभाव है ॥ १९ ॥ वहीं हितकारी आनन्द है ॥ २० ॥ वहीं हितकारी स्वयं प्राप्त होनेवाला अनन्त सुख है ॥ २१ ॥ वहीं षोडशकारण भावनाओंकी मगनतासे आत्मारूपी कमलका भाव झलकता है ॥ २२ ॥ वहीं अनन्त शुद्धतामें अमर रूपसे रमण है ॥ २३ ॥

वहां ऐसा रमण है कि साधकका रोम रोम प्रफुल्लित होजाता है ॥ २४ ॥ वहीं परमानन्द सहित मग्नता है ॥ २५ ॥ इसीसे स्वयं झलकनेवाला क्षायिक इष्ट पद प्रगट होता है ॥ २६ ॥ यही षोडशकारण भावनाओंके द्वारा आत्माकी गुफामें विराजित शुद्ध भाव है ॥ २७ ॥ वही शुद्ध व अनन्त आनन्द है ॥ २८ ॥ यहीं चेतनाका दर्शन व ज्ञान है ॥ २९ ॥ यहीं अनन्तज्ञानमें रमण है ॥ ३० ॥ यहीं आनन्दमय चिदानन्द पद है ॥ ३१ ॥ वहीं ज्ञानानन्द मोक्षमार्ग है ॥ ३२ ॥ वहीं स्वयं शक्तिसे उत्पन्नवाले षोडशकारण भावनाओंका परिणाम है ॥ ३३ ॥ वहीं उपादेयरूप प्रगट अनन्त आनन्दमें मगनता है ॥ ३४ ॥ वहीं जिनेन्द्रके भीतर रमण है ॥ ३५ ॥ वहीं नन्द है, आनन्द है, चिदानन्द है, सहजानन्द है ॥ ३६ ॥ वहीं वीतरागमय आनन्द व वीर्य है ॥ ३७ ॥ वही अनन्त गुणधारी आत्माका अनुभव है ॥ ३८ ॥ वहीं पूर्ण लोकको देखनेवाला भाव प्रगट होता है ॥ ३९ ॥ वहीं जिनेन्द्र कथित मोक्षका स्वभाव है ॥ ४० ॥

परन्तु इस शुद्ध आत्म स्वभावको वह नहीं देख सकता है, जिसका स्वभाव मनको रंजायमान करनेवाले अभिमानमें गृसित है, जिसका श्रद्धान दर्शन मोहसे अन्धा है, जो मानवोंके प्रसन्न रखनेमें व शरीरको राजी रखनेमें फँसा है, जिसकी दृष्टि पांचों इंद्रियोंके विषयभोगमें उलझी है, जो विषयोंकी क्रिया ही किया करता है, विषयभोगका प्रयोजन रखकर जो काम करता है, जो अभिमानको पुष्ट करनेवाली क्रिया करता है, जो रागको बढ़ानेवाली क्रिया करता है, जो मिथ्यात्वको पोषनेवाली क्रिया करता है, मिथ्यात्व सहित व्रत करता है, तप करता है, अभिमानके वश हो जिनेन्द्रकी आज्ञाको लोप करता

है, नीच परिणाम या अवस्था रखता है, मदके कारण जिनेन्द्र कथित तत्वका श्रद्धान नहीं करता है न देखता है, न उसे सुहाता है, न स्वयं कहता है न कथनको सुनता है, न कभी तत्व ज्ञानियोंका संग करता है, नीच स्वभावको धारके मिथ्यात्वके कारण भयभीत रहता है। जिनेन्द्र कथित आज्ञाको लोप करता है, ऐसा ही प्राणी नीच निगोद स्वभावका धारी है, आत्मामें अनन्त ज्ञानादि चतुष्टयकी शक्ति है, वह नीच अभिमानसे इस बातको नहीं मानता है, उसका मन भी नीच विचार करता है, उसके शब्द भी नीच निकलते हैं, उसकी वाणी भी नीच होती है ॥४१॥

उसकी सर्व कायकी क्रिया भी नीच होती है ॥ ४२ ॥ वह नीच जातिमें पैदा होजाता है ॥ ४३ ॥ उसका व्यवहार नीच होता है ॥ ४४ ॥ उसकी रुचि व प्रीति नीच कामोंकी तरफ होती है ॥ ४५ ॥ वह नीच कामोंको करके अभिमान रखता है ॥ ४३ ॥ उसका ज्ञान मिथ्या व नीच होता है ॥ ४७ ॥ वह मिथ्या तप करता है ॥ ४८ ॥ वह अपने बल वीर्यको नीच काममें खर्च करता है ॥ ४९ ॥ वह नीचोंकी संगति रखता है ॥ ५० ॥ वह नीच पदमें पड़ा रहता है या उसका पग नीच कामोंमें ही पड़ता है ॥५१॥ वह स्पर्शन इंद्रियका विषय नीच व खोटा कुआचाररूप करता है ॥ ५२ ॥ वह रसना इंद्रियका विषय नीच रखता है, अभक्ष्य खाता है ॥ ५३ ॥ उसका नाकका विषय नीच होता है ॥ ५४ ॥ आंखोंका व कानोंका विषय नीच व खोटा होता है ॥ ५५ ॥ वह नीच बुरे शब्दोंको बोलता है ॥ ५६ ॥

उसका स्वभाव पांचों इंद्रियोंके नीच व अन्यायपूर्ण विषयोंके सेवनमें लगा रहता है ॥ ५७ ॥ उसकी लक्ष्मी नीच कामसे आती है व नीच काममें खर्च होती है ॥५८॥ उसका राज्य नीच व अन्यायपूर्ण होता है ॥ ५९ ॥ वह नीच व निंदनीक भय रखके कायर रहता है ॥ ६० ॥ वह नीचे पदोंको ग्रहण करता है, नीच निंदनीक खोटे कामोंके प्रचारमें मुखिया बन जाता है ॥ ६१ ॥ उसकी दृष्टि नीच ही होती है ॥ ६२ ॥ वह कभी ज्ञानमूर्ति आत्माको नहीं देख पाता है ॥ ६३ ॥ वह नीच गानोंके सुननेमें रमण किया करता है ॥ ६४ ॥ वह खोटे विषयोंको सेवता है ॥ ६५ ॥ उसका विश्वास या विषय नीच होता है, उसको मिथ्या तत्वोंका विश्वास होता है ॥ ६६ ॥

शरीरमें मगनताके कारण खोटे धनको व विषयोंको ग्रहण करता है ॥६७॥ उसके मित्र भी नीच होते हैं ॥ ६८ ॥ उसकी चेतना नीच व बेखबर अन्धी रहती है ॥ ६९ ॥ वह नीच अवस्थाके ग्रहणमें

...स ठाण।
॥ ८८ ॥

आनन्द मानता है ॥ ७० ॥ वह विषयोंके प्रपञ्चजालमें फँसा रहकर शरीरको भ्रमसे अपना मानता हुआ उसीमें रमण करता है ॥७१॥ वह गुरु होकर शिष्योंको व धनादि परिग्रहको नीच उपायोंसे संग्रह करता है ॥ ७२ ॥ उसके शब्द नीच मार्गके प्रेरक होते हैं ॥ ७३ ॥ उसका स्वभाव नीच वार्तालापका होता है वह स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राजाकथाएँ, प्रसन्न होकर किया करता है ॥ ७४ ॥ ऐसे ही अनन्त प्रकारके नीच स्वभावसे नीच निगोदकी पर्यायमें जाकर भ्रमण किया करता है। अन्तर आत्मासे भिन्न बहिरात्मा स्वभावसे जिन कथित आज्ञाको लोप करके मरके इतर निगोदमें जन्म लेता है, जिसका स्वभाव बहिरात्मारूप है। जो जिनकी आज्ञाका खण्डन करता है वह नीच प्राणी नीच गतियोंमें अनन्तकाल भ्रमण करता रहता है ॥ ७५ ॥

भावार्थ—यहां यह दिखलाया है कि निगोदमें यह जीव कैसे भावोंसे जाता है, जहांसे निकलना अनन्तकालमें भी कठिन है।

नीच लब्धि १, लोभ नीच २, कोप अनन्त ३, नीच मान अनन्त ४, नीच माया, पर्जाय अनन्त विसेष ५, त्यागी मिलै नीच विषय अनन्त पर्याय ६, न मिलै त्यागी पर्जाय मिलण अनन्त पर्याय ७, न मिले विषय मिलन न विषय पर्जाय रष्यनं करोति ८, विषय रमण सुभाव नीच मिलन मिथ्या पर्जाव ९, त्यागी मुक्त पर्जाव १०, अत्यागी पर्जाव ग्रहण ११, नीच रमण समय त्यागी पर्याय १२, समय अत्यागी १३, न समय समय १४, मिथ्या रमण प्रकृति १५, मिथ्या प्रकृति त्यागी मुक्त अप्रकृति पर्जाव १६, त्यागी अमुक्त ग्रहण समय प्रकृति १७, मिथ्या रमण एकान्त १८, त्यागी सुभाव रमण अनेकांत पर्जाव १९, त्यागी न मुक्त ग्रहणं करोति २०, एकांत मिथ्या रमण २१, विप्रियो मिथ्यात प्रियो २२, त्यागी मिलण अनन्त पर्जाव त्यागी विप्रियो भवतु २३, विप्रिय मिथ्या रमण नीच बुद्धि २४, नीच पर्याय रमण २५, नीच निगोद पतनं भवतु २६, जिन उक्त न्यान रमण २७, प्रथम न्यान पद श्रेष्ठ पद २८, न्यान विन्यान

सहकार मिलन आहार २९, न्यान सहकार आहार ३०, बाधा रहित अबाधा आहार ३१।

इच्छित न्यान रमण बाधादि मुक्त भेषज ३२, भेषज बाधा पर्जाय अनन्त मिलण ३३, संसार सरीर भोग उपभोग मन, वच, क्रांति, कृत, कारित अनुमत ३४, बाधा उद्देस परिणै प्रमाण ३५, बाधा इन्द्रिय विषय दिस्टि ३६, अदिस्ट रिस्टि ३७, रिस्टि समय इस्टि ३८, सह इष्ट उत्पन्न इष्ट ३९, अत्याग मुक्ति इष्टि ४०, सर सब्द असब्द गुपित ४१, सर कमल उत्पन्न धन, धान्य, सुवर्ण, मणि, रयण रमण ४२।

बाधा रहित अबाधा मुक्ति मिलन भेषज ४३, अभयप्रेच्छा न्यान ४४, न्यान रमण त्यागी ४५, मुक्ति सरूपी ४६, सुयं रूपी सरूपी सुभाव ४७, स्वरूप भय विनस्य भय सल्य संक विलयंतु ४८, अभय सेवन संक सल्य रहित ४९, निरूप त्यागी स्वरूपी ५०, त्यागी मुक्त ५१, जदि-दातृ लष्य तदि पात्र त्यागी ५२, मुक्ति सुभाव प्रापति ५३, तदि विसेष जिन उक्त नीच सहाय इतर सहाय जिन उक्त लोपनं ५४, नंद त्यागी ५५, पर्जाव मुक्त रमण त्यागी, ५६, मुक्त न्यान, आहार भेषज ५७, अनन्त विसेष त्यागी ग्रहं मुक्त न भवतु ५८, नीच सहाय नीच विषय रमण जिन उक्त लोपनं करोति ५९, नीच पर्जाय रमण ६०, विषय रमण सहकार ६१, जिन उक्त, जिन बन्धु, जिन वयण, जिन दर्स, जिन लष्य, जिन अलष्य लष्य, जिन सुभाव सुषम नीच सह भयभीत नीच इतर इन्द्रिय सहकार गारौ सुभाव नीच सहकार जिन उक्त लोपनं करोति ॥ ६२ ॥

तदि नीच निगोद इतर निगोद पतनं करोति, अनन्त संसारिणो जीवा ६३, जेन केनापि त्यागी मिलण विषय, स्वरूप, विषय, मन विषय, वचन विषय, क्रांति विषय, सुभाव रमण त्यागी

मिलै और पर्जाव सहनी असहनी असहनी अनन्त पर्जाव रूव ग्रहण सुभाव निधि राजा रयण मणि, सुवर्ण मुक्तामणि विसेष ६४, पर्जाव दिष्टि न मिलै अन्मोद आनन्द न्यान अन्मोद एक समय पर्जाव दिस्टि विनन्द भवति नीच सुभाव जिन वयण लोपनं करोति, नीच पर्जाव सुभाव न्यान अन्मोद विनन्द समय मात्रेण नीच इतर सहकार नीच इतर पर्याय लब्धि भवतु, नीच इतर निगोद तुच्छ भवतु ६५।

अर्थ—मिथ्यादृष्टी अज्ञानी जीव अपनी ज्ञानादि शक्तियोंका उपयोग नीच कामोंमें करता है ॥१॥ लोभ कषायके उदयसे नीच काम करता है ॥ २ ॥ जिसपर क्रोध होता है वह अनन्तानुबन्धी होता है, बहुत काल तक द्वेष छोड़ता नहीं है ॥ ३ ॥ अनन्तानुबन्धी मान होता है, नीच भाव रखके मान करता है, दूसरोंका अपमान करता है ॥ ४॥ मायाके उदयसे बहुत नीच कपटके काम करता है, अनन्त परिणामोंकी विशेषता रखता है ॥ ५ ॥ यदि कोई प्राणी साधु मिलते हैं, उनसे भी सच्चा उपदेश नहीं लेता है, अनंत प्रकारके विषय भावोंकी पुष्टिका लक्ष्य रखके उपदेश ग्रहण करता है, नीच मार्गकी तरफ जाता है ॥ ६ ॥

यदि कोई त्यागी न मिले तो भी अपने शरीरमें रागी होकर अनन्त परिणाम किया करता है ॥७॥ जो इंद्रियोंके विषय नहीं मिलेंगे उनके मिलानेकी इच्छा करता है। मनुष्य पर्यायमें जो विषय मिले हुए हैं उनकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥ इस मिथ्यात्वीका स्वभाव विषयोंके भीतर रमण करनेका होता है, नीचोंसे मिलता है, मिथ्या भाव किया करता है ॥ ९ ॥ त्यागियोंकी संगति छोड़नेका स्वभाव रखता है ॥ १० ॥ जो त्यागी नहीं हैं, संसारासक्त हैं, उनके भावोंको ग्रहण करता है ॥ ११ ॥ उसका स्वभाव ऐसा बन जाता है कि वह नीचोंके साथ रमण करता है, आत्मज्ञानीका संग नहीं करता है ॥१२॥ उसका आत्मा किसी विषयका त्याग नहीं करता है ॥ १३ ॥ उसे बहिरात्मापना ही सुहाता है। उसका आत्मा मिथ्यादृष्टी बना रहता है ॥ १४ ॥ उसका स्वभाव मिथ्या बातोंमें रमण करनेका होजाता है ॥ १५ ॥ मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे त्यागियोंकी संगतिको छोड़कर मिथ्या स्वभावको ही रखता है ॥ १६ ॥

त्यागी यदि कोई मिलता है तो उनसे मुक्तिसे विरुद्ध संसार पोषणकारी बातको ग्रहण करता है

ऐसा आत्माका स्वभाव रखता है ॥ १७ ॥ एकांत मिथ्यात्वमें रमण करता है। वस्तु अनेक स्वभाववाली है उसको एक स्वभाववाली मानता है ॥ १८ ॥ अनेकांत स्वभावधारी आत्माके भीतर रमण नहीं करता है। त्यागीसे मुक्तिके स्वभावको नहीं स्वीकार करता है ॥ २० ॥ एकांत मिथ्यात्वमें रमण किया करता है ॥ २१ ॥ त्यागने योग्य मिथ्यात्व ही उसको प्यारा लगता है ॥ २२ ॥ त्यागी कोई मिल जाता है तौभी वह अनन्त गुण धारी आत्माका विश्वास नहीं करता है, विपरीत ही रहता है ॥ २३ ॥ विपरीत मिथ्यात्वमें रमण करता है। जैसे हिंसासे धर्म मान लेता है, बुद्धि नीच हिंसक कामोंपर जाती है ॥ २४ ॥ यह नीच निन्दनीय अवस्थामें रमण करता है ॥ २५ ॥ इसीसे वह नीच भावसे निगोद पर्यायमें गिर पड़ता है ॥ २६ ॥ परन्तु जो जिनेन्द्र कथित सम्यग्ज्ञानमें रमण करते हैं ॥ २७ ॥ वे केवलज्ञानके पदको ही श्रेष्ठ पद मानते हैं ॥ २८ ॥ वे उसी बातको ग्रहण करते हैं जिससे ज्ञानकी वृद्धि हो ॥ २९ ॥ ज्ञान बढ़ानेको ज्ञानका ही आहार करते हैं ॥ ३० ॥ उनपर बाधा रहित ज्ञानका आहार ऐसा होता है जिससे कोई बाधा नहीं पहुंचा सक्ता है ॥ ३१ ॥ यह उपादेय शुद्ध ज्ञानमें रमण करते हैं। यही वह बाधारहित औषधि है जिससे संसार रोग मिटता है ॥ ३२ ॥ इस संसारमें बाधाकारी अनन्त पर्याय मिल चुकी है जिनमें सच्चा सुख नहीं पाया ॥ ३३ ॥

इस संसारमें शरीरोंको धारकर मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनासे नौ प्रकार भोग-उपभोग ही करता रहा ॥ ३४ ॥ बाधाकारी संसारका ही उद्देश्य रहा व इसी मिथ्याज्ञानमें परिणमन करता रहा ॥ ३५ ॥ बाधाकारी व संसारवर्द्धक इंद्रियोंके विषयोंमें ही दृष्टि रही ॥ ३६ ॥ हानिकारक मिथ्यादृष्टि बनी रही ॥ ३७ ॥ हानिकारक आत्माकी परिणति ही अच्छी लगी ॥ ३८ ॥ इसी इष्टभावसे इसी इष्ट परिणतिको अर्थात् खोटी परिणतिको ही बढ़ाता रहा ॥ ३९ ॥ त्याग भाव नहीं सुहाया, भोगोंमें ही प्रेम करता रहा ॥ ४० ॥ ऐसे शब्द कहता रहा जिससे शब्द रहित आत्माका लोप हो, अर्थात् आत्मज्ञानसे विपरीत बातें कीं ॥ ४१ ॥ पुण्यरूपी सरोवरसे उत्पन्न कमल समान धन, धान्य, मणि, रत्न आदि विभूतिमें रमण करता रहा ॥ ४२ ॥ इस संसाररूपी रोगसे मुक्त होनेकी औषधि यही है जो बाधा रहित मुक्तिका पता मिल जावे—स्वानुभव होजावे ॥ ४३ ॥ तब उसका ज्ञान भय रहित होजाता है। उसको अपने स्वरूपमें निःशंक भाव होजाता है, वह निर्भय ज्ञानको ही देखता है ॥ ४४ ॥ वह आत्माके ज्ञानमें

रमण करनेवाला त्यागी होजाता है ॥४५॥ वह स्वयं मोक्ष स्वरूपी शुद्धोपयोगी होजाता है ॥४६॥ वह स्वयं ज्ञान स्वरूपमें रहनेवाला स्वभाव रखता है ॥ ४७ ॥ उसको अपने स्वरूपमें भय नहीं रहता है, इसका सर्व भय, सब शल्य, सब शंकाएँ क्षय होजाती हैं ॥ ४८ ॥ वह शंका व शल्यसे रहित निर्भय रहता है ॥ ४९ ॥ वह अमूर्तीक पर वस्तुके ग्रहणका त्याग स्वरूप ही रहता है ॥ ५० ॥ वही सच्चा त्यागी है, वही मुक्त स्वभाव है ॥ ५१ ॥ उसका लक्ष्यबिंदु शुद्ध आत्मतत्व है, वह तो आनन्ददाता है, वह त्यागी इस आनन्दके लेनेवाला पात्र है। भावार्थ—आप ही वह पात्र है, आप ही दातार है, आपसे आपको वह आनन्द देता है ॥ ५२ ॥

इसतरह ज्ञानीको मोक्ष स्वभावकी प्राप्ति होती है ॥ ५३ ॥ परन्तु यदि इस भावको जो नहीं पाता है वह जैसा जिनेन्द्रने कहा है नीच स्वभावको रखता हुआ मिथ्यात्व स्वभावसे जिनेन्द्रकी आज्ञाका लोप करता है । ५४ ॥ उसको सच्चा सुख नहीं मिलता है ॥ ५५ ॥ उसको मोक्षमें रमण भाव नहीं होता है ॥ ५६ ॥ उसको न तो ज्ञानका आहार मिलता है, न ज्ञानकी औषधि मिलती है ॥ ५७ ॥ वह अनन्त गुणोंके धारी आत्माका ज्ञान नहीं पाता है इससे मुक्त नहीं होता है ॥ ५८ ॥ उसका स्वभाव नीच होता है व नीच अन्यायके विषयोंमें रमण करता है, जिनेन्द्रकी आज्ञाका लोप करता है, जिनधर्मके विरुद्ध चलता है ॥ ५९ ॥ वह नीच अशुभ परिणामोंमें रमण करता रहता है ॥ ६० ॥ विषयोंके रमणमें सहकारीसे मेल रखता है ॥ ६१ ॥ यह मिथ्यादृष्टी अपने नीच स्वभावके कारण नीचे लिखे उपकारियोंसे भयभीत रहता है, उनके पास खड़ा नहीं होता है, जिन कथन, जिनबन्धुगण, जिनवाणी, जिनेन्द्रकी श्रद्धा, जिनेन्द्रपदका लक्ष्य, वीतराग अतीन्द्रिय आत्मापर ध्यान, वीतराग सूक्ष्म आत्मीक स्वभावपर दृष्टि। इन बातोंपर ध्यान न देकर नीच व खोटे इंद्रिय विषयोंकी संगति करता है। संसारके मदमें चूर रहता है। नीच स्वभावसे जिनवाणीकी आज्ञाका लोप करता है तब वह नीच गति बांधकर इतर निगोदमें गिर पडता है। इसतरह संसारी जीव निगोदके कष्ट पाते हैं ॥ ६२ ॥ जिस किसीको कोई त्यागी भी मिल जावे तौभी उनसे विषयोंकी वासनाको दृढ़ करता है, विषयोंका स्वरूप ही मनमें रखता है, वचन विषय-पोषक बोलता है, कायसे विषयोंके भोग करता है, मन वचन कायसे भोगोंमें रमण करता है, त्यागीके मिलनेपर भी शरीरको रुचिकर पदार्थोंकी वांछा बढ़ाता है, अनेक भण्डार चाहता है, राज्यकी, रत्नोंकी,

मणि मोती सुवर्णकी ही चाह करता है ॥ ६४ ॥ शरीरमें दृष्टि रखनेसे उसको कभी भी आत्मीक आनंद, ज्ञानानन्द नहीं मिलता है, उसकी श्रद्धा एक आत्माके निज भावपर नहीं रहती है, यह सुखी नहीं होता है, नीच स्वभावसे जिनवाणीका लोप करता है, यह अपने नीच स्वभावसे ज्ञानानन्दको न पाता हुआ आत्माको आकुलित रखता है, वह नीच इतर निगोदकी पर्यायमें जाकर जन्म पाता है ॥ ६५ ॥

भावार्थ—ऊपर श्री तारणतरण स्वामीने पांच स्थावरोंकी पर्यायमें जानेवाले मिथ्यात्व पोषक व सम्यक्त विरोधक भावोंको दिखलाया है। मिथ्यात्व जीवका महान शत्रु है, पांचों स्थावरोंमें जितने क्षुद्र भाव होते हैं उनको बताया है। एक श्वासमें अठारहबार जन्म मरण करनेवाले सर्व प्राणियोंमें नीचे प्रमाण लगातार भव होते हैं। एक अन्तर्मुहूर्तमें ६६३३६ भव होते हैं अर्थात ३६८५ $\frac{1}{3}$ श्वासमें ८८३३६ भव होते हैं। एक मुहूर्त ३७७३ श्वासका होता है।

(१) पृथ्वीकायिक—बादरके	६०१२		
सूक्ष्मके	६०१२	...	...१२०२४
(२) जलकायिक—बादरके	६०१२		
सूक्ष्मके	६०१२	...	.. १२०२४
(३) अग्निकायिक—बादरके	६०१२		
सूक्ष्मके	६०१२	...	...१२०२४
(४) वायुकायिक—बादरके	६०१२		
सूक्ष्मके	६०१२	...	...१२०२४
(५) वनस्पतिकाय—निगोद साधारण बादर	६०१२		
” ” सूक्ष्म	६०१२		
प्रत्येक वनस्पति	६०१२		.. १८०३६
एकेन्द्रियोंके सूक्ष्म भव			६६१३२
द्वीन्द्रियोंके		..	... ८०

तेन्द्रियोंके	...	...	६०
चौन्द्रियोंके	...	....	६०
पंचेन्द्रियोंके असैनी तिर्यंच	८		
सैनी तिर्यंच	८		
मानव	८		२४
		कुल	६६३३६

श्री गोम्मटसार जीवकांड गाथा—

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे ।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥ १२३ ॥
पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहयपत्ते या।
एदेसु अपुण्णेसु य एकेके बार खं छकं ॥ ११४ ॥

अर्थ—साधारण वनस्पतिको निगोद कहते हैं। ऊपर दिखाया है कि जो विषयांध होते हैं, नास्तिक होते हैं, जिन आज्ञा नहीं माननेवाले होते हैं, वे जीव नीच गति बांधकर निगोदमें जन्मते हैं। निगोदसे निकलना अनन्तकालमें भी दुर्लभ है। अतएव यह शिक्षा ग्रहण करना चाहिये कि मानवजन्म पाकर सतसङ्गति करे, जैन त्यागी महात्माओंकी सङ्गति करे, जिनवाणीका मनन करे, तत्वज्ञान प्राप्त करे, आचार शुद्ध पाले, आत्मज्ञानको भावे, सम्यग्दर्शनका लाभ करे व निरन्तर अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण करे, स्वानुभव करे, यही रत्नत्रयकी एकता है, यही कर्म निर्जराकारक ध्यानकी अग्नि है, व यही मोक्षका मार्ग है, यही ज्ञानानन्दका लाभ है, यही मोक्षके स्वभावमें रमण है।

तृतीय अध्याय।

विकलत्रय चौवीस स्थान।

द्वेन्द्रिय जीवमें चौवीस स्थान।

(१) गति–तिर्यंच
(२) इंद्रिय–दो इंद्रिय
(३) काय–त्रसकाय
(४) योग ४–औदारिक २, १ वचन अनुभय, १ कार्मण
(५) वेद–नपुंसक
(६) कषाय–२३ (२५–स्त्री व पुंस)
(७) ज्ञान–२ कुमति, कुश्रुत
(८) संयम–१ असंयम
(९) दर्शन–१ अचक्षु दर्शन
(१०) लेश्या–३ कृष्ण, नील, कापोत
(११) भव्य–२ दोनों
(१२) सम्यक्त–१ मिथ्यात्व
(१३) सैनी–१ असैनी
(१४) आहारक–२ दोनों
(१५) गुणस्थान–१ मिथ्यात्व
(१६) जीव समास–दो इंद्रिय सम्बन्धी
(१७) पर्याप्ति–५ मन विना
(१८) प्राण–६ इंद्रिय २, काय, वचन, बल, आयु, श्वास।
(१९) संज्ञा–४ चार
(२०) उपयोग–३ ज्ञान २, दर्शन १
(२१) ध्यान–८ आर्त ४, रौद्र ४
(२२) आस्रव-४० (मिथ्या० ५ + अविरति ८ तीन इन्द्रिय मन विना + क० २३ + योग ४)
(२३) योनि–२ लाख
(२४) कुलकोडि–७ लाख

तेन्द्रिय चौवीस स्थान।

(१) गति-तिर्यञ्च
(२) इंद्रिय-तीन
(३) काय-त्रस
(४) योग ४-औ० २, वचन अनुभय, १ कार्मण
(५) वेद-नपुंसक
(६) कषाय २३ (२५-स्त्री, पुं०)
(७) ज्ञान-२ कुमति, कुश्रुत
(८) संयम-१ असंयम
(९) दर्शन-१ अचक्षु
(१०) लेश्या-३ कृष्णादि
(११) भव्य-२ दोनों
(१२) सम्यक्त-मिथ्यात्व
(१३) सैनी-असैनी
(१४) आहारक-२ दोनों
(१५) गुणस्थान-मिथ्यात्व
(१६) जीव समास-तेन्द्रिय सम्बन्धी
(१७) पर्याप्ति ५ मन विना
(१८) प्राण ७-इंद्रिय ३, काय, वचन, बल, आयु, श्वास
(१९) संज्ञा ४-चारों
(२०) उपयोग ३-दो ज्ञान, १ दर्शन
(२१) ध्यान ८-आर्त ४ + रौद्र ४
(२२) आस्रव-४१ (मिथ्या ५+अविरति ९ दो इंद्रिय व मन विना +एक० २३ + योग ४)
(२३) योनि-२ लाख
(२४) कुल कोडि-८ लाख

चार इन्द्रिय चौवीस स्थान।

(१) गति-तिर्यंच
(२) इन्द्रिय-४ चार
(३) काय-त्रस
(४) योग ४-औ० २, वचन अनुभय १ कार्मण
(५) वेद-नपुंसक
(६) कषाय-२३ (स्त्री पुं० विना)
(७) ज्ञान-२ कुमति, कुश्रुत
(८) संयम-१ असंयम
(९) दर्शन-२ चक्षु, अचक्षु
(१०) लेश्या-३ कृष्णादि
(११) भव्य-२ दोनों
(१२) सम्यक्त-१ मिथ्यात्व
(१३) सैनी-१ असैनी
(१४) आहारक-२ दोनों

(१५) गुणस्थान–मिथ्यात्व
(१६) जीव समास–४ इंद्रिय सम्बन्धी
(१७) पर्याप्ति–५ मन विना
(१८) प्राण–८–इंद्रिय ४, काय, वचन, आयु, श्वास
(१९) संज्ञा–४–चारों
(२०) उपयोग ४–ज्ञान २, दर्शन २

(२१) ध्यान ८–आर्त ४, रौद्र ४
(२२) आस्रव-४२ (मिथ्या० ५ + अविरति १० पंचेन्द्रिय मन विना) + क० २३ + योग ४)
(२३) योनि–२ लाख
२४) कुलकोडि–९ लाख

जदि सुभावेन जिन उक्त १, जिन वयण २, जिन दर्सि ३, जिन सहकार ४, जिन समय ५, जिन परिणै ६, जिन प्रमाण ७, जिन अष्यर ८, जिन सुर ९, सुयं रमण १०, जिन विन्यान ११, जिन पद १२, जिन अर्थ १३, जिन ति अर्थ १४, जिन समर्थ १५, जिन समय सहकार अर्थ १६, जिन मिलन १७, जिन कमल १८, जिन रमण १९, जिन रंज २०, जिन नन्द २१, जिन आनन्द २२, जिन चेयानन्द २३, जिन सहजानन्द २४, जिन परमानन्द २५, जिन सदर्थ २६, जिन लंकृत जिन २७, औकास जिन २८, इच्छ जिन प्रेक्ष्या २९, जिन गम्य ३० ।

जिन अगम्य ३१, जिन चेय ३२, जिन वेय ३३, जिन प्रेष्य ३४, जिन सिष्य ३५, जिन धरन ३६, जिन ग्रहण ३७, जिन रहण ३८, जिन ठाण ३९, जिन ढलण ४०, जिन दिष्टि ४१, जिन इष्टि ४२, जिन रस्टि ४३, जिन रिष्टि ४४, जिन सम इष्टि ४५, जिन सहाव इष्टि ४६, जिन उत्पन्न इस्टि ४७, जिन सम इस्टि ४८, जिन सहकार इस्टि ४९, जिन औकास इस्टि ५०, जिन अन्मोद इस्टि ५१, जिन षिपक इस्टि ५२, जिन सर ५३, जिन सव्द सर ५४, जिन असब्द सर ५५, जिन गुपित सर ५६, जिन कमल सर ५७, जिन लष्य ५८, जिन अलष्य ५९ ।

जिन दर्स इस्टि ६०, जिन उत्पन्न दर्स ६१, जिन गुण जिन मूलगुण संवेय इत्यादि ६२, जिन

व्रत अहिंसा इत्यादि ६३, जिन तप अनसन इत्यादि ६४, जिन प्रतिमा दर्सन इत्यादि ६५, जिन दान न्यान दान इत्यादि ६६, जिन दरस ६७, जिन न्यान ६८, जिन चरण ६९, जिन उत्पन्न ७०, जिन उत्पन्न हितकार ७१, जिन उत्पन्न सहकार ७२, जिन न्यान विन्यान ७३, जिन पद विंद ७४, जिन सिद्धि गुण ७५, जिन दर्स लष्य गुण ७६, जिन सुयं लब्धि ७७, जिन कारण सोलह ७८, जिन सोलही उत्पन्न हितकार सहकार षिपक जिन इस्ट ७९, सोलही उत्पन्न सुयं लब्धि जिन इस्ट परमेस्टि ८०, जिन उत्पन्न परमिस्टि जिन चतुष्टै इस्ट ८१, जिन चतुष्टै उत्पन्न जिन रमण इस्ट ८२, जिन उत्पन्न रमण जिन रयणत्तय इस्ट ८३, जिन रयणत्तय उत्पन्न इस्ट जिन नन्त नन्त विसेष जिन दिप्ति जिन दिस्टि जिन अलंकृत जिन चरण दरस इत्यादि ८४, जिन सम्मत न्यान इत्यादि ८५, जिन सुयं सुभाव सूषम अतिंद्री सुभाव ८६, तत् द्रव्य काय पदार्थ सुभाव ८७, सूषम विंद विन्यान सुयं षिपति सूक्ष्म क्रिया क्रांति प्रतिपाद ८८, जिन समय सहकार रमण ८९, जिन जिननाथ अन्मोद न्यान ९०, कम्मस्य विलयं गत ९१ ।

अर्थ—यदि यह आत्मा अपने स्वभावमें रहे, जिन कथनको माने ॥ १ ॥ जिनवाणीको माने ॥ २ ॥ जिन भगवानकी श्रद्धा करे ॥ ३ ॥ जिनदेवकी सहायता लेवे ॥ ४ ॥ जिन कथित पदार्थको माने या वीतराग आत्मा होजावे ॥ ५ ॥ वीतरागभावमें परिणमन करे ॥ ६ ॥ जिनकथित प्रमाणको माने ॥ ७ ॥ अविनाशी वीतरागभावमें रमे ॥ ८ ॥ सूर्य समान जिनदेवकी भक्ति करे ॥ ९ ॥ स्वयं अपने स्वरूपमें रमण करे ॥ १० ॥ वीतराग विज्ञानको धारे ॥ ११ ॥ वीतराग पदका सेवन करे ॥ १२ ॥ वीतरागी आत्मा पदार्थको जाने ॥ १३ ॥ वीतराग निश्चय रत्नत्रयमें स्थिर हो ॥ १४ ॥ वीतरागमय वीर्यको सम्हाले ॥ १५ ॥ वीतरागी आत्मामई पदार्थको जाने ॥ १६ ॥ वीतरागतामें मिल जावे ॥ १७ ॥ वीतरागी कमल समान प्रफुल्लित होजावे ॥ १८ ॥ वीतरागतामें रमण करे ॥ १९ ॥ वीतरागभावमें मगन हो ॥ २० ॥ वीतरागभावमें आनन्द माने ॥ २१ ॥ वीतरागभावमें सुखी हो ॥ २२ ॥ वीतराग चिदानन्द होजावे ॥ २३ ॥

वीतराग सहजानन्द होजावे ॥ २४ ॥ वीतरागमय परमानन्दमें लीन होजावे ॥ २५ ॥ वीतरागमय सत् आत्माको जाने ॥ २६ ॥ वीतरागभावसे भूषित जिन होजावे ॥ २७ ॥ अनन्त वीतरागतामें मगन हो ॥ २८ ॥ उपादेय वीतागभावको अनुभव करे ॥ २९ ॥ वीतरागता ही अनुभवने योग्य है ॥ ३० ॥ वीतरागभाव इंद्रियगोचर नहीं है ॥ ३१ ॥ वीतरागभाव चितारने योग्य है ॥ ३२ ॥ वीतरागभाव जानने योग्य है ॥ ३३ । वीतरागता देखने योग्य है ॥ ३४ ॥ वीतरागता सीखने योग्य है ॥ ३५ ॥ वीतरागता धारणे योग्य है ॥ ३६ ।। वीतरागभाव ग्रहण करने योग्य है ॥ ३७ ॥ वीतरागतामें गुप्त होना योग्य है ॥ ३८ ॥ वीतरागभावको ही अपना स्थान बनावे ॥ ३९ ॥ वीतरागभावमें अपनेको ढाले ॥ ४० ॥ वीतरागभावकी श्रद्धा करे ॥ ४१ ॥ वीतरागतासे इष्ट करे ॥ ४२ ॥ वीतरागताका स्वाद ले ॥ ४३ ॥ वीतरागताको अडग बनावे ॥ ४४ ॥ वीतरागता सहित समभावसे प्रेम करे ॥ ४५ ॥ वीतराग स्वभावसे प्रेम करे ॥ ४६ ॥ वीतरागतासे ही इष्ट मुक्ति पैदा होती है ॥ ४७ ॥ वीतरागमय समभावको उपादेय जाने ॥४८॥ वीतरागताकी सहायतासे ही इष्ट कार्यकी सिद्धि है ॥ ४९ ॥ वीतरागताके भीतर इष्ट तत्व गर्भित है ॥ ५० ॥ वीतरागमय व आनन्दमय इष्ट भाव है ॥ ५१ ॥ वीतराग क्षायिक भाव इष्ट भाव है ॥ ५२ ॥ वीतरागभावको ही स्नानका सरोवर जाने ॥ ५३ ॥ जिन शब्दके द्वारा उसी सरोवरमें प्रवेश करे ॥ ५४ ॥ वह सरोवर शब्द रहित वीतरागमय है ॥ ५५ ॥ वह वीतराग सरोवर गुप्त है ॥ ५६ ॥ वह सरोवर वीतरागभावरूपी कमलको रखता है ॥ ५७ ॥ वीतरागता ही लखने योग्य है ॥ ५८ ॥ वीतरागता इंद्रिय व मनसे लखने योग्य नहीं है ॥ ५९ ॥ वीतराग सम्यग्दर्शन इष्ट है ॥ ६० ॥ वीतरागतासे ही सम्यग्दर्शन दृढ होता है ॥ ६१ ॥ वीतरागमई गुणसे श्री जिनेन्द्रके मूल गुणको जानना चाहिये, इत्यादि ॥ ६२ ॥

वीतरागताके पोषक अहिंसा आदि पांच व्रत हैं ॥ ६३ ॥ वीतरागताके पोषक अनशन आदि बारह तप हैं ॥ ६४ ॥ वीतरागभावको वढ़ानेवाली दर्शक व्रत आदि ग्यारह प्रतिमाएं श्रावककी हैं ॥६५॥ वीतरागभावको देनेवाले ज्ञान दान आदि चार दान हैं ॥ ६६ ॥ वीतरागमय सम्यग्दर्शन ॥ ६७ ॥ वीतरागमय ज्ञान ॥ ६८ ॥ वीतरागमय चारित्र ॥ ६९ ॥ इन्हींसे जिनका वीतरागपद पैदा होता है ॥ ७० ॥ वीतरागभावसे हितकारी पद होता है ॥ ७१ ॥ वीतरागभावसे मोक्ष सहकारी पद होता है ॥ ७२ ॥ वीतरागभाव ही सम्यग्ज्ञान है ॥ ७३ ॥ वीतराग पद ही अनुभवने योग्य है ॥ ७४ ॥ वीतरागतापूर्ण

सिद्धोंके गुण हैं ॥ ७६ ॥ वीतरागभावको देखना जानना ही गुणकारी है ॥ ७३ ॥ वीतरागभाव स्वयं आपसे प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ तीर्थंकर जिनराजपदकी कारण दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाएं हैं ॥७८॥ सोलहकारण भावनाओंके फलसे हितकारी सहकारी क्षायिकभावधारी तीर्थंकर अरहन्तका पद प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ षोड़शकारण भावनाओंके फलसे स्वयं ही वीतराग अरहन्तपद प्रगट होता है ॥८०॥ वीतराग अरहन्त परमेष्ठीमें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख चार चतुष्टय प्रगट होते हैं ॥ ८१ ॥ इन चतुष्टयके प्रतापसे अरहन्त भगवान आपमें ही रमण करते हैं ॥ ८२ ॥ वीतरागभावमें रमणसे ही निश्चय रत्नत्रयका झलकाव होता है ॥ ८३ ॥ निश्चय रत्नत्रयमें रमणसे ही अनन्त गुण धारी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शनमय व यथाख्यात चारित्रमय पद प्रगट होता है ॥ ८४ ॥ वहीं वीतराग सम्यग्दर्शन आदि गुण हैं ॥ ८५ ॥ वे अरहन्त जिनराज स्वयं सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण करते हैं ॥ ८६ ॥ वे ही स्वाभाविक आत्मा द्रव्य हैं, वे ही स्वाभाविक अस्तिकाय हैं, वे ही स्वाभाविक आत्मा पदार्थ हैं ॥ ८७ ॥ वे अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभावका अनुभव करनेवाले क्षायिक स्वभावधारी अतीन्द्रिय स्वभावमें ही रमणशील हैं ॥ ८८ ॥ वे ही वीतराग समयसारतत्वमें रमण करते हैं ॥ ८९ ॥ वे ही वीतराग जिनेन्द्र ज्ञानानन्दमय हैं ॥ ९० ॥ उनके कर्म क्षय होगए हैं ॥ ९१ ॥

उत्पन्न न्यान १, उत्पन्न कम्म विली २, उत्पन्न मुक्त न्यान ३, मुक्त कम्म विलयंति ४, जिन उत्पन्न नन्द आनन्द ५, विनन्द उत्पन्न विलयंति ६, न्यान अन्मोद अवल वली ७, विषय सुयं विलयं गता ८, अन्मोद न्यान मुक्ति गत ९, तस्य सुभावेन जिन उक्त, जिन परिणै, जिन समय दिस्टि इस्टि दर्स सहन सहकार विकलं जाति १०, विकल सुभाव ११, विकल दिस्टि १२, विकल इस्टि १३, विकल स्थान १४, विकल रयणत्तय १५, विकल सयनासन १६, विकल मिलन १७, विकल अन्मोद १८, जिन उक्त स्थान विकलं जंति १९, विकल उत्पन्न २०, विकल हितकार २१, विकल सहकार २२, जिन उक्त विलं जंति २३ ।

कौन सुभाइ, जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारो, दर्सन मोहंध, न्यान आवरण,

दर्स आवरण, मोह आवरण, अन्तर विसेष संक आसा स्नेह आदि मिथ्या आदि तीन सल्य, तीन कुन्यान, कषाय मल, मद्य मान, विषय, व्यसन, मिथ्या रमण, दुखेन सुभाव, अनिष्ट व्रत, अनिष्ट तप, अनिष्ट गुण, अनिष्ट पडिमा, अनिष्ट दान, अनिष्ट पात्र, अनिष्ट रयणत्तय, अनिष्ट गुण सिद्ध, अनिष्ट सुयं लब्धि, अनिष्ट दर्सि, अनिष्ट लष्य, अनिष्ट अलष्य, अनिष्ट उत्त, अनिष्ट औकास, अनिष्ट आनन्द, जिन उक्त विकलं जंति २४।

जिन उक्त दात्र पात्र विसेष विकलं जंति २५, जिन उक्त दात्र पात्र न्यान अन्मोद, न्यान सहकार, न्यान अन्मोद, न्यान मिलन, न्यान परिणै, न्यान श्रीन्यान, पुरुष न्यान, अन्मोद असहनी सहकार विकलं जंति, विकलत्रयवेन्द्री, तेन्द्री, चौइन्द्री, विकलत्रय जोनि भ्रमणं करोति २६, जिन उक्त विकल विकलत्रय भ्रमण, अनन्त काल भ्रमणं २७।

अर्थ—जब सम्यग्ज्ञान पैदा होता है ॥ १ ॥ तब कर्मोंका आस्रव रुकता है ॥ २ ॥ जब ज्ञानका भोग या स्वानुभव उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥ तब कर्मकी निर्जरा होती है, नवीन कर्म नहीं बन्धता है ॥४॥ जब जिनकथित तत्वोंके आनन्दमें मगनता होती है ॥ तब सर्व दुःख व चिंता चली जाती है। ६ ॥ जब अनुपम बलवान ज्ञानानन्द प्रगट होता है ॥ ७ ॥ तब इंद्रियोंके विषयोंकी चाह स्वयं विला जाती है ॥८॥ तब मोक्षके ज्ञानमें आनन्द आता है ॥ ९ ॥ परन्तु जब यह स्वभाव बिगड़ जाता है, जिन कथनमें, वीतराग परिणतिमें, वीतरागी आत्मामें मूढ़ होजाता है, सम्यग्दर्शन स्वभाव मिथ्यात्वरूप दोषी होजाता है ॥ १० ॥ स्वभाव दोष पूर्ण होता है ॥ ११ ॥ श्रद्धा बिगड़ जाती है ॥ १२ ॥ उपादेय तत्व दोष पूर्ण होजाता है ॥ १३ ॥ गुणस्थान नीचा दोष पूर्ण मिथ्यात्व होजाता है ॥ १४ ॥ रत्नत्रय स्वभाव दोषी होजाता है ॥ १५ ॥ शय्या व आसन क्रिया धर्मपूर्ण न होकर दोषपूर्ण होजाती है ॥ १६ ॥ दोषोंसे मिलता जाता है ॥ १७ ॥ सच्चे सुखसे छूट जाता है ॥ १८ ॥

जिन कथित मार्गसे भ्रष्ट होजाता है ॥ १९ ॥ तब सर्व भाव दोष पूर्ण पैदा होते हैं ॥ २० ॥

दोषोंको हितकारी समझता है ॥ २१ ॥ दोषोंकी सङ्गति करता है ॥ २२ ॥ जिनकथित तत्वको नहीं मानता है ॥ २३ ॥ कैसा स्वभाव होजाता है सो कहते हैं कि वह जनरंजन रागमें, शरीररंजन दोषमें, मनरंजन घमण्डमें फंस जाता है, दर्सनमोहका अन्धपना होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह, अन्तराय कर्मोंका विशेष उदय होता है, शंकाशील होजाता है। आशा तृष्णामें फंस जाता है, स्नेह व वैरमें उलझ जाता है। मिथ्या माया निदान शल्योंसे पीड़ित होजाता है, उसमें कुमति कुश्रुत कुअ-वधि तीनों मिथ्याज्ञान होते हैं, कषायोंसे मलीन होता है, मानका नशा चढ़ा होता है, विषयोंमें व सात व्यसनोंमें फंसा होता है, मिथ्यात्व भावमें रमण करता है, दुःखमय स्वभावसे श्रद्धा रहित आर्तध्यान सहित अनिष्ट व्रत करता है, दोष पूर्ण तप तपता है, हिंसादि हानिकारक गुणोंकी वृद्धि करता है। ग्यारह प्रतिमाओंको दोषपूर्ण मिथ्यात्व सहित पालता है। मानकषायके वशीभूत हो अपात्रोंको अनिष्ट दान देता है, स्वयं मिथ्यात्व सहित अपात्र होजाता है, रत्नत्रयको दोषी बना देता है, हानिकारक गुणोंकी सिद्धि करता है, स्वयं अनिष्ट भावोंको प्राप्त करता है, श्रद्धान खोटा होता है, ध्येय खोटा होता है, अतीन्द्रिय आत्मा पर इष्ट होता नहीं, अनिष्ट कथन करता है, अनिष्ट ज्ञान रखता है, हानिकारक बातोंमें सुख मानता है, श्री जिनेन्द्र कथित आज्ञाको दोष पूर्ण कर देता है ॥ २४ ॥

जिनेन्द्र कथित न तो वह दाता रहता है न पात्र रहता है। वह अपनेको अनिष्ट ही प्रदान करता है ॥ २५ ॥ जिन कथित दातार पात्र, ज्ञानानन्द भाव, सम्यग्ज्ञानकी सहायता, ज्ञानानन्दके साथ ज्ञानको बढ़ाना, ज्ञानमें परिणमन करना, ज्ञानरूपी सम्पदाका ज्ञान, आत्माका यथार्थ ज्ञान, सच्चा सुख आदि बातें उसे सुहाती नहीं, वह दोषपूर्ण होजाता है, पाप बांधकर द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय विकलत्रयमें जन्म पाकर भ्रमण करता है ॥ २६ ॥ जो जिन कथित मार्गको दोषी बनाता है वह विकलत्रयमें भ्रमण करता है, फिर अनन्तकाल तक एकेन्द्रियादिमें भ्रमण करता है ॥ २७ ॥

व्रताव्रतकार, बंभ अबंभ रक्ष्य निरोध, अन्यान न्यान अन्मोद, दिष्टि विकल १, एय विसेष विकलत्रय जोनि भ्रमणं करोति २, जदि कदि कालांतर विसेष सुभाउ-सुद्ध जिन उत्त ३, जिन वयण ४, जिन दर्स सुभाव ५, जिन समय ६, जिन सहकार ७; जिन औकास ८,

जिन अन्मोद सुभाव उत्पन्नं भवति ९, तदि काल विसेष निकलं मनु प्राप्तं भवति १०, जदि कदि कालांतर अनेकवार जदि कलण सुभाव परिणाम भवति ११, कलण सहकार कलणे सुभाव १२, न्यान अन्मोद सहकार परिणाम दरस न्यान चरण सुभाव १३; स्त्री पुंवेद उत्पन्नं भवति १४; अन्मोद न्यान कलण सुभाव निकलै १५; बीर्ज न्यान सहकार कलण सुभाव १६; कितीकवार सुभाव कलण उत्पन्न परिणाम भवतु १७; जदि काल जिन उक्त जिन परिणै १८; जिन प्रमाण १९; जिन समय २०; जिन सहकार २१; जिन औकास २२; जिन अन्मोद २३; जिन षिपक २४; जिन मुक्ति २५; जिन कमल २६; जिन रयण २७; जिन रंज २८; जिन वेद २९; जिन न्यान ३०; जिन विन्यान ३१, जिन अनन्त ३२, जिन न्यान प्रकार ३३, जिन अन्मोद न्यान षिपक ३४, जिन मुक्ति ३५, जिन अषय ३६, जिन सुरय ३७, सुयं रमण ३८, जिन विंजन ३९, जिन पद ४०, जिन अर्थं ४१, जिन तिअर्थं ४२, जिन उत्पन्न उत्पन्न जिन ४३, उत्पन्न हितकार रमण ४४, जिन अर्क ४५; जिन विंद ४६; जिन आगन्त ४७; जिन हितकार ४८; जिन हुंतकार ४९; जिन रमण जिन उत्पन्न ५०, सहकार जिन इस्ट ५१; सहकार जिन सुभाव ५२; सहकार जिन लष्य ५३; सहकार जिन गुप्ति अलष्य ५४; सहकार जिन गुहित गुप्त अन्मोद ५५; सहकार जिन सुयं लब्धि उत्पन्न ५६; आदि जिन सूषम सुभाव ५७; अनन्त अन्मोद ५८; इन्द्री प्राण चतुदस सुभाव ५९; अनन्त विसेष न्यान अन्मोद रंज ५; रमण ५; नन्द ५; चरण ५, इस्ट परमिस्टि न्यान ५, सम्मत्त ५, अर्क ५—६० ।

भय विनस्य भय विली ६१; चतुष्टय नन्त अरहन्त सुभाइ ६२; अंगदि अंग दरस सम्यक दरस अनन्त दरस श्री सम्यक दर्स न्यान चरण संजुक्त ६३; दात्र पात्र सुभाव सहकार ६४;

कल्प विकल्प मुक्त रमण ६५, न्यान अन्मोद अनन्त विशेष कलण सुभाइ ६६, अनन्त विसेष कलै ६७, न्यान अन्मोद कलै ६८, कलण सहकार कलण सुभाइ कलै ६९, न्यान उत्पन्न ७०, अनादि कम्म उत्पन्न विली ७१, न्यान मुक्त रमण ७२, न्यान अनन्त कलण ७३, मुक्त कम्म बिली ७४, न्यान अन्मोद नन्द ७५, विनन्द विली ७६, सुमन विली ७७, न्यान अन्मोद अवलवली मिषाय गली ७९, कलण जिन उत्त समय सहकार ८०, अनन्त विसेष कलण भवति ८१, न्यान अन्मोद मुक्ति गमनं भवतु ॥ ८२ ॥

अर्थ—जहां अपूर्ण श्रद्धा होती है वहां कभी व्रत पालनमें, कभी व्रत रहित होनेमें भाव होते हैं, कभी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें, कभी कुशील रमणमें भाव होते हैं, कभी परिग्रहकी रक्षामें, कभी परिग्रहके विरोधमें भाव होते हैं, कभी मिथ्याज्ञानमें आनन्द मानता है, कभी सम्यग्ज्ञानमें आनन्द मानता है। यह सब विकल दृष्टि है ॥ १ ॥ विकल स्वभावसे यह प्राणी बहुत काल विकलत्रयकी योनियोंमें भ्रमण करता है ॥ २ ॥ जब कभी काल सुधरनेका आवे, विशेष स्वभाव प्रगट हो शुद्ध जिन कथन ॥ ३ ॥ जिनवाणी ४, जिनेन्द्रके श्रद्धान योग्य स्वभाव ॥ ५ ॥ वीतराग आत्मा ॥६॥ वीतरागकी शरण ॥७॥ वीतरागमय ज्ञान ॥ ८ ॥ वीतरागतामें आनन्द, इन बातोंके माननेका समय आजावे ॥ ९ ॥ तब बहुत काल पीछे मनुष्य जन्मकी प्राप्ति हो। उन्नति करते करते मनुष्य जन्म पावे ॥ १० ॥ तब मनुष्य जन्ममें इसके अनेकवार आत्माके जाननेका परिणाम हो ॥११॥ आत्माके ज्ञानकी मददसे आत्माका अनुभव प्रगट हो ॥१२॥ ज्ञानमें आनन्द पानेका स्वभाव प्रगट हो, तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमई रत्नत्रय स्वभाव झलक उठे ॥ १३ ॥ स्त्री या पुरुष वेदमें हो ॥ १४ ॥ ज्ञानानन्दके अभ्यासका स्वभाव प्रगट हो ॥ १५ ॥ आत्मवीर्यके द्वारा ज्ञानकी सहायतासे आत्मानुभव प्रगट हो ॥ १६ ॥ बारबार स्वभावका अनुभव रहा करे ॥ १७ ॥ समय पाकर जिन कथित वीतरागतामें परिणमन हो ॥ १८ ॥ वीतरागमय सम्यग्ज्ञान होजावे ॥ १९ ॥ वीतरागी आत्मा हो ॥ २० ॥ वीतरागताकी मदद हो ॥ २१ ॥ वीतरागतामें प्रवेश हो ॥ २२ ॥ वीतरागभावमें मगनता हो ॥ २३ ॥ क्षायिक वीतरागभाव प्रगट हो ॥ २४ ॥ वीतरागमय

मोक्षका स्वभाव झलके ॥ २५ ॥ वीतरागमें कमल समान प्रफुल्लित हो ॥ २६ ॥ वीतरागतामें रमण हो ॥ २७ ॥ वीतरागतामें मगनता हो ॥ २८ ॥ वीतरागतामें आनन्द माने ॥ २९ ॥ वीतरागता सहित ज्ञान हो ॥ ३० ॥ वीतरागता सहित भेदविज्ञान हो ॥ ३१ ॥ अनन्त वीतरागता हो ॥ ३२॥ वीतरागता सहित ज्ञानका प्रचार हो ॥ ३३॥ वीतराग व आनन्दमय क्षायिक ज्ञान हो ॥ ३४॥ वीतरागतापूर्ण मोक्ष स्वभाव झलके ॥ ३५ ॥ अविनाशी वीतरागता हो ॥ ३६ ॥ सूर्य समान वीतरागी आत्मा हो ॥ ३७ ॥ स्वयं आपमें रमण करै ॥ ३८ ॥ जिनपद प्रगट हो ॥ ३९ ॥ जिनपद हो ॥ ४० ॥ जिन वीतराग आत्मा पदार्थ हो ॥ ४१ ॥ रत्नत्रय स्वभावी वीतराग जिन हो ॥ ४२ ॥ वीतरागतासे ही वीतरागता बढ़ रही हो ॥ ४३ ॥ उपादेय तत्वमें रमणता हो ॥४४॥ सूर्य समान जिन भगवान हो ॥४५॥ वीतरागताका अनुभव हो ॥४६॥ वीतरागतामें परिणमन हो ॥ ४७ ॥ हितकारी वीतरागता हो ॥ ४८ ॥ कर्म नाशक वीतरागता हो ॥४९॥ वीतरागताकी रमणसे वीतरागता उत्पन्न हो ॥ ५० ॥

वीतरागता ही इष्ट भासे ॥ ५१ ॥ वीतराग स्वभाव प्रगट हो ॥ ५२ ॥ वीतरागताका ही लक्ष्य हो ॥५३॥ वीतराग गुप्त अतीन्द्रिय स्वभावमें तन्मय हो ॥ ५४ ॥ वीतरागताकी गुफामें गुप्त होकर आनन्द भोगे ॥ ५५ ॥ वीतरागतासे स्वयं शक्तियें प्रगट हों ॥५६॥ इत्यादि वीतरागमय सूक्ष्म अतीन्द्रिय स्वभाव प्रगट हो ॥ ५७ ॥ अनन्त सुख हो ॥ ५८ ॥ पांच इंद्रिय तीन बल आयु श्वास दश प्राण मनुष्यगतिकी अपेक्षासे हों परन्तु अरहन्तपदकी अपेक्षा केवल चार प्राण हों। वचनबल, कायबल, श्वास, आयु। केवलीके इंद्रिय मनका काम नहीं होता है ॥ ५९ ॥ अनन्त गुण सहित ज्ञान व आनन्दमें मगनता हो। पांच तरहसे मगनता हो, पांच तरहसे रमण हो, पांच तरहसे आनन्द हो, पांच तरहसे चारित्र हो, पांच तरहसे उपादेय अरहन्त परमेष्ठीका ज्ञान हो, पांच तरहका सम्यक्त हो, पांच तरहका सूर्य स्वभाव हो। अर्थात् अरहन्तके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, जीवत्व। इन शुद्ध पांच भावोंमें मगनता है, इन्हींमें रमणता है, इन्हींमें आनन्द है, इन्हींका आचरण है, इन्हींका ज्ञान है, इन्हींका श्रद्धान है, ये ही पांच सूर्य समान प्रकाशित हैं ॥ ६० ॥

भय नाश होगया हो, विला गया हो ॥६१॥ अरहंतके स्वाभाविक अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हों ॥६२॥ सर्वांग सम्यग्दर्शन, अनन्तदर्शन व सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रका प्रकाश हो ॥६३॥ आप ही दाता

हो, आप ही पात्र हो, आपसे आपको आनन्द देता हो ॥६४॥ सर्व कल्पनाओंसे व विकल्पोंसे मुक्त होकर आपमें रमण करता हो ॥६५॥ ज्ञानानन्दमय अनन्त गुणोंके अनुभवका स्वभाव झलकता हो ॥६६॥ ऐसे अरहंत अनन्त गुणोंका अनुभव करते हैं ॥ ६७ ॥ ज्ञान आनन्दका अनुभव करते हैं ॥ ६८ ॥ अनुभवकी सहायतासे अपने स्वभावका स्वाद लेते हैं ॥ ६९ ॥ केवलज्ञान प्रगट है ॥७०॥ अनादिसे होनेवाला कर्मोंका आस्रव नहीं रहा ॥७१॥ ज्ञानमई मुक्त स्वभावमें रमण करते हैं ॥७२॥ अनन्तज्ञानका स्वाद लेते हैं ॥७३॥ कर्म उदयमें आकर क्षय होरहे हैं ॥७४॥ ज्ञान व आनन्दमें मगनता है ॥७५॥ सर्व आकुलता मिट गई है ॥७६॥ स्वप्न समान जगत व्यवहार दूर होगया है ॥ ७७ ॥ अनुपम बलवान ज्ञान व सुख प्रगट है ॥७८॥ सर्व विषयकी चाह जल गई है ॥ ७९ ॥ जिनेन्द्र कथित आत्मीक तत्वका पूर्ण अनुभव है ॥ ८० ॥ अनन्त गुणोंका अनुभव है ॥ ८१ ॥ ज्ञानमय व आनन्दमय आत्मा मोक्षमें चला जाता है ॥ ८२ ॥

भावार्थ—यहां आत्माके अनुभवको मोक्षमार्ग बताकर उसीसे मोक्षका लाभ बताया है। नौमें गुणस्थान तक वेद होता है, आगे नहीं। यह श्रेणी चढ़ते हुए स्त्री व पुरुष वेदकी मुख्यता कही है, यद्यपि नपुंसक वेदधारी भी चढ़ सक्ता है। द्रव्यवेद पुरुषका ही होता है। पुरुष शरीरधारी ही मोक्ष लाभ कर सकता है।



चतुर्थ अध्याय।

पंचेन्द्रिय चौवीस स्थान।

(१) गति–४ सब।
(२) इंद्रिय–पंचेन्द्रिय।
(३) काय–त्रस।
(४) योग–१५ सर्व।
(५) वेद–३ सर्व।
(६) कषाय–२५ सर्व।
(७) ज्ञान-८ सर्व।
(८) संयम–७ सर्व।
(९) दर्शन-४ सर्व।
(१०) लेश्या–६ सर्व।
(११) भव्य–२ दोनों।
(१२) सम्यक्त–६ सर्व।
(१३) सैनी–२ दोनों।
(१४) आहारक–२ दोनों।
(१५) गुणस्थान–१४ सर्व।
(१६) जीव समास–२ सैनी, असैनी, पंचेंद्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त सहित ४।
(१७) पर्याप्ति–६ सब।
(१८) प्राण–१० सब।
(१९) संज्ञा–४ सब।
(२०) उपयोग–१२ सब।
(२१) ध्यान–१६ सब।
(२२) आस्रव–५७ सब।
(२३) योनि–२६ लाख।
(२४) कुल कोड़ि–१०६॥ लाख।

जिन उक्त १, जिन वयन २, जिन दिस्टि ३, जिन इस्टि ४, जिन रस्टि ५, जिन रिस्टि ६, जिन समय इस्टि ७, जिन सह इस्टि ८, जिन उत्पन्न इस्टि ९, जिन सहकार दिस्टि १०, जिन औकास इस्टि ११, जिन अन्मोद न्यान दिस्टि १२, जिन षिपक दिस्टि १३, जिन मुक्त इस्टि १४, जिन उत्पन्न इस्टि १५, जिन इष्ट दर्स १६, जिन उत्पन्न दर्स १७, जिन इस्ट लष्य १८, जिन उत्पन्न लष्य १९, जिन उत्पन्न रमन २०, जिन इस्ट रमन २१, जिन जीव आह्वान

२२, जिन षिपक जिन २३, ध्रुव रमन जिन २४, जिन इस्ट उत्पन्न सुयं लब्धि २५, जिन उत्पन्न इस्ट लब्धि २६, सुयं जिन हितकार २७, सुयं इस्ट लब्धि जिन उत्पन्न हितकार २८, उत्पन्न इस्ट सुयं सुभाव रमण २९, क्रांति २, स्पश २, रूप ४, सब्द ४, मनपर्यय ४, ३०, षिपक सुयं लब्धि ३१, इस्ट षिपक उत्पन्न इस्टि हितकार रमण अर्क इत्यादि ३२ ।

जिन इस्ट उत्पन्न सुयं लब्धि रमण सुभाव जिननाथ ३३, जिन उक्त जिन दर्स जिन वयण ३४, अतीन्द्रिय सुभाव ३५, इंद्रिय विलय ३६, विषय विलय ३७, राग जन रंजन विलय ३८, दोष गारौ दर्सन मोहंध विलय ३९, आवरण विलय ४०, मिथ्या विलय ४१, कषाय विलय ४२, अन्यान वय तव क्रिया कस्ट विलय ४३, जिन उत्त केवल सुभाव ४४, उक्त न्यान सहकार न्यान औकास न्यान ४५, अन्मोद अनन्त बली अतीन्द्रिय सुभाव ४६, भय द्रव्य भय उत्पन्न विलय ४७, अभय भय विनस्य ४८, दात्र पात्र न्यान रमण ४९, न्यान विन्यान रमण ५०, न्यान इष्ट रमन ५१, न्यान उत्पन्न न्यान कलण रमण ५२, इष्ट न्यान गम्य रमण ५३, अगम्य रमण ५४, रंज रमण ५५, आनन्द रमण ५६, अतीन्द्रिय सहकार जिन उक्तं ५७, न दिस्टते किं न विसेष इंद्रिय सुभाव इन्द्री इस्ट सुभाव ५८; इन्द्री उत्पन्न इस्ट विषय ५९, इस्ट विषय उत्पन्न इस्ट मिथ्या राग दोष कषाय आवरण न्यान दर्सन मोहंध संक सल्य भय सहित भयभीत इन्द्री सुभाव दिस्टते ६०, इंद्रिय निरोध विरोध ६१; अन्मोद इन्द्रिय विषय सहकार ६२, इंद्री सुभाव अन्यान वय तव क्रिया ससंक भय इंद्री सुभाव अन्मोद इंद्रिय प्रभाव अनन्त सुभाव इंद्री अन्मोद अतिन्द्री भाव न दिस्टते इन्द्री सुभाव अन्मोद पंचेन्द्रिय सुभाव जीव उत्पन्न भ्रमणं करोति ॥६३॥

अर्थ—जिनेन्द्र कथित तत्व ॥ १ ॥ व जिनवाणीमें हित जब होता है ॥ २ ॥ तब वीतराग सम्यग्दर्शन पैदा होता है ॥ ३ ॥ वीतरागतासे प्रेम होजाता है ॥ ४ ॥ वीतरागताका स्वाद आता है ॥ ५ ॥ वीतरागताकी खड्ग कर्म काटनेको तैयार होजाती है ॥ ६ ॥ वीतराग आत्मा उपादेय भासता है ॥७॥ वीतरागतासे इष्ट होजाता है ॥ ८ ॥ वीतराग भावसे हित बढ़ता जाता है ॥ ९ ॥ वीतरागता सहित सम्यग्दर्शन शोभता है ॥ १० ॥ वीतरागतामें प्रवेश इष्ट भासता है ॥ ११ ॥ वीतरागता सहित आनन्द व ज्ञान व सम्यग्दर्शन झलकता है ॥ १२ ॥ वीतराग क्षायिक सम्यग्दर्शन होजाता है ॥ १३ ॥ वीतराग स्वभाव मुक्तिमें उपादेयपना दिखता है ॥ १४ ॥ वीतरागतासे इष्ट भाव बढ़ता जाता है ॥ १५ ॥ वीतरागता सहित उपादेय तत्वपर दृष्टि रखता है ॥ १६ ॥ वीतरागतासे आत्मदर्शनमें स्थिति बढ़ती जाती है ॥ १७ ॥ वीतरागतासे अनुभवने योग्य तत्व इष्ट भासता है ॥ १८ ॥ वीतरागतासे लक्ष्यका प्रकाश होता जाता है ॥ १९ ॥ वीतरागतासे आत्मरमण बढ़ता जाता है ॥ २० ॥ वीतरागतासे इष्ट तत्वमें रमण होता है ॥ २१ ॥ तब वीतराग आत्माका प्रकाश होजाता है ॥ २२ ॥ वीतराग क्षायिक भावधारी जिन होता है ॥ २३ ॥ अविनाशी आत्मरमी जिन होजाता है ॥ २४ ॥ वीतराग इष्ट तत्वके द्वारा स्वयं आत्माकी लब्धियें प्रगट होजाती हैं ॥ २५ ॥ वीतरागतासे इष्ट लब्धियें प्रगट होती हैं ॥ २६ ॥ तब आत्मा स्वयं हितकारी अरहन्त होजाता है ॥ २७ ॥ स्वयं इष्ट भावको प्राप्त किये हुए हितकारी जिनेन्द्र होजाता है ॥ २८ ॥ तब उपादेयके प्रकाशसे स्वयं वे जिनराज अपने स्वभावमें रमण किया करते हैं ॥२९॥ सोलह प्रकारसे मन वचन कायको निरोध कर रहे हैं अर्थात् काय पद्मासन है या कायोत्सर्ग है, स्पर्शसे कठोर है या कोमल है, रूप सुन्दर, असुन्दर, दीर्घ या लघु है, वचन सत्य, असत्य, उभय, अनुभय या मनके सत्यादि चार तरहके विचारसे १६ विकल्प नहीं हैं ॥ ३० ॥ स्वयं क्षायिक लब्धियोंके धारी होते हैं ॥ ३१ ॥ इष्ट क्षायिक भाव सहित अपने इष्ट तत्वमें रमण करनेवाले सूर्य समान तेजस्वी जिन होजाते हैं ॥ ३२ ॥ वे ही उपादेय वीतराग भावके द्वारा उत्पन्न स्वयं आत्माका प्रकाश उसमें रमण करनेवाले स्वभावमई जिनेन्द्र हैं ॥ ३३ ॥ जो कोई जिन कथित वीतराग सम्यग्दर्शनमें जिनवाणीके अनुसार रमण करते हैं ॥ ३४ ॥ वे अतीन्द्रिय स्वभाव होजाते हैं ॥ ३५ ॥ इंद्रियोंके द्वारा विषयोंका ग्रहण बन्द होजाता है ॥ ३६ ॥ इंद्रियोंके विषयोंमें राग दूर होजाता है ॥ ३७ ॥ लोगोंके रंजायमान करनेका रागभाव नहीं

रहता है ॥३८॥ अहंकारके दोपसे पूर्ण दर्शन मोहका अन्धपना क्षय होगया है ॥३९॥ कर्मोंका आवरण दूर होगया है ॥ ४० ॥ मिथ्यात्वका क्षय होगया है ॥ ४१ ॥ कषायोंका क्षय होगया है ॥ ४२ ॥ अज्ञानपूर्वक तप, व्रत क्रियाकांडका कष्ट मिट गया है ॥ ४३ ॥ जिनेन्द्र कथित केवलीका स्वभाव प्रगट होगया है ॥४४॥ जिन कथित शुद्ध ज्ञान स्वाध्यायिक ज्ञान, केवलज्ञान प्रकाशित है ॥ ४५ ॥ अनुपम वीर्यवान आनन्दमय अतींद्रिय स्वभाव प्रगट है ॥ ४६ ॥ तत्वमें भय, भय कर्मका आस्रव सब क्षय होगया है ॥ ४७ ॥ भयोंका नाश होकर निर्भय पद प्रगट होगया है ॥ ४८ ॥ आप ही ज्ञान दाता हैं, आप ही ज्ञानके लेनेवाले पात्र हैं। आपसे आपके ज्ञानमें रमण करते हैं ॥ ४९ ॥ ज्ञानमें रमणशील हैं ॥ ५० ॥ उपादेय शुद्ध ज्ञानमें रम रहे हैं ॥ ५१ ॥ ज्ञानसे प्रगट ज्ञानके अनुभवमें रमण कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ उपादेय व ज्ञानगम्य आत्मामें रमण कर रहे हैं ॥ ५३ ॥ अतीन्द्रिय आत्मामें रमण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥ वे आनन्दमें रमण कर रहे हैं ॥ ५५ ॥ परमानन्दमें रमण कर रहे हैं ॥ ५६ ॥ परन्तु जहां अतीन्द्रिय स्वभावका अनुभव जैसा जिनेन्द्रने कहा है ॥ ५७ ॥ नहीं दिखलाई पड़ता है, क्यों नहीं दिखलाई पड़ता है ? इंद्रियोंका व्यापार है व वही व्यापार उपादेय भास रहा है ॥ ५८ ॥ इंद्रियोंके भोगके लिये विषयोंको एकत्र करता है ॥ ५९ ॥ इष्ट विषयोंमें रमण करनेसे मिथ्यात्यभाव, राग द्वेष भाव, कषाय भाव, कर्मका आवरण, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, शङ्का, शल्य, भय सहित इंद्रियोंका व्यापार ही देखा जाता है ॥ ६० ॥ वहां इंद्रियोंके रोकनेका अभाव है ॥ ६१ ॥ जिनसे इन्द्रियोंके विषयभोगनेमें सहायता मिलती है उनसें आनन्द होता है ॥ ६२ ॥ इंद्रियोंके विषयभोगके लिये अज्ञानमय व्रत, तप क्रियामें लीन रहता है, विषयोंमें जानेकी शङ्का रखता है, भयवान रहता है, इंद्रियोंके विषयोंमें रंजायमान होनेके प्रभावसे अनन्त स्वभाव इंद्रियोंके विषयानन्दके दिखते हैं, परन्तु अतीन्द्रिय स्वभावका रमण नहीं दीखता है, इंद्रियोंके विषयोंमें मगन होनेसे वह जीव पञ्चेंद्रिय जाति कर्मको बांधकर पञ्चेंद्रिय हो होकर भ्रमण करता है ॥ ६३ ॥

अतींद्रिय सुभाव न्यान अन्मोद विन्यान न्यान अन्मोद न दृष्टते । अन्यान अन्मोद इंद्री सुभाव–पंचेन्द्री सुभाव संसार सरणि भ्रमणं करोति १, जदि कदि कालांतर सुकीय सुभाव न्यान अन्मोद २, अतींद्रिय सुभाव अतींद्रिय सहकार ३, अतींद्रिय इस्ट ४, अतींद्रिय उत्पन्न न्यान

५, इस्ट न्यान ६, इस्टि न्यान ७, वयण आताप न्यान ८, परिणै न्यान ९, समय न्यान १०, दरस न्यान ११, औकास न्यान १२, अन्मोद अतींद्रिय सुभाव न्यान अन्मोद कम्म षिपति १३, इंद्री विषय विलय १४, रंज रमण आनन्द अतींद्रिय न्यान अन्मोद १५, राग दोष गारव दर्सन मोहंध न्यान आवरण घाति कम्म, मिथ्या कषाय, संक सल्य संक भय विलयंति १६, न्यान विन्यान अतींद्रिय सुभाव न्यान अन्मोद कम्म षिपति १७, अनन्त चतुस्टय परमेस्टि रयणत्तय सुयं लब्धि १८, रमण हितकार सहकार अनन्त विसेष न्यान अन्मोद जिन न्यान सुद्ध बुद्ध केवल सुभाव, न्यान आचरण, सम्यक्त, वीर्य, अनन्त क्षय, उपशम गुप्ति रमण १९, न्यान गुण व्रत तव दान व्रत रयण तव सिद्धि सुयं लब्धि २०, दरस लष्य रमण तव परमेस्टि २१, न योग श्री रयण तप श्री सुभाव चतुस्टय रमण २२, जिननाथ सुभाव विमल २३, कलय विकलय विलय २४, अतीन्द्रिय सुभाव न्यान अन्मोद २५, कम्म विलय मुक्तं गता सिद्धं सुवं ध्रुवं सिद्धि भवतु ॥२६॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टी पंचेंद्रिय जीवके भीतर अतीन्द्रिय स्वभावका व ज्ञानानन्दका अनुभव नहीं दिखलाई पड़ता है, वह अज्ञानमें मगन हैं, इंद्रियोंके स्वभावमें, पांचों इंद्रियोंके विषयमें लीन होकर संसार वनमें भ्रमण करता है ॥१॥ यदि कभी काल आजावे तो उसे अपने स्वभावका ज्ञान हो व उसीमें आनन्द माने ॥ २ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावमें रमण अतीन्द्रिय स्वभावके प्रकाशका कारण है ॥ ३ ॥ ऐसा समझकर अतीन्द्रिय भाव उपादेय भासे । ४ ॥ अतीन्द्रिय स्वभावके रमणसे ज्ञान प्रगट हो ॥ ५ ॥ ज्ञान ही उपादेय भासे ॥ ६ ॥ ज्ञानमें ही स्वाद ले ॥ ७ ॥ आत्मज्ञानका कथन करे व आत्मज्ञानकी चर्चा करे ॥ ८ ॥ ज्ञानमें परिणमन करे ॥ ९ ॥ ज्ञानमय आत्मा होजावे ॥ १० ॥ दर्शनज्ञानमें रमण करे ॥ ११ ॥ ज्ञानमें ही प्रवेश करे ॥ १२ ॥ अतीन्द्रिय स्वभाव व ज्ञानानन्दमें मगन होनेसे कर्मोंका क्षय होता है ॥ १३ ॥ इंद्रियोंके विषयकी चाह गल जाती है ॥ १४ ॥ अतीन्द्रिय ज्ञान व आनन्दमें मगन होनेसे व रमण करनेसे ॥ १५ ॥ राग द्वेष, अभिमान, दर्शन मोह, ज्ञानावरण आदि घातिकर्म, मिथ्यात्व, कषाय, शङ्का शल्य भयआदि सब विभाव क्षय होजाते हैं ॥ १६ ॥ ज्ञानमय अतीन्द्रिय स्वभावमें ज्ञान सहित

आनन्द लाभ होनेसे कर्मोंका क्षय होजाता है ॥ १७ ॥ स्वयं अनन्त चतुष्टय सहित व रत्नत्रयमई अरहन्त परमेष्ठी पदका लाभ होजाता है ॥ १८ ॥ तब वे हितकारी व साथ रहनेवाले अनन्त गुणोंमें रमण करते हैं। ज्ञानमय, आनन्दमय जिनेन्द्र, शुद्ध, बुद्ध केवल स्वभावी ज्ञानमें आचरण करनेवाले, क्षायिक सम्यग्दृष्टी, अनन्त वीर्यवान, अनन्त कालतक क्षायिक व शांत भावमें गुप्त होकर रमण करते हैं ॥ १९ ॥ उन्होंने आत्मज्ञानसे, मूलगुणोंसे, व्रतोंके पालनेसे, तप करनेसे व रत्नत्रय स्वभावमें लीन होनेसे स्वयं सिद्धिको प्राप्त किया है ॥२०॥ अपने लक्ष्यका दर्शन कर लिया है। वे रत्नत्रयके स्वामी परमेष्ठी हैं ॥ २१ ॥ और चौदहवें गुणस्थानमें योगोंका होना बन्द होगया। केवल रत्नत्रय स्वभावमें या अनन्तज्ञानादि चतुष्टयमें रमणशील एकाग्र हैं ॥ २२ ॥ वे जिनेन्द्र स्वभावसे निर्मल हैं ॥ २३ ॥ संकल्प विकल्प आदिका क्षय है ॥ २४ ॥ वे अतींद्रिय स्वभावधारी ज्ञानमें मगन हैं ॥ २५ ॥ वे ही अघातीय चार कर्मोंके क्षयसे मोक्षपद पाते हैं। स्वयं सिद्ध ध्रुव अविनाशी सिद्ध होजाते हैं ॥ २६ ॥

खरभाग पृथ्वी निरूपणं— पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके तीन भाग हैं–खरभाग, पंक भाग, अब्बहुल भाग। पहली दोमें भवनवासी देव व व्यंतरोंका स्थान है। अब्बहुलमें पहला नर्क है। उसको लक्ष्यमें लेकर तारणस्वामी कहते हैं—

जिन उक्तं जिन वयणं जिन दरस, दर्सयंति जिन समयं।
जिन सुभाव जिन गमनं, जिन अन्मोय न्यान विन्यानं ॥ १ ॥
जिन रहनं जिन गहनं, जिन उवनं जिन हिययार सुद्ध सुइ मिलनं।
जिन सहयार सु रमनं, जिन विन्यान न्यान सुइ सुवनं ॥ २ ॥
जिन अषयं जिन सुरयं, जिन वइ जिन समय जिनय जिन जिनयं।
जिन सहकार सु ममलं, जिन अवयास नन्त जिन वयनं ॥ ३ ॥
जिन कमलं जिन ममलं, जिन उत्तं जिन अर्थ ती अर्थं।
जिन समय अर्थं सदर्थ, जिन सहकार नंत सु ममलं ॥ ४ ॥

जिन परिणै जिन प्रमाणं, जिन उवएस नन्त नन्ताए।
जिन अन्मोद सु समयं, जिन षिपनं जिनयति, जिनन्द विंदानं ॥ ५ ॥
जिन परमेस्टि सु चरणं, जिन सम्मएव अवगाहणं।
जिन लंकृत जिन विन्यानं, जिन जिनयति अनंत कम्म बंधानं ॥ ६ ॥
जिन तत्व दव्वपय अर्थं, जिन दिट्ठं दव्व दिस्टि इट्टं च।
जिन काया क्रांति जिन उवनं, जिन कम्मोद न्यान विन्यानं ॥ ७ ॥
जिन उत्त नन्तानन्तं, नन्त सुभावेन कम्म विलयंती।
जिन नन्तानन्त सु दिट्ठं, जिन उत्तं नन्तानन्त सिद्धि सिद्धानं ॥ ८ ॥

आठ गाथाओंका अर्थ—जो कोई जिनेन्द्र कथितको, जिनवाणीको देखते हैं, जिन वचनपर श्रद्धान लाते हैं, वे वीतराग आत्माका अनुभव करते हैं। वे वीतराग स्वभावी होकर वीतराग भावमें परिणमन करते हैं, वे वीतरागमय आनन्द व ज्ञानका स्वाद लेते हैं ॥ १ ॥

जो वीतराग भावमें गुप्त होते हैं, वीतरागताको ग्रहण करते हैं, वीतराग भावको बढ़ाते हैं, वीतराग भावसे शुद्ध स्वभावी आत्मासे मिलते हैं, वीतराग भावमें रमण करते हैं, वे ही वीतराग विज्ञानमें लीन होते हैं ॥ २ ॥

श्री जिनेन्द्र भगवान अविनाशी हैं, जिनेन्द्र सूर्य समान तेजस्वी हैं, वे वीतराग पदमें हैं, वे ही वीतराग आत्मा हैं, वे ही कर्मविजयी जिन हैं, वीतराग भावके कारण निर्मल हैं। श्री जिनेन्द्रमें अनन्त ज्ञान है, उनके ही वीतरागतापूर्ण वाणीका प्रकाश होता है ॥ ३ ॥

श्री जिनेन्द्र कमलके समान प्रफुल्लित हैं, श्री जिनेन्द्र शुद्ध हैं, उनका कथन वीतराग है, वे ही वीतरागी आत्मा पदार्थ हैं, वे ही रत्नत्रय स्वरूप हैं, वे ही वीतराग समयसार हैं, वे ही सत्य पदार्थ हैं, वीतरागताके साथ ये अनन्त कालतक निर्मल बने रहते हैं ॥ ४ ॥

वे वीतरागभावमें परिणमन करते हैं, वे ही जिनेन्द्र प्रमाण हैं, मानने योग्य हैं, जिनेन्द्रने अन-

न्तानन्त गुण पर्याय सहित द्रव्योंका उपदेश किया है, वे वीतराग आत्मामें मगन हैं, वे क्षायिक भाव धारी हैं, वे जिनेन्द्र ज्ञानानुभवी सच्चे कर्मविजयी हैं ॥ ५ ॥

वे परमेष्ठी जिनेन्द्र आपमें आचरण कर रहे हैं, वे जिनेन्द्र वीतराग सम्यग्दर्शनमें लीन हैं, वे वीतरागतासे शोभित हैं, वे वीतरागमय ज्ञानी हैं, श्री जिनेन्द्रने अनन्त कर्म बन्धको जीत लिया है ॥ ६ ॥

श्री जिनेन्द्र ही सच्चे तत्व हैं, सत्य आत्मा द्रव्य है, सत्य आत्मा पदार्थ है, जिनेन्द्रने इष्ट व द्रव्यार्थिक दृष्टिसे सर्व द्रव्योंको यथार्थ देख लिया है। श्री जिनेन्द्रका शरीर परमौदारिक शोभायमान है, वे प्रगट जिनेन्द्र हैं, जिनेन्द्रने ज्ञान व आनन्द पूर्ण है ॥ ७ ॥

जिनेन्द्रने अनन्त पदार्थोंको बताया है, उनका अनन्त स्वभाव प्रगट है, उनके कर्म क्षय होगये हैं, जिनेन्द्रने अनन्तानन्त द्रव्यगुण पर्यायोंको देखा है। जिनेन्द्रने कहा है कि अनन्तानन्त जीव सिद्धिको पाकर सिद्ध होचुके हैं ॥ ८ ॥

तस्य जिनय जिन वयणं, षल सुभावेन किं सहकारेण किं करि जानंति १, षल सुभाव २, षल ध्रियो ३, षल वास स्थितं ४, षल सुभाव जिन वयणं किं कारणं, किं विशेषनं रमणं ५, षल पृथ्वी सुभाव उत्पन्न किंनर किं पुरिसा सुभाव, जिन उक्तं जिन रमणं किं किरिया जानंति ६, षल सुभाव जिन रंजन राग ७, जिन सुभाव जिन वयणं न रमंति ८, तं सुभावेन किंनर किंपुरिस उत्पन्नं भवति ९, जदि कदि कालंतर अनन्त काल भ्रमण भरत सुद्ध बुद्ध सुभावेन जैनोक्त जिन न्यान अन्मोद न्यान रमण न्यान विन्यान रमण ॥ १० ॥

सुयं लब्धि सोल ही सुभाव ११, जन रंजन राग विलयंगता संक सत्रह विलयं गता १२, निसंक रूव भय सल्य संक विलयं १३, निसंक सुभाव १४, जिन अन्मोद १५, जिन रमण प्रतिपाद्य १६, सूक्ष्म क्रिया सूक्ष्म प्रतिवाद १७, जदि काल सुभाव गहणं तदि काल उत्पन्न मनुष्य फल १८, जिन उक्त कलण १९, जिन उक्त ग्रहण अन्मोद न्यान उत्पन्न २०, वज्रनाराच रमण सुभाव २१, न्यान सुभाव २२, न्यान विन्यान मुक्त सुभाव मुक्ति गतं ॥ २३ ॥

अर्थ—खरभागमें किंनर किंपुरुष व्यंतर रहते हैं उनमें जो उत्पन्न होते हैं उनको लक्ष्यमें लेकर कहते हैं कि जो कोई दुष्ट स्वभावसे जिन भगवानको व जिनेन्द्रके वचनको क्या है, क्या नहीं है ऐसा शंकाशील हो, बिना समझे जानते हैं ॥ १ ॥ दुष्ट स्वभाव रखनेसे ॥ २ ॥ उनको दुष्टताकी बात ही अच्छी लगती है, विषयभोगकी बात सुहाती है ॥ ३ ॥ दुष्टोंके व नीचोंके स्थानोंमें जो रहते हैं, कुसङ्गति रखते हैं ॥ ४ ॥ दुष्ट स्वभाव या मूर्ख स्वभावसे वे जिनवाणीमें रमण नहीं करते हैं ॥ ५ ॥ उनका स्वभाव ऐसा बन जाता है जिससे वे खरभाग पृथ्वीमें उत्पन्न होते हैं। किन्नर व किंपुरुष व व्यंतर होते हैं, वे जिन कथनमें रमण नहीं करते हैं, केवल क्रियाकाण्डमें मिथ्यात्व भावमें लगे रहते हैं ॥ ७ ॥ खल सुभावसे जनोंको राजी रखनेके रागमें लगे रहते हैं, खोटा तप करते हैं, पुजवाते हैं ॥ ७ ॥ वीतराग भगवानके स्वभावमें व जिनवाणीमें रमण नहीं करते हैं ॥ ८ ॥ ऐसे स्वभावसे खोटा तप करके किन्नर किंपुरुष पैदा होते हैं ॥ ९ ॥ इस तरह अनन्त काल मिथ्यात्व भावके कारण अनेक पर्यायोंमें भ्रमण करते रहते हैं। कालांतरमें समय आजाता है, तब वे मनुष्य होकर शुद्ध बुद्ध स्वभाव आत्माको पहचानते हैं। श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंमें, वीतराग विज्ञानमें रमण करते हैं, ज्ञानानन्दमें मगन होते हैं ॥ १० ॥ स्वयं सोलह कारण भावनाको भाकर तीर्थंकर कर्म बांधते हैं ॥ ११ ॥ तब जनरंजन राग दूर होजाता है, सब प्रकारकी शंकाएँ मिट जाती हैं अर्थात सात तत्वोंमें शंका नहीं रहती है, सात प्रकारका भय नहीं रहता है व तीन शल्य नहीं रहती हैं ॥ १२ ॥ निःशंक स्वभाव होजाते हैं, सर्व भय व शंका व शल्य मिट जाती है ॥ १३ ॥ निःशंक स्वभावमें ॥ १४ ॥ वीतराग भावमें आनन्द मानते हैं ॥ १५ ॥ वीतराग भावमें रमण करते हुए केवली होजाते हैं ॥ १६ ॥ फिर तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति तीसरे शुक्लध्यानको पाते हैं ॥ १७ ॥ फिर चौदहवें गुणस्थानमें जाकर योग रहित स्वभावमें लीन रहते हैं तब मनुष्यभव पानेका सच्चा फल पाते हैं ॥ १८ ॥ जैसा जिनेन्द्रने कहा है उसी शुद्ध आत्मतत्वमें मगन रहते हैं ॥ १९ ॥ जिन कथित तत्वमें आनन्द पाते हैं, केवलज्ञानसे प्रकाशित रहते हैं ॥ २० ॥ जैसा उनका शरीर वज्रवृषभनाराच संहननका होता है, वैसा आत्मा भी वज्र समान थिर आस्रव रहित होजाता है ॥ २१ ॥ वे ज्ञान स्वभावी होते हैं ॥ २२ ॥ ज्ञान स्वभावको लिये हुए ज्ञानाकार सर्व कर्मोंसे व शरीरोंसे छूटकर मोक्षको प्राप्त होजाते हैं ॥ २३ ॥

पंक पृथ्वी निरूपणं ।

गाथा—जिन उत्तं सु विमलं, जिन सहकारेण न्यान अन्मोयं ।
भय सल्य संक विलयं, अन्मोद सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥ १ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रका कथन दोष रहित शुद्ध है । वीतराग भावकी सहायतासे ज्ञानमें आनन्द आता है । सर्व भय, शल्य, शंकाएँ नाश होजाती हैं । जिसका स्वभाव अभय आत्मानुभवरूप होजाता है वही सिद्धिको पाता है ।

जिन उक्त १, जिनपद २, जिन अष्यर ३, जिन सुर ४, जिन रमण ५, जिन विन्यान ६ जिनपद जिन सब्दं ७, जिन दिस्टि ८, जिन उक्त जिन समय ९, जिन परिणै १०, जिन प्रमाण ११, जिन उक्त जिन सहकार १२, जिन औकास १३, जिन अनन्त चतुस्टय १४, जिन अन्मोद १५, जिन षिपक १६, जिन मुक्ति १७, जिन मुक्ति जिन वयण १८, जिन दरस १९, जिन लष्य २०, जिन अलष्य २१, जिन गम्य २२, जिन अगम्य २३, जिन जिन-यति जिनपद न दिस्टते २४, अपद पद अनिस्ट अपद करण अपद अनिष्ट पद, अनिस्ट व्रत तव क्रिया अनिस्ट व्रत राग बन्ध २५, न्यान रमण न दिस्टते न सार्धं करोति २६, मिश्र राग बन्ध, राग सुभाव पंक प्रियो पंक पृथ्वी, महोरग गन्धर्व जष्य जष्यी पंक सुभाव २७, जष्य व्रति उत्पन्न अजय ग्रहण जय विलयं २८, जष्य सब्द, जष्यपति, जष्य त्रिजाति उत्पत्ति अनंत संसार भ्रमण भवनवासिनो उत्पत्ति अस्तीति भवति २९, जदि कदि अनन्त काल भ्रमण जदि न्यान उत्पन्न, न्यान सहकार, उत्पन्न न्यान रमण ३०, न्यान अन्मोद जीव मनुष्य काल लब्धि प्राप्ति भवति ३१, मनुष्य पंकज माल विधि ३२, मनस्य उववन्नं सहाइ विलयन्ति ३३, विलय कम्म बन्धं ३४, न्यान अन्मोय सिद्धि संपत्तं ३५ ।

अर्थ—जिसको जिनेन्द्र कथित सुहाता नहीं ॥ १ ॥ जिन पद भाता नहीं ॥ २ ॥ अविनाशी वीतराग भावका बोध नहीं ॥ ३ ॥ जिन सूर्य दिखता नहीं ॥ ४ ॥ वीतराग भावमें रमण होता नहीं ॥ ५ ॥ वीतराग ज्ञानका बोध नहीं ॥ ६ ॥ जिन पद व जिन शब्दका भाव भासा नहीं ॥ ७ ॥ वीतराग सम्यक्त हुआ नहीं ॥ ८ ॥ जिनेन्द्र कथित वीतरागी आत्माका बोध नहीं ॥ ९ ॥ वीतराग भावमें परिणमन नहीं ॥ १० ॥ जिन स्वरूप सच्चा भासता नहीं ॥ ११ ॥ जिन कथनसे वीतरागकी सहाय लेता नहीं ॥ १२ ॥ वीतराग भावमें प्रवेश होता नहीं ॥ १३ ॥ अनन्तज्ञानादि चतुष्टयधारी जिनको जो पहचानता नहीं ॥ १४ ॥ वीतरागतामें आनन्द आता नहीं ॥ १५ ॥ क्षायिक वीतराग भाव भासता नहीं ॥ १६ ॥ जिनेन्द्र कथित मुक्तिकी पहचान नहीं ॥ १७ ॥ जिन कथित जिनवाणीका मनन नहीं ॥ १८ ॥ जिनराजके धर्मपर दृष्टि नहीं ॥ १९ ॥ अनुभवने योग्य वीतराग भावको जानता नहीं ॥ २० ॥ अतीन्द्रिय गोचर वीतराग भावको पहचानता नहीं ॥ २१ ॥ श्री जिनराज ध्यान योग्य हैं ऐसा श्रद्धान नहीं ॥ २२ ॥ जिनराज अतीन्द्रिय हैं ऐसा लक्ष्य नहीं ॥ २३ ॥ जिसको जिनपद वीतराग पदपर श्रद्धान नहीं ॥ २४ ॥ परपद, अनिष्ट पद, जो दुःखका कारण है वह अच्छा लगता है। हानिकारक मिथ्यात्व सहित व्रत करता है, तप तपता है, क्रिया-काण्ड करता है। हानिकारक, मोक्षमार्ग विरोधी व्रतोंमें रागका बन्धन है ॥ २५ ॥ उसके भीतर आत्म-ज्ञानमें रमणता नहीं दिखलाई पड़ती है, न वह ज्ञानीकी संगति करता है ॥ २६ ॥ मिश्र राग रहता है, धर्म अधर्मका मिश्रित राग होता है, राग स्वभावकी कीच प्रिय भासती है। इससे पंक पृथ्वीमें जाकर महोरग, गन्धर्व, जक्ष जक्षी जन्मता है ॥ २७ ॥ यक्षदेवका स्वभाव प्रगट होता है, संसार भाव ग्रहण करता है, जयपना या सम्यक्त बिला रहा है ॥ २८ ॥ यक्षोंका पति होता है, यक्षोंकी तीनप्रकार जातियोंमें उत्पन्न होता है। मिथ्यात्वके कारण अनन्त संसारमें ही भ्रमण करता है। बारबार भवनवासी देव होजाता है ॥ २९ ॥

अनन्त काल भ्रमण करते करते जब कभी सम्यग्ज्ञान पैदा होता है, तब ज्ञानकी मददसे ज्ञानमें रमण करता है ॥ ३० ॥ ज्ञानमें आनन्द मानता है। ऐसे मनुष्य जीवकी काल लब्धि आजाती है ॥ ३१ ॥ तब मनुष्य आत्माके गुणरूपी कमलोंकी माला पहनता है, ऐसा आत्मरमी होजाता है ॥ ३२ ॥ कि मनकी सहायता नहीं रहती है ॥ ३३ ॥ सर्व कर्म बन्ध क्षय होजाता है ॥ ३४ ॥ ज्ञानानन्दके साथ सिद्धिको पालेता है, मुक्त होजाता है ॥ ३५ ॥

भावार्थ—यहां सामान्य कथन है-यद्यपि पंक पृथ्वीमें असुरकुमार भवनवासी व राक्षस जातिके व्यंतर रहते हैं, शेष भवनवासी व व्यंतर खर भागमें रहते हैं। यहां यक्षादिको पंक पृथ्वीमें कहा है, यहां दृष्टि मात्र रत्नप्रभा पृथ्वीमें खर व पंक भागमें थी। इससे कोई विवादकी बात नहीं, प्रयोजन मिथ्यात्वके फलका बताया है। मिथ्यात्वी जीव ही भवनवासी व व्यंतर जन्मता है।

गाथा—अनिष्ट इष्ट नहु पिच्छै, इष्ट अन्मोय उवन सोइ रमणं।
इस्टं इस्टंति न्यानं, उत्पन्न अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥ २ ॥
उवनं उवन सहावं, उवन हिययार न्यान विन्यानं।
अर्क विंद हिय हुवयं, आगन्तु रमण हिययार सिद्धि च ॥ ३ ॥
उवन हिययार संजुत्तं, उवनं सहकार रमण विन्यानं।
भय सल्य संक विलयं, परजय भय विलय न्यान उववन्नं ॥ ४ ॥
परजय सुभाव विलयं, न्यान अन्मोय नन्द जिन नन्दं।
न्यानं न्यान सु उवनं, उववन अन्मोय सिद्धि संपत्तं ॥ ५ ॥

॥ इति चौवीस ठाणौ ग्रन्थ जिन तारणतरण विरचित सम उत्पन्निता ॥

अर्थ—जहां शुभ व अशुभ भावोंपर प्रेम नहीं होता है, उपादेय शुद्ध आत्मीक तत्वमें आनन्द पैदा होजाता है, उसी शुद्धोपयोगमें रमण होता है। ज्ञान ज्ञानको ही चाहता है। इसीसे केवलज्ञानके साथ अनन्त सुख झलकता है और आत्मा सिद्ध गतिको प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

जब आत्मामें सम्यग्दर्शनका स्वाभाविक गुण प्रगट होजाता है और इस सम्यक्तके साथ ज्ञान सम्यग्ज्ञान होजाता है और वह ज्ञानी ज्ञान सूर्यसम आत्मापर अनुभव करता है, ध्यानकी आग जलाता है और मोक्ष भावमें रमण करता है तब कर्मोंका नाश करके हितकारी सिद्धगतिको पालेता है ॥ ३ ॥

सम्यग्दर्शन हितकारी है, उसीके साथ ज्ञानमें रमण होता है, तब सब भय, शल्य व शङ्काएँ दूर

होजाती हैं । शरीरके छूटनेका व जन्म मरणका भय नहीं रहता है तब केवलज्ञान जाग जाता है ॥ ४ ॥

शरीरमें रमणका भाव दूर होजाता है । ज्ञान आत्मीक आनन्दमें मगन होजाता है तब आत्मानुभव रूपी ज्ञानसे केवलज्ञान पैदा होजाता है और अनन्त सुख झलक जाता है तब आत्मा सिद्धगतिको पा लेता है ॥ ५ ॥

इस तरह श्री तारणतरणस्वामी रचित चौवीस ठाणाकी भाषा पूर्ण हुई ।

ग्रन्थका सारांश ।

इस ग्रन्थमें श्री तारणस्वामीने चौवीस स्थान संसारी जीवोंके दिखलाये हैं। ये सब स्थान भेदरूपसे संसारी जीवोंके पाये जाते हैं। जब संसारी जीवोंको कर्मबन्धकी दृष्टिसे देखा जावे तो उनमें चार गतियां, पांच इंद्रियां, काय छः, योग तीन, वेद तीन, कषाय पचीस, ज्ञान आठ, संयम सात, दर्शन चार, लेश्या छः, भय दो, सम्यक्त छः, सेनी दो, आहारक दो, चौदह गुणस्थान, जीव समास १९, पर्याप्त छः, प्राण दस, संज्ञा चार, उपयोग बारह, ध्यान सोलह, आस्रव सत्तावन, योनि चौरासी लाख, कुल कोडि १९७॥ लाख, ऐसे चौवीस स्थान पाये जाते हैं । परन्तु उन संसारी जीवोंको शुद्ध निश्चयनयसे देख जावे तो वे इन २४ अवस्थाओंसे रहित परम शुद्ध अतीन्द्रिय, शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वरूप, परमानन्दमय, निराकुल ध्यानकी कल्पनासे रहित-जन्म, मरणके दोषसे शून्य नित्य अविनाशी दीखते हैं। यहां लिखित चौवीस ठाणकी प्रतिमें कुल कोडि १९९॥ लाख है जब कि श्री गोम्मटसारमें १९७॥ लाख है । मनुष्यके कुल कोड़ि १२ लाख गिने हैं, १४ लाख लेनेसे १९९॥ लाख होते हैं ।

गोमट्टसार गाथा—एया च कोडि कोडी सत्ताण उदीयं सद सहस्साइं ।

पण्णं कोडि सहस्सा सव्वं गीणं कुलाणं य ॥ ११६ ॥

भावार्थ—सर्व जीवोंके समस्त कुलोंकी संख्या एक कोड़ाकोडी सत्ताणवे लाख तथा पचास हजार कोडि है । १९७५००००००००००

शायद किसी और ग्रन्थके आधारसे श्री तारणस्वामीने १९९॥ लाख कोडि कुल लिखे हैं ।

नर्ककी दशा बताकर व पांच स्थावरोंकी व खासकर निगोदकी दशा बताकर स्वामीने बताया है। मिथ्यात्वके अन्धकारसे ग्रसित प्राणी अपने आत्माके महत्वको न पहचानकर इंद्रिय विषय व कषायोंकी तीव्रतासे दुर्गतिमें चला जाता है तथा अनन्त काल भ्रमण करता है। कभी क्षुद्र भव भी धार लेता है। एक श्वासमें अठारह दफे जन्म, मरण करता है। ऐसी दुर्गतिमें पड़े हुए जीव भी भावोंकी पलटनसे उन्नति करते करते मानव गतिमें आजाते हैं और यहां सम्यग्दर्शनको पाकर आत्मज्ञानी होजाते हैं। फिर उन्नति करते करते इसी भवसे या अन्य भवोंसे चार घातीय कर्म नाशकर अरहन्त होजाते हैं फिर शीघ्र ही सर्व कर्मसे मुक्त होकर सिद्ध होजाते हैं। सम्यक्तकी उत्पत्तिसे ही ज्ञानानन्दमें रमण होजाता है, विषय रमण घटता जाता है। जैसा २ आत्म रमण बढ़ता है, विषय रमण घटता जाता है वैसा वैसा मोक्षमार्ग तय होता जाता है। मोक्षका उपाय एक परमानन्द भोगते हुए आत्माका ध्यान है या स्वानुभव है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्वमुत्तमम्। तथा तथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि ॥ ३७ ॥
यथा यथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि। तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्वमुत्तमम् ॥ ३८ ॥
आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगीर्बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जैसे जैसे उत्तम आत्मतत्व अपने अनुभवमें आता जायगा वैसे वैसे सुगमतासे प्राप्त विषय भी नहीं सुहाएंगे। जैसे जैसे सुलभ भी विषय नहीं सुहाएंगे वैसे वैसे अपने अनुभवमें उत्तम तत्व विशेष आता जायगा। जो व्यवहारसे बाहर होकर आत्माके ध्यानमें लीन होजाते हैं उनको इस योगाभ्याससे अद्भुत आनन्द होता है। यही परमानन्द निरन्तर विशेष कर्मरूपी ईंधनको जलाता है। स्वानुभवके समय बाहरी कष्टोंको लक्ष्यमें नहीं लेता हुआ कुछ भी खेदित नहीं होता है।

श्री तारणस्वामीने इस करणानुयोग ग्रन्थमें भी अध्यात्मभावकी वर्षा वर्षादी है। शब्दोंसे पुनः पुनः अपने आत्मीक तत्वका मनन होता है।

मिथ्यात्वसे ही यह जीव भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव जन्मता है। यह बात भी स्वामीने बताई है। जितनी दुर्गतियोंके स्थान यहां बताए हैं, नर्क गति व एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यंत तिर्यंच गति व कुदेव गति इन सबको वही जीव पाता है जो अपने आत्माके ज्ञानसे बाहर है। इसलिये यही बात झलकाई है कि मानवको परम हितकारी आत्मज्ञानका लाभ करना चाहिये जिससे यह जीव सिद्ध-गति पाकर सदाके लिये सुखी होजावे।

अध्यात्म चर्चा हर दशामें सुखदाई है। आत्माके गुणोंके विचारसे यह भाव राग द्वेषकी कालिमासे मुक्त होता है तथ निराकुलता आती है, समता प्राप्त होती है, समतामें सदा आनन्दका लाभ होता है। जीवनको सुखदाई बनानेवाली अध्यात्म चर्चा है, हर समय इसीपर लक्ष्य रखना चाहिये।

मुलतान शहर।
भादों वदी २ वी० स० २४६४
ता० २७-८-१९३८

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।



टीकाकारकी प्रशस्ति।

अवध लक्ष्मणपुर बसै, अग्रवाल कुल सार।
विद्वन् मंगलसेनजी, ज्ञानी जिन वृष धार ॥ १ ॥
तिन सुत मक्खनलालजी, पुत्र चार तिन जान।
प्रथम बड़े संतलालजी, तृतीय सु सीतल मान ॥ २ ॥
बत्तिस वय अनुमानमें, घर त्यागा हितकाज।
इत उत भ्रमत स्वधर्म हित, लिखत पढ़त दिन जात ॥ ३ ॥
साठ वर्ष अनुमान वय, वर्षाकाल मंझार।
पुर मुलताने विराजिया, होवे धर्म विचार ॥ ४ ॥
सुखानन्द जैनी रचित, उपवन शांत महान्।
धर्म ध्यान सहकार है, रहो चित्त उमगान ॥ ५ ॥
जैनी दिग् अम्बर बसे, घर पचास सुख लीन।
मन्दिर बड़ा शिखर सहित, विद्याशाला कीन ॥ ६ ॥
पण्डित अजितकुमारजी, चौथमल्ल वृष लीन।
रामजीदास सभापती, परमानन्द प्रवीण ॥ ७ ॥
दासूराम सुखानन्द, भोलाराम जिनदास।
गुमानचन्द्र शिवनाथजी, आशानन्द प्रकाश ॥ ८ ॥
रंगूराम सु बिहारी, लाल सुधर्मी जान।
संगति वृष धारीनकी, करत बुद्धि अमलान ॥ ९ ॥

श्री तारणस्वामी रचित, चौवीस ठाणा जान।
भाषा टीका लिख दई, होवे जग कल्याण ॥ १० ॥

भादों सुदी द्वितीया दिना, वार शनीश्चर जान।
वीर मुकत चौविस शतक, चौसठ संवत् मान ॥ ११ ॥

सत्ताईस अगस्ट है, सन् उन्निस अड़तीस।
ग्रन्थ पूर्ण सुखसे किया, नमहु वीर गुण ईश ॥ १२ ॥

अध्यातमके मननको, यह दर्पण अविकार।
जो देखें रुचि लायके, पावें सुख शुचिकार ॥ १३ ॥

मंगल श्री अरहन्त है, मंगल सिद्ध महान्।
मंगल श्री मुनिराज हैं, करहु कर्मकी हान ॥ १४ ॥



गणधारिणः परिगृह्यन्ते, विचित्रार्थत्वात्सूत्राणां, ततोऽयमर्थः—जिनैः—हिताख्यनिवर्त्तकयोगसिद्धैर्गणधारिभिरनुचीर्णं—सम्यक् तदर्थावगमासन्नशक्तिगर्भानिवर्त्तकसमभावप्राप्त्या धर्ममेघनामकसमाधिरूपेण परिणमितं जिनानुचीर्णम्, अत एव तथारूपसमाधिभावतः समुल्लसितातिशयविशेषभावेन तेषां तथा सूत्रकरणशक्तिरिति दर्शयन्नाह—'जिनप्रज्ञप्तं' जिनैः—हिताख्यनिवर्त्तकयोगिभिः प्रज्ञप्तं—तदन्यसत्त्वानुग्रहाय सूत्रत आचाराद्यङ्गोपाङ्गादिभेदेन रचितं जिनप्रज्ञप्तम्, उक्तं च—"[1]अत्थं भासइ अरिहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं। सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्तं पवत्तई ॥ १ ॥" इति, इदं च हितप्रवृत्तादिरूपेभ्यो जिनेभ्यो देशनीयं, तेषामेव सम्यग्विनेययोगभावतो हिताविघातकरणात्, इत्येतदुपदर्शयन्नाह—'जिनदेशितं' जिना इह हितप्रवृत्तगोत्रविशुद्धोपायाभिमुखापायविमुखादयः परिगृह्यन्ते, तथा मूलटीकाकृता व्याख्यानात्, जिनेभ्यो—हितप्रवृत्तादिरूपेभ्यः शुश्रूषादिभिर्व्यक्तभावेभ्यो देशितं—कथितं गणधरैरपि जिनदेशितं, तथा च जम्बूस्वामिप्रभृतय एवंविधा एवेति निरूपणीयमेतत्, अथ प्रकृतिसुन्दरमिदमिति कस्मादजिनेभ्योऽपि नोपदिश्यते ?, उच्यते, तेषां स्वतोऽसुन्दरत्वेनानर्थोपनिपातसम्भवात्, दृष्टं च पात्रासुन्दरतया स्वतः सुन्दरमपि रविकराद्युलूकादीनामनर्थाय, आह च—"[2]पउंजियव्वं धीरेण हियं जं जस्स सव्वहा। आहारोवि हु मच्छस्स न पसत्थो गलो भुवि ॥ १ ॥" अस्यार्थस्य संदर्शनायाह—'जिनप्रशस्तं' जिनानां—गोत्रविशुद्धोपायाभिमुखापायविमुखहितप्रवृत्तादिभेदानां प्रशस्तं—निरुजपथ्यान्नवत् उचितसेवनया हितं जिनप्रशस्तम्, एवंभूतं जिनमतम् 'अनुविचिन्त्य' औत्पत्तिक्यादिभेदभिन्नया बुद्ध्या पर्यालोच्य 'तत्' जिनमतं 'श्रद्दधानाः'

---

१ अर्थं भाषतेऽर्हन् सूत्रं ग्रथ्नन्ति गणधरा निपुणम्। शासनस्य हितार्थं ततः सूत्रं प्रवर्त्तते ॥ १ ॥ २ प्रयोक्तव्यं धीरेण हितं यद्यस्य सर्वथा। आहारोऽपि च मत्स्यस्य न प्रशस्तो गरो भुवि ॥ १ ॥

यद्यपि नाम कालवैगुण्यतो मेधादिगुणहीनाः प्राणिनस्तथाऽप्यतः स्वल्पमप्यधिगतं भवच्छेदायेत्यार्द्रचित्ततया मन्यमानाः, तथा 'तत्' जिनमतमेव 'प्रीयमाणाः' असङ्गशक्तिप्रीत्या पश्यन्तः, तथा 'तत्' जिनमतमेव 'रोचयन्तः' साक्षीभावेनानुभवन्तः, क एते इत्याह—'स्थविरा भगवन्तः' तत्र धर्मपरिणत्या निवृत्तासमञ्जसक्रियामतयः स्थविरा इव स्थविराः, परिणतसाधुभावा आचार्या इति गर्भः, 'भगवन्तः' श्रुतैश्वर्यादियोगाद् भगवन्तः कषायादीनिति भगवन्तः पृषोदरादित्वान्मकारलोपः, 'जीवाजीवाभिगमं नाम' नाम्ना जीवाजीवाभिगमं, नामन्शब्दस्यात्राव्ययत्वात्ततः परस्य तृतीयैकवचनस्य लोपः, जीवानाम्—एकेन्द्रियादीनाम् अजीवानां—धर्मास्तिकायादीनामभिगमः—परिच्छेदो यस्मिन् तत् जीवाजीवाभिगमम्, इदं चान्वर्थप्रधानं नाम यथा ज्वलतीति ज्वलन इत्यादि, किं तदित्याह—अधीयत इति 'अध्ययनं' विशिष्टार्थध्वनिसंदर्भरूपं 'प्रज्ञापितवन्तः' प्ररूपितवन्तः, एतेन गुरुपर्वक्रमलक्षणः सम्बन्धः साक्षादुपदर्शितः, एतदुपदर्शनादभिधेयादिकमपि सिद्धं यथोक्तमनन्तरमिति कृतं प्रसङ्गेन ॥

से किं तं जीवाजीवाभिगमे ?, जीवाजीवाभिगमे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—जीवाभिगमे य अजीवाभिगमे य ॥ (सू० २)

अथास्य सूत्रस्य किमैदम्पर्यम् ?, उच्यते, प्रश्नसूत्रमिदम्, एतच्चादावुपन्यस्यन्निदं ज्ञापयति—पृच्छतो मध्यस्थस्य बुद्धिमतो भगवदर्हदुपदिष्टतत्त्वस्य तत्त्वप्ररूपणा कार्या नान्यस्येति, अक्षरगमनिका त्वेवम्—सेशब्दो मगधदेशप्रसिद्धो निपातोऽथशब्दार्थे, अथशब्दश्च प्रक्रियाद्यर्थाभिधायी, उक्तं च—"अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेष्वि"ति, इह तूपन्यासे, किंशब्दः परप्रश्ने, स चाभिधेययथावत्स्वरूपानिर्ज्ञाते नपुंसकलिङ्गतया निर्दिश्यते, तथा चोक्तम्—"अव्यक्ते गुणसन्दोहे नपुंसकलिङ्गं प्रयुज्यते" ततः पुन-

र्थापेक्षया यथाभिधेयमभिसंबध्यते इति, अथ '**किं तज्जीवाजीवाभिगमं**' इति, अथवा प्राकृतशैल्या 'अभिधेयवल्लिङ्गवचनानि भवन्ती'ति न्यायात् किं तदिति—कोऽसावित्यस्मिन्नर्थे द्रष्टव्यं, ततोऽयमर्थः—कोऽसौ जीवाजीवाभिगमः? इति, एवं सामान्येन केनचित्प्रश्ने कृते सति भगवान् गुरुः शिष्यवचनानुरोधेनादराधानार्थं किञ्चित्प्रत्युच्चार्याह—'**जीवाजीवाभिगमः**' अनन्तरोदितशब्दार्थः 'द्विविधः' द्विप्रकारः प्रज्ञप्तस्तीर्थकरगणधरैः, अनेन चागृहीतशिष्याभिधानेन निर्वचनसूत्रेणैतदाह—न सर्वमेव सूत्रं गणधरप्रश्नतीर्थकरनिर्वचनरूपं किन्तु किञ्चिदन्यथापि, केवलं सूत्रं बाहुल्येन गणधरैर्दृब्धं स्तोकं शेषैः, यत उक्तम्—"अत्थं भासइ अरिहा" इत्यादि, '**तद्यथे**'ति वक्ष्यमाणभेदकथनोपन्यासार्थः, स जीवाजीवाभिगमो यथा द्विविधो भवति तथोपन्यस्यत इति भावः, जीवाभिगमश्चाजीवाभिगमश्च, चशब्दौ वस्तुतत्त्वमङ्गीकृत्य द्वयोरपि तुल्यकक्षतोद्भावनार्थौ, आह—जीवाजीवाभिगमः प्रश्नसूत्रे संवलित उपन्यस्तस्तं तथैवोच्चार्यासंवलितनिर्वचनाभिधानमयुक्तं, असंवलिते संवलितविधानायोगात्, नैष दोषः, प्रश्नसूत्रेऽप्यसंवलितस्यैवोपन्यासात्, भिन्नजातीययोरेकत्वायोगात् ॥ तत्र यद्यपि 'यथोद्देशस्तथा निर्देश' इति न्यायोऽस्ति, तथाऽप्यल्पतरवक्तव्यत्वात् प्रथमतोऽजीवाभिगममभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं अजीवाभिगमे?, अजीवाभिगमे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—रूविअजीवाभिगमे य अरूविअजीवाभिगमे य ॥ (सू० ३) से किं तं अरूविअजीवाभिगमे?, अरूविअजीवाभिगमे दसविहे प०, तंजहा—धम्मत्थिकाए एवं जहा पण्णवणाए जाव सेत्तं अरूविअजीवाभिगमे (सू० ४)। से किं तं रूविअजीवाभिगमे?, रूविअजीवाभिगमे चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—खंधा खंधदेसा

खंधप्पएसा परमाणुपोग्गला, ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—वण्णपरिणया गंध० रस० फास० संठाणपरिणया, एवं ते ५ जहा पण्णवणाए, सेत्तं रूविअजीवाभिगमे, सेत्तं अजीवाभिगमे (सू० ५)

अथ कोऽसौ अजीवाभिगमः ?, सूरिराह—अजीवाभिगमो द्विविधः प्रज्ञप्त, तद्यथा—रूप्यजीवाभिगमोऽरूप्यजीवाभिगमश्च, रूपमेषामस्तीति रूपिणः, रूपग्रहणं गन्धादीनामुपलक्षणं, तद्व्यतिरेकेण तस्यासम्भवात्, तथाहि—प्रतिपरमाणु रूपरसगन्धस्पर्शाः, उक्तं च—"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः । एकरसगन्धवर्णो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥" एतेन यदुच्यते कैश्चित् 'भिन्ना एव रूपपरमाणवो भिन्नाश्च पृथक् पृथग् रसादिपरमाणव' इति, तदपास्तमवसेयं, प्रत्यक्षबाधितत्वात्, तथाहि—य एव नैरन्तर्येण कुचकलशोपरिनिविष्टा रूपपरमाणव उपलब्धिगोचरास्तेष्वेवाव्यवच्छेदेन सकलेष्वपि स्पर्शोऽप्युपलभ्यते, य एव च घृतादिरसपरमाणवः कर्पूरादिगन्धपरमाणवो वा तेष्वेव नैरन्तर्येण रूपं स्पर्शश्चोपलब्धिविषयः, अन्यथा सान्तरा रूपादयः प्रतीतिपथमियियुः, न च सान्तराः प्रतीयन्ते, तस्मादव्यतिरेक. परस्परं रूपादीनामिति, रूपिणश्च तेऽजीवाश्च रूप्यजीवास्तेषामभिगमो रूप्यजीवाभिगमः पुद्गलरूपाजीवाभिगम इतियावत्, पुद्गलानामेव रूपादिमत्त्वात्, रूपव्यतिरिक्ता अरूपिणो—धर्मास्तिकायादयस्ते च तेऽजीवाश्चारूप्यजीवास्तेषामभिगमोऽरूप्यजीवाभिगमः ॥३॥ तत्रारूपिणः प्रत्यक्षाद्यविषया. केवलमागमप्रमाणगम्यास्तत्त्वत इति प्रथमतस्तद्विषयं प्रश्नसूत्रमाह—सुगमं, सूरिराह—'अरुवी'त्यादि ॥ अरूप्यजीवाभिगमः **'दशविधः'** दशप्रकारः प्रज्ञप्तः, तदेव दशविधत्वमाह—तंजहेत्यादि, **'तद्यथे'**ति वक्ष्यमाणभेदकथनोपन्यासार्थः, धर्मास्तिकायः, **'एवं जहा पण्णवणाए'** इति **'एवम्'** उक्तेन प्रकारेण यथा **प्रज्ञापनायां** तथा

वक्तव्यं तावद् यावत् 'सेत्तं असंसारसमापन्नजीवाभिगमे' इति, तच्चैवम्—"धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्स पएसा अधम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकायस्स देसे अधम्मत्थिकायस्स पएसा आगासत्थिकाए आगासत्थिकायस्स देसे आगासत्थिकायस्स पएसा अद्धासमये" इति, तत्र जीवानां पुद्गलानां च स्वभावत एव गतिपरिणामपरिणतानां तत्स्वभावधारणात्पोषणाद्धर्मः अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायः—सङ्घातः "गण काए य निकाए खंधे वग्गे तहेव रासी य" इति वचनात् अस्तिकायः—प्रदेशसङ्घात इत्यर्थः, धर्मश्चासावस्तिकायश्च धर्मास्तिकायः, अनेन सकलधर्मास्तिकायरूपमवयविद्रव्यमाह, अवयवी च नाम अवयवानां तथारूपः सङ्घातपरिणामविशेष एव, न पुनरवयवद्रव्येभ्यः पृथगर्थान्तरद्रव्यं, तस्यानुपलम्भात्, तन्तव एव हि आतानवितानरूपसङ्घातपरिणामविशेषमापन्ना लोके पटव्यपदेशभाज उपलभ्यन्ते, न तदतिरिक्तं पटाख्यं नाम द्रव्यम्, उक्तं चान्यैरपि—"तन्त्वादिव्यतिरेकेण, न पटाद्युपलम्भनम्। तन्त्वादयोऽविशिष्टा हि, पटादिव्यपदेशिनः ॥ १ ॥" कृतं प्रसङ्गेन, अन्यत्र धर्मसङ्ग्रहणिटीकादावेतद्वादस्य चर्चितत्वात्, तथा तस्यैव बुद्धिपरिकल्पितो द्व्यादिप्रदेशात्मको विभागो धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः—प्रकृष्टा देशाः प्रदेशाः, प्रदेशा निर्विभागा भागा इति, ते चासङ्ख्येयाः, लोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्तेषाम्, अत एव बहुवचनं, धर्मास्तिकायप्रतिपक्षभूतोऽधर्मास्तिकायः, किमुक्तं भवति?—जीवानां पुद्गलानां च स्थितिपरिणामपरिणतानां तत्परिणामोपष्टम्भकोऽमूर्तोऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मकोऽधर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि पूर्ववत्, तथा आ—समन्तात्सर्वाण्यपि द्रव्याणि काशन्ते—दीप्यन्तेऽत्र व्यवस्थितानीत्याकाशम्, अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायोऽस्तिकायः, आकाशं च तदस्तिकायश्चाकाशास्तिकायः, आकाशास्तिकायस्य देश इत्यादि प्राग्वत्, नवरमस्य प्रदेशा अनन्ताः, अलोकस्यानन्तत्वात्, 'अद्धासमय' इति, अद्धेति कालस्याख्या, अद्धा चासौ समयश्चाद्धासमयः, अथवाऽद्धायाः समयो—

निर्विभागो भागोऽद्धासमयः, अयं चैक एव वर्त्तमानः परमार्थतः सन् नातीतानागताः, तेषां यथाक्रमं विनष्टानुत्पन्नत्वात्, ततः कायत्वाभावाद्देशप्रदेशकल्पनाविरहः, अथाकाशकालौ लोकेऽपि प्रतीताविति तौ श्रद्धातुं शक्येते, धर्माधर्मास्तिकायौ तु कथं प्रत्येतव्यौ ? येन तद्विषया श्रद्धा भवेत्, उच्यते, गतिस्थितिकार्यदर्शनात्, तथाहि—यद् यदन्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तद्धेतुकमिति व्यवहर्त्तव्यं, यथा चक्षुरिन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधायि चाक्षुषं विज्ञानं, तथा च जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिपरिणामपरिणतानामपि गतिस्थिती यथाक्रमं धर्माधर्मास्तिकायान्वयव्यतिरेकानुविधायिन्यौ, तस्मात्ते तद्धेतुके, न चायमसिद्धो हेतुः, तथाहि—जीवानां पुद्गलानां च गतिस्थितिपरिणामपरिणतानामपि गतिस्थिती न तत्परिणमनमात्रहेतुके, तन्मात्रहेतुकतायामलोकेऽपि तत्प्रसक्तेः, अथ न तत्परिणमनमात्रं हेतुः किन्तु विशिष्टः परिणामः, स चेत्थंभूतो यथा लोकमात्रक्षेत्रस्यान्तरेऽत्र गतिस्थितिभ्यां भवितव्यं न बहिः प्रदेशमात्रमप्यधिकं, ननु स एवेत्थम्भूतो विशिष्टपरिणाम आकालं जीवानां पुद्गलानां चोत्कर्षतोऽप्येतावत्प्रमाण एवाभूद् भवति भविष्यति वा न तु कदाचनाप्यधिकतर इत्यत्र किं नियामकं ?, यथा हि किल परमाणोर्जघन्यतः परमाणुमात्रक्षेत्रातिक्रममादिं कृत्वोत्कर्षतश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकमपि क्षेत्रं यावद् गतिरुपजायते तथा परतोऽपि प्रदेशमात्रमप्यधिका किं न भवति ?, तस्मादवश्यमत्र किञ्चिन्नियामकमपरं वक्तव्यं, तच्च धर्माधर्मास्तिकायावेव नाकाशमात्रम्, आकाशमात्रस्यालोकेऽपि सम्भवात्, नापि लोकपरिमितमाकाशम्, इतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गात्, तथाहि—जीवाना पुद्गलानां चान्यत्र गतिस्थित्योरभावे सिद्धे सति विवक्षितस्य परिमितस्याकाशस्य लोकत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ चान्यत्र जीवपुद्गलानां गतिस्थित्यभावसिद्धिरित्येकाभावेऽन्यतरस्याप्यभावः, अथ किमिदमसंबद्धमुच्यते ?, यत् लोकत्वेन सम्प्रति व्यवह्रियते क्षेत्रं, तावन्मात्रस्यैवाकाशखण्डस्य गतिस्थित्युपष्टम्भकस्वभावो न परस्य प्रदेशमात्रस्यापि ततो न कश्चिद्दोषः, ननु तावन्मात्रस्यैवाकाशस्य

स स्वभावो न परस्य प्रदेशमात्रस्यापीत्यत्रापि सुधियः कारणान्तरं मृगयन्ते, आकाशत्वमात्रस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्, विशेषणमन्तरेण च वैशिष्ट्यायोगात्, कारणान्तरं धर्माधर्मास्तिकायभावाभावावेव नापरमिति स्थितम्, अन्यच्च—तावन्मात्रस्याकाशखण्डस्य स स्वभावो न परस्येत्यपि कुतः प्रमाणात्परिकल्प्यते ?, आगमप्रमाणादिति चेत् तथाहि—तावत्येवाकाशखण्डे जीवानां च पुद्गलानां च गतिस्थितिमतां गतिस्थिती तत्र तत्र व्यावर्ण्येते न परत इति, यद्येवं तर्ह्यागमप्रामाण्यबलादेव धर्माधर्मास्तिकायावपि गतिस्थितिनिबन्धनमिष्येयातां किमाकाशखण्डस्य निर्मूलस्वभावान्तरपरिकल्पनाऽऽयासेनेति कृतं प्रसङ्गेन । अथामीपामित्थं क्रमोपन्यासे किं प्रयोजनम् ?, उच्यते, इह धर्मास्तिकाय इति पदं मङ्गलभूतम्, आदौ धर्मशब्दान्वितत्वात्, पदार्थप्ररूपणा च सम्प्रत्युत्क्षिप्ता वर्त्तते, ततो मङ्गलार्थमादौ धर्मास्तिकायस्योपादानं, धर्मास्तिकायप्रतिपक्षभूतश्चाधर्मास्तिकाय इति तदनन्तरमधर्मास्तिकायस्य, द्वयोरपि चानयोराधारभूतमाकाशमिति तदनन्तरमाकाशास्तिकायस्य, ततः पुनरजीवसाधर्म्याद्द्धासमयस्य, अथवा इह धर्माधर्मास्तिकायौ विभू न भवतः, तद्विभुत्वेन तत्सामर्थ्यतो जीवपुद्गलानामस्खलितप्रचारप्रवृत्तेर्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेः, अस्ति च लोकालोकव्यवस्था, तत एतावविभू सन्तौ यत्र क्षेत्रे समवगाढौ तावत्प्रमाणो लोकः, शेषस्त्वलोक इति सिद्धम्, उक्तं च—"धर्माधर्मविभुत्वात्सर्वत्र च जीवपुद्गलविचारात् । नालोकः कश्चित्स्यान्न च संमतमेतदार्याणाम् ॥ १ ॥ तस्माद्धर्माधर्मावेवगाढौ व्याप्य लोकखं सर्वम् । एवं हि परिच्छिन्नः सिद्ध्यति लोकस्तदविभुत्वात् ॥ २॥" तत एवं लोकालोकव्यवस्थाहेतू धर्माधर्मास्तिकायावित्यनयोरादावुपादानं, तत्रापि माङ्गलिकत्वात् प्रथमतो धर्मास्तिकायस्य, तत्प्रतिपक्षत्वात् ततोऽधर्मास्तिकायस्य, ततो लोकालोकव्यापित्वादाकाशास्तिकायस्य, तदनन्तरं लोके समयासमयक्षेत्रव्यवस्थाकारित्वादद्धासमयस्य, एवमागमानुसारेणान्यदपि युक्त्यनुपाति वक्तव्यमित्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, अत्रोपसंहारवाक्यं—'सेत्तं अरूविअजीवाभि-

गमे' । अत ऊर्द्धमिदं सूत्रम्—'से किं तं रूविअजीवाभिगमे ?, रूविअजीवाभिगमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं०—खंधा खंधदेसा खंधपएसा परमाणुपुग्गला' इह स्कन्धा इत्यत्र बहुवचनं पुद्गलस्कन्धानामनन्तत्वख्यापनार्थं, तथा चोक्तम्—"दव्वतो णं पुग्गलत्थिकाए णं अनन्ते" इत्यादि, 'स्कन्धदेशाः' स्कन्धानामेव स्कन्धत्वपरिणाममजहतां बुद्धिपरिकल्पिता द्व्यादिप्रदेशात्मका विभागाः, अत्रापि बहुवचनमनन्तप्रदेशिकेषु स्कन्धेषु स्कन्धदेशानन्तत्वसंभावनार्थं, 'स्कन्धप्रदेशाः' स्कन्धानां स्कन्धत्वपरिणाममजहतां प्रकृष्टा देशाः—निर्विभागा भागाः परमाणव इत्यर्थः, 'परमाणुपुद्गलाः' स्कन्धत्वपरिणामरहिताः केवलाः परमाणवः ॥ अत ऊर्द्धं सूत्रमिदम्—'ते समासतो पंचविधा पन्नत्ता, तंजहा—वण्णपरिणया गंधपरिणता रसपरिणता फासपरिणता संठाणपरिणता, तत्थ णं जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पन्नत्ता, तंजहा—कालवण्णपरिणता नीलवण्णपरिणता इत्यादि तावद् यावत् 'सेत्तं रूविअजीवाभिगमे, सेत्तं अजीवाभिगमे ॥

से किं तं जीवाभिगमे ?, जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—संसारसमावण्णगजीवाभिगमे य असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य (सू० ६) से किं तं असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे य । से किं तं अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ पण्णरसविहे पण्णत्ते, तंजहा—तित्थसिद्धा जाव अणेगसिद्धा, सेत्तं अणंतरसिद्धा । से किं तं परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे ?, २ अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा—पढमसमयसिद्धा दुसमय-

सिद्धा जाव अणंतसमयसिद्धा, से तं परंपरसिद्धासंसारसमावण्णगजीवाभिगमे, सेत्तं असंसारसमावण्णगजीवाभिगमे (सू० ७)

संसरणं संसारो—नारकतिर्यङ्नरामरभवभ्रमणलक्षणस्तं सम्यग्—एकीभावेनापन्नाः—प्राप्ताः संसारसमापन्नाः—संसारवर्त्तिनस्ते च ते जीवाश्च तेषामभिगमः संसारसमापन्नजीवाभिगमः, तथा न संसारोऽसंसारः—संसारप्रतिपक्षभूतो मोक्ष इत्यर्थः तं समापन्ना असंसारसमापन्नास्ते च ते जीवाश्च तेषामभिगमोऽसंसारसमापन्नजीवाभिगमः, चशब्दौ उभयेषामपि जीवानां जीवत्वं प्रति तुल्यकक्षतासूचकौ, तेन ये विध्यातप्रदीपकल्पं निर्वाणमभ्युपगतवन्तः ये च नवानामात्मगुणानामत्यन्तोच्छेदेन ते निरस्ता द्रष्टव्याः, तथाभूतमोक्षाभ्युपगमे तदर्थं प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यनुपपत्तेः, न खलु सचेतनः स्ववधाय कण्ठे कुठारिकां व्यापारयति, दुःखितोऽपि हि जीवन् कदाचिद् भद्रमाप्नुयात् मृतेन तु निर्मूलमपि हस्तिताः सम्पद इति, इह केवलान् अजीवान् जीवांश्चानुच्चार्याभिगमशब्दसंवलितप्रश्नोऽभिगमव्यतिरेकेण प्रतिपत्तेरसम्भवतस्तेषामभिगमगम्यताधर्मख्यापनार्थः तेन 'सदेवेद'मित्यादि सदद्वैताद्यपोह उक्तो वेदितव्यः, सदद्वैताद्यभ्युपगमेऽभिगमगम्यतारूपधर्मायोगतः प्रतिपत्तेरेवासम्भवात् । तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथमतोऽसंसारसमापन्नजीवाभिगमसूत्रम्—'से किं तं असंसारसमावन्नजीवाभिगमे ?, २ दुविहे पं०, तं०—अनंतरसिद्धअसंसारसमावन्नजीवाभिगमे परंपरसिद्धअसंसारसमावन्नजीवाभिगमे य' इत्यादि तावद्वाच्यं यावदुपसंहारवाक्यं 'सेत्तं असंसारसमापन्नजीवाभिगमे' अस्य व्याख्यानं **प्रज्ञापनाटीकातो** वेदितव्यं, तत्र सविस्तरमुक्तत्वात् ॥ सम्प्रति संसारसमापन्नजीवाभिगममभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं संसारसमावन्नजीवाभिगमे ?, संसारसमावण्णएसु णं जीवेसु इमाओ णव पडिवत्तीओ

एवमाहिज्जंति, तं०–एगे एवमाहंसु–दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु–तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु–चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एगे एवमाहंसु–पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०, एतेणं अभिलावेणं जाव दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता (सू० ८)

सूरिराह—संसारसमापन्नेषु णमिति वाक्यालङ्कारे जीवेषु 'इमाः' वक्ष्यमाणलक्षणा **'नव प्रतिपत्तयो'** द्विप्रत्यवतारमादौ कृत्वा दशप्रत्यवतारं यावद् ये नव प्रत्यवतारास्तद्रूपाणि प्रतिपादनानि संवित्तय इतियावत् 'एवं' वक्ष्यमाणया रीत्याऽऽख्यायन्ते पूर्वसूरिभिः, इह प्रतिपत्त्याख्यानेन प्रणालिकयाऽर्थाख्यानं द्रष्टव्यं, प्रतिपत्तिभावेऽपि शब्दादर्थे प्रवृत्तिकरणात्, तेन यदुच्यते शब्दाद्वैतवादिभिः—'शब्दमात्रं विश्व'मिति, तदपास्तं द्रष्टव्यं, तदपासने चेयमुपपत्तिः—एकान्तैकस्वरूपे वस्तुन्यभिधानद्वयासम्भवात् भिन्नप्रवृत्तिनिमित्ताभावात्, ततश्च शब्दमात्रमित्येव स्यात् न विश्वमिति, प्रणालिकयाऽर्थाभिधानमेवोपदर्शयति, तद्यथा—एके आचार्या एवमाख्यातवन्तः—द्विविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्ताः, एके आचार्या एवमाख्यातवन्तः—त्रिविधाः संसारसमापन्ना जीवाः, एवं यावद्दशविधा इति, इह एके इति न पृथग्मतावलम्बिनो दर्शनान्तरीया इव केचिदन्ये आचार्याः, किन्तु य एव पूर्वं द्विप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमाना एवमुक्तवन्तः यथा द्विविधाः संसारसमापन्ना जीवा इति त एव त्रिप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमानाः, द्विप्रत्यवतारविवक्षामपेक्ष्य त्रिप्रत्यवतारविवक्षाया अन्यत्वात्, विवक्षावतां तु कथञ्चिद् भेदादन्य इति वेदितव्याः, अत एव प्रतिपत्तय इति परमार्थतोऽनुयोगद्वाराणीति प्रतिपत्तव्यम्, इह य एव द्विविधास्त एव त्रिविधास्त एव चतुर्विधा यावद्दशविधा इति तेषामनेकस्वभावतायां तत्तद्धर्मभेदेन तथा

तथाऽभिधानता युज्यते, नान्यथा, एकान्तैकस्वभावतायां तेषां वैचित्र्यायोगतस्तथा तथाऽभिधानप्रवृत्तेरसम्भवात्, एवं सति "अष्टविकल्पं दैवं तिर्यग्योनं च पञ्चधा भवति। मानुष्यं चैकविधं समासतो भौतिकः सर्गः ॥ १ ॥" इति वाङ्मात्रमेव, अधिष्ठातृजीवानामेकरूपत्वाभ्युपगमेन तथारूपवैचित्र्यासम्भवादिति, एवमन्येऽपि प्रवादास्तथा तथा वस्तुवैचित्र्यप्रतिपादनपरा निरस्ता द्रष्टव्याः, सर्वथैकस्वभावत्वाभ्युपगतौ वैचित्र्यायोगात् ॥ सम्प्रत्येता एव प्रतिपत्तीः क्रमेण व्याचिख्यासुः प्रथमत आद्यां प्रतिपत्तिं विभावयिषुरिदमाह—

तत्थ(णं) जे एवमाहंसु 'दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पं०' ते एवमाहंसु–तं०–तसा चेव थावरा चेव ॥ (सू० ९)

'तत्र' तेषु नवसु प्रतिपत्तिषु मध्ये ये द्विप्रत्यवतारविवक्षायां वर्त्तमाना एवं व्याख्यातवन्तः—द्विविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ता इति ते 'णम्' इति वाक्यालङ्कारे 'एवं' वक्ष्यमाणरीत्या द्विविधत्वभावनार्थमाख्यातवन्तः, 'तद्यथे' त्युपन्यस्तद्वैविध्योपदर्शनार्थः, त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव, तत्र त्रसन्ति—उष्णाद्यभितप्ताः सन्तो विवक्षितस्थानादुद्विजन्ति गच्छन्ति च छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसाः, अनया च व्युत्पत्त्या त्रसास्त्रसनामकर्मोदयवर्त्तिन एव परिगृह्यन्ते, न शेषाः, अथ शेषैरपीह प्रयोजनं, तेषामप्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, तत एवं व्युत्पत्तिः—त्रसन्ति—अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वकं वा ऊर्द्धमधस्तिर्यक् चलन्तीति त्रसाः—तेजोवायवो द्वीन्द्रियादयश्च, उष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्थाः सन्तस्तिष्ठन्तीत्येवंशीलाः स्थावराः—पृथिव्यादयः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसमुच्चयार्थौ, एवकारावधारणार्थौ, अत एव संसारसमापन्नका जीवाः, एतद्व्यतिरेकेण संसारिणामभावात् ॥ तत्राल्पवक्तव्यत्वात्प्रथमतः स्थावरानभिधित्सुस्तत्प्रश्नसूत्रमाह—

से किं तं थावरा?, २ तिविहा पन्नत्ता, तंजहा—पुढविकाइया १ आउक्काइया २ वणस्सइकाइया ३ ॥ (सू० १०)

अथ के ते स्थावराः?, सूरिराह—स्थावरास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकाया एव पृथिवीकायिकाः, आर्षत्वात्स्वार्थे इकप्रत्ययः, आपो—द्रवास्ताश्च प्रतीताः ता एव कायः—शरीरं येषां ते अप्कायाः अप्काया एवाप्कायिकाः, वनस्पतिः—लतादिरूपः प्रतीतः स एव कायः—शरीरं येषां ते वनस्पतिकायाः वनस्पतिकाया एव वनस्पतिकायिकाः, सर्वत्र बहुवचनं बहुत्वख्यापनार्थं, तेन 'पृथिवी देवते'-त्यादिना यत्तदेकजीवत्वमात्रप्रतिपादनं तदपास्तमवसेयं, यदि पुनस्तदधिष्ठात्री काचनापि देवता परिकल्प्यते तदानीमेकत्वेऽप्यविरोधः। इह सर्वभूताधारः पृथिवीति प्रथमं पृथिवीकायिकानामुपादानं, तदनन्तरं तत्प्रतिष्ठितत्वादप्कायिकानां, तदनन्तरं "जत्थ जलं तत्थ वणं" इति सैद्धान्तिकवस्तुप्रतिपादनार्थं वनस्पतिकायिकानामिति, इह त्रिविधत्वं स्थावराणां तेजोवायूनां लब्ध्या स्थावराणामपि सतां गतित्रसेष्वन्तर्भावविवक्षणात्, तथा च तत्त्वार्थसूत्रमप्येवं व्यवस्थितं "पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः ॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः" (तत्त्वा० अ० २ सू० १३–१४) इति, तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति प्रथमतः पृथिवीकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं पुढविकाइया?, २ दुविहा पं०, तं०—सुहुमपुढविकाइया य बायरपुढविकाइया य ॥ (सू० ११)

अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, सूरिराह—पृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मपृथिवीकायिकाश्च बादरपृथिवीकायिकाश्च, तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्मा बादरनामकर्मोदयात्तु बादराः, कर्मोदयजनिते खल्वेते सूक्ष्मबादरत्वे, नापेक्षिके बदरामलकयो-

रिव, सूक्ष्माश्च ते पृथिवीकायिकाश्च सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः, बादराश्च ते पृथिवीकायिकाश्च बादरपृथिवीकायिकाः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, सूक्ष्माः सकललोकवर्त्तिनो बादराः प्रतिनियतैकदेशधारिणः ॥ तत्र सूक्ष्मपृथिवीकायिकप्रतिपादनार्थमाह——

से किं तं सुहुमपुढविक्काइया ?, २ दुविहा पं०, तं०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ॥ (सू० १२)

अथ के ते सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—सूक्ष्मपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चापर्याप्तकाश्च, तत्र पर्याप्तिर्नामाहारादिपुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुरात्मनः शक्तिविशेषः, स च पुद्गलोपचयादुपजायते, किमुक्तं भवति ?—उत्पत्तिदेशमागतेन प्रथमं ये गृहीताः पुद्गलास्तेषां तथाऽन्येषामपि प्रतिसमयं गृह्यमाणानां तत्संपर्कतस्तद्रूपतया जातानां यः शक्तिविशेष आहारादिपुद्गलखलरसरूपतापादनहेतुर्यथोदरान्तर्गतानां पुद्गलविशेषाणामाहारपुद्गलविशेषाणामाहारपुद्गलखलरसरूपतापरिणमनहेतुः सा पर्याप्तिः, सा च षोढा, तद्यथा—आहारपर्याप्तिः १ शरीरपर्याप्तिः २ इन्द्रियपर्याप्तिः ३ प्राणापानपर्याप्तिः ४ भाषापर्याप्तिः ५ मनःपर्याप्तिश्च ६, तत्र यया बाह्यमाहारमादाय खलरसरूपतया परिणमयति साऽऽहारपर्याप्तिः १, यया रसीभूतमाहारं रसासृग्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रलक्षणसप्तधातुरूपतया परिणमयति सा शरीरपर्याप्तिः २, यया धातुरूपतया परिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः ३, यया पुनरुच्छ्वासप्रायोग्यवर्गणापुद्गलानादायोच्छ्वासरूपतया परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा उच्छ्वासपर्याप्तिः ४, यया तु भाषाप्रायोग्यान् पुद्गलानादाय भाषात्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा भाषापर्याप्तिः ५, यया पुनर्मनःप्रायोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणमय्यालम्ब्य च मुञ्चति सा मनःपर्याप्तिः ६, एताश्च यथाक्रममेकेन्द्रियाणां सञ्ज्ञिवर्जानां द्वीन्द्रियादीनां संज्ञिनां च चतुष्पञ्चषट्सङ्ख्या भवन्ति, उत्पत्तिप्रथमसमये एव च एता यथायथं सर्वा अपि युगपन्निष्पादयितुमारभ्यन्ते क्रमेण च निष्ठामुपयान्ति,

तद्यथा—प्रथममाहारपर्याप्तिस्ततः शरीरपर्याप्तिस्तत इन्द्रियपर्याप्तिरित्यादि, आहारपर्याप्तिश्च प्रथमसमय एव निष्पत्तिमुपगच्छति, शेपास्तु प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तेन कालेन, अथाहारपर्याप्तिः प्रथमसमय एव निष्पद्यत इति कथमवसीयते?, उच्यते, इह भगवताऽऽर्यश्यामेन प्रज्ञापनायामाहारपदे द्वितीयोद्देशके सूत्रमिदमपाठि—"आहारपज्जत्तीए अपज्जत्तए णं भंते! किं आहारए अणाहारए?, गोयमा! नो आहारए अणाहारए" इति, तत आहारपर्याप्त्या अपर्याप्तो विग्रहगतावेवोपपद्यते नोपपातक्षेत्रमागतोऽपि, उपपातक्षेत्रसमागतस्य प्रथमसमय एवाहारकत्वात्, तत एकसामायिकी आहारपर्याप्तिनिर्वृत्तिः, यदि पुनरुपपातक्षेत्रसमागतोऽप्याहारपर्याप्त्या अपर्याप्तः स्यात्तत एवं व्याकरणसूत्रं पठेत्—"सिय आहारए सिय अणाहारए" यथा शरीरादिपर्याप्तिषु "सिय आहारए सिय अणाहारए" इति, सर्वासामपि च पर्याप्तीनां पर्याप्तिपरिसमाप्तिकालोऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणः, पर्याप्तयो विद्यन्ते येपां ते पर्याप्ताः, 'अभ्रादिभ्य' इति मत्वर्थीयोऽप्रत्ययः, पर्याप्ता एव पर्याप्तकाः, ये पुनः स्वयोग्यपर्याप्तिपरिसमाप्तिविकलास्तेऽपर्याप्ताः अपर्याप्ता एवापर्याप्तकाः, ते द्विधा—लब्ध्या करणैश्च, तत्र येऽपर्याप्तका एव म्रियन्ते ते लब्ध्याऽपर्याप्तकाः, ये पुनः करणानि—शरीरेन्द्रियादीनि न तावन्निर्वर्त्तयन्ति अथचावश्यं निर्वर्त्तयिष्यन्ति ते करणापर्याप्ताः संप्राप्ताः ॥ सम्प्रति विनेयजनानुग्रहाय शेपवक्तव्यतासङ्ग्रहार्थमिदं सङ्ग्रहणिगाथाद्वयमाह—सरीरोगाहणसंघयण संठाणकसाय तह य हुंति सन्नाओ । लेसिंदियसमुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥ १ ॥ दिट्ठी दंसणनाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे । उववायठिई समुग्घाय चवणगइरागई चेव ॥ २ ॥ अस्य व्याख्या—प्रथमतः सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां शरीराणि वक्तव्यानि, तदनन्तरमवगाहना, ततः संहननं, तदनन्तरं संस्थानं, ततः कपायाः, ततः कति भवन्ति सञ्ज्ञाः? इति वक्तव्यं, ततो लेश्याः, तदनन्तरमिन्द्रियाणि, ततः समुद्घाताः, ततः किं सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो वा? इति वक्तव्यं, तदनन्तरं वेदो वक्तव्यः, ततः पर्याप्तयो

यथा कति पर्याप्तयः सूक्ष्मपृथिवीकायिकानाम्? इत्यादि, पर्याप्तिग्रहणमुपलक्षणं तेन तत्प्रतिपक्षभूता अपर्याप्तयोऽपि वक्तव्या इति द्रष्टव्यं, तदनन्तरं दृष्टिर्वक्तव्या, ततो दर्शनं, तदनन्तरं ज्ञानं, ततो योगः, तत उपयोगः, तथा किमाहारमाहारयन्ति सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः? इत्यादि वक्तव्यं, तदनन्तरमुपपातः, ततः स्थितिः, ततः समुद्घातः समुद्घातमधिकृत्य मरणं वक्तव्यमित्यर्थः, तदनन्तरं च्यवनं, ततो गत्यागती इति, इति सर्वसङ्ख्यया त्रयोविंशतिर्द्वाराणि, तत्र प्रथमद्वारव्याख्यानार्थमाह—

तेसि णं भंते! जीवाणं कतिसरीरया पण्णत्ता, गोयमा! तओ सरीरगा पं०, तं०–ओरालिए तेयए कम्मए॥तेसि णं भंते! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पं०, गो०! जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जतिभागं उक्कोसेणवि अंगुलासंखेज्जतिभागं॥ तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरा किंसंघयणा पण्णत्ता?, गोयमा! छेवट्ठसंघयणा पण्णत्ता ॥ तेसि णं भंते! सरीरा किंसंठिया पं० ?, गोयमा! मसूरचंदसंठिता पण्णत्ता॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति कसाया पण्णत्ता ?, गोयमा! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तंजहा–कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोहकसाए ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति सण्णा पण्णत्ता ?, गोयमा! चत्तारि पण्णत्ता, तंजहा–आहारसण्णा जाव परिग्गहसन्ना ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा! तिन्नि लेस्सा पन्नत्ता, तंजहा–किण्हलेस्सा नीललेसा काउलेसा॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति इंदियाइं पण्णत्ताइं ?, गोयमा! एगे फासिंदिए पण्णत्ते॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाया पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा–

वेयणासमुग्घाते कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए ॥ ते णं भंते! जीवा किं सन्नी असन्नी ?, गोयमा! नो सन्नी असन्नी ॥ ते णं भंते! जीवा किं इत्थिवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया ?, गोयमा! णो इत्थिवेया णो पुरिसवेया णपुंसगवेया ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा! चत्तारि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—आहारपज्जत्ती सरीरपज्जत्ती इंदियपज्जत्ती आणपाणुपज्जत्ती। तेसि णं भंते! जीवाणं कति अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—आहारअपज्जत्ती जाव आणापाणुअपज्जत्ती ॥ ते णं भंते! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?, गोयमा! णो सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी नो सम्ममिच्छादिट्ठी ॥ ते णं भंते! जीवा किं चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी ?, गोयमा! नो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी नो ओहिदंसणी नो केवलदंसणी ॥ ते णं भंते! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?, गोयमा! नो नाणी अण्णाणी, नियमा दुअण्णाणी, तंजहा—मतिअन्नाणी सुयअण्णाणी य ॥ ते णं भंते! जीवा किं मणजोगी वयजोगी कायजोगी ?, गोयमा! नो मणजोगी नो वयजोगी कायजोगी ॥ ते णं भंते! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गोयमा! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि ॥ ते णं भंते! जीवा किमाहारमाहारेंति ?, गोयमा! दव्वतो अणंतपदेसियाइं खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं कालओ अन्नयर-

समयट्ठितीयाइं भावतो वण्णवं(मं)ताइं गंधवं(मं)ताइं रसवं(मं)ताइं फासवं(मं)ताइं ॥ जाइं भावओ वण्णमंताइं आ०, ताइं किं एगवण्णाइं आ० दुवण्णाइं आ० तिवण्णाइं आ० चउवण्णाइं आ० पंचवण्णाइं आ० ?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि दुवण्णाइंपि तिवण्णाइंपि चउवण्णाइंपि पंचवण्णाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च कालाइंपि आ० जाव सुक्किलाइंपि आ०, जाइं वण्णओ कालाइं आ० ताइं किं एगगुणकालाइं आ० जाव अणंतगुणकालाइं आ० ?, गोयमा! एगगुणकालाइंपि आ० जाव अणंतगुणकालाइंपि आ० एवं जाव सुक्किलाइं ॥ जाइं भावतो गंधमंताइं आ० ताइं किं एगगंधाइं आ० दुगंधाइं आ० ?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगगंधाइंपि आ० दुगंधाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च सुब्भिगंधाइंपि आ० दुब्भिगंधाइंपि आ०, जाइं गंधतो सुब्भिगंधाइं आ० ताइं किं एगगुणसुब्भिगंधाइं आ० जाव अणंतगुणसुरभिगंधाइं आ० ?, गोयमा! एगगुणसुब्भिगंधाइंपि आ० जाव अणंतगुणसुब्भिगंधाइंपि, आ० एवं दुब्भिगंधाइंपि ॥ रसा जहा वण्णा ॥ जाइं भावतो फासवं(मं)ताइं आ० ताइं किं एगफासाइं आ० जाव अट्ठफासाइं आ० ?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आ० नो दुफासाइं आ० नो तिफासाइं आ० चउफासाइं आ० पंचफासाइंपि जाव अट्ठफासाइंपि आ०, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आ० जाव लुक्खाइंपि आ०, जाइं फासतो कक्खडाइं आ०

ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइं आ० ?, गोयमा ! एगगुणकक्खडाइंपि आ० जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आ० एवं जाव लुक्खा णेयव्वा ॥ ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं आ० अपुट्ठाइं आ० ?, गोयमा ! पुट्ठाइं आ० नो अपुट्ठाइं आ०, ताइं भंते ! ओगाढाइं आ० अणोगाढाइं आ० ?, गोयमा ! ओगाढाइं आ० नो अणोगाढाइं आ०, ताइं भंते ! किमणंतरोगाढाइं आ० परंपरोगाढाइं आ० ?, गोयमा ! अणंतरोगाढाइं आ० नो परंपरोगाढाइं आ०, ताइं भंते ! किं अणूइं आ० बायराइं आ० ?, गोयमा ! अणूइंपि आ० बायराइंपि आहारेंति, ताइं भंते ! उड्ढं आ० अहे आ० तिरियं आहारेंति ?, गोयमा ! उड्ढंपि आ० अहेवि आ० तिरियंपि आ०, ताइं भंते ! किं आइं आ० मज्झे आ० पज्जवसाणे आहारेंति ?, गोयमा ! आदिंपि आ० मज्झेवि आ० पज्जवसाणेवि आ०, ताइं भंते ! किं सविसए आ० अविसए आ० ?, गोयमा ! सविसए आ० नो अविसए आ०, ताइं भंते ! किं आणुपुव्विं आ० अणाणुपुव्विं आहारेंति ?, गोयमा ! आणुपुव्विं आहारेंति नो अणाणुपुव्विं आहारेंति, ताइं भंते ! किं तिदिसिं आहारेंति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छदिसिं आहारेंति ?, गोयमा ! निव्वाघाएणं छदिसिं, वाघातं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उस्सन्नकारणं पडुच्च वण्णतो काला नीला जाव सुक्किलाइं, गंधतो सुब्भिगंधाइं दुब्भिगंधाइं, रसतो जाव तित्तमहुराइं, फासतो

कक्खडमउयजाव निद्धलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे विप्परिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे जाव फासगुणे उप्पाइत्ता आतसरीरओगाढा पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति ॥ ते णं भंते! जीवा कतोहिंतो उववज्जंति? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति तिरिक्खमणुस्सदेवेहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणियपज्जत्तापज्जत्तेहिंतो असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमिगअसंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जंति, वक्कंतीउववाओ भाणियव्वो ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं ॥ ते णं भंते! जीवा मारणंतियसमुग्घातेणं किं समोहया मरंति असमोहया मरंति?, गोयमा! समोहयावि मरंति असमोहयावि मरंति ॥ ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?—किं नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उ० मणुस्सेसु उ० देवेसु उवव०?, गोयमा! नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उ० मणुस्सेसु उ० णो देवेसु उवव०। किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिएसु उ०?, गोयमा! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उव०, मणुस्सेसु अ-

कम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उव० ॥ ते णं भंते! जीवा कतिगतिका कतिआगतिका पण्णत्ता?, गोयमा! दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो!, से त्तं सुहुमपुढविक्काइया ॥ (सू० १३)

'तेषां' सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां णमिति वाक्यालङ्कारे 'भदन्त!' परमकल्याणयोगिन्! कति शरीराणि प्रज्ञप्तानि?, अथ कः कमेवमाह?, उच्यते, भगवान् गौतमो भगवन्तं श्रीमन्महावीरं, कथमेतद् विनिश्चीयते इति चेद्, उच्यते, निर्वचनसूत्रात्, ननु गौतमोऽपि भगवान् उपचितकुशलमूलो गणधरस्तीर्थकरभापितमातृकापदत्रयश्रवणमात्रावाप्तप्रकृष्टश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमश्चतुर्दशपूर्वविद् विवक्षितार्थपरिज्ञानसमन्वित एव ततः किमर्थं पृच्छति?, तथाहि—न चतुर्दशपूर्वविदः प्रज्ञापनीयं किञ्चिदविदितमस्ति, विशेषतः सर्वाक्षरसंनिपातिनः संभिन्नश्रोतसो भगवतो गणभृतः सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसमन्वितस्य गौतमस्य, उक्तं च—"संखातीते वि भवे साहइ जं वा परो उ पुच्छेज्जा। न य णं अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥" उच्यते, शिष्यसंप्रत्ययार्थं, तथाहि—जानन्नेव भगवान् अन्यत्र विनेयेभ्यः प्रतिपाद्य तत्संप्रत्ययनिमित्तं भूयोऽपि भगवन्तं पृच्छतीति, अथवा गणधरप्रश्नतीर्थकरनिर्वचनरूपं किञ्चित्सूत्रमितीत्थमधिकृतसूत्रकारः सूत्रं रचितवान्, यदिवा संभवति भगवतोऽपि स्वल्पोऽनाभोगः छद्मस्थत्वादिति पृच्छति, उक्तं च—"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति। ज्ञानावरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, प्रस्तुतमुच्यते, भगवानाह—गोयमेत्यादि, अनेन लोकप्रथितमहागोत्रविशिष्टाभिधायकेनामन्त्रणध्वनिनाऽऽमन्त्रयन्निदं ज्ञापयति—प्रधानासाधारणगुणेनोत्साह्य

१ संख्यातीतानपि भवान् साधयति यद्वा पर पृच्छेत्। न चानतिशायी विजानात्येप छद्मस्थ (इति) ॥ १ ॥

विनेयस्य धर्मः कथनीयः, इत्थमेव सम्यक्प्रतिपत्तियोगादिति, त्रीणि शरीराणि प्रज्ञप्तानि, इह शरीराणि पञ्च भवन्ति, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं च, तत्रोदारं—प्रधानं, प्राधान्यं चास्य तीर्थकरगणधरशरीराण्यधिकृत्य, ततोऽन्यस्यानुत्तरसुरशरीरस्यापि अनन्तगुणहीनत्वात्, यद्वा उदारं सातिरेकयोजनसहस्रमानत्वात् शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रधानं, बृहत्ता चास्य वैक्रियं प्रति भवधारणीयसहजशरीरापेक्षया द्रष्टव्या, अन्यथोत्तरवैक्रियं योजनलक्षमानमपि लभ्यते, उदारमेव औदारिकं, विनयादिपाठादिकण् १, तथा विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियं, तथाहि—तदेकं भूत्वाऽनेकं भवति अनेकं भूत्वा एकं तथाऽणु भूत्वा महद्भवति महच्च भूत्वाऽणु तथा खचरं भूत्वा भूमिचरं भवति भूमिचरं भूत्वा खचरं तथा दृश्यं भूत्वाऽदृश्यं भवति अदृश्यं भूत्वा दृश्यमिति, तच्च द्विविधम्—औपपातिकं लब्धिप्रत्ययं च, तत्रौपपातिकमुपपातजन्मनिमित्तं, तच्च देवनारकाणां, लब्धिप्रत्ययं तिर्यग्मनुष्याणां २, तथा चतुर्दशपूर्वविदां तीर्थकरस्फातिदर्शनादिकतथाविधप्रयोजनोत्पत्तौ सत्यां विशिष्टलब्धिवशादाह्रियते—निर्वर्त्त्यते इत्याहारकं, 'कृद्बहुलक'-मिति वचनात्कर्मणि वुञ्, यथा पादहारक इत्यत्र, उक्तं च—"[1]कज्जंमि समुप्पन्ने सुयकेवलिणा विसिट्ठलद्धीए । जं एत्थ आहरिज्जइ भणंति आहारगं तं तु ॥ १ ॥" कार्यं चेदम्—"[2]पाणिदयरिद्धिदंसण सुहुमपयत्थावगाहहेउं वा । संसयवोच्छेयत्थं गमणं जिणपायमूलंमि ॥ १ ॥" एतच्चाहारकं कदाचनापि लोके सर्वथाऽपि न भवति, तच्चाभवनं जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः षण्मासान् यावत्, उक्तं च—"[3]आहारगाइ लोगे छम्मासा जा न होंतिवि कयाइं । उक्कोसेणं नियमा एक्कं समयं जहन्नेणं ॥ १ ॥" आहारकं च शरीरं

---

१ कार्ये समुत्पन्ने श्रुतकेवलिना विशिष्टलब्ध्या । यदत्राह्रियते भणन्त्याहारकं तत्तु ॥ १ ॥ २ प्राणिदयाऋद्धिदर्शनसूक्ष्मपदार्थावगाहहेतवे वा । संशयव्युच्छेदार्थं गमनं जिनपादमूले ॥ १ ॥ ३ आहारकादयो नियमाल्लोके षण्मासान् यावन्न भवन्त्यपि कदाचित् । उत्कृष्टतो नियमात् एकं समयं जघन्येन ॥ १ ॥

वैक्रियशरीरापेक्षयाऽत्यन्तशुभं स्वच्छस्फटिकशिलेव शुभ्रपुद्गलसमूहात्मकं ३, तथा तेजसां—तेजःपुद्गलानां विकारस्तैजसं 'विकार' इत्यण्, तत् औष्मलिङ्गं भुक्ताहारपरिणमनकारणं, ततश्च विशिष्टतपःसमुत्थलब्धिविशेषस्य पुंसस्तेजोलेश्याविनिर्गमः, उक्तं च—"सव्वस्स उम्हसिद्धं रसाइआहारपाकजणगं च । तेयगलद्धिनिमित्तं च तेयगं होइ नायव्वं ॥ १ ॥" ४, तथा कर्मणो जातं कर्मजं, किमुक्तं भवति ?—कर्मपरमाणव एवात्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरवदन्योऽन्यानुगता. सन्तः शरीररूपतया परिणताः कर्मजं शरीरमिति, अत एवैतदन्यत्र कार्मणमित्युक्तं, कर्मणो विकारः कार्मणमिति, तथा चोक्तम्—"कम्मविकारो कम्मणमट्ठविहविचित्तकम्मनिप्फन्नं । सव्वेसिं सरीराणं कारणभूयं मुणेयव्वं ॥ १ ॥" अत्र 'सव्वेसिं'मिति सर्वेषामौदारिकादीनां शरीराणां कारणभूतं—बीजभूतं कार्मणं शरीरं, न खल्वामूलमुच्छिन्ने भवप्रपञ्चप्ररोहबीजभूते कार्मणे वपुषि शेषशरीरप्रादुर्भावः, इदं च कर्मजं शरीरं जन्तोर्गत्यन्तरसङ्क्रान्तौ साधकतमं कारणं, तथाहि—कर्मजेनैव वपुषा तैजससहितेन परिकरितो जन्तुर्मरणदेशमपहायोत्पत्तिदेशमभिसर्पति, ननु यदि तैजससहितकार्मणवपुःपरिकरितो गत्यन्तरं संक्रामति तर्हि स गच्छन्नागच्छन् कस्मान्न दृष्टिपथमवतरति ?, उच्यते, कर्मपुद्गलानां तैजसपुद्गलानां चातिसूक्ष्मतया चक्षुरादीन्द्रियागोचरत्वात्, तथा च परतीर्थिकैरप्युक्तम्—"अन्तरा भवदेहोऽपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते । निष्क्रामन् प्रविशन् वाऽपि, नाभावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥" एतेषां पञ्चानां शरीराणां मध्ये यानि त्रीणि शरीराणि सूक्ष्मपृथिवीकायिकाना तानि नामग्राहमुपदर्शयति—तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, वैक्रियाहारके तु तेषां न संभवतो, भवस्वभावत एव तल्लब्धिशून्यत्वात् ।

१ सर्वस्यौष्ण्यसिद्ध रसाद्याहारपाकजनकं च । तेजोलब्धिनिमित्त च तैजस भवति ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥ २ कर्मविकारः कार्मणमष्टविधविचित्रकर्मनिष्पन्नम् । सर्वेषां शरीराणा कारणभूतं मुणितव्य ॥ १ ॥

अधुनाऽवगाहनाद्वारमाह—'तेसिणं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरं जघन्यपदोत्कृष्टपदयोस्तुल्यश्रुतावपि जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसातव्यम् ॥ संहननद्वारमाह—तेसिणमित्यादि, तेषां भदन्त ! जीवानां शरीरकाणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि ?, संहननं नामास्थिनिचयरूपं, तच्च षोढा, तद्यथा—वज्रऋषभनाराचं ऋषभनाराचं नाराचमर्द्धनाराचं कीलिका छेदवर्त्ति च, तत्र वज्रं—कीलिका ऋषभः—परिवेष्टनपट्टः नाराचस्तूभयतो मर्कटबन्धः ततश्च द्वयोरस्थ्नोरुभयतो मर्कटबन्धेन बद्धयोः पट्टाकृतिं गच्छता तृतीयेनास्थ्ना परिवेष्टितयोरुपरि तदस्थित्रयभेदि कीलिकाख्यं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्वज्रऋषभनाराचसञ्ज्ञं प्रथमं संहननं १, यत्पुनः कीलिकारहितं संहननं तत् ऋषभनाराचं द्वितीयं संहननं २, तथा यत्रास्थ्नोर्मर्कटबन्ध एव केवलस्तन्नाराचसञ्ज्ञं तृतीयं संहननं ३, यत्र पुनरेकपार्श्वे मर्कटबन्धो द्वितीये च पार्श्वे कीलिका तदर्द्धनाराचं चतुर्थं संहननं ४, तथा यत्रास्थीनि कीलिकामात्रबद्धानि तत्कीलिकाख्यं पञ्चमं संहननं ५, तथा यत्रास्थीनि परस्परं छेदेन वर्त्तन्ते न कीलिकामात्रेणापि बन्धस्तत् षष्ठं छेदवर्त्ति, तच्च प्रायो मनुष्यादीनां नित्यं स्नेहाभ्यङ्गादिरूपां परिशीलनामपेक्षते ६, इत्थं षोढा संहननसम्भवे संशयः—तेषां शरीराणि किंसंहननानि प्रज्ञप्तानि ? इति, भगवानाह—गौतम ! छेदवर्त्तिसंहननानि प्रज्ञप्तानि, अयमत्राभिप्रायः—यद्यपि सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामस्थ्यभावस्तथाऽप्यौदारिकशरीरिणामस्थ्यात्मकेन संहननेन यः शक्तिविशेष उपजायते सोऽप्युपचारात्संहननमिति व्यवह्रियते, शक्तिविशेषश्चात्यन्तमल्पीयान् सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामप्यस्त्यौदारिकशरीरित्वात्, जघन्यश्च शक्तिविशेषश्छेदवर्त्तिसंहननविषय इति तेषामपि छेदवर्त्तिसंहननमुक्तम् ॥ गतं संहननद्वारं, सम्प्रति संस्थानद्वारमाह—'तेसिणं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरं 'मसूरगचंदसंठिया' इति, मसूरकाख्यस्य—धान्यविशेषस्य यच्चन्द्राकृति दलं स मसूरकचन्द्रस्तद्वदनुसंस्थितानि मसूरकचंद्रसंस्थितानि, अत्रायं भावार्थः—इह जीवानां षट् संस्थानानि, तानि च समचतुरस्रादीनि

वक्ष्यमाणलक्षणानि, तेषामाद्यानि पञ्च संस्थानानि मसूरचन्द्रकाकारे न संभवन्ति, तल्लक्षणायोगात्, तत इदं मसूरचन्द्रकाकारं संस्थानं हुण्डं प्रतिपत्तव्यं, सर्वत्रासंस्थितत्वरूपस्य तल्लक्षणस्य योगात्, जीवानां संस्थानान्तराभावाच्च, आह च मूलटीकाकारः—"संस्थानं मसूरचन्द्रकसंस्थितमपि हुण्डं, सर्वत्रासंस्थितत्वेन तल्लक्षणयोगात्, जीवानां संस्थानान्तराभावाच्चे"ति ॥ गतं संस्थानद्वारमधुना कषायद्वारमाह—'तेसिणं भंते!' इत्यादि, तेषां भदन्त! सूक्ष्मपृथ्वीकायिकानां कति कषायाः प्रज्ञप्ताः?, तत्र कषाया नाम कष्यन्ते—हिंस्यन्ते परस्परमस्मिन् प्राणिन इति कषः—संसारस्तमयन्ते—गच्छन्त्येभिर्जन्तव इति कषायाः—क्रोधादयः परिणामविशेषाः, तथा चाह—'गोयमे'त्यादि सुगमं, नवरं क्रोधः—अप्रीतिपरिणामः मानो—गर्वपरिणामः माया—निकृतिरूपा लोभो—गार्द्ध्यलक्षणः, एते च क्रोधादयोऽमीषां मन्दपरिणामतयाऽनुपदर्शितबाह्यशरीरविकारा एवानाभोगतस्तथा तथा वैचित्र्येण भवन्तः प्रतिपत्तव्याः ॥ गतं कषायद्वारं, सञ्ज्ञाद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि सुगमं, नवरं सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा, सा च द्विधा—ज्ञानरूपाऽनुभवरूपा च, तत्र ज्ञानरूपा मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलभेदात्पञ्चप्रकारा, तत्र केवलसञ्ज्ञा क्षायिकी शेषास्तु क्षायोपशमिक्यः, अनुभवसञ्ज्ञा—स्वकृतासातवेदनीयादिकर्मविपाकोदयसमुत्था, इह प्रयोजनमनुभवसञ्ज्ञया, ज्ञानसञ्ज्ञायास्तद्द्वारेण परिगृहीतत्वात्, तत्राहारसञ्ज्ञा नाम आहाराभिलाषः क्षुद्वेदनीयप्रभवः खल्वात्मपरिणामविशेषः, एषा चासातवेदनीयोदयादुपजायते, 'भयसञ्ज्ञा' भयवेदनीयोदयजनितत्रासपरिणामरूपा, 'परिग्रहसञ्ज्ञा' लोभविपाकोदयसमुत्थमूर्छापरिणामरूपा, 'मैथुनसञ्ज्ञा' वेदोदयजनिता मैथुनाभिलाषः, एताश्चतस्रोऽपि मोहनीयोदयप्रभवाः, एता अपि सूक्ष्मपृथ्वीकायिकानामव्यक्तरूपाः प्रतिपत्तव्याः ॥ गतं सञ्ज्ञाद्वारमधुना लेश्याद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि सुगमं, नवरं लिश्यति—श्लिष्यते आत्मा कर्मणा सहानयेति लेश्या—कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यादात्मनः शुभाशुभपरिणामः, उक्तं च—"कृष्णादि-

द्रव्यसाचिव्यात्परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रवर्त्तते ॥ १ ॥" सा च षोढा, तद्यथा—कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या च, आसां च स्वरूपं जम्बूफलखादकषट्पुरुषदृष्टान्तेनैवावसातव्यम्—"पंथाओ परिभट्ठा छप्पुरिसा अडविमज्झयारंमि । जंबूतरुस्स हेट्ठा परोप्परं ते विचिंतेति ॥ १ ॥ निम्मूलखंधसाला गोच्छे पक्के य पडियसडियाइं । जह एएसिं भावा तह लेसाओवि नायव्वा ॥ २ ॥" अमीषां च सूक्ष्मपृथिवीकायिकानामतिसंक्लिष्टपरिणामत्वाद्देवेभ्यः सूक्ष्मेष्वनुत्पादाच्चाद्या एव तिस्रः कृष्णनीलकापोतरूपा लेश्याः, न शेषा इति ॥ गतं लेश्याद्वारमिदानीमिन्द्रियद्वारमाह—'तेसिण'मित्यादि, इन्द्रियं नाम 'इदु परमैश्वर्ये' 'उदितः' इति नम्, इन्दनादिन्द्रः—आत्मा सर्वोपलब्धिरूपपरमैश्वर्ययोगात् तस्य लिङ्गं—चिह्नमविनाभावि इन्द्रियम्, 'इन्द्रिय'मिति निपातनसूत्राद्रूपनिष्पत्तिः, तत्पञ्चधा, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रियं जिह्वेन्द्रियं घ्राणेन्द्रियं स्पर्शनेन्द्रियं च, एकैकमपि द्विधा—द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं च, द्रव्येन्द्रियं द्विधा—निर्वृत्तिरूपमुपकरणरूपं च, तत्र निर्वृत्तिर्नाम प्रतिविशिष्टः संस्थानविशेषः, साऽपि द्विधा—बाह्याऽभ्यन्तरा च, तत्र बाह्या कर्णपर्पटिकादिरूपा, सा च विचित्रा न प्रतिनियतरूपतया निर्देष्टुं शक्यते, तथाहि—मनुष्यस्य श्रोत्रे नेत्रयोरुभयपार्श्वतोभाविनी भ्रुवावुपरितनश्रवणबन्धापेक्षया समे, वाजिनो नेत्रयोरुपरि तीक्ष्णे चाग्रभागे इत्यादि, अभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषामप्येकरूपा, तामेवाधिकृत्य चामूनि सूत्राणि प्रावर्त्तिषत—"सोइंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! कलंबुयासंठाणसंठिए पन्नत्ते, चक्खिदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! मसूरचंदसंठाणसंठिए पन्नत्ते,

---

१ पथ. परिभ्रष्टा. षट् पुरुषा अटवीमध्यभागे । जम्बूतरोरधस्तात् परस्पर ते विचिन्तयन्ति ॥ १ ॥ निर्मूलं स्कन्धं शाखा प्रशाखा गुच्छान् (छित्त्वा) पक्वानि पतितशटितानि (भक्षयाम) । यथैतेषा भावास्तथा लेश्या अपि ज्ञातव्या ॥ २ ॥

घाणिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! अइमुत्तसंठाणसंठिए पन्नत्ते, जिब्भिदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पन्नत्ते?, गोयमा! खुरप्पसंठाणसंठिए पन्नत्ते, फासिंदिए णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! नाणासंठाणसंठिए पन्नत्ते ॥" इति, इह स्पर्शनेन्द्रियनिर्वृत्तेः प्रायो न बाह्याभ्यन्तरभेदः, तत्त्वार्थमूलटीकायामनभ्युपगमात्, उपकरणं नाम खड्गस्थानीयाया बाह्यनिर्वृत्तेर्या खड्गधारास्थानीया स्वच्छतरपुद्गलसमूहात्मिकाऽभ्यन्तरा निर्वृत्तिस्तस्याः शक्तिविशेषः, इदं चोपकरणरूपं द्रव्येन्द्रियमान्तरनिर्वृत्तेः कथञ्चिदर्थान्तरं, शक्तिशक्तिमतोः कथञ्चिद्भेदात्, कथञ्चिद्भेदश्च सत्यामपि तस्यामान्तरनिर्वृत्तौ द्रव्यादिनोपकरणस्योपघातसम्भवात्, तथाहि—सत्यामपि कदम्बपुष्पाद्याकृतिरूपायामान्तरायां निर्वृत्तौ महाकठोरतरघनगर्जितादिना शक्त्युपघाते सति न परिच्छेत्तुमीशते जन्तवः शब्दादिकमिति, भावेन्द्रियमपि द्विधा—लब्धिरुपयोगश्च, तत्र लब्धिः श्रोत्रेन्द्रियादिविषयस्तदावरणक्षयोपशमः, उपयोगः स्वस्वविषये लब्ध्यनुसारेणात्मनः परिच्छेदव्यापारः, तत्र यद्यपि द्रव्यरूपं भावरूपं चेत्थमिन्द्रियमनेकप्रकारं तथाऽपीह बाह्यनिर्वृत्तिरूपमिन्द्रियं पृष्टमवगन्तव्यं, तदेवाधिकृत्य व्यवहारप्रवृत्तेः, तथाहि—बकुलादयः पञ्चेन्द्रिया इव भावेन्द्रियपञ्चकविज्ञानसमन्विता अनुमानतः प्रतीयन्ते तथाऽपि न ते पञ्चेन्द्रिया इति व्यवह्रियन्ते, बाह्येन्द्रियपञ्चकासम्भवात्, उक्तं च—"पंचेंदिओ उ बउलो नरो व्व सव्वविसओवलंभाओ। तहवि न भण्णइ पंचिंदिउ त्ति बज्झिंदियाभावा ॥ १ ॥" ततो द्रव्येन्द्रियमधिकृत्य निर्वचनसूत्रमाह—'गोयमे'त्यादि सुगमम् ॥ गतमिन्द्रियद्वारमधुना समुद्घातद्वारं, तत्र समुद्घाताः सप्त, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः १ कषायसमुद्घातः २ मारणसमुद्घातः ३ वैक्रियसमुद्घातः ४ तैजससमुद्घातः ५ आहारकसमुद्घातः ६ केवलिसमुद्घातश्च ७, तत्र वेदनायाः समुद्घातो वेदनासमुद्घातः,

१ पञ्चेन्द्रिय एव बकुलो नर इव सर्वविषयोपलम्भात्। तथापि न भण्यते पञ्चेन्द्रिय इति बाह्येन्द्रियाभावात् ॥ १ ॥

स चासातवेदनीयकर्माश्रयः १, कषायेण—कषायोदयेन समुद्घातः कषायसमुद्घातः, स च कषायचारित्रमोहनीयकर्माश्रयः २, मरणे भवो मारणः, स चासौ समुद्घातश्च मारणसमुद्घातः ३, वैक्रिये प्रारभ्यमाणे समुद्घातो वैक्रियसमुद्घातः, स च वैक्रियशरीरनामकर्माश्रयः ४, (तैजसेन हेतुभूतेन समुद्घातस्तैजससमुद्घातः तैजसशरीरनामकर्माश्रयः) ५, आहारके प्रारभ्यमाणे समुद्घात आहारकसमुद्घातः, स चाहारकशरीरनामकर्माश्रयः ६, केवलिनि अन्तर्मुहूर्त्तभाविपरमपदे समुद्घातः केवलिसमुद्घातः ७। अथ समुद्घात इति कः शब्दार्थः?, उच्यते—समिति—एकीभावे उत्—प्राबल्ये एकीभावेन प्राबल्येन घातः समुद्घातः, केन सह एकीभावगमनम्? इति चेद्, उच्यते, अर्थाद्वेदनादिभिः, तथाहि—यदा आत्मा वेदनादिसमुद्घातगतो भवति तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवति नान्यज्ञानपरिणतः, प्राबल्येन घातः कथम्? इति चेद्, उच्यते, इह वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मपुद्गलान् कालान्तरानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदयावलिकायां प्रक्षिप्यानुभूयानुभूय निर्जरयति, आत्मप्रदेशेभ्यः शातयतीति भावः, तत्र वेदनासमुद्घातगत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—वेदनाकरालितो जीवः स्वप्रदेशाननन्तानन्तकर्मपरमाणुवेष्टितान् शरीराद्बहिरपि विक्षिपति, तैश्च प्रदेशैर्वेदनजघनादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामतो विस्तरतश्च शरीरमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्यान्तर्मुहूर्त्तं यावदवतिष्ठते, तस्मिंश्चान्तर्मुहूर्त्ते प्रभूतासातवेदनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, कषायसमुद्घातसमुद्धतः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, तथाहि—कषायोदयसमाकुलो जीवः स्वप्रदेशान् बहिर्विक्षिप्य तैर्वदनोदरादिरन्ध्राणि कर्णस्कन्धाद्यन्तरालानि चापूर्यायामविस्तराभ्यां देहमात्रं क्षेत्रमभिव्याप्य वर्त्तते, तथाभूतश्च प्रभूतकषायकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, एवं मरणसमुद्घातगत आयुःकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, वैक्रियसमुद्घातगतः पुनर्जीवः स्वप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरवि-

ष्कम्भवाहल्यमानमायामतः सङ्ख्येययोजनप्रमाणं दण्डं निसृजति, निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान्
शातयति, तथा चोक्तम्—"वेउव्वियसमुग्घाए णं समोहणइ २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, निसिरित्ता अहावायरे पुग्गले
परिसाडेइ" इति, तैजसाहारकसमुद्घातौ वैक्रियसमुद्घातवदवसातव्यौ, केवलं तैजससमुद्घातगतस्तैजसशरीरनामकर्मपुद्गलपरिशातं
करोति, आहारकसमुद्घातगत आहारकशरीरनामकर्मपुद्गलपरिशातं करोति, केवलिसमुद्घातसमुद्धतस्तु केवली सदसद्वेदनीयशुभाशुभना-
मोच्चनीचैर्गोत्रकर्मपुद्गलपरिशातं (करोति), केवलिसमुद्घातवर्जाः शेषाः षडपि समुद्घाताः प्रत्येकमान्तर्मौहूर्त्तिकाः, केवलिसमुद्घातः पुन-
रष्टसामयिकः, उक्तं च प्रज्ञापनायाम्—"वेयणासमुग्घाए णं कइसमइए पण्णत्ते?, गोयमा! असंखेज्जसमइए अंतमुहुत्ते, एवं जाव आहार-
गसमुग्घाए॥ केवलिसमुग्घाए णं भंते! कइसमइए पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठसमइए पण्णत्ते॥" इति, तदेवमनेकसमुद्घातसम्भवे सूक्ष्म-
पृथिवीकायिकानां तान् पृच्छति—'**तेसिणं भंते**' इत्यादि सुगमं, नवरं वैक्रियाहारकतैजसकेवलिसमुद्घाताभावो वैक्रियादिलब्ध्यभावात्॥
गतं समुद्घातद्वारं, सम्प्रति सञ्ज्ञिद्वारमाह—'**ते णं भंते**' इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! किं स-
ञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो वा?, सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा—भूतभवद्भाविभावस्वभावपर्यालोचनं सा विद्यते येषां ते सञ्ज्ञिनः—विशिष्टस्मरणादिरूपमनो-
विज्ञानभाज इत्यर्थः, यथोक्तमनोविज्ञानविकला असञ्ज्ञिनः?; अत्र भगवान्निर्वचनमाह—गौतम! नो सञ्ज्ञिनः, किन्त्वसञ्ज्ञिनः, वि-
शिष्टमनोलब्ध्यभावात्, हेतुवादोपदेशेनापि न सञ्ज्ञिनः, अभिसंधारणपूर्विकायाः करणशक्तेरभावात्, इहासञ्ज्ञिन इत्येव सिद्धे नो
सञ्ज्ञिन इति प्रतिषेधः प्रतिषेधप्रधानो विधिरयमिति ज्ञापनार्थः, प्रतिपाद्यस्य प्रकृतिसावद्यत्वादिति। गतं सञ्ज्ञिद्वारं, वेदनाद्वारमाह
—'**ते णं भंते!**' इत्यादि॥ '**इत्थिवेयगा**' इति स्त्रियाः वेदो येषां ते स्त्रीवेदकाः, एवं पुरुषवेदका नपुंसकवेदका इत्यपि भावनीयं, तत्र

स्त्रियाः पुंस्यभिलाषः स्त्रीवेदः, पुंसः स्त्रियामभिलापः पुंवेदः, उभयोरप्यभिलाषो नपुंसकवेदः, भगवानाह—गौतम ! न स्त्रीवेदका न पुरुषवेदकाः, नपुंसकवेदकाः संमूर्च्छिमत्वात्, 'नारकसंमूर्च्छिमा नपुंसका' इति भगवद्वचनम् ॥ पर्याप्तिद्वारमाह—"तेसि णं भंते' इत्यादि, सुगमं, पर्याप्तिप्रतिपक्षा अपर्याप्तिस्तन्निरूपणार्थमाह—'तेसि णं भंते !' इत्यादि पाठसिद्धं, नवरं चतस्रोऽप्यपर्याप्तयः करणापेक्षया द्रष्टव्याः, लब्ध्यपेक्षया त्वेकैव प्राणापानापर्याप्तिः, यस्मादेवमागमः—इह लब्ध्यपर्याप्तका अपि नियमादाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तिपरिसमाप्तावेव म्रियन्ते नार्वाक्, यत आगामिभवायुर्बद्ध्वा म्रियन्ते सर्व एव देहिनः, तच्चाहारशरीरेन्द्रियपर्याप्तानामेव बन्धमायातीति ॥ सम्प्रति दृष्टिद्वारमाह—'ते णं भंते !' इत्यादि सुगमं, नवरं सम्यग्—अविपरीता दृष्टिः—जिनप्रणीतवस्तुतत्त्वप्रतिपत्तिर्येषां ते सम्यग्दृष्टयः, मिथ्या—विपर्यस्ता दृष्टिर्येषां भक्षितहृत्पूरपुरुषस्य सिते पीतप्रतिपत्तिवत् मिथ्यादृष्टयः, एकान्तसम्यग्रूपमिथ्यारूपप्रतिपत्तिविकलाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, निर्वचनसूत्रं—'गोयमे'त्यादि, सुगमं, नवरं सम्यग्दृष्टित्वप्रतिषेधः सासादनसम्यक्त्वस्यापि तेषामसम्भवात्, सासादनसम्यक्त्ववतां तन्मध्ये उत्पादाभावात्, ते ह्यतिसंक्लिष्टपरिणामाः, सास्वादनसम्यक्त्वपरिणामस्तु मनाक् शुभ इति तन्मध्ये सासादनसम्यक्त्ववतामुत्पादाभावः, अत एव सदा संक्लिष्टपरिणामत्वात्तेषां सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वपरिणामोऽपि न भवति, नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सन् तन्मध्ये उत्पद्यते, "न सम्ममिच्छो कुणइ कालं" इति वचनात् ॥ गतं दृष्टिद्वारमधुना दर्शनद्वारमाह—दर्शनं नाम सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि सामान्यावबोधः, तच्चतुर्धा, तद्यथा—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनं च, तत्र सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि चक्षुषा दर्शनं—रूपसामान्यपरिच्छेदश्चक्षुर्दर्शनम्, अचक्षुषा—चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियमनोभिर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनम्, अवधिरेव दर्शनं—रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं, केवलमेव दर्शनं—सकलजगद्भाविवस्तुसामान्यपरिच्छित्तिरूपं केवलदर्शनं, तत्र किमेषां दर्शनमिति

जिज्ञासुः पृच्छति—'ते णं भंते' इत्यादि पाठसिद्धं, नवरमचक्षुर्दर्शनित्वं स्पर्शनेन्द्रियापेक्षया, शेषदर्शनप्रतिषेधः सुज्ञानः ॥ गतं दर्शनद्वारं, ज्ञानद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, अज्ञानत्वं मिथ्यादृष्टित्वात्, तदपि चाज्ञानत्वं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानापेक्षया, तथा चाह—'नियमा दुअण्णाणी' त्यादि पाठसिद्धं, नवरं तदपि मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च शेषजीववादरादिराश्यपेक्षयाऽत्यन्तमल्पीयः प्रतिपत्तव्यं, यत उक्तम्—"सर्वनिकृष्टो जीवस्य दृष्ट उपयोग एष वीरेण । सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तानां स च भवति विज्ञेयः ॥ १ ॥ तस्मात्प्रभृति ज्ञानविवृद्धिर्दृष्टा जिनेन जीवानाम् । लब्धिनिमित्तैः करणैः कायेन्द्रियवाग्मनोदृग्भिः ॥ २ ॥" योगद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि पाठसिद्धम् ॥ गतं योगद्वारमधुनोपयोगद्वारं, तत्रोपयोगो द्विविधः—साकारोऽनाकारश्च, तत्राकारः—प्रतिवस्तु प्रतिनियतो ग्रहणपरिणामः "आगारो उ विसेसो" इति वचनात्, सह आकारो यस्य येन वा स साकारो—ज्ञानपञ्चकमज्ञानत्रिकं, यथोक्ताकारविकलोऽनाकारः, स चक्षुर्दर्शनादिको दर्शनचतुष्टयात्मकः, उक्तं च—"ज्ञानाज्ञाने पञ्च त्रिविकल्पे सोऽष्टधा तु साकारः । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदृग्विषयस्त्वनाकारः ॥ १ ॥" तत्र क एषामुपयोगः? इति जिज्ञासुः पृच्छति—'ते णं भंते!' इत्यादि निगदसिद्धं, नवरं साकारोपयोगोपयुक्ता मत्यज्ञानश्रुताज्ञानोपयोगापेक्षया, अनाकारोपयोगोपयुक्ता अचक्षुर्दर्शनोपयोगापेक्षयेति ॥ साम्प्रतमाहारद्वारमाह—'ते णं भंते इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! जीवाः किमाहारमाहारयन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'द्रव्यतो' द्रव्यस्वरूपपर्यालोचनायामनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याणि, अन्यथा ग्रहणासम्भवात्, न हि सङ्ख्यातप्रदेशात्मका असङ्ख्यातप्रदेशात्मका वा स्कन्धा जीवस्य ग्रहणप्रायोग्या भवन्ति, क्षेत्रतोऽसङ्ख्यातप्रदेशावगाढानि, कालतोऽन्यतरस्थितिकानि—जघन्यस्थितिकानि मध्यमस्थितिकानि उत्कृष्टस्थितिकानि चेति भावार्थः, स्थितिरिति चाहारयोग्यस्कन्धपरिणामत्वेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम्, आह च मूलटीकाकारः—"काल-

तोऽन्यतरस्थितीनि तद्भावावस्थानेन जघन्यादिरूपां स्थितिमधिकृत्ये"ति, भावतो वर्णवन्ति गन्धवन्ति रसवन्ति स्पर्शवन्ति च, प्रतिपरमाण्वेकैकवर्णगन्धरसद्विस्पर्शभावात्, "एवं जहा पण्णवणाए" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तेन प्रकारेण यथा प्रज्ञापनायामष्टाविंशतितमे आहारपदे प्रथमोद्देशके तावद्वक्तव्यं यावत् "सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसि"मिति, तच्चैवम्—"जाइं भावतो वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति जाव पंचवण्णाइं आहारेंति?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइंपि आहारेंति जाव पंचवण्णाइं पि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कालवण्णाइंपि आहारेति जाव सुक्किल्लवण्णाइंपि आहारेंति, जाइं कालवण्णाइंपि आहारेंति ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति संखिज्जगुणकालाइं आहारेति असंखेज्जगुणकालाइं आहारेंति अणंतगुणकालाइं आहारेंति?, गोयमा! एगगुणकालाइंपि आहारेति जाव अणंतगुणकालाइंपि आहारेंति एवं जाव सुक्किल्लाइंपि आहारेंति, एवं गंधतोवि रसतोवि ॥ जाइं भावतो फासमंताइं आहारेति ताइं किं एगफासाइं आहारेंति दुफासाइं आहारेंति जाव अट्ठफासाइं आहारेंति?, गोयमा! ठाणमग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आहारेंति नो दुफासाइं आहारेंति नो तिफासाइंपि आहारेंति चउफासाइंपि आहारेंति जाव अट्ठफासाइंपि आहारेंति, विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइंपि आहारेंति जाव लुक्खाइंपि आहारेति ॥ जाइं फासतो कक्खडाइंपि आहारेति ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति?, गोयमा! एगगुणकक्खडाइंपि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइंपि आहारेंति, एवं अट्ठवि फासा भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खाइंपि आहारेंति ॥ जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति ताइं भंते! किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आहारेंति?, गोयमा! पुट्ठाइं आहारेंति नो अपुट्ठाइं आहारेंति, जाइं पुट्ठाइं आहारेंति ताइं भंते! किं ओगाढाइं आहारेंति अणोगाढाइं आहारेति?, गोयमा! ओगाढाइं आहारेंति नो

अणोगाढाइं आहारेंति, जाइं भंते! ओगाढाइं आहारेंति ताइं किं अणंतरोगाढाइं आहारेंति परंपरोगाढाइं आहारेंति?, गोयमा! अणंतरोगाढाइं आहारेंति नो परंपरोगाढाइं आहारेति, ताइं भंते! किं अणूइं आहारेंति बायराइं आहारेंति?, गोयमा! अणूइंपि आहारेंति बायराइंपि आहारेंति, जाइं भंते! अणूइं आहारेंति ताइं भंते! किं उड्ढं आहारेंति अहे आहारेंति तिरियं आहारेंति?, गोयमा! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियंपि आहारेंति, जाइं भंते! उड्ढंपि आहारेंति अहेवि आहारेंति तिरियंपि आहारेति ताइं किं आइं आहारेंति मज्झे आहारेंति पज्जवसाणे आहारेंति?, गोयमा! आइंपि आहारेंति मज्झेवि आहारेंति पज्जवसाणे(वि)आहारेंति, जाइं भंते! आइंपि आहारेति जाव पज्जवसाणेवि आहारेंति ताइं किं सविसए आहारेति अविसए आहारेंति?, गोयमा! सविसए आहारेंति नो अविसए आहारेंति, जाइं भंते! सविसए आहारेंति ताइं किं आणुपुव्विं आहारेंति अणाणुपुव्विं आहारेंति?, गोयमा! आणुपुव्विं आहारेंति नो अणाणुपुव्विं आहारेंति, जाइं भंते! आणुपुव्विं आहारेंति ताइं किं तिदिसिं आहारेति चउदिसिं आहारेंति पंचदिसिं आहारेंति छद्दिसिं आहारेंति?, गोयमा! निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं(सिय)पंचदिसिमिति ॥" अस्य व्याख्या—"जाइं भावतो वण्णमंताइं" इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगम्, भगवानाह—गौतम! 'ठाणमग्गणं पडुच्चे'ति तिष्ठन्ति विशेषा अस्मिन्निति स्थानं—सामान्यमेकवर्णं द्विवर्णं त्रिवर्णमित्यादिरूपं तस्य मार्गणम्—अन्वेषणं तत्प्रतीत्य, सामान्यचिन्तामाश्रित्येति भावार्थः, एकवर्णान्यपि द्विवर्णान्यपीत्यादि सुगमं, नवरं तेषामनन्तप्रदेशिकानां स्कन्धानामेकवर्णत्वं द्विवर्णत्वमित्यादि व्यवहारनयमतापेक्षया, निश्चयनयमतापेक्षया त्वनन्तप्रादेशिकस्कन्धोऽल्पीयानपि पञ्चवर्ण एव प्रतिपत्तव्यः, 'विहाणमग्गणं पडुच्चे'त्यादि यावद् [विधानं—विशेषः,] विविक्तम्—इतरव्यवच्छिन्नं धानं—पोषणं स्वरूपस्य यत्तत्प्रतीत्य सामान्यचिन्तामाश्रित्येति शेषः, कृष्णो नील इत्यादि प्रति-

नियतो वर्णविशेष इतियावत्, तस्य मार्गणं तत्प्रतीत्य कालवर्णान्यप्याहारयन्तीत्यादि सुगमं, नवरमेतदपि व्यवहारतः प्रतिपत्तव्यं, निश्चयतः पुनरवश्यं तानि पञ्चवर्णान्येव ॥ 'जाइं वण्णतो कालवण्णाइं' इत्यादि सुगमं यावदनन्तगुणसुक्किलाइंपि आहारयन्ति, एवं गन्धरसस्पर्शविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि ॥ 'जाइं भंते! अणंतगुणलुक्खाइं' इत्यादि, यानि भदन्त! अनन्तगुणरूक्षाणि, उपलक्षणमेतत्—एकगुणकालादीन्यप्याहारयन्ति तानि, स्पृष्टानि—आत्मप्रदेशस्पर्शविषयाण्याहारयन्ति उतास्पृष्टानि?, भगवानाह—स्पृष्टानि नो अस्पृष्टानि, तत्रात्मप्रदेशैः संस्पर्शनमात्मप्रदेशावगाढक्षेत्राद्बहिरपि संभवति ततः प्रश्नयति—'जाइं भंते' इत्यादि, यानि भदन्त! स्पृष्टान्याहारयन्ति तानि किमवगाढानि—आत्मप्रदेशैः सहैकक्षेत्रावस्थायीनि उतानवगाढानि—आत्मप्रदेशावगाहक्षेत्राद्बहिरवस्थितानि?, भगवानाह—गौतम! अवगाढान्याहारयन्ति नानवगाढानि। यानि भदन्त! अवगाढान्याहारयन्ति तानि किमनन्तरावगाढानि?, किमुक्तं भवति?—येष्वात्मप्रदेशेषु यान्यव्यवधानेनावगाढानि तैरात्मप्रदेशैस्तान्येवाहारयन्ति उत परम्परावगाढानि—एकद्वित्राद्यात्मप्रदेशैर्व्यवहितानि?, भगवानाह—गौतम! अनन्तरावगाढानि न परम्परावगाढानि। यानि भदन्त! अनन्तरावगाढान्याहारयन्ति तानि भदन्त! अनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याणि किमणूनि—स्तोकान्याहारयन्ति उत बादराणि—प्रभूतप्रदेशोपचितानि?, भगवानाह—अणून्यप्याहारयन्ति बादराण्यप्याहारयन्ति, इहाणुत्वबादरत्वे तेषामेवाहारयोग्यानां स्कन्धानां प्रदेशस्तोकत्वबाहुल्यापेक्षया प्रज्ञापनामूलटीकाकारेणापि व्याख्याते इत्यस्माभिरपि तथैवाभिहिते। यानि भदन्त! अणून्यपि आहारयन्ति तानि किमूर्ध्वप्रदेशस्थितान्याहारयन्ति अधस्तिर्यग्वा?, इहोर्ध्वाधस्तिर्यक्त्वं यावति क्षेत्रे सूक्ष्मपृथिवीकायिकोऽवगाढस्तावत्येव क्षेत्रे तदपेक्षया परिभावनीयं, भगवानाह—ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति—ऊर्ध्वप्रदेशावगाढान्यप्याहारयन्ति, एवमधोऽपि तिर्यगपि। यानि भदन्त! ऊर्ध्वमप्याहारयन्ति अधोऽप्याहारयन्ति तिर्य-

गप्याहारयन्ति तानि किमादावाहारयन्ति मध्ये आहारयन्ति पर्यवसाने आहारयन्ति ?, अयमत्राभिप्रायः—सूक्ष्मपृथिवीकायिका अनन्तप्रादेशिकानि द्रव्याण्यन्तर्मुहूर्त्तं कालं यावदुपभोगोचितानि गृह्णन्ति, ततः संशय.—किमुपभोगोचितस्य कालस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणस्यादौ—प्रथमसमये आहारयन्ति उत मध्ये—मध्यसमयेषु आहोश्वित् पर्यवसाने—पर्यवसानसमये ?, भगवानाह—गौतम ! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति, किमुक्तं भवति ?—उपभोगोचितकालस्यान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणस्यादिमध्यावसानसमयेऽप्याहारयन्तीति । यानि भदन्त ! आदावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽप्याहारयन्ति तानि भदन्त ! किं स्वविषयानि—स्वोचिताहारयोग्यान्याहारयन्ति उताविषयानि—स्वोचिताहारायोग्यान्याहारयन्ति ?, भगवानाह—गौतम ! स्वविषयाण्याहारयन्ति नो अविषयाणि । यानि भदन्त ! स्वविषयाण्याहारयन्ति तानि भदन्त ! किमानुपूर्व्याऽऽहारयन्ति अनानुपूर्व्या ?, आनुपूर्वी नाम यथाऽऽसन्नं, तद्विपरीताऽनानुपूर्वी, भगवानाह—गौतम ! आनुपूर्व्या, सूत्रे द्वितीया तृतीयार्थे वेदितव्या प्राकृतत्वात्, यथाऽऽचाराङ्गे "अगणिं पुट्ठा" इत्यत्र, आहारयन्ति, नो अनानुपूर्व्या ऊर्ध्वमधस्तिर्यग्वा, यथाऽऽसन्नं नातिक्रम्याहारयन्तीति भाव. । यानि भदन्त ! आनुपूर्व्याऽऽहारयन्ति तानि भदन्त ! किं 'तिदिसिं'ति तिस्रो दिशः समाहृतास्त्रिदिक् तस्मिन् व्यवस्थितान्याहारयन्ति चतुर्दिशि पञ्चदिशि षड्दिशि वा, इह लोकनिष्कुटपर्यन्ते जघन्यपदेऽपि [-जीवावगाहक्षेत्रं-] त्रिदिग्व्यवस्थितमेव प्राप्यते न द्विदिग्व्यवस्थितमेकदिग्व्यवस्थितं वा, अतस्त्रिदिश्यारभ्य प्रश्नः कृतः, भगवानाह—गौतम ! 'निव्वाघाएणं छद्दिसिं'मित्यादि, व्याघातो नामालोकाकाशेन प्रतिस्खलनं व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं 'शब्दप्रथादावव्ययं पूर्वपदार्थे नित्यमव्ययीभाव' इत्यव्ययीभावः 'तेन वा तृतीयायाः' इति विकल्पेनाम्भावविधानात् पक्षेऽत्राम्भावः, नियमाद्—अवश्यंतया षड्दिशि व्यवस्थितानि, षड्भ्यो दिग्भ्य आगतानीति भावः, द्रव्याण्याहारयन्ति, व्याघातं पुनः प्रतीत्य लोकनिष्कुटादौ स्यात्कदाचित्त्रिदिशि—तिसृभ्यो दिग्भ्य

आगतानि, कदाचित् चतसृभ्यः कदाचित्पञ्चभ्यः, काऽत्र भावना? इति चेदुच्यते—इह लोकनिष्कुटे पर्यन्तेऽधस्त्यप्रतराग्नेयकोणावस्थितो यदा सूक्ष्मपृथिवीकायिको वर्त्तते तदा तस्याधस्तादलोकेन व्याप्तत्वात् अधोदिक्पुद्गलाभावः आग्नेयकोणावस्थितत्वात् पूर्वदिक्पुद्गलाभावो दक्षिणदिक्पुद्गलाभावश्च, एवमधःपूर्वदक्षिणरूपाणां तिसृणां दिशामलोकेन व्यापनात् ता अपास्य या परिशिष्टा ऊर्ध्वाऽपरोत्तरा च दिगव्याहता वर्त्तते तत आगतान् पुद्गलानाहारयन्ति, यदा पुनः स एव पृथिवीकायिकः पश्चिमां दिशमनुसृत्य वर्त्तते तदा पूर्वा दिगभ्यधिका जाता, द्वे च दिशौ दक्षिणाधस्त्यरूपे अलोकेन व्याहते इति स चतुर्दिगागतान् पुद्गलानाहारयति, यदा पुनरूर्ध्वं द्वितीयादिप्रतरगतपश्चिमदिशमवलम्ब्य तिष्ठति तदाऽधस्त्यापि दिगभ्यधिका लभ्यते, केवला दक्षिणैवैका पर्यन्तवर्त्तिनी अलोकेन व्याहतेति पञ्चदिगागतान् पुद्गलानाहारयति। 'वण्णतो' इत्यादि वर्णतः कालनीललोहितहारिद्रशुक्लानि, गन्धतः सुरभिगन्धानि दुरभिगन्धानि वा, रसतस्तिक्तानि यावन्मधुराणि, स्पर्शतः कर्कशानि यावद्रूक्षाणि, तथा तेषामाहार्यमाणानां पुद्गलानां 'पुराणान्' अग्रेतनान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् 'विपरिणामइत्ता परिपालइत्ता परिसाडइत्ता परिविद्धंसइत्ता' एतानि चत्वार्यपि पदान्येकार्थिकानि विनाशार्थप्रतिपादकानि नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपात्तानि, विनाशः किमित्याह—अन्यान् अपूर्वान् वर्णगुणान् गन्धगुणान् रसगुणान् स्पर्शगुणान् उत्पाद्यात्मशरीरक्षेत्रावगाढान् पुद्गलान् 'सव्वप्पणयाए' सर्वात्मना—सर्वैरेवात्मप्रदेशैराहारमाहाररूपान् पुद्गलानाहारयन्ति॥ गतमाहारद्वारं, साम्प्रतमुपपातद्वारमाह—'ते णं भंते' इत्यादि, ते भदन्त! सूक्ष्मपृथिवीकायिका जीवाः 'कुतः' केभ्यो जीवेभ्य उद्धृत्योत्पद्यन्ते?, किं नैरयिकेभ्यः? इत्यादि प्रतीतं, भगवानाह—गौतम! नो नैरयिकेभ्य इत्यादि पाठसिद्धं, नवरं देवनैरयिकेभ्य उत्पादप्रतिषेधो देवनैरयिकाणां तथाभवस्वभावतया तन्मध्ये उत्पादासम्भवात्, 'जहा वक्कंतीए' इति, यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे तथा

वक्तव्यं, तच्चैवम्—तिर्यग्योनेभ्योऽप्युत्पादः पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तेभ्यो वा केवलमसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेभ्यः, मनुष्येभ्योऽप्यकर्मभूमिजान्तरद्वीपजासङ्ख्यातवर्षायुष्ककर्मभूमिजव्यतिरिक्तेभ्यः पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्तेभ्यो वेति ॥ गतमुपपातद्वारमधुना स्थितिद्वारमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसेयम् ॥ गतं स्थितिद्वारमधुना समुद्घातमधिकृत्य मरणं विचिन्तयिषुरिदमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि सुगमम्, उभयथाऽपि मरणसम्भवात् ॥ च्यवनद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, 'ते' सूक्ष्मपृथ्वीकायिका भदन्त! जीवा अनन्तरमुद्धृत्य सूक्ष्मपृथिवीकायिकभवादानन्तर्येणोद्धृत्येति भावः क्व गच्छन्ति?—कोत्पद्यन्ते?, एतेनात्मनो गमनधर्मकता पर्यायान्तरमधिकृत्योत्पत्तिधर्मकता च प्रतिपादिता, तेन ये सर्वगतमनुत्पत्तिधर्मकं चात्मानं प्रतिपन्नास्ते निरस्ता द्रष्टव्याः, तथारूपे सत्यात्मनि यथोक्तप्रश्नार्थासम्भवात्, 'किं नेरइएसु गच्छन्ति'? इत्यादि सुप्रतीतं, भगवानाह—'नो नेरइएसु गच्छन्ति' इत्यादि पाठसिद्धं 'जहा वक्कंतीए' इति, यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे च्यवनमुक्तं तथाऽत्रापि वक्तव्यं, तच्चोत्पादवद् भावनीयमिति ॥ गतं च्यवनद्वारमधुना गत्यागतिद्वारमाह—'ते णं भंते जीवा' इत्यादि, ते भदन्त! जीवाः 'कतिगतिकाः?' कति गतयो येषां ते कतिगतिकाः, 'कत्यागतिकाः?' कतिभ्यो गतिभ्य आगतिर्येषां ते कत्यागतिकाः, भगवानाह—गौतम! द्व्यागतिका नरकगतेर्देवगतेश्च सूक्ष्मेषूत्पादाभावात्, द्विगतिका नरकगतौ देवगतौ च तत उद्धृत्तानामुत्पादाभावात्, 'परीत्ता' प्रत्येकशरीरिणः, असङ्ख्येया असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात् प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, अनेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनतामाह, हे श्रमण! हे आयुष्मन्! 'से त्तं सुहुमपुढविकाइया' त एते सूक्ष्मपृथिवीकायिका उक्ताः ॥ उक्ताः सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः, अधुना बादरपृथिवीकायिकानभिधित्सुराह—

से किं तं बायरपुढविकाइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सण्हबायरपुढविक्काइया य खरबायरपुढविक्काइया य (सू० १४ ॥

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—बादरपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाश्च खरबादरपृथिवीकायिकाश्च—श्लक्ष्णा नाम चूर्णितलोष्टकल्पा मृदुपृथवी तदात्मका जीवा अप्युपचारतः श्लक्ष्णाः ते च ते बादरपृथिवीकायिकाश्च श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः, अथवा श्लक्ष्णा चासौ बादरपृथिवी च सा कायः—शरीरं येषां ते श्लक्ष्णबादरपृथ्वीकायाः त एव स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात् श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः, खरा नाम पृथिवी सङ्घातविशेषं काठिन्यविशेषं वाऽऽपन्ना तदात्मका जीवा अपि खराः ते च ते बादरपृथिवीकायिकाश्च खरबादरपृथिवीकायिकाः, अथवा पूर्ववत्प्रकारान्तरेण समासः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥

से किं तं सण्हबायरपुढविक्काइया ?, २ सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—कण्हमत्तिया, भेओ जहा पण्णवणाए जाव ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ? गोयमा ! तओ सरीरगा पं०, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, तं चेव सव्वं नवरं चत्तारि लेसाओ, अवसेसं जहा सुहुमपुढविक्काइयाणं आहारो जाव णियमा छद्दिसि, उववातो तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेहिंतो, देवेहिं जाव सोधम्मेसाणेहिंतो, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं। ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमु-

ग्घाएणं किं समोहया मरंति असमोहता मरंति ?, गोयमा ! समोहतावि मरंति असमोहतावि मरंति । ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ?–किं नेरइएसु उववज्जंति ?०, पुच्छा, नो नेरइएसु उववज्जंति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति मणुस्सेसु उव० नो देवेसु उव०, तं चेव जाव असंखेज्जवासाउवज्जेहिं । ते णं भंते ! जीवा कतिगतिया कतिआगतिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुगतिया तिआगतिया परित्ता असंखेज्जा य समणाउसो !, से तं बायरपुढविक्काइया । सेत्तं पुढविकाइया ॥ (सू० १५).

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह–श्लक्ष्णबादरपृथिवीकायिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तदेव सप्तविधत्वं दर्शयन्ति, तद्यथा–कृष्णमृत्तिका इत्यादि 'भेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए जाव तत्थ नियमा असंखिज्जा' इति, भेदो बादरपृथिवीकायिकानां द्विविधानामपि तथा भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स च तावद् यावत् "तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति पदं, स चैवम्—किण्हमत्तिया नीलमत्तिया लोहियमत्तिया हालिद्दमत्तिया सुक्किलमत्तिया पंडुमत्तिया पणगमत्तिया, सेत्तं सण्हबायरपुढविकाइया । से किं तं खरबायरपुढविक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा–पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिला य लोणूसे । तंबा य तउय सीसय रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाले । अब्भपडलब्भवालुय बायरकाये मणिविहाणा ॥ २ ॥ गोमेज्जए य रुयए अंके फलिहे य लोहियक्खे य । मरगयमसारगल्ले भुयमोयगइंदनीले य ॥ ३ ॥ चंदणगेरुयहंसे पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे । चंदप्पभवेरुलिए जलकंते सूरकंते य ॥ ४ ॥ जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा

पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधाएसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—कृष्णमृत्तिका—कृष्णमृत्तिकारूपा, एवं नीललोहितहारिद्रशुक्लभेदा अपि वाच्याः, पाण्डुमृत्तिका नाम देशविशेषे या धूलीरूपा सती पाण्डू इति प्रसिद्धा तदात्मका जीवा अप्यभेदोपचारात्पाण्डुमृत्तिकेत्युक्ताः, 'पणगमत्तिया' इति नद्यादिपूरप्लाविते देशे नद्यादि पूरेऽपगते यो भूमौ श्लक्ष्णमृदुरूपो जलमलोऽपरपर्यायपङ्कः स पनकमृत्तिका तदात्मका जीवा अप्यभेदोपचारात्पनकमृत्तिकाः, सेत्तमित्यादिनिगमनं सुगमम् ॥ 'से किं त'मित्यादि ॥ अथ के ते खरबादरपृथिवीकायिकाः ?, सूरिराह—खरबादरपृथिवीकायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, चत्वारिंशद्भेदा मुख्यतः प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, तानेव चत्वारिंशद्भेदानाह, तंजहा—'पुढवी'त्यादिगाथाचतुष्टयम् । पृथिवीति 'भामा सत्यभामावत्' शुद्धपृथिवी नदीतटभित्त्यादिरूपा १, चशब्द उत्तरापेक्षया समुच्चये, शर्करा—लघूपलशकलरूपा २, वालुका—सिकता ३, उपलः—टङ्काद्युपकरणपरिकर्मणायोग्यः पाषाणः ४, शिला—घटनयोग्या देवकुलपीठाद्युपयोगी महान् पाषाणविशेषः ५, लवणं—सामुद्रादि ६, ऊषो यद्वशादूषरं क्षेत्रम् ७, अयस्ताम्रत्रपुसीसकरूप्यसुवर्णानि—प्रतीतानि १३, वज्रो—हीरकः १४, हरितालहिङ्गुलमनःशिलाः प्रतीताः १७, सासगं—पारदः १८, अञ्जनं सौवीराञ्जनादि १९, प्रवालं—विद्रुमः २०, अभ्रपटलं—प्रसिद्धम् २१, अभ्रवालुका—अभ्रपटलमिश्रा वालुका २२, 'वायरकाए' इति बादरपृथिवीकायेऽमी भेदा इति शेषः, 'मणिविहाणा' इति चशब्दस्य गम्यमानत्वात् मणिविधानानि च—मणिभेदाश्च बादरपृथिवीकायभेदत्वेन ज्ञातव्याः, तान्येव मणिविधानानि दर्शयति—'गोमेज्जए य' इत्यादि, गोमेज्जकः २३, 'चः' समुच्चये, रुचकः २४ अङ्कः २५

स्फटिकः २६ 'चः' पूर्ववत्, लोहिताक्षः २७ मरकतः २८ मसारगल्लः २९ भुजमोचकः ३० इन्द्रनीलश्च ३१ चन्दन(:) ३२ गैरिकः ३३ हंसगर्भः ३४ पुलकः ३५ सौगन्धिकश्च ३६ चन्द्रप्रभः ३७ वैडूर्यः ३८ जलकान्तः ३९ सूर्यकान्तश्च ४०, तदेवमाद्यया गाथया पृथिव्यादयश्चतुर्दश भेदा उक्ताः द्वितीयगाथयाऽष्टौ हरितालादयः तृतीयगाथया गोमेज्जकादयो दश तुर्यगाथयाऽष्टाविति, सर्वसङ्ख्यया चत्वारिंशत्, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकारा मणिभेदाः—पद्मरागादयस्तेऽपि खरबादरपृथिवीकायिकत्वेन वेदितव्याः। 'ते समासतो' इत्यादि, ते बादरपृथिवीकायिकाः 'समासतः" सङ्क्षेपेण द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, तत्र येऽपर्याप्तकास्ते स्वयोग्याः पर्याप्तीः साकल्येनासंप्राप्ताः अथवाऽसंप्राप्ता इति विशिष्टान् वर्णादीननुपगताः, तथाहि—वर्णादिभेदविवक्षायामेते न शक्यन्ते कृष्णादिना भेदेन व्यपदेष्टुं, किं कारणमिति—चेद्, उच्यते, इह शरीरादिपर्याप्तिषु परिपूर्णासु सतीषु बादराणां वर्णादिभेदः संप्रकटो भवति नापरिपूर्णासु, ते चापर्याप्ता उच्छ्वासपर्याप्त्या अपर्याप्ता एव म्रियन्ते, ततो न स्पष्टो वर्णादिविभाग इत्यसंप्राप्ता इत्युक्तम्, अन्ये तु व्याचक्षते—सामान्यतो वर्णादीनसंप्राप्ता इति, तच्च न युक्तं, यतः शरीरमात्रभाविनो वर्णादयः, शरीरं च शरीरपर्याप्त्या संजातमिति। 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र ये ते पर्याप्तकाः—परिसमाप्तसमस्तस्वयोग्यपर्याप्तयस्ते वर्णादेशेन—वर्णभेदविवक्षया एवं गन्धादेशेन रसादेशेन स्पर्शादेशेन सहस्राग्रशः—सहस्रसङ्ख्यया विधानानि—भेदाः, तद्यथा—वर्णाः कृष्णादिभेदात्पञ्च गन्धौ सुरभीतरभेदाद्द्वौ रसास्तिक्तादयः पञ्च स्पर्शा मृदुकर्कशादयोऽष्टौ, एकैकस्मिंश्च वर्णादौ तारतम्यभेदेनानेकेऽवान्तरभेदाः, तथाहि—भ्रमरकोकिलकज्जलादिषु तरतमभावात् कृष्णः कृष्णतरः कृष्णतम इत्यादिरूपतयाऽनेके कृष्णभेदाः, एवं नीलादिष्वप्यायोज्यं, तथा गन्धरसस्पर्शेष्वपि, तथा परस्परं वर्णानां संयोगतो धूसरकर्बुरत्वादयोऽनेकसङ्ख्याभेदाः, एवं गन्धादीनामपि परस्परं गन्धादिभिः

समायोगात्, ततो भवन्ति वर्णाद्यादेशैः सहस्राग्रशो भेदाः, 'संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं'ति सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखाणि—योनिद्वाराणि शतसहस्राणि, तथाहि—एकैकस्मिन् वर्णे गन्धे रसे स्पर्शे च संवृता योनिः पृथिवीकायिकानां, सा पुनस्त्रिधा—सचित्ताऽचित्ता मिश्रा च, पुनरेकैका त्रिधा—शीता उष्णा शीतोष्णा, शीतादीनामपि प्रत्येकं तारतम्यभेदादनेकभेदत्वं, केवलमेकविशिष्टवर्णादियुक्ताः सङ्ख्यातीता अपि स्वस्थाने व्यक्तिभेदेन योनिजातिमधिकृत्यैकैव योनिर्गण्यते, ततः सङ्ख्येयानि पृथ्वीकायिकानां योनिशतसहस्राणि भवन्ति, तानि च सूक्ष्मबादरगतसर्वसङ्ख्यया सप्त, **'पज्जत्तगनिस्साए'** इत्यादि, पर्याप्तकनिश्रयाऽपर्याप्तका व्युत्क्रामन्ति-उत्पद्यन्ते, कियन्तः? इत्याह—यत्रैकः पर्याप्तकस्तत्र नियमात्तन्निश्रया असङ्ख्येयाः—सङ्ख्यातीता अपर्याप्तकाः। **'एएसि णं भंते! जीवाण'**-मित्यादिना शरीरावगाहनादिद्वारकलापचिन्तां करोति, सा च पूर्ववत्, तथा चाह—**'एवं जो चेव सुहुमपुढविकाइयाणं गमो सो चेव भाणियव्वो** इति, **'नवर'** मित्यादि, नवरमिदं नानात्वं लेश्याद्वारे चतस्रो लेश्या वक्तव्याः, तेजोलेश्याया अपि सम्भवात्, तथाहि—व्यन्तराद्य ईशानान्ता देवा भवनविमानादावतिमूर्च्छयाऽऽत्मीयरत्नकुण्डलादावप्युत्पद्यन्ते, ते च तेजोलेश्यावन्तोऽपि भवन्ति, यल्लेश्यश्च म्रियते अग्रेऽपि तल्लेश्य एवोपजायते "जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ" इति वचनात्, ततः कियत्कालमपर्याप्तावस्थायां तेजोलेश्यावन्तोऽप्यवाप्यन्ते इति चतस्रो वक्तव्याः, आहारो नियमात् षड्दिशि, बादराणां लोकमध्य एवोपपातभावात्, उपपातो देवेभ्योऽपि, बादरेषु तदुत्पादविधानात्, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, देवेभ्योऽप्युत्पादात् त्र्यागतयो, द्विगतयः पूर्ववत्, एतेऽपि च **'परीत्ता'** प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, **'सेत्त'**मित्याद्युपसंहारवाक्यम् ॥ उक्ताः पृथ्वीकायिकाः, अधुनाऽप्कायिकानभिधित्सुरिदमाह—

से किं तं आउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमआउक्काइया य बायरआउक्काइया य, सुहुमआऊ० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरया पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, जहेव सुहुमपुढविक्काइयाणं, णवरं थिवुगसंठिता पण्णत्ता, सेसं तं चेव जाव दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से तं सुहुमंआउक्काइया॥ (सू० १६)

अथ के तेऽप्कायिकाः ?, सूरिराह—अप्कायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्माप्कायिकाश्च बादराप्कायिकाश्च, तत्र सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनो बादरा घनोदध्यादिभाविनः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ। 'से किं तं सुहुमआउक्काइया ?' इत्यादि सूक्ष्मपृथिवीकायिकवन्निरवशेषं भावनीयं, नवरमिदं संस्थानद्वारे नानात्वं, तदेवोपदर्शयति—'ते सि णं भंते! जीवाणं सरीरया किं संठिया?' इत्यादि पाठसिद्धम्॥

से किं तं बायरआउक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ओसा हिमे जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तं चेव सव्वं णवरं थिवुगसंठिता, चत्तारि लेसाओ, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववातो तिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेहिं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं सत्तवाससहस्साइं, सेसं तं चेव जहा बायरपुढविकाइया जाव दुगतिया तिआगतिया परित्ता असंखेज्जा पन्नत्ता समणाउसो!, सेत्तं बायरआऊ, सेत्तं आउक्काइया॥ (सू० १७॥)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते वादराप्कायिकाः ?, सूरिराह—बादराप्कायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"ओसा हिमे महिया जाव तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठो द्रष्टव्यः—"करगे हरतणू सुद्धोदए सीओदए खट्टोदए खारोदए अंबिलोदए लवणोदए वरुणोदए खीरोदए खोओदए रसोदए जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—अवश्यायः—त्रेहः, हिमं—स्त्यानोदकं, महिका—गर्भमासेषु सूक्ष्मवर्षं, करको—घनोपलः, हरतनुः यो भुवमुद्भिद्य गोधूमाङ्कुरतृणाग्रादिषु बद्धो विन्दुरुपजायते, शुद्धोदकम्—अन्तरिक्षसमुद्भवं नद्यादिगतं वा, तच्च स्पर्शरसादिभेदादनेकभेदं, तदेवानेकभेदत्वं दर्शयति—शीतोदकं—नदीतडागावटवापीपुष्करिण्यादिषु शीतपरिणामम्, उष्णोदकं—स्वभावत एव कचिन्निर्झरादावुष्णपरिणामं, क्षीरोदकम्—ईषल्लवणपरिणामं यथा लाटदेशादौ केषुचिदवटेषु, खट्टोदकम्—ईषदम्लपरिणामम्, आम्लोदकम्—अतीव स्वभावत एवाम्लपरिणामं काञ्जिकवत्, लवणोदकं लवणसमुद्रे, वारुणोदकं वारुणसमुद्रे, क्षीरोदकं क्षीरसमुद्रे, क्षोदोदकमिक्षुरससमुद्रे, रसोदकं पुष्करवरसमुद्रादिषु, येऽपि चान्ये तथाप्रकारा रसस्पर्शादिभेदाद् घृतोदकादयो वादराप्कायिकास्ते सर्वे वादराप्कायिकतया प्रतिपत्तव्याः, 'ते समासओ' इत्यादि प्राग्वत् नवरं सङ्ख्येयानि योनिप्रमुखाणि शतसहस्राणीत्यत्रापि सप्त वेदितव्यानि । 'तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ सरीरगा' ? इत्यादिद्वारकलापचिन्तायामपि वादरपृथिवीकायिकगमोऽनुगन्तव्यो, नवरं संस्थानद्वारे शरीरकाणि स्तिवुकसंस्थानसंस्थितानि वक्तव्यानि,

स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सप्त वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि ॥ उक्ता अप्कायिकाः, सम्प्रति वनस्पतिकायिकानाह—

से किं तं वणस्सइकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बायरवणस्सइकाइया य ॥ (सू० १७)। से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य तहेव णवरं अणित्थंत्थ (संठाण) संठिया, दुगतिया दुआगतिया अपरित्ता अणंता, अवसेसं जहा पुढविक्काइयाणं, से तं सुहुमवणस्सइकाइया ॥ (सू० १८)।

अथ के ते वनस्पतिकायिकाः?, सूरिराह—वनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाश्च वादरवनस्पतिकायिकाश्च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः?, सूरिराह—सूक्ष्मवनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, 'तेसि णं भंते! कति सरीरगा' इत्यादिद्वारकलापचिन्तनं सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद्भावनीयं, नवरं संस्थानद्वारे 'सरीरगा अणित्थंत्थसंठाणसंठिया पण्णत्ता' इति, इत्थं तिष्ठतीति इत्थंस्थं न इत्थंस्थमनित्थंस्थम्, अनियताकारमित्यर्थः, तच्च तत्संस्थानं तेन संस्थितानि—अनियतसंस्थानसंस्थितानि, गत्यागतिद्वारसूत्रपर्यन्ते 'अपरित्ता अणंता पन्नत्ता' इति वक्तव्यम्, 'अपरीत्ता' अप्रत्येकशरीरिणः अनन्तकायिका इत्यर्थः, अत एवानन्ताः प्रज्ञप्ता. हेश्रमण! हे आयुष्मन्! 'सेत्त'मित्यादि उपसंहारवाक्यम् ॥

से किं तं बायरवणस्सइकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पत्तेयसरीरबायरवणस्सतिकाइया

य साधारणसरीरबायरवणस्सइकाइया य ॥ (सू० १९) । से किं तं पत्तेयसरीरबादरवणस्सतिकाइया ?, २ दुवालसविहा पण्णत्ता, तंजहा—रुक्खा गुच्छा गुम्मा लता य वल्ली य पव्वगा चेव । तणवलयहरितओसहिजलरुहकुहणा य बोद्धव्वा ॥ १ ॥ से किं तं रुक्खा ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—एगट्ठिया य बहुबीया य । से किं तं एगट्ठिया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—निंबंबजंबुजाव पुण्णागणागरुक्खे सीवण्णि तधा असोगे य, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसि णं मूलावि असंखेज्जजीविया, एवं कंदा खंधा तया साला पवाला पत्ता पत्तेयजीवा पुप्फाइं अणेगजीवाइं फला एगट्ठिया, सेत्तं एगट्ठिया । से किं तं बहुबीया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—अत्थियतेंदुयउंबरकविट्ठे आमलकफणसदाडिमणग्गोधकाउंबरीयतिलयलउयलोद्धे धवे, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसि णं मूलावि असंखेज्जजीविया जाव फला बहुबीयगा, सेत्तं बहुबीयगा, सेत्तं रुक्खा, एवं जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वं, जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, सेत्तं कुहणा—नाणाविधसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता । खंधोवि एगजीवो तालसरलनालिएरीणं ॥ १ ॥ 'जह सगलसरिसवाणं पत्तेयसरीराणं' गाहा ॥ २ ॥ 'जह वा तिलसक्कुलिया' गाहा ॥ ३ ॥ सेत्तं पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया ॥ (सू० २०)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते बादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—बादरवनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रत्येक-

शरीरबादरवनस्पतिकायिकाश्च साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाश्च, चशब्दौ पूर्ववत् ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह–प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिका द्वादशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'रुक्खा'इत्यादि, वृक्षाः-चूतादयः गुच्छा–वृन्ताकीप्रभृतयः गुल्मानि–नवमालिकाप्रभृतीनि लताः—चम्पकलतादयः, इह येषां स्कन्धप्रदेशे विवक्षितोर्ध्वशाखाव्यतिरेकेणान्यत् शाखान्तरं तथाविधं परिस्थूरं न निर्गच्छति ते लता इति व्यवह्रियन्ते, ते च चम्पकादय इति, वल्लयः–कूष्माण्डीत्रपुषीप्रभृतयः पर्वगा–इक्ष्वादयः तृणानि–कुशजुअकार्जुनादीनि वलयानि–केतकीकदल्यादीनि तेषां हि त्वग् वलयाकारेण व्यवस्थितेति हरितानि–तन्दुलीयकवस्तुलप्रभृतीनि औषधयः–फलपाकान्ताः ताश्च शाल्यादयः जले रुहन्तीति जलरुहाः—उदकावकपनकादयः कुहणा–भूमिस्फोटाभिधानास्ते चायकायप्रभृतयः, 'एवं भेदो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए' इत्यादि, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण बादरप्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकानां भेदो वक्तव्यो यथा प्रज्ञापनायाम्, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते, स च किं यावद् वक्तव्यः ? इत्याह—'जह वा तिलसक्कुलिया' इत्यादि, अस्याश्च गाथाया अयं सम्बन्धः–इह यदि वृक्षादीनां मूलादयः प्रत्येकमनेकप्रत्येकशरीरजीवाधिष्ठितास्ततः कथमेकखण्डशरीराकारा उपलभ्यन्ते ?, तत्रेयमुत्तरगाथा—"जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी । पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ॥ १ ॥" अस्या व्याख्या–यथा सकलसर्षपाणां श्लेषमिश्राणां—श्लेषद्रव्यविमिश्रितानां वलिता वर्त्तिरेकरूपा भवति, अथ च ते सकलसर्षपाः परिपूर्णशरीराः सन्तः पृथक् पृथक् स्वस्वावगाहनयाऽवतिष्ठन्ते, 'तथा' अनयैवोपमया प्रत्येकशरीरिणां जीवानां शरीरसङ्घाताः पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहना भवन्ति, इह श्लेषद्रव्यस्थानीयं रागद्वेषोपचितं तथाविधं स्वकर्म सकलसर्षपस्थानीयाः प्रत्येकशरीराः, सकलसर्षपग्रहणं वैविक्त्यप्रतिपत्त्या पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहप्रत्येकशरीरत्वे-

वित्तयप्रतिपत्त्यर्थम्, अत्रैव दृष्टान्तान्तरमाह—"जह वा तिलसक्कुलिया" इत्यादिरधिकृतगाथा, वाशब्दो दृष्टान्तान्तरसूचने, यथा 'तिलसक्कुलिका' तिलप्रधाना पिष्टमयी अपूपिका बहुभिस्तिलैर्मिश्रिता सती यथा पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहतिलासिका भवति कथञ्चिदेकरूपा च 'तथा' अनयैवोपमया प्रत्येकशरीरिणां जीवानां शरीरसङ्घाताः कथञ्चिदेकरूपाः पृथक्पृथक्स्वस्वावगाहनाश्च भवन्ति, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ सम्प्रति साधारणवनस्पतिकायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—आलुए मूलए सिंगबेर हिरिलि सिरिलि सिस्सिरिलि किट्टिया छिरिया छिरियविरालिया कण्हकंदे वज्जकंदे सूरणकंदे खल्लूडे किमिरासि भद्दे मोत्थापिंडे हलिद्दा लोहारी णीहु[ठिहु]थिभु अस्सकण्णी सीहकन्नी सीउंढी मूसंढी जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तओ सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, तहेव जहा बायरपुढविकाइयाणं, णवरं सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं सातिरेगजोयणसहस्सं, सरीरगा अणित्थंत्थसंठिता, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं, जाव दुगतिया तिआगतिया परित्ता अणंता पण्णत्ता, सेत्तं बायरवणस्सइकाइया, सेत्तं थावरा ॥ (सू० २१)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः ?, सूरिराह—साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिका अनेक-

विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'आलुए' इत्यादि, एते आलुकमूलकशृङ्गबेरहिरिलिसिरिलिसिस्सिरिलिकिट्टिकाक्षीरिकाक्षीरबिडालिकाकृष्णकन्दवज्रकन्दसूरणकन्दखल्लूट(कृमिराशि)भद्रमुस्तापिण्डहरिद्रालौहीस्तुहिस्तिभुअश्वकर्णीसिंहकर्णीसिकुंढीमुषण्ढीनामानः साधारणवनस्पतिकायिकभेदाः केचिदतिप्रसिद्धत्वात्केचिद्देशविशेषात्स्वयमवगन्तव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः—एवंप्रकारा अवकपनकसेवालादयस्तेऽपि साधारणशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः प्रतिपत्तव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि, 'ते' बादरवनस्पतिकायिकाः समासतो द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, 'जाव सिय संखेज्जा' इति यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—"तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसाएसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ सिय संखिज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता" इति, एतत्प्राग्वत्, नवरं यत्रैको बादरपर्याप्तस्तत्र तन्निश्रयाऽपर्याप्ताः कदाचित्सङ्ख्येयाः कदाचिदसङ्ख्येयाः कदाचिदनन्ताः, प्रत्येकतरवः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा, साधारणास्तु नियमादनन्ता इति भावः । 'तेसि णं भंते ! कइ सरीरगा ?' इत्यादिद्वारकलापचिन्तनं बादरपृथिवीकायिकवत्, नवरं संस्थानद्वारे नानासंस्थानसंस्थितानीति वक्तव्यम् । अवगाहनाद्वारे 'उक्कोसेणं सातिरेगं जोयणसहस्स'मिति, तच्च सातिरेकं योजनसहस्रमवगाहनामानमेकस्य जीवस्य बाह्यद्वीपेषु वल्ल्यादीनां समुद्रगोतीर्थेषु च पद्मनालादीनां, तदधिकोच्छ्रयमानानि पद्मानि पृथिवीकायपरिणाम इति वृद्धाः । स्थितिद्वारे उत्कर्षतो दश वर्षसहस्राणि वक्तव्यानि, गत्यागतिसूत्रानन्तरं 'अपरीत्ता अणंता' इति वक्तव्यं, तत्र 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः 'अपरीत्ताः' अप्रत्येकशरीरि-

णोऽनन्ताः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं बादरवणस्सइकाइया, सेत्तं थावरा' इति सुगमम् ॥ उक्ताः स्थावराः, सम्प्रति त्रसप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं तसा ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तेउक्काइया वाउक्काइया ओराला तसा पाणा ॥ (सू० २२) ।

अथ के ते त्रसाः ?, सूरिराह—त्रसास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तेजस्कायिका वायुकायिका औदारिकत्रसाः, तत्र तेजः—अग्निः कायः—शरीरं येषां ते तेजस्कायास्त एव स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात्तेजस्कायिकाः, वायुः—पवनः स कायो येषां ते वायुकायास्त एव वायुकायिकाः, उदाराः—स्फारा उदारा एव औदारिकाः प्रत्यक्षत एव स्पष्टत्रसत्वनिबन्धनाभिसन्धिपूर्वकगतिलिङ्गतयोपलभ्यमानत्वात्, तत्र त्रसा द्वीन्द्रियादयः 'औदारिकत्रसाः' स्थूरत्रसा इत्यर्थः ॥ तत्र तेजस्कायिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं तेउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य ॥ (सू० २३)

से किं तं सुहुमतेउक्काइया ?, २ जहा सुहुमपुढविक्काइया नवरं सरीरगा सूइकलावसंठिया, एगगइया दुआगइआ परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेसं तं चेव, सेत्तं सुहुमतेउक्काइया ॥ (सू० २४)

से किं तं बादरतेउक्काइया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—इंगाले जाले मुम्मुरे जाव सूरकंतमणिनिस्सिते, जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसिणं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सेसं तं चेव, सरीरगा सूइकलावसंठिता, तिन्नि लेस्सा, ठिती

जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं तिरियमणुस्सेहिंतो उववाओ, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं तेउक्काइया ॥ (सू० २५)

अथ के ते तेजस्कायिकाः ?, तेजस्कायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मतेजस्कायिकाश्च बादरतेजस्कायिकाश्च, चशब्दो पूर्ववत् ॥ अथ के ते सूक्ष्मतेजस्कायिकाः ?, सूरिराह—सूक्ष्मतेजस्कायिका इत्यादि सूत्रं सर्वं सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद् वक्तव्यं, नवरं संस्थानद्वारे शरीराणि सूचीकलापसंस्थितानि वक्तव्यानि, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य तिर्यग्गतावेवोत्पद्यन्ते, न मनुष्यगतौ, तेजोवायुभ्योऽनन्तरोद्धृतानां मनुष्यगतावुत्पादप्रतिषेधात्, तथा चोक्तम्—"सत्तमिमहिनेरइया तेऊ वाऊ अणंतरुव्वट्टा । नवि पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउया सव्वे ॥ १ ॥" गत्यागतिद्वारे द्व्यागतयः, तिर्यग्गतेर्मनुष्यगतेश्च तेपूत्पादात्, एकगतयोऽनन्तरमुद्वृत्तानां तिर्यग्गतावेव गमनात्, शेषं तथैव, उपसंहारवाक्यं 'सेत्तं सुहुमतेउक्काइया' ॥ बादरतेजस्कायिकानाह—अथ के ते बादरतेजस्कायिकाः ?, सूरिराह—बादरतेजस्कायिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"इंगाले जाव तत्थ नियमे"त्यादि यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठः—"इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणि निग्घाए संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिनिस्सिए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिणं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखिज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—'अङ्गारः'

१ सप्तमीमहीनैरयिका· तेजो वायु अनन्तरोद्वृत्ता· । नैव प्राप्नुवन्ति मानुष्यं तथैवासंख्यायुष· सर्वे ॥ १ ॥

विगतधूमज्वालो जाज्वल्यमानः खदिरादिः, 'ज्वाला' अनलसंबद्धा दीपशिखेत्यन्ये, 'मुर्मुरः' फुम्फुकाग्नौ भस्मामिश्रितोऽग्निकणरूपः 'अर्चिः' अनलाप्रतिबद्धा ज्वाला, 'अलातम्' उल्मुकं, 'शुद्धाग्निः' अयःपिण्डादौ, 'उल्का' चुडुली 'विद्युत्' प्रतीता, 'अशनिः' आकाशे पतन्नग्निमयः कणः, 'निर्घातः' वैक्रियाशनिप्रपातः 'संघर्षसमुत्थितः' अरण्यादिकाष्ठनिर्मथनसमुत्थः, 'सूर्यकान्तमणिनिश्रितः' सूर्यखरकिरणसंपर्के सूर्यकान्तमणेर्यः समुपजायते, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्तेजस्कायिकास्तेऽपि बादरतेजस्कायिकतया वेदितव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि प्राग्वत्, शरीरादिद्वारकलापचिन्ताऽपि सूक्ष्मतेजस्कायिकवत्, नवरं स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि रात्रिन्दिवानि, आहारो यथा बादरपृथ्वीकायिकानां तथा वक्तव्यः, उपसंहारमाह—'सेत्तं तेउक्काइया' ॥ उक्तास्तेजस्कायिकाः, सम्प्रति वायुकायिकानाह—

से किं तं वाउक्काइया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य, सुहुमवाउक्काइया जहा तेउक्काइया णवरं सरीरा पडागसंठिता एगगतिया दुआगतिया परित्ता असंखिज्जा, सेत्तं सुहुमवाउक्काइया । से किं तं बादरवाउक्काइया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—पाईणवाए पडीणवाए, एवं जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । ते सि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरगा पडागसंठिता, चत्तारि समुग्घाता—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए,

आहारो णिव्वाघातेणं छद्दिसिं वाघायं पडुच सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं, उववातो देवमणुयनेरइएसु णत्थि, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगइया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो !, सेत्तं बायरवाऊ, सेत्तं वाउक्काइया ॥ (सू० २६)

अथ के ते वायुकायिकाः ?, सूरिराह—वायुकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मवायुकायिकाश्च बादरवायुकायिकाश्च, चशब्दौ प्राग्वत्, तत्र सूक्ष्मवायुकायिकाः सूक्ष्मतेजस्कायिकवद्वक्तव्याः, नवरं संस्थानद्वारे तेषां शरीराणि पताकासंस्थानसंस्थितानि वक्तव्यानि, शेषं तथैव, बादरवायुकायिका अपि एवं चैव—सूक्ष्मतेजस्कायिकवदेव, नवरं भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"से किं तं बायरवाउक्काइया ?, बायरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीणवाए उड्ढवाए अहेवाए तिरियवाए विदिसिवाए वाउब्भामे वाउक्कलिया मंडलियावाए उक्कलियावाए गुंजावाए झंझावाए संवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसिं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासाएसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं, पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, अस्य व्याख्या—'पाईणवाए' इति, यः प्राच्या दिशः समागच्छति वातः स प्राचीनवातः, एवमपाचीनो दक्षिणवात उदीचीनवातश्च वक्तव्यः, ऊर्ध्वमुद्गच्छन् यो वाति वातः स ऊर्ध्ववातः, एवमधोवाततिर्यग्वातावपि परिभावनीयौ, विदिग्वातो यो विदिग्भ्यो वाति, वातो-

द्भ्रमः—अनवस्थितो वातः, वातोत्कलिका समुद्रस्येव वातस्योत्कलिका वातमण्डलीवात उत्कलिकाभिः प्रचुरतराभिः सम्मिश्रो यो वातः, मण्डलिकावातो मण्डलिकाभिर्मूलत आरभ्य प्रचुरतराभिः सम्मिश्रो यो वातः, गुञ्जावातो यो गुञ्जन्—शब्दं कुर्वन् वाति, झञ्झावातः सवृष्टिः, अशुभनिष्ठुर इत्यन्ये, संवर्त्तकवातस्तृणादिसंवर्त्तनस्वभावः, घनवातो घनपरिणामो वातो रत्नप्रभापृथिव्याद्यधोवर्त्ती, तनुवातो—विरलपरिणामो घनवातस्याधःस्थायी, शुद्धवातो मन्दस्तिमितो, बस्तिदृत्यादिगत इत्यन्ये, 'ते समासतो' इत्यादि प्राग्वत्, तथा शरीरादिद्वारकलापचिन्तायां शरीरद्वारे चत्वारि शरीराणि औदारिकवैक्रियतैजसकार्मणानि, चत्वारः समुद्घाताः—वैक्रियवेदनाकषायमारणान्तिकरूपाः, स्थितिद्वारे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं वक्तव्यमुत्कर्षतस्त्रीणि वर्षसहस्राणि, आहारो निर्व्याघातेन षड्दिशि, व्याघातं प्रतीत्य स्यात्त्रिदिशि स्याच्चतुर्दिशि स्यात्पञ्चदिशि, लोकनिष्कुटादावपि बादरवातकायस्य सम्भवात्, शेषं सूक्ष्मवातकायवत्, उपसंहारमाह—'सेत्तं वाउक्काइया' इति ॥ उक्ता वातकायिकाः, सम्प्रत्यौदारिकत्रसानाह—

से किं तं ओराला तसा पाणा ?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया ॥ (सू० २७)

अथ के ते औदारिकत्रसाः ?, सूरिराह—औदारिकत्रसाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः, तत्र द्वे स्पर्शनरसनरूपे इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः, त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणरूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः, चत्वारि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षूरूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः, पञ्च स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रियाः ॥ तत्र द्वीन्द्रियप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं बेइंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसिणं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए। तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरओगाहणा पण्णत्ता ?, जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जभागं उक्कोसेणं बारसजोयणाइं छेवट्ठसंघयणा हुंडसंठिता, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, दो इंदिया, तओ समुग्घाता—वेयणा कसाया मारणंतिया, नोसन्नी असन्नी, णपुंसकवेदगा, पंच पज्जत्तीओ, पंच अपज्जत्तीओ, सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि नो सम्मिच्छदिट्ठी, णो ओहिदंसणी णो चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी नो केवलदंसणी। ते णं भंते! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते नियमा दुण्णाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य, जे अन्नाणी ते नियमा दुअण्णाणी—मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य, नो मणजोगी वइजोगी कायजोगी, सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववातो तिरियमणुस्सेसु नेरइयदेवअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, समोहतावि मरंति असमोहतावि मरंति, कहिं

गच्छंति?, नेरइयदेवअसंखेज्जवासाउअवज्जेसु गच्छंति, दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा, सेत्तं बेइंदिया ॥ (सू० २८)

'से किं त' मित्यादि, अथ के ते द्वीन्द्रियाः ?, सूरिराह—द्वीन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'पुलाकिमिया जाव समुद्दलिक्खा' इति यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठो द्रष्टव्यः—"पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमा नेउरा सोमंगलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जालायुसा संखा संखणगा घुल्ला खुल्ला वराडा सोत्तिया मोत्तिया कल्लुयावासा एगतोवत्ता दुहतोवत्ता नंदियावत्ता संबुक्का माइवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा इति" अस्य व्याख्या—'पुलाकिमिया' नाम पायुप्रदेशोत्पन्नाः कृमयः 'कुक्षिकृमयः' कुक्षिप्रदेशोत्पन्नाः 'गण्डोयलकाः' प्रतीताः 'शङ्खाः' समुद्रोद्भवास्तेऽपि प्रतीताः 'शङ्खनकाः' त एव लघवः 'घुल्लाः' घुल्लिकाः 'खुल्लाः' लघवः शङ्खाः सामुद्रशङ्खाकाराः 'वराटाः' कपर्दाः 'मातृवाहाः' कोद्रवाकारतया ये कोद्रवा इति प्रतीताः 'सिप्पिसंपुडा' संपुटरूपाः शुक्तयः 'चन्दनकाः' अक्षाः, शेषास्तु यथासम्प्रदायं वाच्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः—एवंप्रकाराः मृतककलेवरसम्भूतकृम्यादयस्ते सर्व्वे द्वीन्द्रिया ज्ञातव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि, ते द्वीन्द्रियाः 'समासतः' सङ्क्षेपेण द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च । शरीरद्वारेऽमीषां त्रीणि शरीराणि—औदारिकं तैजसं कार्मणं च, अवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कृष्टा द्वादश योजनानि, संहननद्वारे छेदवर्त्तिसंहननिनः, अत्र संहननं मुख्यमेव द्रष्टव्यम्, अस्थिनिचयभावात्, संस्थानद्वारे हुण्डसंस्थानाः, कषायद्वारे चत्वारः कषायाः, सञ्ज्ञाद्वारे चतस्रः आहारादिकाः सञ्ज्ञाः, लेश्याद्वारे आद्यास्तिस्रो लेश्याः, इन्द्रियद्वारे द्वे इन्द्रिये, तद्यथा—स्पर्शनं रसनं च, समुद्घातद्वारे त्रयः समुद्घाताः, त-

यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातश्च, सञ्ज्ञाद्वारे नो सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनः, वेदद्वारे नपुंसकवेदाः, संमूर्च्छिमत्वात्, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दृष्टिद्वारे सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयो वा, न सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, कथम्? इति चेत् उच्यते, इह घण्टाया वादितायां महान् शब्द उपजायते, तत उत्तरकालं हीयमानोऽवसाने लालामात्रं भवति, एवममुना घण्टालालान्यायेन किञ्चित्सास्वादनसम्यक्त्वशेषाः केचिद् द्वीन्द्रियेषु मध्ये उत्पद्यन्ते, ततोऽपर्याप्तावस्थायां कियत्कालं सास्वादनसम्यक्त्वसम्भवात् सम्यग्दृष्टित्वं, शेषकालं मिथ्यादृष्टिता, यत्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं तन्न संभवति, तथाभवस्वभावतया तथारूपपरिणामायोगात्, नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टिः सन् तत्रोत्पद्यते 'न सम्ममिच्छो कुणइ कालं' इति वचनात्, दर्शनद्वारं प्राग्वत्, ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनोऽपि, तत्र ज्ञानित्वं सास्वादनसम्यक्त्वापेक्षया, ते च ज्ञानिनो नियमाद् द्विज्ञानिनो, मतिश्रुतज्ञानमात्रभावात्, अज्ञानिनोऽपि नियमाद् द्व्यज्ञानिनो, मत्यज्ञानश्रुताज्ञानमात्रभावात्, योगद्वारे न मनोयोगिनो वाग्योगिनोऽपि काययोगिनोऽपि, उपयोगद्वारं पूर्ववत्, आहारो नियमात् षड्दिशि, त्रसनाड्या एवान्तर्द्वीन्द्रियादीनां भावात्, उपपातो देवनारकासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः शेषतिर्यग्मनुष्येभ्यः, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि, समवहतद्वारं प्रागिव, च्यवनद्वारे देवनारकासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जितेषु शेषेषु तिर्यग्मनुष्येष्वनन्तरमुद्धृत्य गमनम्, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणः, असङ्ख्येया घनीकृतस्य लोकस्य या ऊर्ध्वाध आयता एकप्रादेशिक्यः श्रेणयोऽसङ्ख्येययोजनकोटाकोटीप्रमाणाकाशसूचिगतप्रदेशराशिप्रमाणाः तावत्प्रमाणत्वात्, प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं बेइंदिया' ॥ उक्ता द्वीन्द्रियाः, अधुना त्रीन्द्रियानाह—

से किं तं तेइंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—ओवइया रोहिणीया हत्थिसोंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तहेव जहा बेइंदियाणं, नवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं, तिन्नि इंदिया, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणपण्णराइंदिया, सेसं तहेव, दुगतिया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं तेइंदिया ॥ (सू० २९)

अथ के ते त्रीन्द्रियाः ?, सूरिराह—त्रीन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'भेदो जहा पण्णवणाए' भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"उवथिया रोहिणिया कुंथूपिवीलिया उद्देसगा उद्देहिया उक्कलिया तणहारा कट्ठहारा पत्तहारा मालुया पत्तहारा तणवेंटका पत्तवेंटया फलवेंटया तेम्बुरुमिंजिया तउसमिंजिया कप्पासट्ठिमिंजिया झिल्लिया झिंगिरा झिंगिरिडा वाहुया, [ग्रन्थाग्रम् १०००] मुरगा सोवत्थिया सुयवेंटा इंदकाइया इंदगोवया कोत्थलवाहगा हालाहला पिसुया तसवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा ॥" इति, एते च केचिदतिप्रतीताः केचिद्देशविशेषतोऽवगन्तव्याः, नवरं 'गोम्ही' कण्हसियाली, '**जे यावण्णे तहप्पगारा**' इति येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्ते सर्वे त्रीन्द्रिया ज्ञातव्याः, '**ते समासतो**' इत्यादि समस्तमपि सूत्रं द्वीन्द्रियवत्परिभावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना त्रीणि गव्यूतानि । इन्द्रियद्वारे त्रीणि इन्द्रियाणि । स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'**सेत्तं तेइंदिया ॥**' उक्तास्त्रीन्द्रियाः, सम्प्रति चतुरिन्द्रियप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं चउरिंदिया ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—अंधिया पुत्तिया जाव गोमयकीडा, जे

यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता तं चेव, णवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं, इंदिया चत्तारि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी, ठिती उक्कोसेणं छम्मासा, सेसं जहा तेइंदियाणं जाव असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं चउरिंदिया॥ (सू० ३०)

अथ के ते चतुरिन्द्रियाः?, सूरिराह—चतुरिन्द्रिया अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"अंधिया पुत्तिया मच्छिया मगसिरा कीडा पयंगा टेंकणा कुक्कुहा कुक्कुडा नंदावत्ता झिंगिरिडा किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हालिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओहंजलिया जलचारिया गंभीरा नीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा नेउरा डोला भमरा भरिलि जरला विच्छुया पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया सेइंगाला कणगा गोमयकीडगा" एते लोकतः प्रत्येतव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' एवंप्रकारास्ते सर्वे चतुरिन्द्रिया विज्ञेयाः, 'ते समासतो' इत्यादि सकलमपि सूत्रं द्वीन्द्रियवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना चत्वारि गव्यूतानि। इन्द्रियद्वारे स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुर्लक्षणानि चत्वारीन्द्रियाणि। स्थितिद्वारे उत्कर्षतः स्थितिः षण्मासाः, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्तं चउरिंदिया'। सम्प्रति पञ्चेन्द्रियान् प्रतिपिपादयिषुराह—

से किं तं पंचेंदिया?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—णेरतिया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा॥ (सू० ३१)

अथ के ते पञ्चेन्द्रियाः?, सूरिराह—पञ्चेन्द्रियाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः, तत्र अयम्—

इष्टफलं कर्म निर्गतमयं येभ्यस्ते निरया—नरकावासास्तेषु भवा नैरयिकाः, अध्यात्मादेराकृतिगणत्वादिकण्प्रत्ययः । तिर्यगिति प्रायस्तिर्यग्लोके योनयस्तिर्यग्योनयस्तत्र जातास्तिर्यग्योनिजाः, यद्विवा तिर्यग्योनिका इति शब्दसंस्कारः, तत्र तिर्यगिति प्रायस्तिर्यग्लोके योनयः—उत्पत्तिस्थानानि येषां ते तिर्यग्योनिकाः । मनुरिति मनुष्यस्य सञ्ज्ञा, मनोरपत्यानि मनुष्याः, जातिशब्दोऽयं राजन्यादिशब्दवत् । दीव्यन्तीति देवाः ॥ तत्र नैरयिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं नेरइया ?, २ सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइया जाव अहे सत्तमपुढविनेरइया, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं०—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—वेउव्विए तेयए कम्मए । तेसि णं भंते ! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जो भागो उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं, तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभागं उक्कोसेणं धणुसहस्सं । तेसिणं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंघयणी पण्णत्ता ?, गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी, णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारु णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुभा अमणुण्णा अमणामा ते तेसिं संघातत्ताए परिणमंति । तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंठिता पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा

पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिता पण्णत्ता, चत्तारि कसाया चत्तारि सण्णाओ तिण्णि लेसाओ पंचेंदिया चत्तारि समुग्घाता आइल्ला, सन्नीवि असन्नीवि, नपुंसकवेदा, छप्पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ, तिविधा दिट्ठी, तिन्नि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते नियमा तिन्नाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी ओहिनाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी अत्थेगतिया तिअण्णाणी, जे य दुअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य, जे तिअण्णाणी ते नियमा मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य विभंगणाणी य, तिविधे जोगे, दुविहे उवओगे, छद्दिसिं आहारो, ओसण्णं कारणं पडुच्च वण्णतो कालाइं जाव आहारमाहारेंति, उववाओ तिरियमणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तित्तीसं सागरोवमाइं, दुविहा मरंति, उव्वट्टणा भाणियव्वा जतो आगता, णवरि संमुच्छिमेसु पडिसिद्धो, दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो!, से तं नेरइया ॥ (सू० ३२)

अथ के ते नैरयिकाः?, सूरिराह—नैरयिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका यावत्करणात् शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाः वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकाः पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाः धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाः तमःप्रभापृथिवीनैरयिका इति परिग्रहः, अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकाः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं सुगमम् ॥ शरीरादिद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं भंते!' इत्यादि,

सुगमं नवरं भवप्रत्ययादेव तेषां शरीरं वैक्रियं नौदारिकमिति वैक्रियतैजसकार्मणानि त्रीणि शरीराण्युक्तानि । अवगाहना तेषां द्विधा—भवधारणीया उत्तरवैकुर्विकी च, तत्र यया भवो धार्यते सा भवधारणीया, बहुलवचनात्करणेऽनीयप्रत्ययः, अपरा भवान्तरवैरिनारकप्रतिघातनार्थमुत्तरकालं या विचित्ररूपा वैक्रयिकी अवगाहना सा उत्तरवैकुर्विकी, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागः, स चोपपातकाले वेदितव्यः, तथाप्रयत्नभावात्, उत्कर्षतः पञ्चधनुःशतानि, इदं चोत्कर्षतः प्रमाणं सप्तमपृथिवीमधिकृत्य वेदितव्यं, प्रतिपृथिवि तूत्कर्षतः प्रमाणं सङ्ग्रहणिटीकातो भावनीयं, तत्र सविस्तरमुक्तत्वात्, उत्तरवैकुर्विकी जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागो न त्वसङ्ख्येयभागः, तथाप्रयत्नाभावात्, उत्कर्षतो धनुःसहस्रमिति, इदमप्युत्कर्षपरिमाणं सप्तमनरकपृथिवीमधिकृत्य वेदितव्यं, प्रतिपृथिवि तु सङ्ग्रहणिटीकातः परिभावनीयं, संहननद्वारे 'तेसि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! षण्णां संहननानामन्यतमेनापि संहननेन तेषां शरीराण्यसंहननानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, कस्मादसंहननानि? इति चेद् अत आह—'नेवट्ठी' इत्यादि, नैव तेषां शरीराणामस्थीनि, नैव शिरा—धमनिनाड्यो, नापि स्नायूनि—शेषशिराः, अस्थिनिचयात्मकं च संहननमतोऽस्थ्याद्यभावादसंहननानि शरीराणि, इयमत्र भावना—इह तत्त्ववृत्त्या संहननमस्थिनिचयात्मकं, यत्तु प्रागेकेन्द्रियाणां सेवार्त्तसंहननमभ्यधायि तदौदारिकशरीरसम्बन्धमात्रमपेक्ष्यौपचारिकं, देवा अपि यदन्यत्र प्रज्ञापनादौ वज्रसंहननिन उच्यन्ते तेऽपि गौणवृत्त्या, तथाहि—इह यादृशी मनुष्यलोके चक्रवर्त्यादेर्विशिष्टवज्रर्षभनाराचसंहननिनः सकलशेषमनुष्यजनासाधारणा शक्तिः "दोसोला बत्तीसा सव्वबलेणं तु संकलनिबद्ध"मित्यादिका, ततोऽधिकतरा देवानां पर्वतोत्पाटनादिविषया शक्तिः श्रूयते न च शरीरपरिक्लेश इति तेऽपि वज्रसंहननिन इव वज्रसंहननिन उक्ता न पुनः परमार्थतस्ते संहननिनः, ततो नारकाणामस्थ्यभावात्संहननाभावः, एतेन योऽपरिणतभग-

वलिसद्धान्तसारो वावदूकः सिद्धान्तवाहुल्यमात्मनः ख्यापयन्नेवं प्रललाप—"सुत्ते सत्तिविसेसो संघयणमिहऽट्ठिनिचयो" त्ति, इति सोऽपाकीर्णो द्रष्टव्यः, साक्षादत्रैव सूत्रे अस्थिनिचयात्मकस्य संहननस्याभिधानात्, अस्थ्यभावे संहननप्रतिषेधादिति । अपरस्त्वाह—नैरयिकाणामस्थ्यभावे कथं शरीरबन्धोपपत्तिः?, नैष दोषः, तथाविधपुद्गलस्कन्धवत् शरीरबन्धोपपत्तेः, अत एवाह—'जे पोग्गला अणिट्ठा' इत्यादि, ये पुद्गलाः 'अनिष्टाः' मनस इच्छामतिक्रान्ताः, तत्र किञ्चित्कमनीयमपि केषाञ्चिदनिष्टं भवति तत आह—न कान्ताः अकान्ता—अकमनीयाः, अत्यन्ताशुभवर्णोपेतत्वात्, अत एव न प्रियाः, दर्शनापातकालेऽपि न प्रियबुद्धिमात्मन्युत्पादयन्तीति भावः, 'अशुभाः' अशुभरसगन्धस्पर्शात्मकत्वात्, 'अमनोज्ञाः' न मनःप्रह्लादहेतवो, विपाकतो दुःखजनकत्वात्, अमनआपाः—न जातुचिदपि भोज्यतया जन्तूनां मनांस्याप्नुवन्तीति भावः, ते तेषां 'सङ्घातत्वेन' तथारूपशरीरपरिणतिभावेन परिणमन्ति । संस्थानद्वारे तेषां शरीराणि भवधारणीयानि उत्तरवैकुर्विकाणि च हुण्डसंस्थानानि वक्तव्यानि, तथाहि—भवधारणीयानि तेषां शरीराणि भवस्वभावत एव निर्मूलविलुप्तपक्षोत्पाटितसकलग्रीवादिरोमपक्षिशरीरकवदतिबीभत्सहुण्डसंस्थानोपेतानि, यान्यप्युत्तरवैक्रियाणि तानि यद्यपि शुभानि वयं विकुर्विष्याम इत्यभिसन्धिना विकुर्वितुमारभन्ते तथाऽपि तानि तेषामत्यन्ताशुभतथाविधनामकर्मोदयतोऽतीवाशुभतराण्युपजायन्ते इति तान्यपि हुण्डसंस्थानानि । कषायद्वारं सञ्ज्ञाद्वारं च प्राग्वत्, लेश्याद्वारे आद्यास्तिस्रो लेश्याः, तत्राद्ययोर्द्वयोः पृथिव्योः कापोतलेश्या, तृतीयस्यां पृथिव्यां केषुचिन्नरकावासेषु कापोतलेश्या शेषेषु नीललेश्या, चतुर्थ्यां नीललेश्या, पञ्चम्यां केषुचिन्नरकावासेषु नीललेश्या, शेषेषु कृष्णलेश्या, षष्ठ्यां कृष्णलेश्या, सप्तम्यां परमकृष्णलेश्या, उक्तञ्च व्याख्याप्रज्ञप्तौ—"काऊ य दोसु तइ-

१ कापोती च द्वयोस्तृतीयस्यां मिश्रा नीला चतुर्थ्यां । पञ्चम्यां मिश्रा कृष्णा ततः परमकृष्णा ॥ १ ॥

याएँ मीसिया नीलिया चउत्थीए पंचमियाए। मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥" इन्द्रियद्वारे पञ्च इन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानि । समुद्घातद्वारे चत्वारः समुद्घाताः—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातश्च । सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनश्च, तत्र ये गर्भव्युत्क्रान्तिकेभ्य उत्पन्नास्ते सञ्ज्ञिन इति व्यपदिश्यन्ते, ये तु संमूर्च्छनजेभ्यस्तेऽसञ्ज्ञिनः, ते च रत्नप्रभायामेवोत्पद्यन्ते न परतः, अनाशयाशुभक्रियाया दारुणाया अप्यनन्तरविपाकिन्या एतावन्मात्रफलत्वात्, अत एवाहुर्वृद्धाः—"अस्सन्नी खलु पढमं दोच्चं व सिरीसवा तइय पक्खी । सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं पुढविं ॥ १ ॥ छट्ठिं य इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं । एसो परमोवाओ बोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥ २ ॥" वेदद्वारे नपुंसकवेदाः । पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः । दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयोऽपि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च, दर्शनद्वारे त्रीणि दर्शनानि, तद्यथा—चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं च । ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, येऽत्राज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एष चात्र भावार्थः—ये नारका असञ्ज्ञिनस्तेऽपर्याप्तावस्थायां द्व्यज्ञानिनः पर्याप्तावस्थायां तु त्र्यज्ञानिनः सञ्ज्ञिनस्तूभय्यामप्यवस्थायां त्र्यज्ञानिनः, असञ्ज्ञिभ्यो ह्युत्पद्यमानास्तथाबोधमान्द्यादपर्याप्तावस्थायां नाव्यक्तमप्यवधिमाप्नुवन्तीति । योगोपयोगाहारद्वाराणि प्रतीतानि । उपपातो यथा व्युत्क्रान्तिपदे **प्रज्ञापनायां** तथा वक्तव्यः, पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येभ्योऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यो वक्तव्यो,

---

१ असञ्ज्ञिनः खलु प्रथमां द्वितीयां च सरीसृपास्तृतीयां पक्षिणः । सिंहा यान्ति चतुर्थीं उरगाः पुनः पञ्चमीं पृथ्वीम् ॥ १ ॥ षष्ठीं च स्त्रियः मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीम् । एष परम उत्पादो बोद्धव्यो नरकपृथ्वीषु ॥ २ ॥

न क्षेत्रेभ्य इति भावः । स्थितिर्जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्ता प्राग्वत् । उद्वर्तनाचिन्ता यथा व्युत्क्रान्तिपदे प्रज्ञापनायां कृता तथा वक्तव्या, अनन्तरमुद्वृत्य सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्येष्वसङ्ख्यातवर्षायुष्क-वर्जितेष्वागच्छन्तीति भावः, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं नेरइया' ॥ उक्ता नैरयिकाः, सम्प्रति तिर्यक्पञ्चेन्द्रियानाह—

से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्ख-जोणिया य गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य ॥ (सू० ३३)

अथ के ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च, तत्र संमूर्च्छनं संमूर्च्छा—गर्भोपपातव्यतिरेकेणैव यः प्राणिनामुत्पादस्तेन निर्वृत्ताः संमूर्च्छिमाः, 'भावादिम' इति इमप्रत्ययः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, गर्भे व्युत्क्रान्तिः—उत्पत्तिर्येषां यदिवा गर्भाद्—गर्भवशाद् व्युत्क्रान्तिः—निष्क्रमणं येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चेति विशेषणसमासः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ ॥

से किं तं संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा ॥ (सू० ३४) । से किं तं जलयरा ?, २ पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—मच्छगा कच्छभा मगरा गाहा सुसुमारा । से किं तं मच्छा ?, एवं जहा पण्णवणाए जाव जे यावण्णे तहप्पगारा,

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य । तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छेवट्टसंघयणी हुंडसंठिता, चत्तारि कसाया, सण्णाओवि ४, लेसाओ ५, इंदिया पंच, समुग्घाता तिण्णि णो सण्णी असण्णी, णपुंसकवेदा, पज्जत्तीओ अपज्जत्तीओ य पंच, दो दिट्ठिओ, दो दंसणा, दो नाणा दो अन्नाणा, दुविधे जोगे, दुविधे उवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववातो तिरियमणुस्सेहिंतो नो देवेहिंतो नो नेरइएहिंतो, तिरिएहिंतो असंखेज्जवासाउवज्जेसु, अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउअवज्जेसु मणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, मारणंतियसमुग्घातेणं दुविहावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं ?, नेरइएसुवि तिरिक्खजोणिएसुवि मणुस्सेसुवि देवेसुवि, नेरइएसु रयणप्पहाए, सेसेसु पडिसेधो, तिरिएसु सव्वेसु उववज्जंति संखेज्जवासाउएसुवि असंखेज्जवासाउएसुवि चउप्पएसु पक्खीसुवि मणुस्सेसु सव्वेसु कम्मभूमीसु नो अकम्मभूमीएसु अंतरदीवएसुवि संखिज्जवासाउएसुवि असंखिज्जवासाउएसुवि देवेसु जाव वाणमंतरा, चउगइया दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता । से तं जलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खा ॥ (सू० ३५)

अथ के ते संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः

स्थलचराः खचराः, तत्र जले चरन्तीति जलचराः, एवं स्थलचरा खचरा अपि भावनीयाः ॥ अथ के ते जलचराः?, सूरिराह—जलचराः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मत्स्याः कच्छपा मकरा ग्राहाः शिशुमाराः, 'एवं भेओ भाणियव्वो जहा पण्णवणाए जाव सुसुमारा एगागारा पन्नत्ता' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण मत्स्यादीनां भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स च तावद् यावत् 'सिसुमारा' एगागारा इतिपदं, स चैवम्—"से किं तं मच्छा?, मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा जुगमच्छा भिब्भियमच्छा हेलियमच्छा मंजरियामच्छा रोहियमच्छा हलीसागारा मोगरावडा वडगरा तिमीतिमिंगिलामच्छा तंदुलमच्छा कणिक्कमच्छा सिलेच्छियामच्छा लंभणमच्छा पडागा पडागाइपडागा, जे यावण्णे तहप्पगारा, से तं मच्छा। से किं तं कच्छभा?, कच्छभा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—अट्ठिकच्छभा य मंसलकच्छभा य, से तं कच्छभा। से किं तं गाहा?, गाहा पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—दिली वेढगा मुदुगा पुलगा सीमागारा, सेत्तं गाहा। से किं तं मगरा?, मगरा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सोंडमगरा य मट्ठमगरा य, सेत्तं मगरा। से किं तं सुसुमारा?, २ एगागारा पण्णत्ता, सेत्तं सुसुमारा" इति, एते मत्स्यादिभेदा लोकतोऽवगन्तव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' उक्तप्रकारा मत्स्यादिरूपाः, ते सर्वे जलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्रष्टव्याः। 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं सुगमं, शरीरादिद्वारकदम्बकमपि चतुरिन्द्रियवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा, उत्कर्षतो योजनसहस्रम्। इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणि। सञ्ज्ञिद्वारे नो सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनः, संमूर्च्छिमतया समनस्कत्वायोगात्। उपपातो यथा व्युत्क्रान्तिपदे तथा वक्तव्य., तिर्यग्मनुष्येभ्योऽसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्ज्येभ्यो वाच्य इति भावः। स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी। च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य चतसृष्वपि गतिपूत्पद्यन्ते, तत्र नरकेषु रत्नप्रभायामेव, तिर्यक्षु सर्वेष्वेव, मनु-

ष्येषु कर्मभूमिजेषु, देवेषु व्यन्तरभवनवासिषु, तदन्येष्वसङ्ख्यायुष्काभावात्, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुर्गतिका द्व्यागतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ उक्ताः संमूर्च्छिमजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, सम्प्रति संमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं थलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पयथलयरसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया परिसप्पसंमु० ॥ से किं तं थलयरचउप्पयसंमुच्छिम०?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया जाव जे यावण्णे तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तओ सरीगा ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं चउरासीतिवाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगातिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेत्तं थलयरचउप्पदसंमु०। से किं तं थलयरपरिसप्पसंमुच्छिमा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमा। से किं तं उरगपरिसप्पसंमुच्छिमा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—अही अयगरा आसालिया महोरगा। से किं तं अही?, अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—दव्वीकरा मउलिणो य। से किं तं दव्वीकरा?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—आसीविसा जाव से तं दव्वीकरा। से किं तं मउ-

लिणो?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—दिव्वा गोणसा जाव से तं मउलिणो, सेत्तं अही । से किं तं अयगरा?, २ एगागारा पण्णत्ता, से तं अयगरा । से किं तं आसालिया?, २ जहा पण्णवणाए, से तं आसालिया। से किं तं महोरगा?, २ जहा पण्णवणाए, से तं महोरगा। जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य तं चेव, णवरि सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्सऽसंखेज्ज० उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं, जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा, से तं उरगपरिसप्पा॥ से किं तं भुयगपरिसप्पसंमुच्छिमथलयरा?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—गोहा णउला जाव जे यावन्ने तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिती उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं भुयपरिसप्पसंमुच्छिमा, से तं थलयरा ॥ से किं तं खहयरा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विततपक्खी । से किं तं चम्मपक्खी?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—वग्गुली जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, से तं चम्मपक्खी । से किं तं लोमपक्खी?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ढंका कंका जे यावन्ने तहप्पकारा, से

तं लोमपक्खी । से किं तं समुग्गपक्खी ?, २ एगागारा पण्णत्ता जहा पण्णवणाए, एवं विततपक्खी जाव जे यावन्ने तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, णाणत्तं सरीरोगाहणा जह० अंगु० असं० उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं ठिती उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं खयरसंमुच्छिमतिरिक्खजोणिया, सेतं संमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ॥ (सू० ३६)

अथ के ते संमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च परिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्च, तत्र चत्वारि पदानि येषां ते चतुष्पदाः—अश्वादयः ते च ते स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः, उरसा भुजाभ्यां वा परिसर्पन्तीति परिसर्पाः—अहिनकुलादयस्ततः पूर्ववत्समासः, चशब्दौ स्वस्वगतानेकभेदसूचकौ, तदेवानेकविधत्वं क्रमेण प्रतिपिपादयिषुराह—अथ के ते चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—चतुष्पदस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'जहा पण्णवणाए' इति, यथा प्रज्ञापनायां प्रज्ञापनाख्ये प्रथमे पदे भेदास्तथा वक्तव्या यावत् 'ते समासतो दुविहा पण्णत्ता' इत्यादि, ते चैवम्—"एगखुरा दुखुरा गंडीपया सणप्फया । से किं तं एगखुरा ?, एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—अस्सा अस्सतरा घोडा गद्दभा गोरखुरा कंदलगा सिरिकंदलगा आवत्ता जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं एगखुरा । से किं तं दुखुरा ?, दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—उट्टा गोणा गवया महिसा संवरा वराहा अजा एलगा रुरू सरभा चमरी कुरंगा गोक-

णमाई, सेत्तं दुखुरा । से किं तं गंडीपया ?, गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—हत्थी हत्थिपूयणा मंकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं गंडीपया । से किं तं सणप्फया ?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा सीयाला सुणगा कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावण्णे तहप्पकारा ॥" इति, तत्र प्रतिपदमेकः खुरो येषां ते एकखुराः—अश्वादयः, प्रतिपादं द्वौ खुरौ—शफौ येषां ते द्विखुरा—उष्ट्रादयः, तथा च तेषामेकैकस्मिन् पादे द्वौ द्वौ शफौ दृश्येते, गण्डीव पदं येषां ते गण्डीपदाः—हस्त्यादयः, सनखानि—दीर्घनखपरिकलितानि पदानि येषां ते सनखपदाः—श्वादयः, प्राकृतत्वाच्च 'सणप्फया' इति सूत्रे निर्देशः, अश्वादयस्त्वेतद्भेदाः केचिदतिप्रसिद्धत्वात्स्वयमन्ये च लोकतो वेदितव्याः, नवरं सनखपदाधिकारे द्वीपकाः—चित्रका अच्छाः—ऋक्षाः परासराः—सरभाः कोकन्तिका—लोमटिकाः चित्ता चित्तलगा आरण्यजीवविशेषाः, शेषास्तु सिंहव्याघ्रतरक्षशृगालशुनककोलशुनशशकाः प्रतीताः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं शरीरादिद्वारकलापसूत्रं च जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कृष्टा गव्यूतपृथक्त्वं स्थितिद्वारे जघन्यत. स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतश्चतुरशीति वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव, उपसंहारमाह—'सेत्तं चउप्पयथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ अथ के ते परिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, २ द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'एवं भेदो भाणियव्वो' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण यथा प्रज्ञापनायां तथा भेदो वक्तव्यो यावत् 'पज्जत्ता य अपज्जत्ता य' स चैवम्—'तंजहा—उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचेन्दियतिरिक्खजोणिया य भुयपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया य ।" सुगमं, नवरम् उरसा परिसर्पन्तीत्युरःपरिसर्पाः—सर्पादयः, भुजाभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पा—नकुलादयः, शेषपदसमासः प्राग्वत्, "से किं तं उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपंचिंदियतिरि-

क्खजोणिया ?, उरपरिसप्पथलयरसंमुच्छिमपञ्चिदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पन्नत्ता, तंजहा—अही अयगरा आसालिया महोरगा। से किं तं अही ?, अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—दव्वीकरा य मउलिणो य। से किं तं दव्वीकरा ?, दव्वीकरा अणेगविहा पन्नत्ता, तंजहा—आसीविसा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा निस्सासविसा कण्हसप्पा सेयसप्पा काकोदरा दुब्भपुप्फा कोलाहा सेलेसिंदा, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं अही । से किं तं अयगरा ?, अयगरा एगागारा पन्नत्ता, सेत्तं अयगरा। से किं तं आसालिया ?, कहि णं भंते ! आसालिगा संमुच्छइ ?, गोयमा ! अंतो मणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु निव्वाघाएणं पन्नरससु कम्मभूमीसु, वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु चक्कवट्टिखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु वासुदेवखंधावारेसु मंडलियखंधावारेसु महामण्डलियखंधावारेसु गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु खेडनिवेसेसु कव्वड० मडंबनिवेसेसु दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु रायहाणिनिवेसेसु, एएसि णं चेव विणासेसु, एत्थ णं आसालिया संमुच्छइ, जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमित्ताए ओगाहणाए, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं, तदाणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ता संमुच्छइ, असण्णी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी अंतोमुहुत्तद्धाउया चेव कालं करेइ, सेत्तं आसालिया। से किं तं महोरगा ?, महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—अत्थेगइया अंगुलंपि अंगुलपुहुत्तियावि विहत्थिंपि विहत्थिपुहत्तियावि रयणिंपि रयणिपुहुत्तियावि कुच्छिंपि कुच्छिपुहत्तियावि धणुहंपि धणुहपुहत्तियावि गाउयंपि गाउयपुहत्तियावि जोयणंपि जोयणपुहत्तियावि जोयणसयंपि जोयणसयपुहत्तियावि, ते णं थले जाया जलेऽवि चरंति थलेऽवि चरंति, ते णत्थि इहं बाहिरएसु दीवसमुद्देसु हवंति, जे यावण्णे तहप्पगारा, सेत्तं महोरगा।" इति। अस्य विषमपदव्याख्या—"दव्वीकरा य मउलिणो य' इति, दर्व्वीव दर्वी—फणा तत्करणशीला दर्वीकराः, मुकुलं—फणाविरहयोग्या

शरीरावयवविशेषाकृतिः सा विद्यते येषां ते मुकुलिनः—स्फटाकरणशक्तिविकला इत्यर्थः, अत्रापि चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ, 'आसीविसा' इत्यादि, आस्यो—दंष्ट्रास्तासु विषं येषां ते आसीविषाः, उक्तं च—"आसी दाढा तग्गयविसाऽऽसीविसा मुणेयव्वा" इति, दृष्टौ विषं येषां ते दृष्टिविषाः, उग्रं विषं येषां ते उग्रविषाः, भोगः—शरीरं तत्र सर्वत्र विषं येषां ते भोगविषाः, त्वचि विषं येषां ते त्वग्विषाः, प्राकृतत्वाच्च 'तयाविसा' इतिपाठः, लाला—मुखात् श्रावस्तत्र विषं येषां ते लालाविषाः, निश्वासे विषं येषां ते निश्वासविषाः कृष्णसर्पादयो जातिभेदा लोकतः प्रत्येतव्याः। 'से किं तं आसालिगा' इत्यादि, अथ का सा आसालिगा ?, एवं शिष्येण प्रश्ने कृते सति सूत्रकृद् यदेवासालिकाप्रतिपादकं गौतमप्रश्नभगवन्निर्वचनरूपं सूत्रमस्ति तदेवागमबहुमानतः पठति—'कहि णं भंते !' इत्यादि, क्व णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! परमकल्याणयोगिन् ! आसालिगा संमूर्छति, एषा हि गर्भजा न भवति किन्तु संमूर्च्छिमैव तत उक्तं संमूर्छति, भगवानाह—गौतम ! अन्तः—मध्ये मनुष्यक्षेत्रस्य न बहिः, एतावता मनुष्यक्षेत्राद्बहिरस्या उत्पादो न भवतीति प्रतिपादितं, तत्रापि मनुष्यक्षेत्रे सर्वत्र न भवति किन्तु अर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु, अर्द्धं तृतीयं येषां तेऽर्द्धतृतीयाः, अवयवेन विग्रहः समुदायः समासार्थः तेषु, एतावता लवणसमुद्रे कालसमुद्रे वा न भवतीत्यावेदितं, 'निव्वाघातेन' व्याघातस्याभावो निर्व्याघातं तेन, यदि पञ्चसु भरतेषु पञ्चस्वैरावतेषु सुषमसुषमादिरूपोऽतिदुष्षमादिरूपश्च कालो व्याघातहेतुत्वाद् व्याघातो न भवति तदा पञ्चदशसु कर्मभूमिषु संमूर्च्छति, व्याघातं प्रतीत्य, किमुक्तं भवति ?—यदि पञ्चसु भरतेषु पञ्चस्वैरावतेषु यथोक्तरूपो व्याघातो भवति ततः पञ्चसु महाविदेहेषु संमूर्च्छति, एतावता त्रिंशत्यप्यकर्मभूमिषु नोपजायत इति प्रतिपादितं, पञ्चदशसु कर्मभूमिषु पञ्चसु महाविदेहेषु सर्वत्र न संमूर्च्छति किन्तु चक्रवर्त्तिस्कन्धावारेषु बलदेवस्कन्धावारेषु वासुदेवस्कन्धावारेषु माण्डलिकः—सामान्यराजाऽल्पर्द्धिकः,

महामाण्डलिकः स एवानेकदेशाधिपतिस्तत्स्कन्धावारेषु, ग्रामनिवेशेषु इत्यादि, ग्रसति बुद्ध्यादीन् गुणानिति यदिवा गम्यः शास्त्रप्रसिद्धानामष्टादशानां कराणामिति ग्रामः, निगमः—प्रभूततरवणिग्वर्गावासः, पांसुप्राकारनिबद्धं खेटं, क्षुल्लप्राकारवेष्टितं कर्वटम्, अर्द्धतृतीयगव्यूतान्तर्ग्रामरहितं मडम्बं 'पट्टण'त्ति पट्टनं पत्तनं वा, उभयत्रापि प्राकृतत्वेन निर्देशस्य समानत्वात्, तत्र यन्नौभिरेव गम्यं तत्पट्टनं यत्पुनः शकटैर्घोटकैर्नौभिर्वा गम्यं तत्पत्तनं यथा भरुकच्छम्, उक्तं च—"पत्तनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च । नौभिरेव तु यद्गम्यं, पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥ १ ॥" द्रोणमुखं—प्रायेण जलनिर्गमप्रवेशम्, आकरो—हिरण्याकरादिः आश्रमः—तापसावसथोपलक्षित आश्रयः, संबाधो—यात्रासमागतप्रभूतजननिवेशः, राजधानी—राजाधिष्ठानं नगरम्, 'एएसि ण' मित्यादि, एतेषां चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादीनामेव विनाशेषूपस्थितेषु 'एत्थ णं'ति एतेषु चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादिषु स्थानेष्वासालिका संमूर्च्छति, सा च जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रयाऽवगाहनया समुत्तिष्ठतीति योगः, एतच्चोत्पादप्रथमसमये वेदितव्यम्, उत्कर्षतो द्वादश योजनानि—द्वादशयोजनप्रमाणयाऽवगाहनया 'तदनुरूपं' द्वादशयोजनप्रमाणदैर्घ्यानुरूपं 'विक्खंभबाहल्लेणं'ति विष्कम्भश्च बाहल्यं च विष्कम्भबाहल्यं, समाहारो द्वन्द्वः, तेन, विष्कम्भो—विस्तारो बाहल्यं च—स्थूलता, भूमिं 'दालित्ता णं' विदार्य समुत्तिष्ठति, चक्रवर्त्तिस्कन्धावारादीनामधस्ताद् भूमेरन्तरुत्पद्यत इति भावः, सा चासञ्ज्ञिनी—अमनस्का संमूर्च्छिमत्वात्, मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यक्त्वस्यापि तस्या असम्भवात्, अत एवाज्ञानिनी, अन्तर्मुहूर्त्तोद्धायुरेव कालं करोति । 'अत्थेगइया अंगुलंपी'त्यादि, अस्तीति निपातोऽत्र बहुवचनाभिधायी, ततोऽयमर्थः—सन्त्येकका: केचन महोरगा येऽङ्गुलमपि शरीरावगाहनया भवन्ति, इहाङ्गुलमुच्छ्रयाङ्गुलमवसातव्यं, शरीरप्रमाणस्य चिन्त्यमानत्वात्, सन्त्येकका येऽङ्गुलपृथक्त्विका अपि—पृथक्त्वं द्विप्रभृतिरानवभ्य इति परिभाषा अङ्गुलपृथक्त्वं शरीरावगाहनमानमे-

पामस्तीत्यङ्गुलपृथक्त्विकाः, 'अतोऽनेकस्वरादि' तीकप्रत्ययः, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं द्वादशाङ्गुलप्रमाणा वितस्तिः, द्विवितस्तिप्रमाणा रत्निर्हस्तः, कुक्षिर्द्विहस्तमाना, धनुर्हस्तचतुष्टयप्रमाणं, गव्यूतं द्विधनुःसहस्रप्रमाणं, चत्वारि गव्यूतानि योजनम्, एतच्चापि वितस्त्यादिकमुच्छ्रयाङ्गुलापेक्षया प्रतिपत्तव्यं, 'ते ण'मित्यादि, 'ते' अनन्तरोदितस्वरूपा महोरगाः स्थलचरविशेषत्वात् स्थले जायन्ते स्थले च जाताः सन्तो जलेऽपि स्थल इव चरन्ति स्थलेऽपि चरन्ति, तथास्वाभाव्यात्, यद्येवं ते कस्मादिह न दृश्यन्ते ? इत्याशङ्कायामाह—'ते नत्थि इहं' इत्यादि, 'ते' यथोदितस्वरूपा महोरगाः 'इह' मानुषक्षेत्रे 'नत्थि'त्ति न सन्ति, किन्तु बाह्येषु द्वीपसमुद्रेषु भवन्ति, समुद्रेष्वपि च पर्वतदेवनगर्यादिषु स्थलेषूत्पद्यन्ते न जलेषु, तत इह न दृश्यन्ते । 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये तथाप्रकारा अङ्गुलदशकादिशरीरावगाहमानास्तेऽपि महोरगा ज्ञातव्याः, उपसंहारमाह—'सेत्तं महोरगा, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' इति, येऽपि चान्ये तथाप्रकाराः उक्तरूपाद्यादिरूपास्ते सर्वेऽपि उरःपरिसर्पस्थलचरसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका द्रष्टव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं शरीरादिद्वारकदम्बकं च जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो योजनपृथक्त्वं, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, शेषं तथैव ॥ भुजपरिसर्पप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते भुजपरिसर्पसंमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—भुजपरिसर्पसंमूर्च्छिमस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका अनेकविधाः प्रज्ञप्ताः, 'तह चेव भेओ भाणियव्वो' इति, यथा प्रज्ञापनायां तथैव भेदो वक्तव्यः, स चैवम्—"तंजहा—गोहा नउला सरडा सल्ला सरंठा सारा खारा घरोलिया विस्संभरा मूसा मंगुसा पयलाया छीरविरालिया जाहा चउप्पाइया" एते देशविशेषतो वेदितव्याः, 'जे यावण्णे तहप्पगारा' येऽपि चान्ये 'तथाप्रकाराः' उक्तप्रकारा गोधा-

दिस्वरूपास्ते सर्वे भुजपरिसर्पा अवसातव्याः, 'ते समासतो' इत्यादि सूत्रकदम्बकं प्राग्वद्भावनीयं, नवरमवगाहना जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो धनुःपृथक्त्वं, स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, शेषं जलचरवद्द्रष्टव्यम्, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ खचरप्रतिपादनार्थमाह—अथ के ते संमूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—संमूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'भेदो जहा पण्णवणाए' इति, भेदो यथा प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यः, स चैवम्—"चम्मपक्खी लोमपक्खी समुग्गपक्खी विततपक्खी । से किं तं चम्मपक्खी?, २ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—वग्गुली जलोया अडिला भारुंडपक्खी जीवंजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिविराली, जे यावण्णे तहप्पगारा, से त्तं चम्मपक्खी । से किं तं लोमपक्खी?, लोमपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—ढङ्का कंका कुरला वायसा चक्कवागा हंसा कलहंसा पोयहंसा रायहंसा अडा सेडीवडा वेलागया कोंचा सारसा मेसरा मयूरा सेयवगा गहरा पोंडरीया कामा कामेयगा वंजुलागा तित्तिरा वट्टगा लावगा कपोया कपिंजला पारेवया चिडगा वीसा कुक्कुडा सुगा वरहिगा मयणसलागा कोकिला सण्हावरण्णगमादी, से त्तं लोमपक्खी । से किं तं समुग्गपक्खी?, समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता, ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्देसु हवंति, से त्तं समुग्गपक्खी । से किं तं विततपक्खी?, विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता, ते णं नत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्देसु भवंति, से त्तं विततपक्खी" इति पाठसिद्धं नवरं 'चम्मपक्खी' इत्यादि, चर्मरूपौ पक्षौ चर्मपक्षौ तौ विद्येते येषां ते चर्मपक्षिणः, लोमात्मकौ पक्षौ लोमपक्षौ तौ विद्येते येषां ते लोमपक्षिणः, तथा गच्छतामपि समुद्गवत्स्थितौ पक्षौ समुद्गकपक्षौ तद्वन्तः समुद्गकपक्षिणः, विततौ—नित्यमनाकुञ्चितौ पक्षौ विततपक्षौ तद्वन्तो विततपक्षिणः 'ते समासतो' इत्यादि सूत्रकदम्बकं जलचरवद्भावनीयं, नवरमवगाहना उत्क-

र्षतो धनुःपृथक्त्वं, स्थितिरुत्कर्षतो द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि। तथा चात्र कचित्पुस्तकान्तरेऽवगाहनास्थित्योर्यथाक्रमं सङ्ग्रहणिगाथे—"जोयणसहस्सगाउयपुहत्त तत्तो य जोयणपुहत्तं। दोण्हंपि धणुपुहत्तं संमुच्छिमवियगपक्खीणं ॥ १ ॥ संमुच्छ पुव्वकोडी चउरासीई भवे सहस्साइं। तेवण्णा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं ॥ २ ॥" व्याख्या—संमूर्च्छिमानां जलचराणामुत्कृष्टाऽवगाहना योजनसहस्रं, चतुष्पदानां गव्यूतपृथक्त्वम्, उरःपरिसर्पाणां योजनपृथक्त्वं। 'दोण्हं तु'इत्यादि, द्वयानां संमूर्च्छिमभुजगपक्षिणां—संमूर्च्छिमभुजगपरिसर्पपक्षिरूपाणां प्रत्येकं धनुःपृथक्त्वं, तथा संमूर्च्छिमानां जलचराणामुत्कृष्टा स्थितिः पूर्वकोटी चतुष्पदानां चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणि, उरःपरिसर्पाणां त्रिपञ्चाशद्वर्षसहस्राणि, भुजपरिसर्पाणां द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि, पक्षिणां द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिमखहयरपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ उक्ताः संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनयः, सम्प्रति गर्भव्युत्क्रान्तिकान् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाह—

से किं तं गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा ॥ (सू० ३७)

'से किं तं'मित्यादि, अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः ?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च। तत्र जलचरप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं जलयरा ?, जलयरा पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—मच्छा कच्छभा मगरा गाहा सुंसुमारा,

सव्वेसिं भेदो भाणितव्वो तहेव जहा पण्णवणाए, जाव जे यावण्णे तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए वेउव्विए तेयए कम्मए, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्ज० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं छव्विहसंघयणी पण्णत्ता, तंजहा—वइरोसभनारायसंघयणी उसभनारायसंघयणी नारायसंघयणी अद्धनारायसंघयणी कीलियासंघयणी सेवट्टसंघयणी, छव्विहा संठिता पण्णत्ता, तंजहा—समचउरंससंठिता णग्गोधपरिमंडल० साति० खुज्ज० वामण० हुंड०, कसाया सव्वे सण्णाओ ४ लेसाओ ६ पंच इंदिया पंच समुग्घाता आदिल्ला सण्णी नो असण्णी तिविधवेदा छप्पज्जत्तीओ छअपज्जत्तीओ दिट्ठी तिविधावि तिण्णि दंसणा णाणीवि अण्णाणीवि जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी अत्थेगतिया तिन्नाणी, जे दुन्नाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी य सुतणाणी य, जे तिन्नाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुत० ओहिणाणी, एवं अण्णाणीवि, जोगे तिविहे उवओगे दुविधे आहारो छद्दिसिं उववातो नेरइएहिं जाव अहे सत्तमा तिरिक्खजोणिएसु सव्वेसु असंखेज्जवासाउयवज्जेसु मणुस्सेसु अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेसु देवेसु जाव सहस्सारो, ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, दुविधावि मरंति, अणंतरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव अहे

सत्तमा तिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु सव्वेसु देवेसु जाव सहस्सारो, चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं जलयरा ॥ (सू० ३८)

'भेदो भाणियव्वो तहेव जहा पण्णवणाए' इति भेदस्तथैव मत्स्यादीनां वक्तव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स च प्रागेवोपदर्शितः, 'ते समासतो' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं पाठसिद्धं, शरीरादिद्वारकदम्बकसूत्रं संमूर्च्छिमजलचरवद्भावनीयं, नवरमत्र शरीरद्वारे चत्वारि शरीराणि वक्तव्यानि, गर्भव्युत्क्रान्तिकानां तेषां वैक्रियस्यापि सम्भवात्, अवगाहनाद्वारे उत्कर्षतोऽवगाहना योजनसहस्रम् । संहननचिन्तायां षडपि संहननानि, तत्स्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथाद्वयम्—"वज्जरिसहनारायं पढमं बीयं च रिसहनारायं । नारायमद्धनाराय कीलिया तह य छेवट्ठं ॥ १ ॥ रिसहो य होइ पट्टो वज्जं पुण कीलिया मुणेयव्वा । उभयो मक्कडबंधो नारायं तं वियाणाहि ॥ २ ॥" संस्थानचिन्तायां षडपि संस्थानानि, तान्यमूनि—समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि वामनं कुब्जं हुण्डमिति, तत्र समाः—सामुद्रिकशास्त्रोक्तप्रमाणाविसंवादिन्यश्चतस्रोऽस्रयः—चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवा यत्र तत्समचतुरस्रं, समासान्तोऽत्प्रत्ययः, अत एवैतदन्यत्र तुल्यमिति व्यवह्रियते, तथा न्यग्रोधवत्परिमण्डलं यस्य, यथा न्यग्रोध उपरि संपूर्णप्रमाणोऽधस्तु हीनः तथा यत्संस्थानं नाभेरुपरि संपूर्णमधस्तु न तथा तन्न्यग्रोधपरिमण्डलम्, उपरि विस्तारबहुलमिति भावः, तथाऽऽदिरिहोत्सेधाख्यो नाभेरधस्तनो देहभागो गृह्यते, ततः सह आदिना—नाभेरधस्तनभागेन यथोक्तप्रमाणलक्षणेन वर्त्तत इति सादि, उत्सेधबहुलमिति भावः, इह यद्यपि

---

१ वज्रर्षभनाराचं प्रथमं द्वितीयं च ऋषभनाराचम् । नाराचमर्धनाराचं कीलिका तथा च सेवार्त्तम् ॥ १ ॥ ऋषभश्च भवति पट्ट वज्रं पुनः कीलिका ज्ञातव्या । उभयतो मर्कटबन्धो नाराचं तत् विजानीहि ॥ २ ॥

सर्वं शरीरमादिना सह वर्त्तते तथाऽपि सादित्वविशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या विशिष्ट एव प्रमाणलक्षणोपपन्न आदिरिह लभ्यते, तत उ-
क्तम्—उत्सेधबहुलमिति, इदमुक्तं भवति—यत्संस्थानं नाभेरधः प्रमाणोपपन्नमुपरि च हीनं तत्सादीति, अपरे तु साचीति पठन्ति, तत्र
साचीति प्रवचनवेदिनः शाल्मलीतरुमाचक्षते, ततः साचीव यत्संस्थानं, यथा शाल्मलीतरोः स्कन्धकाण्डमतिपुष्टमुपरि च न तदनु-
रूपा महाविशालता तद्वदस्यापि संस्थानस्याधोभागः परिपूर्णो भवति उपरितनभागस्तु नेति, तथा यत्र शिरोग्रीवं हस्तपादादिकं च
यथोक्तप्रमाणलक्षणोपेतं उरउदरादि च मण्डलं तत्कुब्जं संस्थानं, यत्र पुनरुदरादि प्रमाणलक्षणोपेतं हस्तपादादिकं च हीनं तद्वामनं,
यत्र सर्वेऽप्यवयवाः प्रमाणलक्षणपरिभ्रष्टास्तत् हुण्डम्, उक्तञ्च—"समचउरंसे नग्गोहमंडले साई खुज्ज वामणए । हुंडेवि य संठाणे
जीवाणं छम्मुणेयव्वा ॥ १ ॥ तुल्लं वित्थडबहुलं उस्सेहबहुं च मडहकोट्ठं च । हेट्ठिल्लकायमडहं सव्वत्थासंठियं हुंडं ॥ २ ॥" लेश्या-
द्वारे षडपि लेश्याः, शुक्ललेश्याया अपि सम्भवात्, समुद्घाताः पञ्च, वैक्रियसमुद्घातस्यापि सम्भवात्, सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनो नो अ-
सञ्ज्ञिनः, वेदद्वारे त्रिविधवेदा अपि, स्त्रीपुरुषयोर्वेदयोरप्यमीषां भावात्, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयो, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन वि-
वक्षणात्, अपर्याप्तिचिन्तायां पञ्चापर्याप्तयः, दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयोऽपि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टयः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च,
दर्शनद्वारे त्रिविधदर्शना अपि, अवधिदर्शनस्यापि केषाञ्चिद्भावात्, ज्ञानद्वारे त्रिज्ञानिनोऽपि, अवधिज्ञानस्यापि केषाञ्चिद्भावात्, अ-
ज्ञानचिन्तायामज्ञानिनोऽपि, विभङ्गस्यापि केषाञ्चित्सम्भवात्, अवधिविभङ्गौ च सम्यग्मिथ्यादृष्टिभेदेन प्रतिपत्तव्यौ, उक्तञ्च—"स-

१ समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि कुब्जं वामनम् । हुण्डमपि च सस्थानं जीवाना षड् ज्ञातव्यानि ॥ १ ॥ तुल्यं बहुविस्तारं उत्सेधबहुलं च मडभकोष्ठं च । अधस्तनकायमडभं सर्वत्रासंस्थितं हुण्डम् ॥ २ ॥

म्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यासः” इति, उपपातद्वारे उपपातो नैरयिकेभ्यः सप्तपृथ्वीभाविभ्योऽपि, तिर्यग्योनिकेभ्योऽप्यसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः सर्वेभ्योऽपि, मनुष्येभ्योऽकर्मभूमिजान्तरद्वीपजासङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जकर्मभूमिभ्यो, देवेभ्योऽपि यावत्सहस्रारात्, परतः प्रतिषेधः, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्धृत्य सहस्रारात्परे ये देवास्तान् वर्जयित्वा शेषेषु सर्वेष्वपि जीवस्थानेषु गच्छन्ति, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुरागतिकाश्चतुर्गतिकाः, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं जलयरा गब्भवक्कंतियपञ्चिंदियतिरिक्खजोणिया' ॥ सम्प्रति स्थलचरप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं थलयरा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पदा य परिसप्पा य। से किं तं चउप्पया?, २ चउव्विधा पण्णत्ता, तंजहा—एगक्खुरा सो चेव भेदो जाव जे यावन्ने तहप्पकारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, चत्तारि सरीरा ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्ज० उक्कोसेणं छ गाउयाइं, ठिती उक्कोसेणं तिन्नि पलिओमाइं नवरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु चउत्थपुढविं गच्छंति, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखिज्जा पण्णत्ता, से तं चउप्पया। से किं तं परिसप्पा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरपरिसप्पा य भुयगपरिसप्पा य, से किं तं उरपरिसप्पा?, २ तहेव आसालियवज्जो भेदो भाणियव्वो, (तिण्णि) सरीरा, ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखे० उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, ठिती जहन्नेणं

अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव पंचमं पुढविं ताव गच्छंति, तिरिक्खमणुस्सेसु सव्वेसु, देवेसु जाव सहस्सारा, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगइया परित्ता असंखेज्जा से तं उरपरिसप्पा। से किं तं भुयगपरिसप्पा?, २ भेदो तहेव, चत्तारि सरीरगा ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखे० उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, सेसेसु ठाणेसु जहा उरपरिसप्पा, णवरं दोच्चं पुढविं गच्छंति, से तं भुयपरिसप्पा पण्णत्ता, से तं थलयरा ॥ (सू० ३९)। से किं तं खहयरा?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खी तहेव भेदो, ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखे० उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो, सेसं जहा जलयराणं, नवरं जाव तच्चं पुढविं गच्छंति जाव से तं खहयरगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया, से तं तिरिक्खजोणिया ॥ (सू० ४०)

स्थलचरगर्भव्युत्क्रान्तिकानां भेदोपदर्शकं सूत्रं यथा संमूर्च्छिमस्थलचराणां, नवरमत्रासालिका न वक्तव्या, सा हि संमूर्च्छिमैव न गर्भव्युत्क्रान्तिका, तथा महोरगसूत्रे "जोयणसयंपि जोयणसयपुहुत्तियावि जोयणसहस्संपि" इत्येतदधिकं वक्तव्यं, शरीरादिद्वारकदम्बकसूत्रं तु सर्वत्रापि गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचराणामिव, नवरमवगाहनास्थित्युद्वर्त्तनासु नानात्वं, तत्र चतुष्पदानामुत्कृष्टाऽवगाहना षड् गव्यूतानि, स्थितिरुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, उद्वर्त्तना चतुर्थपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, एतेषु सर्वेष्वपि जीवस्थानेष्वनन्तरमुद्वृत्त्योत्पद्यन्ते, उरःपरिसर्पाणामुत्कृष्टावगाहना योजनसहस्रं, स्थितिरुत्कर्षतः पूर्वकोटी, उद्वर्त्तना पञ्चमपृथिव्या आरभ्य यावत्सह-

स्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेष्वनन्तरमुद्वृत्त्योत्पद्यन्ते । भुजपरिसर्पाणामुत्कृष्टाऽवगाहना गव्यूतपृथक्त्वं, स्थितिरुत्कर्षतः पूर्वकोटी, उद्वर्त्तनाचिन्तायां द्वितीयपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेपूत्पादः ॥ खचरगर्भव्युत्क्रान्तिकपञ्चेन्द्रियभेदो यथा संमूर्च्छिमखचराणां, शरीरादिद्वारकलापचिन्तनं गर्भव्युत्क्रान्तिकजलचरवत्, नवरमवगाहनास्थित्युद्वर्त्तनासु नानात्वं, तत्रोत्कर्षतोऽवगाहना धनुष्पृथक्त्वं, जघन्यतः सर्वत्राप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा, स्थितिरपि जघन्यतः सर्वत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽत्र पल्योपमासङ्ख्येयभागः, उद्वर्त्तना तृतीयपृथिव्या आरभ्य यावत्सहस्रारः, अत्रान्तरे सर्वेषु जीवस्थानेपूत्पादः, क्वचित्पुस्तकान्तरेऽवगाहनास्थित्योर्यथाक्रमं सङ्ग्रहणिगाथे—"जोयणसहस्स छग्गाउयाइ तत्तो य जोयणसहस्सं । गाउयपुहुत्त भुयगे धणुयपुहुत्तं च पक्खीसु ॥ १ ॥ गब्भंमि पुव्वकोडी तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं । उरभुयग पुव्वकोडी पलियअसंखेज्जभागो य ॥ २ ॥" अनयोर्व्याख्या—गर्भव्युत्क्रान्तिकानामेव जलचराणामुत्कृष्टावगाहना योजनसहस्रं, चतुष्पदानां षड् गव्यूतानि, उरःपरिसर्पाणां योजनसहस्रं, भुजपरिसर्पाणां गव्यूतपृथक्त्वं, पक्षिणां धनुष्पृथक्त्वं । तथा गर्भव्युत्क्रान्तिकानामेव जलचराणामुत्कृष्टा स्थितिः पूर्वकोटी, चतुष्पदानां त्रीणि पल्योपमानि, उरगाणां भुजगानां च पूर्वकोटी, पक्षिणां पल्योपमासङ्ख्येयभाग इति ॥ उत्पादविधिस्तु नरकेष्वस्माद्गाथाद्वयादवसेयः—"अस्सण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसवा तइय पक्खी । सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं पुढविं ॥ १ ॥ छट्ठिं च इत्थियाउ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं । एसो परमुववाओ बोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥ २ ॥" उक्ताः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः, सम्प्रति मनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—

१ असंज्ञिन. खलु प्रथमां द्वितीयां च सरीसृपास्तृतीया पक्षिण । सिंहा यान्ति चतुर्थीमुरगा. पुन. पञ्चमीं पृथ्वीम् ॥ १ ॥ षष्ठीं च स्त्रिय मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीं यावत् । एष परम उत्पातो बोद्धव्यो नारकपृथ्वीषु ॥ २ ॥

से किं तं मणुस्सा?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य॥ कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोयमा! अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?, गोयमा! तिन्नि सरीरगा पन्नत्ता, तंजहा—ओरालिए तेयए कम्मए, सेतं संमुच्छिममणुस्सा। से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमया अकम्मभूमगा अंतरदीवजा, एवं माणुस्सभेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए तहा णिरवसेसं भाणियव्वं जाव छउमत्था य केवली य, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तेसि णं भंते! जीवाणं कति सरीरा प०?, गोयमा! पंच सरीरया, तंजहा—ओरालिए जाव कम्मए। सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलअसंखेज्ज० उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं छच्चेव संघयणा छस्संठाणा। ते णं भंते! जीवा किं कोहकसाई जाव लोभकसाई अकसाई?, गोयमा! सव्वेवि। ते णं भंते! जीवा किं आहारसन्नोवउत्ता० लोभसन्नोवउत्ता नोसन्नोवउत्ता?, गोयमा! सव्वेवि। ते णं भंते! जीवा किं कण्हलेसा य जाव अलेसा?, गोयमा! सव्वेवि। सोइंदियोवउत्ता जाव नोइंदियोवउत्तावि, सव्वे समुग्घाता, तंजहा—वेयणासमुग्घाते जाव केवलिसमुग्घाए, सन्नीवि नोसन्नी असन्नीवि, इत्थिवेयावि जाव अवेदावि, पंच पज्जत्ती, तिविहावि दिट्ठी, चत्तारि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी

अत्थेगतिया तिणाणी अत्थेगइया चउणाणी अत्थेगतिया एगणाणी, जे दुण्णाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी य, जे तिणाणी ते आभिणियोहियणाणी सुतणाणी ओहिणाणी य, अहवा आभिणिबोहियणाणी सुयनाणी मणपज्जवणाणी य, जे चउणाणी ते णियमा आभिणियोहियणाणी सुत० ओहि० मणपज्जवणाणी य, जे एगणाणी ते नियमा केवलनाणी, एवं अन्नाणीवि दुअन्नाणी तिअण्णाणी, मणजोगीवि वइकायजोगीवि अजोगीवि, दुविहउवओगे, आहारो छद्दिसिं, उववातो नेरइएहिं अहे सत्तमवज्जेहिं तिरिक्खजोणिएहिंतो, उववाओ असंखेज्जवासाउयवज्जेहिं मणुएहिं अकम्मभूमगअंतरदीवगअसंखेज्जवासाउयवज्जेहिं, देवेहिं सव्वेहिं, ठिती जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, दुविधावि मरंति, उव्वट्टित्ता नेरइयादिसु जाव अणुत्तरोववाइएसु, अत्थेगतिया सिज्झंति जाव अंतं करेंति। ते णं भंते! जीवा कतिगतिया कइआगइया पण्णत्ता?, गोयमा! पंचगतिया चउआगतिया परित्ता संखिज्जा पण्णत्ता, सेत्तं मणुस्सा ॥ (सू० ४१)

अथ के ते मनुष्याः?, सूरिराह—मनुष्या द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—संमूर्च्छिममनुष्याश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याश्च, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसूचकौ। तत्र संमूर्च्छिममनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति' इति, अत्र यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठः—"अंतो मणुस्सखेत्ते पणयाली-

साए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा कगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोगेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्ताए ओगाहणाए असन्नी मिच्छादिट्ठी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेंति " एतच्च निगदसिद्धम् ॥ सम्प्रति शरीरादिद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं भंते !' शरीराणि त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, अवगाहना जघन्यत उत्कर्षतश्चाङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणा, संहननसंस्थानकषायलेश्याद्वाराणि यथा द्वीन्द्रियाणां, इन्द्रियद्वारे पञ्चेन्द्रियाणि, सञ्ज्ञिद्वारवेदद्वारे अपि द्वीन्द्रियवत्, पर्याप्तिद्वारेऽपर्याप्तयः पञ्च, दृष्टिदर्शनज्ञानयोगोपयोगद्वाराणि (यथा) पृथिवीकायिकानां, आहारो यथा द्वीन्द्रियाणां, उपपातो नैरयिकदेवतेजोवाय्वसङ्ख्यातवर्षायुष्कवर्जेभ्यः, स्थितिर्जघन्यत उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणा, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टमधिकं वेदितव्यं, मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता अपि म्रियन्ते असमवहताश्च, अनन्तरमुद्धृत्य नैरयिकदेवासङ्ख्येयवर्षायुष्कवर्जेषु शेषेषु स्थानेषूत्पद्यन्ते, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकास्तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा' ॥ उक्ताः संमूर्च्छिममनुष्याः, अधुना गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यानाह—अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याः ?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपजाः, तत्र कर्म—कृषिवाणिज्यादि मोक्षानुष्ठानं वा कर्मप्रधाना भूमिर्येषां ते कर्मभूमाः आर्षत्वात्समासान्तोऽप्रत्ययः, कर्मभूमा एव कर्मभूमकाः, एवमकर्मा—यथोक्तकर्मविकला भूमिर्येषां तेऽ-

कर्मभूमास्त एवाकर्मभूमकाः, अन्तरशब्दो मध्यवाची, अन्तरे—लवणसमुद्रस्य मध्ये द्वीपा अन्तरद्वीपास्तद्गता अन्तरद्वीपगाः, **'एवं माणुस्सभेयो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए'** इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण मनुष्यभेदो भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स चातिबहुग्रन्थ इति तत एव परिभावनीयः, **'ते समासतो'** इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तसूत्रं पाठसिद्धं, शरीरादिद्वारकलापचिन्तायां शरीरद्वारे पञ्च शरीराणि, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियमाहारकं तैजसं कार्मणं च, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात्, अवगाहनाद्वारे जघन्यतोऽवगाहना अङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतस्त्रीणि गव्यूतानि, संहननद्वारे षडपि संहननानि, संस्थानद्वारे षडपि संस्थानानि, कषायद्वारे क्रोधकषायिणोऽपि मानकषायिणोऽपि मायाकषायिणोऽपि लोभकषायिणोऽपि अकषायिणोऽपि, वीतरागमनुष्याणामकषायित्वात्, सञ्ज्ञाद्वारे आहारसञ्ज्ञोपयुक्ता भयसञ्ज्ञोपयुक्ता मैथुनसञ्ज्ञोपयुक्ता लोभसञ्ज्ञोपयुक्ताः, नोसंज्ञोपयुक्ताश्च निश्चयतो वीतरागमनुष्याः, व्यवहारतः सर्वे एव चारित्रिणो, लोकोत्तरचित्तलाभात्तस्य सञ्ज्ञादशकेनापि विप्रयुक्तत्वात्, उक्तञ्च—"निर्वाणसाधकं सर्वं, ज्ञेयं लोकोत्तराश्रयम्। सञ्ज्ञा लोकाश्रया सर्वाः, भवाङ्कुरजलं परम् ॥ १ ॥" लेश्याद्वारे कृष्णलेश्या नीललेश्याः कापोतलेश्यास्तेजोलेश्याः पद्मलेश्याः शुक्ललेश्या अलेश्याश्च, तत्रालेश्याः परमशुक्लध्यायिनोऽयोगिकेवलिनः । इन्द्रियद्वारे श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ता यावत्स्पर्शनेन्द्रियोपयुक्ता नोइन्द्रियोपयुक्ताश्च, तत्र नोइन्द्रियोपयुक्ताः केवलिनः, समुद्घातद्वारे सप्तापि समुद्घाताः, मनुष्येषु सर्वभावसम्भवात्, समुद्घातसङ्ग्राहिका चेमा गाथा—"वेयणकसायमरणंतिए य वेउव्विए य आहारे । केवलियसमुग्घाए सत्त समुग्घा इमे भणिया ॥ १ ॥" सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽपि नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिनोऽपि, तत्र नोसञ्ज्ञिनोअसञ्ज्ञिनः केवलिनः । वेदद्वारे स्त्रीवेदा अपि पुरुषवेदा अपि नपुंसकवेदा

१ वेदनः कषाय मारणान्तिकश्च वैक्रयिकश्चाहारक । कैवलिकः समुद्घात. सप्त समुद्घाता इमे भणिता ॥ १ ॥

अपि अवेदाः—सूक्ष्मसम्परायादयः, पर्याप्तिद्वारे पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, भाषामनःपर्याप्त्योरेकत्वेन विवक्षणात्, दृष्टिद्वारे त्रिविधदृष्टयः, तद्यथा—केचिन्मिथ्यादृष्टयः केचित्सम्यग्दृष्टयः केचित्सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, दर्शनद्वारे चतुर्विधदर्शनाः, तद्यथा—चक्षुर्दर्शना अचक्षुर्दर्शना अवधिदर्शनाः केवलदर्शनाः, ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र मिथ्यादृष्टयोऽज्ञानिनः सम्यग्दृष्टयो ज्ञानिनः, 'नाणाणि पंच तिण्णि अण्णाणाणि भयणाते' इति, ज्ञानानि पञ्च मतिज्ञानादीनि, अज्ञानानि त्रीणि मत्यज्ञानादीनि, तानि भजनया वक्तव्यानि, सा च भजना एवम्—केचिद्द्विज्ञानिनः केचित्त्रिज्ञानिनः केचिच्चतुर्ज्ञानिनः केचिदेकज्ञानिनः, तत्र ये द्विज्ञानिनस्ते नियमादाभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च, ये त्रिज्ञानिनस्ते मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, अथवाऽऽभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्च, अवधिज्ञानमन्तरेणापि मनःपर्यवज्ञानस्य सम्भवात्, **सिद्धप्राभृतादौ** तथाऽनेकशोऽभिधानात्, ये चतुर्ज्ञानिनस्ते आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्च, ये एकज्ञानिनस्ते केवलज्ञानिनः, केवलज्ञानसद्भावे शेषज्ञानापगमात्, "नट्ठंमि उ छाउमत्थिए नाणे"[1] इति वचनात्, ननु केवलज्ञानप्रादुर्भावे कथं शेषज्ञानापगमः?, यावता यानि शेषाणि मत्यादीनि ज्ञानानि स्वस्वावरणक्षयोपशमेन जायन्ते ततो निर्मूलस्वस्वावरणविलये तानि सुतरां भवेयुश्चारित्रपरिणामवत्, उक्तञ्च—"[2]आवरणदेसविगमे जाइं विज्जंति मइसुयाईणि । आवरणसव्वविगमे कह ताइं न होंति जीवस्स? ॥ १ ॥" उच्यते, इह यथा जात्यस्य मरकतादिमणेर्मलोपदिग्धस्य यावन्नाद्यापि समूलमलापगमस्तावद् यथा यथा देशतो मलविलयस्तथा तथा देशतोऽभिव्यक्तिरुपजायते, सा च क्वचित्कदाचित्कथञ्चिद्भवतीत्यनेकप्रकारा, तथाऽऽत्मनोऽपि सकलकालकलाकलापावलम्बिनिखिलपदार्थसार्थपरिच्छेदकरणैकपार-

---

१ नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने. २ आवरणदेशविगमे यदि तानि भवन्ति मतिश्रुतादीनि । सर्वावरणविगमे कथं तानि न भवन्ति जीवस्य? ॥ १ ॥

मार्थिकस्वरूपस्याप्यावरणमलपटलतिरोहितस्य यावन्नाद्यापि निखिलकर्ममलापगमस्तावद् यथा यथा देशतः कर्ममलोच्छेदस्तथा तथा तस्य विज्ञप्तिरुज्जृम्भते, सा च कचित्कदाचित्कथञ्चिदनेकप्रकारा, उक्तञ्च—"मलविद्धमणेर्व्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारतः । कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारतः ॥ १ ॥" सा चानेकप्रकारता मतिश्रुतादिभेदेनावसेया, ततो यथा मरकतादिमणेरशेषमलापगमसम्भवे समस्तास्पष्टदेशव्यक्तिव्यवच्छेदेन परिस्फुटरूपैकाभिव्यक्तिरुपजायते तद्वदात्मनोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रप्रभावतो निःशेषावरणप्रहाणावशेषदेशज्ञानव्यवच्छेदेनैकरूपाऽतिपरिस्फुटा सर्ववस्तुपर्यायप्रपञ्चसाक्षात्कारिणी विज्ञप्तिरुल्लसति, उक्तञ्च—"यथा जात्यस्य रत्नस्य, निःशेषमलहानितः । स्फुटैकरूपाऽभिव्यक्तिर्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मनः ॥ १ ॥" इति, येऽज्ञानिनस्ते द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वा, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च । योगद्वारे मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनोऽयोगिनश्च, तत्रायोगिनः शैलेशीमवस्थां प्रतिपन्नाः, उपयोगद्वारमाहारद्वारं च द्वीन्द्रियवत्, उपपात एतेष्वधःसप्तमनरकादिवर्जेभ्यः, उक्तञ्च—"[1]सत्तममहिनेरइया तेऊ वाऊ अणंतरुव्वट्टा । नवि पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउया सव्वे ॥ १ ॥" इति, स्थितिद्वारे जघन्यतः स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्तायां समवहता अपि म्रियन्ते असमवहता अपि, च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्य सर्वेषु नैरयिकेषु सर्वेषु च तिर्यग्योनिषु सर्वेषु मनुष्येषु सर्वेषु देवेष्वनुत्तरोपपातिकपर्यवसानेषु गच्छन्ति, 'अत्थेगइया सिज्झंति जाव अंतं करेंति' इति, अस्तीति निपातोऽत्र बहुवचनार्थः, सन्त्येकका ये निष्ठितार्थाः भवन्ति यावत्करणात् "बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंती"ति द्रष्टव्यं, तत्राणिमाद्यैश्वर्यास्या तथाविधमनुष्यकृत्यापेक्षया निष्ठितार्था इति, अ-

१ सप्तममहीनैरयिका तेजस्कायिका वायुकायिका अनन्तरोद्वृत्ता । नैव प्राप्नुवन्ति मानुष्यं तथैवासंख्येयवर्षायुष्का. सर्वे ॥ १ ॥

सर्वविदोऽपि कैश्चित्सिद्धा इष्यन्ते ततो मा भूत्तेषु संप्रत्यय इति तदपोहायाह—'बुध्यन्ते' निरावरणत्वात्केवलावबोधेन समस्तं वस्तुजातम्, एते चासिद्धा अपि भवस्थकेवलिन एवंभूता वर्त्तन्ते तत्र मा भूदेतेष्वेव प्रतीतिरित्याह—'मुच्यन्ते' पुण्यापुण्यरूपेण कृच्छ्रेण कर्मणा, एतेऽपि चापरिनिर्वृत्ता एव परैरिष्यन्ते—'मुक्तिपदे प्राप्ता अपि तीर्थनिकारदर्शनादिहागच्छन्ती'ति वचनात्, ततो मा भूत्तद्गोचरा मन्दमतीनां धीरित्याह—'परिनिर्वान्ति' विध्यातसमस्तकर्महुतवहपरमाणवो भवन्तीति, किमुक्तं भवति ?—सर्वदुःखानां शारीरमानसभेदानामन्तं—विनाशं कुर्वन्ति, अत एव गत्यागतिद्वारे चतुरागतिकाः पञ्चगतिकाः, सिद्धगतावपि गमनात्, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणः 'सङ्ख्येयाः' सङ्ख्येयकोटीप्रमाणत्वात् प्रज्ञप्ताः, हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, उपसंहारमाह—'सेत्तं मणुस्सा' ॥ अधुना देवानाह—

से किं तं देवा?, देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया। से किं तं भवणवासी?, २ दसविधा पण्णत्ता, तंजहा—असुरा जाव थणिया, से तं भवणवासी। से किं तं वाणमंतरा?, २ देवभेदो सव्वो भाणियव्वो जाव ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, तओ सरीरगा—वेउव्विए तेयए कम्मए। ओगाहणा दुविधा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागं उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, उत्तरवेउव्विया जहन्नेणं अंगुलसंखेज्जाति० उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं, सरीरगा छण्हं संघयणाणं असंघयणी णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू नेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघायत्ताए परिणमंति, किंसंठिता?, गोयमा! दुविहा प-

पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते णं समचउरंससंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णं नाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, चत्तारि कसाया चत्तारि सण्णा छ लेस्साओ पंच इंदिया पंच समुग्घाता सन्नीवि असन्नीवि इत्थिवेदावि पुरिसवेदावि नो नपुंसगवेदा, पज्जत्ती अपज्जत्तीओ पंच, दिट्ठी तिन्नि तिण्णि दंसणा, णाणीवि अण्णाणीवि, जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी अण्णाणी भयणाए, दुविहे उवओगे तिविहे जोगे आहारो णियमा छद्दिसिं, ओसन्नकारणं पडुच्च वण्णतो हालिद्दसुक्किल्लाइं जाव आहारमाहारेंति, उववातो तिरियमणुस्सेसु, ठिती जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, दुविधावि मरंति, उव्वट्टित्ता नो नेरइएसु गच्छंति तिरियमणुस्सेसु जहासंभवं, नो देवेसु गच्छंति, दुगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, सेत्तं ओराला तसा पाणा ॥ (सू० ४२)

अथ के ते देवाः?, सूरिराह—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो व्यन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, 'एवं भेदो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए' इति, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण भेदो भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां, स चैवम्—" से किं तं भवणवासी?, भवणवासी दसविहा पन्नत्ता " इत्यादिरूपस्तत एव सव्याख्यानः परिभावनीयः, ' ते समासतो दुविहा पण्णत्ता—पज्जत्तगा य

अपज्जत्तगा य' एषामपर्याप्तत्वमुत्पत्तिकाल एव द्रष्टव्यं न त्वपर्याप्तिनामकर्मोदयतः, उक्तञ्च—"नारयदेवा तिरियमणुयगब्भजा जे असंखवासाऊ। एए उ अपज्जत्ता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥" इति, शरीरादिद्वारचिन्तायां शरीरद्वारे त्रीणि शरीराणि वैक्रियं तैजसं कार्मणं च, अवगाहना भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतः सप्तहस्तप्रमाणा, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभागप्रमाणा उत्कर्षतो योजनशतसहस्रं, संहननद्वारे षण्णां संहननानामन्यतमेनापि संहननेनासंहननिनः, कुतः ? इत्याह—'नेवट्ठी' इत्यादि, यतो नैव तेषां देवानां शरीरेष्वस्थीनि नैव शिरा नापि स्नायूनि संहननं चास्थिनिचयात्मकमतोऽस्थ्यादीनामभावात्संहननाभावः, किन्तु 'जे पोग्गला' इत्यादि, ये पुद्गला इष्टाः—मनस इच्छामापन्नाः, तत्र किञ्चिदकान्तमपि केषाञ्चिदिष्टं भवति तत आह—'कान्ताः' कमनीयाः शुभवर्णोपेतत्वात्, यावत्करणात् 'पिया मणुन्ना मणामा' इति द्रष्टव्यं, तत्र यत एव कान्ता अत एव प्रियाः—सदैवात्मनि प्रियबुद्धिमुत्पादयन्ति, तथा 'शुभाः' शुभरसगन्धस्पर्शात्मकत्वात् 'मनोज्ञाः' विपाकेऽपि सुखजनकतया मनःप्रह्लादहेतुत्वात् 'मनआपाः' सदैव भोज्यतया जन्तूनां मनांसि आप्नुवन्ति, इत्थम्भूताः पुद्गलास्तेषां शरीरसङ्घाताय परिणमन्ति । संस्थानद्वारे भवधारणीया तनुः सर्वेषामपि समचतुरस्रसंस्थाना उत्तरवैक्रिया नानासंस्थानसंस्थिता, तस्या इच्छावशतः प्रादुर्भावात्, कषायाश्चत्वारः, सञ्ज्ञाश्चतस्रो, लेश्याः षड्, इन्द्रियाणि पञ्च, समुद्घाताः पञ्च, वेदनाकषायमारणान्तिकवैक्रियतैजससमुद्घातसम्भवात् । सञ्ज्ञिद्वारे सञ्ज्ञिनोऽपि असञ्ज्ञिनोऽपि, ते च नैरयिकवद्भावनीयाः, वेदद्वारे स्त्रीवेदा अपि पुरुषवेदा अपि नो नपुंसकवेदाः, पर्याप्तिद्वारं दृष्टिद्वारं दर्शनद्वारं च नैरयिकवत् । ज्ञानद्वारे ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि चेति विकल्पोऽसञ्ज्ञिमध्यः, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञा-

१ नारका देवाः तिर्यङ्मनुजा गर्भव्युत्क्रान्ता येऽसङ्ख्येयवर्षायुष्काः । एते तु अपर्याप्ता उपपात एव बोद्धव्याः ॥ १ ॥

निनः, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, तत्र येऽज्ञानिनस्ते सन्त्येकका ये द्व्यज्ञानिनः सन्त्येकका ये त्र्यज्ञानिनः, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते नियमान्मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते नियमान्मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, अयं च द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वेति विकल्पः असञ्ज्ञिमध्याद् ये उत्पद्यन्ते तान् प्रति द्रष्टव्यः, स च नैरयिकवद्भावनीयः । उपयोगाहारद्वाराणि नैरयिकवत्, उपपातः सञ्ज्ञ्यसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गर्भजमनुष्येभ्यो न शेषेभ्यः । स्थितिर्जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, समुद्घातमधिकृत्य मरणचिन्तायां समवहता अपि म्रियन्तेऽसमवहता अपि । च्यवनद्वारेऽनन्तरमुद्वृत्य पृथिव्यम्बुवनस्पतिकायिकगर्भव्युत्क्रान्तिकसङ्ख्यातवर्षायुष्कतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु गच्छन्ति न शेषजीवस्थानेषु, अत एव गत्यागतिद्वारे द्व्यागतिका द्विगतिकाः, तिर्यग्मनुष्यगत्यपेक्षया, 'परीत्ताः' प्रत्येकशरीरिणोऽसङ्ख्येयाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !, उपसंहारमाह—'सेत्तं देवा,' सर्वोपसंहारमाह—'सेत्तं पंचेंदिया, सेत्तं ओराला तसा पाणा' सुगमम् ॥ सम्प्रति स्थावरभावस्य त्रसभावस्य च भवस्थितिकालमानप्रतिपादनार्थमाह—

थावरस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ॥ तसस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । थावरे णं भंते ! थावरत्ति कालतो केवचिरं होति ?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणिओ (अवसप्पिणीओ) कालतो खेत्ततो अणंता लोया असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असं-

खेज्जतिभागो ॥ तसे णं भंते ! तसत्ति कालतो केवचिरं होति ?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ (अवसप्पिणीओ) कालतो खेत्ततो असंखेज्जा लोगा ॥ थावरस्स णं भंते ! केवतिकालं अंतरं होति ?, जहा तससंचिट्ठणाए ॥ तसस्स णं भंते ! केवतिकालं अंतरं होति ?, अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सतिकाले ॥ एएसि णं भंते ! तसाणं थावराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा तसा थावरा अणंतगुणा, सेतं दुविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ॥ दुविहपडिवत्ती समत्ता (सू०४३)

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, एतच्च पृथिवीकायमधिकृत्यावसातव्यम्, अन्यस्य स्थावरकायस्योत्कर्षत एतावत्या भवस्थितेरभावात् ॥ त्रसकायस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, एतच्च देवनारकापेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यस्य त्रसकायस्योत्कर्षत एतावत्प्रमाणाया भवस्थितेरसम्भवात् ॥ सम्प्रत्येतयोरेव कायस्थितिकालमानमाह—स्थावरे 'णम्' इति वाक्यालङ्कारे 'स्थावर इति' स्थावर इत्यनेन रूपेण स्थावरत्वेनेति भावः, कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेवानन्तं कालं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः, किमुक्तं भवति ?—अनन्तलोकेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तेषां प्रतिसमयमेकैकापहारेण यावत्योऽनन्ता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यो भवन्ति तावत्य इति, एतासामेव पुद्गलपरावर्त्ततो मानमाह—असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, असङ्ख्येयेषु पुद्गलपरावर्तेषु क्षेत्रत इति पदसांनिध्यात्क्षेत्रपुद्गलपरा-

वर्त्तेषु यावत्यः संभवन्ति अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यस्तावत्य इति भावः, इहासङ्ख्येयमसङ्ख्येयभेदात्मकमतः पुद्गलपरावर्त्तगतमसङ्ख्येयत्वं निर्द्धारयति—'ते ण'मित्यादि, ते णमिति वाक्यालङ्कारे पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, आवलिकाया असङ्ख्येयतमे भागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणा इत्यर्थः, एतच्च वनस्पतिकायस्थितिमङ्गीकृत्य वेदितव्यं, न पृथिव्यम्बुकायस्थितिव्यपेक्षया, तयोः कायस्थितेरुत्कर्षतोऽप्यसङ्ख्येयोत्सर्पिणीप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"पुढविक्काइए णं भंते! पुढविक्काइयत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणं असंखिज्जं कालं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणिअवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा, एवं आउक्काएवि" इति, या तु वनस्पतिकायस्थितिः सा यथोक्तप्रमाणा तत्रोक्ता "वणस्सइकाइए णं भंते! वणस्सइकायत्ति कालओ कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खित्तओ अणंता लोगा असंखिज्जा पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखिज्जइभागो" इति । एषोऽपि च वनस्पतिकायस्थितिकालः सांव्यवहारिकजीवानधिकृत्य प्रोच्यते, असांव्यवहारिकजीवानां तु कायस्थितिरनादिरवसेया, तथा चोक्तं विशेषणवत्याम्—"अत्थि अणंता जीवा जेहिं न पत्तो तसाइपरिणामो । तेवि अणंताणंता निगोयवासं अणुवसंति ॥ १ ॥" साऽपि तेषामसांव्यवहारिकजीवानामनादिः कायस्थितिः केषाञ्चिदनादिरपर्यवसाना, ये न जातुचिदसांव्यवहारिकराशेरुद्धृत्य सांव्यवहारिकराशौ निपतिष्यन्ति, केषाञ्चिदनादिः सपर्यवसाना, ये असांव्यवहारिकराशेरुद्धृत्य सांव्यवहारिकराशौ निपतिष्यन्ति । अथ किमसांव्यवहारिकराशेर्विनिर्गत्य सांव्यवहारिकराशावागच्छन्ति? येनैवं प्ररूपणा क्रियते, उच्यते, आगच्छन्ति, कथमवसीयते? इति चेदुच्यते—पूर्वाचार्योपदेशात्,

१ सन्त्यनन्ता जीवा यैर्न प्राप्तस्त्रसादिपरिणाम. । तेऽप्यनन्तानन्ता निगोदवासमनुवसन्ति ॥ १ ॥

तथा चाह दुःषमान्धकारनिमग्नजनप्रवचनप्रदीपो भगवान् जिनभद्रगणिः क्षमाश्रमणो विशेषणवत्याम्—"सिंज्झंति जत्तिया किर इह संववहारजीवरासिमज्झाओ । इंति अणाइवणस्सइरासीओ तत्तिया तंमि ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन । सम्प्रति त्रसकायस्य कायस्थितिमानमाह—'तसे णं भंते' इत्यादि, तसे'ण'मिति पूर्ववत् 'त्रस इति' त्रस इत्यनेन पर्यायेण कालतः 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालम्, एनमेवासङ्ख्येयं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—'असंखिज्जाओ' इत्यादि, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोका असङ्ख्येयेषु लोकेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तेषां प्रतिसमयमेकैकापहारे यावत्योऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो भवन्ति तावत्य इति भावः, इयं चैतावती कायस्थितिर्गतित्रसं तेजस्कायिकं वायुकायिकं चाधिकृत्यावसेया न तु लब्धित्रसं, लब्धित्रसस्य कायस्थितेरुत्कर्षतोऽपि कतिपयवर्षाधिकसागरोपमसहस्रद्वयप्रमाणत्वात्, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"तसकाए णं भंते ! तसकायत्ति कालतो कियच्चिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं" तथा "तेउक्काइए णं भंते ! तेउक्काइएत्ति कालतो केवच्चिरं होति ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, एवं वाउक्काइयावि" इति ॥ सम्प्रति स्थावरत्वस्यान्तरं विचिन्तयिषुराह—'थावरस्स णं भंते ! अंतर'मित्यादि सुगमं नवरमसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, इत्येतावत्प्रमाणमन्तरं तेजस्कायिकवायुकायिकमध्यगमनेनावसातव्यम्, अन्यत्र गतावेतावत्प्रमाणस्यान्तरस्यासम्भवात् ॥ 'तसस्स णं भंते ! अंतर'मित्यादि सुगमं नवरम् 'उक्कोसेणं वणस्सइकालो' इति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालो वक्तव्यः, स चै-

१ सिध्यन्ति यावन्तः किलेह सव्यवहारराशिमध्यात् । आयान्ति अनादिवनस्पतिराशेः तावन्तस्तस्मिन् ॥ १ ॥

वम्—"उक्कोसेणं अणंतमणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्ग-
लपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इति, एतावत्प्रमाणं चान्तरं वनस्पतिकायमध्यगमनेन प्रतिपत्तव्यम्, अन्यत्र गतावेतावतो-
ऽन्तरस्यालभ्यमानत्वात् ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वमाह—एतेषां भदन्त! जीवानां त्रसानां स्थावराणां च मध्ये कतरे कतमेभ्योऽल्पा वा बहवो
वा कतरे कतरैस्तुल्या वा?, अत्र सूत्रे विभक्तिपरिणामेन तृतीया व्याख्येया, तथा कतरे कतरेभ्यो (ऽल्पा बहुकास्तुल्या) विशेषाधिका
वा?, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकास्त्रसाः, असङ्ख्यातत्वमात्रप्रमाणत्वात्, स्थावरा अनन्तगुणाः, अजघन्योत्कृष्टानन्तानन्तसङ्ख्यापरि-
माणत्वात्, उपसंहारमाह—'सेत्तं दुविहा संसारसमावन्ना जीवा' इति ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाजीवाभिगमटीकायां
द्विविधा प्रतिपत्तिः समाप्ता ॥

अथ त्रिविधाख्या द्वितीया प्रतिपत्तिः

तदेवमुक्ता द्विविधा प्रतिपत्तिः, सम्प्रति त्रिविधा प्रतिपत्तिरारभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—इत्थि पुरिसा णपुंसका ॥ (सू० ४४) । से किं तं इत्थीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियाओ मणुस्सित्थीओ देवित्थीओ । से किं तं तिरिक्खजोणिणित्थीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—जलयरीओ थलयरीओ, खहयरीओ । से किं तं जलयरीओ ?, २ पंचविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—मच्छीओ जाव सुंसुमारीओ । से किं तं थलयरीओ ?, २ दुविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पदीओ य परिसप्पीओ य । से किं तं चउप्पदीओ ?, २ चउव्विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरीओ जाव सणप्फईओ । से किं तं परिसप्पीओ ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरपरिसप्पीओ य भुजपरिसप्पीओ य । से किं तं उरगपरिसप्पीओ ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—अहीओ अहिगरीओ महोरगाओ, सेत्तं उरपरिसप्पीओ । से किं तं भुयपरिसप्पीओ ?, २ अणेगविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—सेरडीओ सेरंधीओ गोहीओ णउलीओ सेधाओ

सण्णाओ सरडीओ सेरंधीओ भावाओ खाराओ पञ्चणाइयाओ चउप्पइयाओ मूसियाओ मुगुसिओ घरोलियाओ गोव्हियाओ, जोव्हियाओ थिरचिरालियाओ, सेत्तं भुयगपरिसप्पीओ। से किं तं खहयरीओ?, २ चउव्विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चम्मपक्खीओ, जाव सेत्तं खहयरीओ, सेत्तं तिरिक्खजोणिओ॥ से किं तं मणुस्सिओ?, २ तिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमियाओ अकम्मभूमियाओ अंतरदीवियाओ। से किं तं अंतरदीवियाओ ?, २ अट्ठावीसतिविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—एगूरूइयाओ आभासियाओ जाव सुद्धदंतीओ, सेत्तं अंतरदी० ॥ से किं तं अकम्मभूमियाओ ?, २ तीसविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—पंचसु हेमवएसु पंचसु एरण्णवएसु पंचसु हरिवंसेसु पंचसु रम्मगवासेसु पंचसु देवकुरासु पंचसु उत्तरकुरासु, सेत्तं अकम्मा०। से किं तं कम्मभूमिया ?, २ पण्णरसविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पंचसु भरहेसु पंचसु एरवएसु पंचसु महाविदेहेसु, सेत्तं कम्मभूमगमणुस्सीओ, सेत्तं मणुस्सित्थीओ ॥ से किं तं देवित्थियाओ ?, २ चउव्विधा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासिदेवित्थियाओ वाणमंतरदेवित्थियाओ जोतिसियदेवित्थियाओ वेमाणियदेवित्थियाओ । से किं तं भवणवासिदेवित्थियाओ ?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—असुरकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ जाव थणितकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ, से तं भवणवासिदेवित्थियाओ। से किं तं वाणमंतरदेवित्थियाओ ?, २ अट्ठ-

विधाओ पण्णत्ता, तंजहा—पिसायवाणमंतरदेवित्थियाओ जाव से तं वाणमंतरदेवित्थियाओ। से किं तं जोतिसियदेवित्थियाओ ?, २ पंचविधाओ पण्णत्ता, तंजहा—चंदविमाणजोतिसियदेवित्थियाओ सूर०गह०नक्खत्त०ताराविमाणजोतिसियदेवित्थियाओ, से त्तं जोतिसियाओ। से किं तं वेमाणियदेवित्थियाओ ?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ ईसाणकप्पवेमाणियदेवित्थिगाओ, सेत्तं वेमाणित्थीओ ॥ (सू० ४५)

'तत्र' तेषु नवसु प्रतिपत्तिषु मध्ये ये आचार्या एवमाख्यातवन्तः—त्रिविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमाख्यातवन्तः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकानि, इह स्त्र्यादिवेदोदयाद् योन्यादिसङ्गताः स्त्र्यादयो गृह्यन्ते, तथा चोक्तम्—"योनिर्मृदुत्वमस्थैर्यं, मुग्धताऽऽबलता स्तनौ। पुंस्कामितेति लिङ्गानि, सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ॥ १ ॥ मेहनं खरता दार्ढ्यं, शौण्डीर्यं श्मश्रु धृष्टता। स्त्रीकामितेति लिङ्गानि, सप्त पुंस्त्वे प्रचक्षते ॥ २ ॥ स्तनादिश्मश्रुकेशादिभावाभावसमन्वितम्। नपुंसकं बुधाः प्राहुर्मोहानलसुदीपितम् ॥ ३ ॥" तत्र 'यथोद्देशं निर्देश' इति स्त्रीवक्तव्यतामाह—'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ताः स्त्रियः ?, सूरिराह—स्त्रियस्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तिर्यग्योनिस्त्रियो मनुष्यस्त्रियो देवस्त्रियश्च। 'से किं त'मित्यादि, तिर्यग्योनिस्त्रियस्त्रिविधाः, तद्यथा—जलचर्यः स्थलचर्यः खचर्यश्च। 'से किं त'मित्यादि। मनुष्यस्त्रियोऽपि त्रिविधास्तद्यथा—कर्मभूमिका अकर्मभूमिका अन्तरद्वीपिकाश्च। 'से किं त'मित्यादि, देवस्त्रियश्चतुर्विधास्तद्यथा—भवनवासिन्यो व्यन्तर्यो ज्योतिष्क्यो वैमानिक्यश्च ॥ सम्प्रति स्त्रिया भवस्थितिमानप्रतिपादनार्थमाह—

इत्थी णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा ! एगेणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं

उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं एक्केणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं एगेणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं एगेणं आदेसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पन्नासं पलिओवमाइं ॥ (सू० ४६)

'इत्थी णं भंते' इत्यादि, स्त्रिया भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! 'एकेनादेशेन' आदेशशब्द इह प्रकारवाची "आदेसो त्ति पगारो" इति वचनात्, एकेन प्रकारेण, एकं प्रकारमधिकृत्येति भावार्थः, जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, एतत्तिर्यग्मनुष्यस्त्र्यपेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यत्रैतावतो जघन्यस्यासम्भवात्, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतदीशानकल्पापरिगृहीतदेव्यपेक्षम्। तथैकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम् एतत्तथैवोत्कर्षतो नव पल्योपमानि, एतदीशानकल्प एव परिगृहीतदेव्यपेक्षम् । तथा एकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, एतत्प्राग्वत्, उत्कर्षतः सप्त पल्योपमानि, एतत्सौधर्मकल्पे परिगृहीतदेवीरधिकृत्य । तथा एकेनादेशेन जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पञ्चाशत्पल्योपमानि, एतत्सौधर्मकल्प एवापरिगृहीतदेव्यपेक्षम्, उक्तञ्च सङ्ग्रहण्याम्—"[1]सपरिग्गहेयराणं सोहम्मीसाण पलियसाहीयं । उक्कोस सत्त पन्ना नव पणपन्ना य देवीणं ॥ १ ॥" तदेवं सामान्यतः स्त्रीणां जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिमानमुक्तं, सम्प्रति तिर्यक्स्त्र्यादिभेदानधिकृत्याह—

तिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो० जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। जलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं

१ परिगृहीतेतराणा सौधर्मेशानाना पल्योपम साधिकम् । उत्कृष्टत सप्त पञ्चाशत् नव पञ्चपञ्चाशत् पल्योपमानि देवीनाम् ॥ १ ॥

अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। चउप्पदथलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो० जहा तिरिक्खजोणित्थीओ। उरगपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं पुव्वकोडी। एवं भुयपरिसप्प०। एवं खहयरतिरिक्खित्थीणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो॥ मणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमयमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खित्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। भरहेरवयकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतो० उक्कोसेणं पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागऊणगं उक्को-

सेणं तिन्नि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। हेमवएरण्णवए जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं पलिओवमं संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। हरिवासरम्मयवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयाइं उक्को० दो पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयाइं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं, संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतिकालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणयं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी॥ देवित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं। भवणवासिदेवित्थीणं भंते!, जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं। एवं असुरकु-

मारभवणवासिदेवित्थियाए, नागकुमारभवणवासिदेवित्थियाएवि जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं देसूणाइं पलिओवमाइं, एवं सेसाणवि जाव थणियकुमाराणं। वाणमंतरीणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसं अद्धपलिओवमं। जोइसियदेवित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अट्ठभागं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, चंदविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं तं चेव, सूरविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिमब्भहियं, गहविमाणजोतिसियदेवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, णक्खत्तविमाणजोतिसियदेवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं साइरेगं, ताराविमाणजोतिसियदेवित्थियाए जहन्नेणं अट्ठभागं पलिओवमं उक्को० सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं। वेमाणियदेवित्थियाए जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं, सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती प०?, जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं, ईसाणदेवित्थीणं जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं ॥ (सू ४७)

'तिरिक्खजोणिइत्थियाणं भंते!' इत्यादि, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, देवकुर्वादिषु चतुष्पदस्त्रीरधिकृत्य, जलचरस्त्री-

णामुत्कर्षतः पूर्वकोटी, स्थलचरस्त्रीणां यथा औघिकी, त्रीणि पल्योपमानीत्यर्थः । खचरीणामुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, मनुष्यस्त्रीषु क्षेत्रं प्रतीत्य—क्षेत्राश्रयणेनेतिभावः, जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देवकुर्वादिषु भरतादिष्वपि एकान्तसुषमादिकाले त्रीणि पल्योपमानि, 'धर्मचरणं' चरणधर्मसेवनं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, एतच्च तद्भवस्थिताया एव परिणामवशतः प्रतिपातापेक्षया द्रष्टव्यं, चरणधर्मस्य मरणमन्तरेण सर्वस्तोकतयाऽप्येतावन्मात्रकालावस्थानभावात्, तथाहि—काचित्स्त्री तथाविधक्षयोपशमभावतः सर्वविरतिं प्रतिपद्य तावन्मात्रक्षयोपशमभावादन्तर्मुहूर्त्तानन्तरं भूयोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टित्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्यते इति, अथवा धर्मचरणमिह देशचरणं प्रतिपत्तव्यं न सर्वचरणं, देशचरणप्रतिपत्तिस्तु जघन्यतोऽप्यान्तर्मुहूर्तिकी, तस्या भङ्गबहुलत्वात्, अथोभयचरणसम्भवे किमर्थमिह देशचरणं परिगृह्यते?, उच्यते, देशचरणपूर्वकं प्रायः सर्वचरणमिति ख्यापनार्थम्, अत एवोक्तं वृद्धैः—"सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होइ। चरणोवसमखयाणं सागरसंखंतरा होंति ॥ १ ॥" एवं "अप्परिवडिए" इत्यादि, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अष्टसांवत्सरिक्याश्चरणपरिणामेनोर्ध्वं चरमान्तर्मुहूर्तं यावदप्रतिपतितपरिणामभावात्, पूर्वपरिमाणं चेदम्—"पुव्वस्स उ परिमाणं सयरिं खलु होंति कोडिलक्खाओ । छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासकोडीणं ॥ १ ॥ (७०५६००००००००००) सम्प्रति कर्मभूमिकादिविशेषस्त्रीणां वक्तव्यतामाह—अक्षरगमनिका सुगमा, भावार्थस्त्वयम्—कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीणां क्षेत्रं कर्मभूमिकासामान्यमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च भरतैरावतेषु सुषमसुषमालक्षणेऽरके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना चात्र प्रागिव द्रष्टव्या, एवमुत्तरसूत्रद्वयेऽपि ॥ अत्रैव विशे-

१ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेन श्रावको भवति । चारित्रमोहोपशमक्षयाणां सागराः संख्याता अन्तरं भवति ॥ १ ॥

षचिन्तां चिकीर्षुराह—सुगमं, नवरं भरतैरावतेषु त्रीणि पल्योपमानि सुषमसुषमायां, पूर्वविदेहेषु क्षेत्रतः पूर्वकोटी, तत ऊर्ध्वं तत्र तथा-
क्षेत्रस्वाभाव्यादायुषोऽसम्भवात्, अकम्मभूमिगेत्यादि, जन्म प्रतीत्येति—अकर्मभूमिषूत्पत्तिमाश्रित्य जघन्यतो देशोनं पल्योपमं, तच्चा-
ष्टभागाद्यूनमपि देशोनं भवति ततो विशेषस्थापनायाह—पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागेनोनं, एतच्च हैमवतहैरण्यवतक्षेत्रापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्र
जघन्यतः स्थितेरेतावत्प्रमाणायाः सम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च देवकुरूत्तरकुर्वपेक्षया, 'संहरणं पडुच्चे'त्यादि, संह-
रणं नाम कर्मभूमिजायाः स्त्रियोऽकर्मभूमिषु नयनं 'तत्प्रतीत्य' तदाश्रित्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, इयमत्र भावना
—इह कर्मभूमिकाऽप्यकर्मभूमिषु संहृता अकर्मभूमिकेति व्यवह्रियते, तत्क्षेत्रसम्बन्धभावात्, यथा लोके कश्चिन्मगधादिदेशात्सुरा-
ष्ट्रान् प्रति प्रस्थितो गिरिनगरेषु निवासं कल्पयितुकामः सुराष्ट्रपर्यन्तग्रामप्राप्तः सन् समुत्पद्यमानेषु तथाविधेषु प्रयोजनेषु सौराष्ट्र इति
व्यवह्रियते, तद्वदधिकृताऽपि, तत्र च संहृता सती काचिदन्तर्मुहूर्त्तं जीवति ततोऽपि वा भूयोऽपि संह्रियते काचित्पूर्वकोट्यायुष्का
यावज्जीवमपि तत्रावतिष्ठते ततो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुक्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति, आह—भरतैरावतान्यपि कर्मभूमौ वर्त्तन्ते तत्र
चैकान्तसुषमादौ त्रीण्यपि पल्योपमानि स्थितिरस्या भवति संहरणं च संभवति तत्कथं देशोना पूर्वकोटी भण्यते? इति, अत्रोच्यते,
कर्मकालविवक्षयाऽभिधानात्, तस्य चैतावन्मात्रत्वादिति। हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीणां जन्मतो जघन्येन देशोनं पल्योपमं
पल्योपमासङ्ख्येयभागेन न्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना
प्रागिव॥ एवं 'हरिवासरम्मए' इत्याद्यपि सूत्रत्रयं भावनीयं, नवरं हरिवर्षरम्यकयोर्जन्मतो जघन्येन द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येय-
भागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे। देवकुरूत्तरकुरुषु जन्मतो जघन्येन त्रीणि पल्योपमानि पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनानि उ-

त्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, अन्तरद्वीपेपु जन्मतो जघन्येन देशोनः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, कियता देशेनोनः पल्योपमासङ्ख्येयभाग ? इति चेद्त आह—पल्योपमासङ्ख्येयभागेनोनः, किमुक्तं भवति ?—उत्कृष्टपल्योपमासङ्ख्येयभागप्रमाणादायुपो जघन्यमायुः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं, नवरमूनताहेतुः पल्योपमासङ्ख्येयो भागोऽतीव स्तोको द्रष्टव्यः, संहरणमधिकृत्य सर्वत्रापि जघन्यत उत्कर्षतश्च तावदेव प्रमाणम् ॥ सम्प्रति देवस्त्रीवक्तव्यतामाह—अक्षरगमनिका सुगमा तात्पर्यमात्रमुच्यते—देवस्त्रीणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, तानि च भवनपतिव्यन्तरीरधिकृत्य वेदितव्यानि, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतानि चेशानदेवीरधिकृत्य प्रतिपत्तव्यानि। विशेपचिन्तायां भवनवासिदेव्यः सामान्यतो दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षतोऽर्द्धपञ्चमानि—सार्द्धानि चत्वारि पल्योपमानि, एतानि च भवनवासिविशेषासुरकुमारदेवीरधिकृत्य, अत्रापि विशेपचिन्तायामसुरकुमारदेवीनां सामान्यतो जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतोऽर्द्धपञ्चमानि पल्योपमानि, नागकुमारभवनवासिदेवस्त्रीणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोनं पल्योपमम्, एवं शेषाणां यावत्स्तनितकुमारीणां, व्यन्तरीणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतोऽर्द्धं पल्योपमं, ज्योतिषस्त्रीणां जघन्येनाष्टभागपल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धं पल्योपमं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरभ्यधिकम्, अत्रापि विशेपचिन्तायां चन्द्रविमानवासिज्योतिषस्त्रीणां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरधिकं, सूर्यविमानवासिज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं वर्षशतपञ्चकाभ्यधिकं, ग्रहविमानवासिज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्भागमात्रं पल्योपमं उत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं, नक्षत्रविमानज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतश्चतुर्थभागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतः सातिरेकं चतुर्थभागमात्रं पल्योपमं, ताराविमानज्योतिष्कदेवीनां जघन्यतोऽष्टभागमात्रं पल्योपममुत्कर्षतस्तदेवाष्टभागमात्रं पल्योपमं सातिरेकं। सामान्यतो वैमानिकदेवस्त्रीणां जघन्यतः

पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, विशेषचिन्तायां सौधर्मकल्पवैमानिकदेवीनां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः सप्त पल्योपमानि, अत्रापीदं स्थितिपरिमाणं परिगृहीतदेवीनामवगन्तव्यं, अपरिगृहीतदेवीनां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चाशत्पल्योपमानि, ईशानकल्पवैमानिकदेवीनां जघन्यतः सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतो नव पल्योपमानि, अत्रापीदं स्थितिपरिमाणं परिगृहीतदेवीनामवगन्तव्यं, अपरिगृहीतदेवीनां जघन्यतः सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतच्च सूत्रं समस्तमपि क्वापि साक्षाद् दृश्यते क्वचिच्चैवमतिदेशः—"एवं देवीणं ठिई भाणियव्वा जहा पण्णवणाए जाव ईसाणदेवीण"मिति ॥ सम्प्रति स्त्री नैरन्तर्येण स्त्रीत्वममुञ्चन्ती कियन्तं कालमवतिष्ठते? इति जिज्ञासायां सूत्रकृत्तत्कालापेक्षया ये पञ्चादेशाः प्रवर्त्तन्ते तानुपदर्शयितुमाह—

इत्थी णं भंते! इत्थित्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं। एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियाइं। एक्केणादेसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउद्दस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एक्केणादेसेणं जह० एक्कं समयं उक्को० पलिओवमसयं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं। एक्केणादेसेणं जहण्णं एक्कं समयं उक्को० पलिओवमपुहुत्तं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियं॥ तिरिक्खजोणित्थी णं भंते! तिरिक्खजोणित्थित्ति कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियाइं, जलयरीए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। चउप्पदथलयरतिरिक्खजो० जहा ओहिता ति-

रिक्ख०, उरगपरिसप्पीभुयगपरिसप्पित्थी णं जधा जलयरीणं, खहयरि० जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं ॥ मणुस्सित्थी णं भंते! कालओ केवच्चिरं होति?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, एवं कम्मभूमियावि भरहेरवयावि, णवरं खेत्तं पडुच्च जह० अंतो उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडीअब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। पुव्वविदेहअवरविदेहित्थी णं खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडीपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी ॥ अकम्मभूमिकमणुस्सित्थी णं भंते! अकम्मभूम० कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणं उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं। हिमवतेरण्णवते अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! हेम० कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेणं ऊणगं, उक्को० पलिओवमं। साहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० पलिओवमं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं। हरिवासरम्मयअकम्मभूमगमणुस्सित्थी णं भंते!, जम्मणं पडुच्च जह०

देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगाइं, उक्को० दो पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० दो पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइं। उत्तरकुरुदेवकुरूणं०, जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिन्नि पलिओवमाइं पलितोवमस्स असंखेज्जभागेणं ऊणगाइं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं। अंतरदीवाकम्मभूमकमणुस्सित्थी?, २ जम्मणं पडुच्च जह० देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणं उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं। साहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं ॥ देवित्थी णं भंते! देवित्थित्ति काल०, जच्चेव संचिट्ठणा ॥ (सू० ४८)

एकेनादेशेन जघन्यत एकं समयं यावदवस्थानमुत्कर्षतो दशोत्तरं पल्योपमशतं पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकम्, एकसमयं कथम्? इति चेदुच्यते—काचिद् युवतिरुपशमश्रेण्यां वेदत्रयोपशमनादवेदकत्वमनुभूय ततः श्रेणेः प्रतिपतन्ती स्त्रीवेदोदयमेकं समयमनुभवति, ततो द्वितीये समये कालं कृत्वा देवेषूत्पद्यते तत्र च तस्याः पुंस्त्वमेव न स्त्रीत्वं, तत एवं जघन्यतः स्त्रीत्वं समयमात्रं, सम्प्रति पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकदशोत्तरपल्योपमशतभावना क्रियते—कश्चिज्जन्तुर्नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु मध्ये पञ्चषान् भवाननुभूय ईशाने कल्पे पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोत्पद्यते ततः स्वायुः-

क्षये तस्मात्स्थानाद् भूयोऽपि नारीषु तिरश्चीषु वा मध्ये पूर्वकोट्यायुष्षुरुत्पन्नस्ततो भूयो द्वितीयं वारमीशानदेवलोके पञ्चपञ्चाशतपल्यो-
पमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोपजातस्ततः परमवश्यं वेदान्तरमवगच्छति, एवं दशोत्तरं पल्योपमशतं पूर्वको-
टिपृथक्त्वाभ्यधिकं प्राप्यते, अत्र पर आह—ननु यदि देवकुरूत्तरकुर्वादिषु पल्योपमत्रयस्थितिकासु स्त्रीषु मध्ये समुत्पद्यते ततोऽधि-
काऽपि स्त्रीवेदस्यावस्थितिर्लभ्यते, ततः किमित्येतावदेवोपदिष्टा?, तदयुक्तम्, अभिप्रायापरिज्ञानात्, तथाहि—न तावद्देवीभ्यश्च्युत्वाऽसङ्ख्ये-
यवर्षायुष्कासु स्त्रीषु मध्ये स्त्रीत्वेनोत्पद्यते, देवयोनेश्च्युतानामसङ्ख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये उत्पादप्रतिषेधात्, नाप्यसङ्ख्येयवर्षायुष्का सती
उत्कृष्टायुष्कासु देवीषु जायते, यत उक्तं प्रज्ञापनामूलटीकायाम्—"जतो असंखेज्जवासाउया उक्कोसियं ठिइं न पावेइ" इति, ततो
यथोक्तप्रमाणैव स्त्रीवेदस्योत्कृष्टाऽवस्थितिरवाप्यते । द्वितीयेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कृष्टतोऽष्टादश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वा-
भ्यधिकानि, तत्र समयभावना सर्वत्रापि प्राग्वत्, अष्टादश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि एवं—नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्व-
कोटीप्रमाणायुष्कासु मध्ये कश्चिज्जन्तुः पञ्चषान् भवाननुभूय पूर्वप्रकारेणेशानदेवलोके वारद्वयमुत्कृष्टस्थितिकासु देवीषु मध्ये समुत्प-
द्यमानो नियमतः परिगृहीतास्वेवोत्पद्यते नापरिगृहीतासु, तत एवं द्वितीयादेशवादिमतेन स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानमष्टादश पल्योपमानि
पूर्वकोटिपृथक्त्वं च । तृतीयेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतश्चतुर्दश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि चैवं—पूर्व-
प्रकारेण सौधर्मदेवलोके परिगृहीतदेवीषु सप्तपल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कासु मध्ये वारद्वयं समुत्पद्यते तत्र(त) एवं तृतीयादेशवादिमतेन
स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानं चतुर्दश पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वं च । चतुर्थेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः पल्योपमशतं पूर्वको-
टिपृथक्त्वाभ्यधिकं, कथम्? इति चेदुच्यते, नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु पञ्चषान् भवाननुभूय पूर्वप्रकारेण सौधर्मदेवलोके

पञ्चाशत्पल्योपमप्रमाणोत्कृष्टायुष्कास्वपरिगृहीतदेवीषु मध्ये देवीत्वेनोत्पद्यते, तत एवं चतुर्थादेशवादिमतेन पल्योपमशतं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं भवति । पञ्चमेनादेशेन जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः पल्योपमपृथक्त्वं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं, तथैव—नारीषु तिरश्चीषु वा पूर्वकोट्यायुष्कासु मध्ये सप्त भवाननुभूयाष्टमभवे देवकुर्वादिषु त्रिपल्योपमस्थितिकासु स्त्रीषु मध्ये स्त्रीत्वेन समुत्पद्यते, ततो मृत्वा सौधर्मदेवलोके जघन्यस्थितिकासु देवीषु मध्ये देवीत्वेनोपजायते, तदनन्तरं चावश्यं वेदान्तरमधिगच्छति, ततः पञ्चमादेशवादिमतेन स्त्रीवेदस्यावस्थानं पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकं पल्योपमपृथक्त्वं, ते ह्येवमाहुर्नानाभवप्रमाणद्वारे—यदि स्त्रीवेदस्योत्कृष्टमवस्थानं चिन्त्यते तत इत्थमेतावदेव लभ्यते, नाधिकमन्यथा चेति । अमीषां च पञ्चानामादेशानामन्यतमादेशसमीचीनतानिर्णयोऽतिशयज्ञानिभिः सर्वोत्कृष्टश्रुतलब्धिसंपन्नैर्वा कर्तुं शक्यते, ते च सूत्रकृत्प्रतिपत्तिकाले नासीरन्निति सूत्रकृन्न निर्णयं कृतवानिति । तदेवं सामान्यतः स्त्री स्त्रीत्वं नैरन्तर्येणामुञ्चन्ती यावन्तं कालमवतिष्ठते तावत्कालप्रमाणमुक्तम् ॥ इदानीं तिर्यक्स्त्रियास्तिर्यक्स्त्रीत्वमजहत्याः कालमानं विचिन्तयिषुरिदमाह—'तिरिक्खजोणिइत्थिए णं भंते !, इत्यादि, तिर्यक्स्त्री णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! तिर्यक्स्त्रीति कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्रान्तर्मुहूर्त्तं कस्याश्चित्तावत्प्रमाणायुष्कतया तदनन्तरं मृत्वा वेदान्तराधिगमाद्विलक्षणमनुष्यभवान्तराधिगमाद्वा, कथमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकाटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि ? इति चेदुच्यते—इह नराणां तिरश्चां चोत्कर्षतोऽष्टौ भवाः प्राप्यन्ते नाधिकाः, "नरतिरियाणं सत्तट्ठभवा" इति वचनात्, तत्र सप्त भवाः सङ्ख्येयवर्षायुषोऽष्टमस्त्वसङ्ख्येयवर्षायुरेव, तथाहि—पर्याप्तमनुष्याः पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो वा निरन्तरं यथासङ्ख्यं सप्त पर्याप्तमनुष्यभवान् सप्त पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवान् वाऽनुभूय यद्यष्टमे भवे भूयः पर्याप्तमनुष्याः पर्याप्तसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियति-

र्येभ्यो वा समुत्पद्यन्ते ततो नियमादसङ्ख्येयवर्षायुष एव न सङ्ख्येयवर्षायुषः, असङ्ख्येयवर्षायुषश्च मृता नियमतो देवलोकेषूत्पद्यन्ते, ततो नवमोऽपि मनुष्यभवः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्भवो वा निरन्तरं न लभ्यते, अत एव च पाश्चात्याः सप्त भवा निरन्तरं भवन्तः सङ्ख्येयवर्षायुष एवोपपद्यन्ते नैकोऽप्यसङ्ख्येयवर्षायुः, असङ्ख्येयवर्षायुर्भवानन्तरं भूयो मनुष्यभवस्य तिर्यग्भवस्य वाऽसम्भवात्, तत्र यदा उत्कर्षतस्तिर्यक्स्त्रीवेदसहिताः पाश्चात्याः सप्तापि भवा पूर्वकोट्यायुषो लभ्यन्ते अष्टमस्तु भवो देवकुर्वादिषु तदा भवन्त्युत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि तिर्यक्स्त्रीत्वस्यावस्थानम् । अत्रैव विशेषचिन्तां चिकीर्षुराह—'जलयरीए' इत्यादि, जलचर्याः स्त्रिया जलचरस्त्रीत्वेन निरन्तरं भवन्त्या जघन्यतोऽवस्थानमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, सप्तपूर्वकोट्यायुर्भवानन्तरं जलचरस्त्रीणामवश्यं जलचरस्त्रीत्वच्युतिभावात्, 'चउप्पयथलयरीए जहा ओहियाए' इति, चतुष्पदस्थलचरस्त्रिया यथा औघिक्यास्तिर्यक्स्त्रिया उक्तं तथा द्रष्टव्यं, तच्चैवम्—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्ध्वं तद्भावपरित्यागसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च प्रागिव भावनीयानि । उरःपरिसर्पस्थलचरस्त्रिया भुजपरिसर्पस्थलचरस्त्रियाश्च यथा जलचरस्त्रियास्तथा वक्तव्यं, तच्चैवं—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं तच्च पूर्ववद्भावनीयम् । खचरस्त्रिया जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिक उत्कर्षतोऽवस्थानमिति ॥ तदेवमुक्तं तिर्यक्स्त्रियाः सामान्यतो विशेषतश्च अवस्थानमानं, सम्प्रति मनुष्यस्त्रिया आह—'मणुस्सित्थियाए' इत्यादि, मनुष्यस्त्रियाः सामान्यतो यथा औघिक्यास्तिर्यक्स्त्रियाः, तच्चैवं—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च सामान्यतस्तिर्यक्स्त्रीवद्भावनीयानि । कर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः क्षेत्रं प्रतीत्य सामान्यतः कर्मक्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं तद्भावपरित्यागसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वा-

भ्यधिकानि, तत्र सप्त भवा महाविदेहेषु अष्टमो भवो भरतैरावतेष्वेकान्तसुषमादौ त्रिपल्योपमप्रमाण इति, 'धर्मचरणं प्रतीत्य' चारित्रासेवनमाश्रित्य जघन्येनैकं समयं, सर्वविरतिपरिणामस्य तदावरणकर्मक्षयोपशमवैचित्र्यतः समयमेकं सम्भवात्, तत ऊर्ध्वं मरणतः प्रतिपातभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, समग्रचरणकालस्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रप्रमाणत्वात् । भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियाः स्त्रीत्वं 'क्षेत्रं प्रतीत्य' भरताद्येवाश्रित्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तच्च प्राग्वद्भावनीयम्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, तानि चैवं–पूर्वविदेहमनुष्यस्त्री अपरविदेहमनुष्यस्त्री वा पूर्वकोट्यायुष्का केनापि भरतादावेकान्तसुषमादौ संहृता, सा च यद्यपि महाविदेहक्षेत्रोत्पन्ना तथाऽपि प्रागुक्तमागधपुरुषदृष्टान्तबलेन भारतैरावतीया वेति व्यपदिश्यते, ततः सा भारत्यादिव्यपदेशं प्राप्ता पूर्वकोटिं जीवित्वा स्वायुःक्षयतस्तत्रैव भरतादावेकान्तसुषमाप्रारम्भे समुत्पन्ना, तत एवं देशोनपूर्वकोट्यभ्यधिकं पल्योपमत्रयमिति । धर्मचरणं प्रतीत्य कर्मभूमिजस्त्रिया इव भावनीयं, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटीं यावत्, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमिजमनुष्यस्त्रियास्तु क्षेत्रमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च सुप्रतीतं, प्राग्भावितत्वात्, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तत्रैव भूय उत्पत्त्या, धर्मचरणं प्रतीत्य समागतकर्मभूमिजस्त्रिया इव वक्तव्यं, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोनां पूर्वकोटिं यावदिति भावार्थः ॥ उक्ता सामान्यतो विशेषतश्च कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीवक्तव्यता, साम्प्रतमकर्मभूमकमनुष्यस्त्रीवक्तव्यतां चिकीर्षुः प्रथमतः सामान्येनाह—'अकम्मभूमिगमणुस्सित्थी णं भंते !' इत्यादि, अकर्मभूमकमनुष्यस्त्री, णमिति वाक्यालङ्कारे, अकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीति कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! 'जन्म' तत्रैव सम्भूतिलक्षणं 'प्रतीत्य' आश्रित्य जघन्येन पल्योपमं देशोनं, अष्टभागान्यूनमपि देशोनं भवति ततो विशेषस्थापनायाह—पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागोनं जघन्यतः उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणं प्रतीत्य

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमन्तर्मुहूर्त्तायुःशेषायाः संहृतिभावात्, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, कथम्? इति चेदुच्यते—काचित्पूर्वविदेहमनुष्यस्त्री अपरविदेहमनुष्यस्त्री वा देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्विता देवकुर्वादौ संहृता, सा च पूर्वदृष्टान्तबलेन देवकुर्वादिका जाता, ततः सा देशोनां पूर्वकोटिं जीवित्वा मृत्वा च तत्रैव त्रिपल्योपमायुष्का समजनि, तत एवं देशोनपूर्वकोट्यधिकं पल्योपमत्रयमिति, अनेन संहरणतो जघन्योत्कृष्टावस्थानकालमानप्रदर्शनेन न्यूनान्तर्मुहूर्त्तायुःशेषाया गर्भस्त्रिया वा न संहरणमिति प्रतिपादितम्, अन्यथा जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षचिन्तायां पूर्वकोट्या देशोनता न स्यादिति। अकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रीविषयामेव विशेषचिन्तां करोति—'हेमवये'त्यादि, हैमवतैरण्यवतहरिवर्षरम्यकवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरद्वीपिकाणां जन्म प्रतीत्य या यस्याः स्थितिस्ततस्तस्या अवस्थानं वाच्यं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो या यस्या उत्कृष्टा स्थितिः सा तस्या देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिका वक्तव्या, सा चैवं—हैमवतैरण्यवतयोर्मनुष्यस्त्री जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनम्, उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, अन्तर्मुहूर्त्तायुःशेषाया एव संहरणभावात्, उत्कर्षतः पल्योपमं देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकं, तच्च देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्वितायास्तत्र संहरणे तत्रैव च मृत्वोत्पन्नाया भावनीयम्। हरिवर्षरम्यकयोर्जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने द्वे पल्योपमे, उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे। संहरणं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिके द्वे पल्योपमे, भावना प्रागिव। देवकुरूत्तरकुरुषु जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासंख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि। संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि। अन्तरद्वीपेषु जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं पल्योपमासङ्ख्येयभागं यावत् उत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागम्,

एतावत्प्रमाणस्य तत्र जघन्यत उत्कर्षतश्च मनुष्याणामायुषः सम्भवात्, मरणानन्तरं च देवयोनावुत्पादात् । संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकं पल्योपमासङ्ख्येयभागं यावत्, भावनाऽत्र प्रागिव ॥ उक्ता सामस्त्येन मनुष्यस्त्रीवक्तव्यता, सम्प्रति देवस्त्रीवक्तव्यतामाह—'देवित्थीण'मित्यादि, देवीनां तथाभवस्वभावतया कायस्थितेरसम्भवात् यैव प्राक् सामान्यतो विशेषतश्च भवस्थितिरुक्ता 'सेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' तदेवावस्थानं वक्तव्यम्, अभिलापश्च 'देवित्थी णं भंते! देवित्थीति कालतो केवच्चिरं होइ?' इत्यादिरूपः सुधिया परिभावनीयः ॥ तदेवमुक्तं सामान्यतो विशेषतश्च स्त्रीत्वस्यावस्थानकालमानम्, इदानीमन्तरद्वारमाह—

इत्थीणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० अणंतं कालं, वणस्सतिकालो, एवं सव्वासिं तिरिक्खित्थीणं। मणुस्सित्थीए खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं जाव पुव्वविदेहअवरविदेहियाओ, अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्को० वणस्सतिकालो, संहरणं पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं जाव अंतरदीवियाओ। देवित्थियाणं सव्वासिं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो ॥ (सू० ४९)

स्त्रिया भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, स्त्री भूत्वा स्त्रीत्वाद् भ्रष्टा सती पुनः कियता कालेन स्त्री भवतीत्यर्थः, एवं

गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कथमिति चेदुच्यते—इह काचित्स्त्री स्त्रीत्वान्मरणेन च्युत्वा भवान्तरे पुरुषवेदं नपुंसकवेदं वाऽन्तर्मुहूर्त्तमनुभूय ततो मृत्वा भूयः स्त्रीत्वेनोत्पद्यते तत एव जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं भवति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः—असङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्ताख्यो वक्तव्यः, तावता कालेनामुक्तौ सत्यां नियोगतः स्त्रीत्वयोगात्, स च वनस्पतिकाल एवं वक्तव्यः—"अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इति, एवमौघिकतिर्यक्स्त्रीणां जलचरस्थलचरखचरस्त्रीणामौघिकमनुष्यस्त्रीणां च जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यम्, अभिलापोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः। कर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियाः क्षेत्रं—कर्मभूमिक्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं वनस्पतिकालप्रमाणं यावत्, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्येनैकं समयं, सर्वजघन्यस्य समयत्वात्, उत्कर्षेणानन्तं कालं, देशोनमपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं यावत्, नातो ह्यधिकतरश्चरणलब्धिपातकालः, संपूर्णस्याप्यपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तस्य दर्शनलब्धिपातकालस्य तत्र तत्र प्रदेशे प्रतिषेधात्। एवं भरतैरावतमनुष्यस्त्रियाः पूर्वविदेहापरविदेहस्त्रियाश्च क्षेत्रतो धर्मचरणं चाश्रित्य वक्तव्यम्। अकर्मभूमकमनुष्यस्त्रिया जन्म प्रतीत्यान्तरं जघन्येन दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, कथमिति चेदुच्यते—इह काचिदकर्मभूमिका स्त्री मृत्वा जघन्यस्थितिषु देवेषूत्पन्ना, तत्र दश वर्षसहस्राण्यायुः परिपाल्य तत्क्षये च्युत्वा कर्मभूमिषु मनुष्यपुरुषत्वेन मनुष्यस्त्रीत्वेन वोत्पद्यते, देवेभ्योऽनन्तरमकर्मभूमिषूत्पादाभावात्, अन्तर्मुहूर्त्तेन मृत्वा भूयोऽप्यकर्मभूमिजस्त्रीत्वेन जायत इति भवन्ति जघन्यतो दश वर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, अकर्मभूमिजस्त्रियाः कर्मभूमिषु संहृत्य तावता कालेन तथाविधबुद्धिपरावृत्त्या भूयस्तत्रैव नयनात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, तावता कालेन कर्मभूम्यु-

त्पत्तिवत् संहरणस्यापि नियोगतो भावात्, तथाहि—काचिदकर्मभूमिका कर्मभूमौ संहृता, सा च स्वायुःक्षयानन्तरमनन्तकालं वनस्पत्यादिषु संसृत्य भूयोऽप्यकर्मभूमौ समुत्पन्ना ततः केनापि संहृतेति यथोक्तं संहरणस्योत्कृष्टकालमानम् । एवं हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरभूमिकानामपि जन्मतः संहरणतश्च प्रत्येकं जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं वक्तव्यम्, सूत्रपाठोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः ॥ सम्प्रति देवस्त्रीणामन्तरप्रतिपादनार्थमाह—'देवित्थियाणं भंते !' इत्यादि, देवस्त्रिया भदन्त ! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कस्याश्चिद्देवस्त्रिया देवीभवाच्च्युताया गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येषूत्पद्य पर्याप्तिपरिसमाप्तिसमनन्तरं तथाऽध्यवसायमरणेन पुनर्देवीत्वेनोत्पत्तिसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स च सुप्रतीत एव । एवमसुरकुमारदेव्या आरभ्य यावदीशानदेवस्त्रियामुत्कृष्टमन्तरं वक्तव्यं, पाठोऽपि सुगमत्वात्स्वयं परिभावनीयः ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वं वक्तव्यं, तानि च पञ्च, तद्यथा—प्रथमं सामान्येनाल्पबहुत्वं विशेषचिन्तायां द्वितीयं त्रिविधतिर्यक्स्त्रीणां तृतीयं त्रिविधमनुष्यस्त्रीणां चतुर्थं चतुर्विधदेवस्त्रीणां पञ्चमं मिश्रस्त्रीणां, तत्र प्रथममल्पबहुत्वमभिधित्सुराह—

एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं मणुस्सित्थियाणं देवित्थियाणं कतरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सित्थियाओ तिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ देवित्थियाओ असंखिज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीण य कतरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाओ खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ थलयरतिरिक्ख-

जोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जलयरतिरिक्ख० संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाण य कतरा २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा ! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, हरिवासरम्मयवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि- तुल्लाओ संखेज्जगु०, हेमवतेरण्णवासअकम्मभूमिगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखिज्जगु०, भरतेरवतवासकम्मभूमगमणुस्सि० दोवि तुल्लाओ संखिज्जगुणाओ, पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! देवित्थियाणं भवणवासीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कयरा २ हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवाओ वेमाणियदेवित्थियाओ भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ वाणमंतरदेवीयाओ असंखेज्जगुणाओ जोतिसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं मणुस्सित्थीयाणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं देवित्थीणं भवणवासियाणं वाणमंतरीणं जोतिसियाणं वेमाणिणीण य कयराओ २ हिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसे०?, गोयमा! सव्वत्थोवा अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि संखे-

ज्जगुणाओ, हरिवासरम्मगवासअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोऽवि संखेज्जगु०, हेमवतेरण्णवयवासअकम्मभूमग० दोऽवि संखेज्जगु०, भरहेरवतवासकम्मभूमगमणुस्सित्थीओ दोऽवि तुल्लाओ संखेज्जगु०, पुव्वविदेहअवरविदेहवासकम्मभूमगमणुस्सित्थि० दोऽवि संखेज्जगु०, वेमाणियदेवित्थियाओ असंखेज्जगु०, भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगु०, खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगु०, थलयरतिरिक्खजोणित्थियाउ संखिज्जगु०, जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ॥ (सू० ५०)

सर्वस्तोका मनुष्यस्त्रियः, सङ्ख्यातकोटाकोटीप्रमाणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिकस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं तिर्यक्स्त्रीणामतिबहुतया सम्भवात्, द्वीपसमुद्राणां चासङ्ख्येयत्वात्, ताभ्योऽपि देवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवीनां प्रत्येकमसङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् । द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोकाः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः, ताभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, खचरेभ्यः स्थलचराणां स्वभावत एव प्राचुर्येण भावात्, ताभ्यो जलचरस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, लवणे कालोदे स्वयम्भूरमणे च समुद्रे मत्स्यानामतिप्राचुर्येण भावात्, स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य च शेषसमस्तद्वीपसमुद्रापेक्षयाऽतिप्रभूतत्वात् ॥ उक्तं द्वितीयमल्पबहुत्वम्, अधुना तृतीयमाह—सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकाकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियः, क्षेत्रस्याल्पत्वात्, ताभ्यो देवकुरूत्तरकुरुस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्य सङ्ख्येयगुणत्वात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, समानप्रमाणक्षेत्रत्वात्, ताभ्यो

हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रापेक्षया हरिवर्षरम्यकक्षेत्रस्यातिप्रचुरत्वात्, स्वस्थानेऽपि द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य समानत्वात्, ताभ्योऽपि हैमवतैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्याल्पत्वेऽप्यल्पस्थितिकतया बहूनां तत्र तासां सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमिकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा., कर्मभूमितया स्वभावत एव तत्र प्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः, ताभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यादजितस्वामिकाल इव च स्वभावत एव तत्र प्राचुर्येण भावात्, स्वस्थाने तु द्वय्योऽपि परस्परं तुल्याः ॥ उक्तं तृतीयमल्पबहुत्वम्, अधुना चतुर्थमाह—सर्वस्तोका वैमानिकदेवस्त्रियः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यद् द्वितीयं वर्गमूलं तस्मिन् तृतीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावत्प्र(वान् प्र)देशराशिस्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशा द्वात्रिंशत्तमभागहीनास्तावत्प्रमाणत्वात्प्रत्येकं सौधर्मेशानदेवस्त्रीणां, ताभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यत्प्रथमं वर्गमूलं तस्मिन् द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु श्रेणिषु यावान् प्रदेशराशिर्द्वात्रिंशत्तमभागहीनस्तावत्प्रमाणत्वात्, ताभ्यो व्यन्तरदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्योऽपि द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपनीते यच्छेषमवतिष्ठते तावत्प्रमाणत्वात्तासां, ताभ्यः सङ्ख्येयगुणा ज्योतिष्कदेवस्त्रियः, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयाङ्गुलप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्यो द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपसारिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणत्वात् ॥ उक्तं चतुर्थमल्पबहुत्वम्, इदानीं समस्तस्त्रीविषयं पञ्चममल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः, ताभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि हरिवर्ष-

म्यकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवतस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः ताभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहमनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना प्राग्वत्, ताभ्यो वैमानिकदेवस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तासां ताभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियोऽसङ्ख्यातगुणाः, अत्र युक्तिः प्रागेवोक्ता, ताभ्यः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तासां ताभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः, सङ्ख्येयगुणबृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो व्यन्तरदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटाकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेभ्यो द्वात्रिंशत्तमे भागेऽपहृते यावान् राशिरवतिष्ठते तावत्प्रमाणत्वात्, ताभ्योऽपि ज्योतिष्कदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, एतच्च प्रागेव भावितम् ॥ इह स्त्रीत्वानुभावः स्त्रीवेदकर्मोदय इति स्त्रीवेदकर्मणो जघन्यत उत्कर्षतश्च स्थितिमानमाह—

इत्थिवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं सागरोवमस्स दिवड्ढो सत्तभागो[उ]पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणो उक्को० पण्णरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ ॥ इत्थिवेदे णं भंते! किंपगारे पण्णत्ते?, गोयमा! फुंफुअग्गिसमाणे पण्णत्ते, सेत्तं इत्थियाओ ॥ (सू० ५१)

'स्त्रीवेदस्य' स्त्रीवेदनाम्नो णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! कर्मणः कियन्तं कालं बन्धस्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येन

सागरोपमस्य सार्द्धः सप्तभागः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः, कथमिति चेदुच्यते—इह स्त्रीवेदादीनां कर्मणां स्वस्मात् २ उत्कृष्टस्थितिबन्धात् मिथ्यात्वसत्कया उत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटाकोटीप्रमाणया भागे हृते यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं जघन्यस्थितिः "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तुक्कोसएण जं लद्धं"मित्यादिवचनप्रामाण्यात्, तत्र स्त्रीवेदस्योत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या भागो ह्रियते, शून्यं शून्येन पातयेत् जाता उपरि पञ्चदश अधस्तात्सप्ततिः, अनयोश्च छेद्यच्छेदकराश्योर्दशभिरपवर्त्तना जात उपर्येकः सार्द्धः अधस्तात्सप्त आगतमेकसागरोपमस्य सार्द्धः सप्तभागः, पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः क्रियते, इयं च व्याख्या **मूलटीका**ऽनुसारेण कृता, **पञ्चसङ्ग्रह**मतेनापीदमेव जघन्यस्थितिपरिमाणं केवलं पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनं (न) वक्तव्यं, तन्मतेन "सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिईएँ जं लद्धं" इत्येतावन्मात्रस्यैव जघन्यस्थित्यानयनस्य करणस्य विद्यमानत्वात्, **कर्मप्रकृतिसङ्ग्रहणी**कारस्त्वित्थं जघन्यस्थित्यानयनाय करणसूत्रमाह—"वग्गुक्कोसठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेण जं लद्धं । सेसाणं तु जहण्णं पलियासंखेज्जगेणूणं ॥ १ ॥" अस्याक्षरगमनिका—इह ज्ञानावरणीयप्रकृतिसमुदायो ज्ञानावरणीयवर्ग इत्युच्यते, दर्शनावरणीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनावरणीयवर्गः, वेदनीयप्रकृतिसमुदायो वेदनीयवर्गः, दर्शनमोहनीयप्रकृतिसमुदायो दर्शनमोहनीयवर्गः, चारित्रमोहनीयप्रकृतिसमुदायश्चारित्रमोहनीयवर्गः, नोकषायमोहनीयप्रकृतिसमुदायो नोकषायमोहनीयवर्गः, नामप्रकृतिसमुदायो नामवर्गः, गोत्रप्रकृतिसमुदायो गोत्रवर्गः, अन्तरायप्रकृतिसमुदायोऽन्तरायवर्गः, एतेषां (च) वर्गाणां या आत्मीया आत्मीया उत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिका तस्या मिथ्यात्वसत्कया उत्कृष्टया स्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे हृते सति यल्लभ्यते तत्पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं सत् उक्तशेषाणां निद्रादीनां प्रकृतीनां जघन्यस्थितेः परिमाणमिति, ततस्तन्मतेन स्त्रीवेदस्य ज-

न्या स्थितिर्द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ, तथाहि—नोकषायमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थितिर्विंशतिसागरोपमकोटीकोट्यः, तासां मिथ्यात्वस्थित्या सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणया भागे ह्रियमाणे शून्यं शून्येन पातयेत् लब्धौ द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ तौ पल्योपमासङ्ख्येयभागहीनौ क्रियेते इति। उत्कृष्टा स्थितिः पञ्चदशसागरोपमकोटीकोट्यः, इह स्थितिर्द्विधा—कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणा अनुभवयोग्या च, तत्रेयं कर्मरूपताऽवस्थानलक्षणा द्रष्टव्या, अनुभवयोग्या पुनरबाधाहीना, (गा) च येषां कर्मणां यावत्यः सागरोपमकोटीकोट्यस्तेषां तावन्ति वर्षशतान्यबाधा, स्त्रीवेदस्य चाधिकृतस्योत्कृष्टा स्थितिः पञ्चदश सागरोपमकोटीकोट्यस्ततः पञ्चदश वर्षशतान्यबाधा, तथा चाह—"पण्णरस वाससयाइं अबाहा" इति, किमुक्तं भवति?—स्त्रीवेदकर्म उत्कृष्टस्थितिकं बद्धं सत्स्वरूपेण पञ्चदश वर्षशतानि यावन्न जीवस्य स्वविपाकोदयमादर्शयति तावत्कालमध्ये दलिकनिषेकस्याभावात्, तथा चाह—"अबाहूणिया" इत्यादि, 'अबाधोना' अबाधाकालपरिहीना कर्मस्थितिरनुभवयोग्येति गम्यते, यतः 'अबाधोनः' अबाधाकालपरिहीनः कर्मनिषेकः—कर्मदलिकरचनेति ॥ सम्प्रति स्त्रीवेदकर्मोदयजनितो यः स्त्रीवेदः स किंस्वरूपः? इत्यावेदयन्नाह—'इत्थिवेए णं भंते!' इत्यादि, स्त्रीवेदो णमिति पूर्ववत् भदन्त! 'किंप्रकारः' किंस्वरूपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! फुम्फुकाग्निसमानः, फुम्फुकशब्दो देशीत्वात्कारीषवचनस्ततः कारीषाग्निसमानः परिगलनमदनदाहरूप इत्यर्थः, प्रज्ञप्तः, उपसंहारमाह—'सेत्तं इत्थियाओ' ॥ तदेवमुक्ताः स्त्रियः, सम्प्रति पुरुषप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं पुरिसा?, पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियपुरिसा मणुस्सपुरिसा देवपुरिसा॥ से किं तं तिरिक्खजोणियपुरिसा?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा थलयरा खहयरा,

इत्थिभेदो भाणितव्वो, जाव खहयरा, सेत्तं खहयरा सेत्तं खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा ॥ से किं तं मणुस्सपुरिसा ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा–कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा, सेत्तं मणुस्सपुरिसा ॥ से किं तं देवपुरिसा ?, देवपुरिसा चउव्विहा पण्णत्ता, इत्थीभेदो भाणितव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धा (सू० ५२)

'से किं तं पुरिसा' इत्यादि, अथ के ते पुरुषाः ?, पुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तिर्यग्योनिकपुरुषा मनुष्यपुरुषा देवपुरुषाश्च ॥ से किं तमित्यादि, अथ के ते तिर्यग्योनिकपुरुषाः ?, तिर्यग्योनिकपुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–जलचरपुरुषाः स्थलचरपुरुषाः खचरपुरुषाश्च । मनुष्यपुरुषा अपि त्रिविधास्तद्यथा–कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च ॥ देवसूत्रमाह–'से किं त'मित्यादि, अथ के ते देवपुरुषाः ?, देवपुरुषाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–भवनवासिनो वानमन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाश्च, भवनपतयोऽसुरादिभेदेन दशविधा वक्तव्याः, वानमन्तराः पिशाचादिभेदेनाष्टविधाः, ज्योतिष्काश्चन्द्रादिभेदेन पञ्चविधाः, वैमानिकाः कल्पोपपन्नकल्पातीतभेदेन द्विविधाः, कल्पोपपन्नाः सौधर्मादिभेदेन द्वादशविधाः, कल्पातीता ग्रैवेयकानुत्तरोपपातिकभेदेन द्विविधाः, तथा चाह–"जाव अणुत्तरोववाइया" इति ॥ उक्तो भेदः, सम्प्रति स्थितिप्रतिपादनार्थमाह–

पुरिसस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जह० अंतोमु० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं । तिरिक्खजोणियपुरिसाणं मणुस्साणं जा चेव इत्थीणं ठिती सा चेव भणियव्वा ॥ देवपुरिसाणवि जाव सव्वट्ठसिद्धाणं ति । ताव ठिती जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वा ॥ (सू० ५३)

'पुरिसस्स णं भंते' इत्यादि, पुरुषस्य स्वस्वभवमजहतो भदन्त! कियन्तं कालं यावत्स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मरणभावात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तान्यनुत्तरसुरापेक्षया द्रष्टव्यानि, अन्यस्यैतावत्याः स्थितेरभावात्। तिर्यग्योनिकानामौघिकानां जलचराणां स्थलचराणां खचराणां स्त्रिया या स्थितिरुक्ता तथा वक्तव्या, मनुष्यपुरुषस्याप्यौघिकस्य कर्मभूमिकस्य सामान्यतो विशेषतो भरतैरावतकस्य पूर्वविदेहापरविदेहकस्य अकर्मभूमस्य सामान्यतो विशेषतो हैमवतैरण्यवतकस्य हरिवर्षरम्यकस्य देवकुरूत्तरकुरुकस्यान्तरद्वीपकस्य यैवास्त्रीये आस्त्रीये स्थाने स्त्रियाः स्थितिः सैव पुरुषस्यापि वक्तव्या, तद्यथा—सामानिकतिर्यग्योनिकपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, जलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, चतुष्पदस्थलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, उरःपरिसर्पस्थलचरपुरुषाणां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, एवं भुजपरिसर्पस्थलचरपुरुषाणां खचरपुरुषाणामपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, सामान्यतो मनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतच्च बाह्यलिङ्गप्रव्रज्याप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य वेदितव्यं, अन्यथा चरणपरिणामस्यैकसामायिकस्यापि सम्भवादेकं समयमिति ब्रूयात्, अथवा देशचरणमधिकृत्येदं वक्तव्यं, देशचरणप्रतिपत्तेर्बहुलभङ्गतया जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तसम्भवात्, तत्र सर्वचरणसम्भवेऽपि यदिदं देशचरणमधिकृत्योक्तं तद्देशचरणपूर्वकं प्रायः सर्वचरणमिति प्रतिपत्त्यर्थं, तथा चोक्तम्—"[1]सम्मत्तंमि उ लद्धे पलियपुहुत्तेण सावओ होइ। चरणोवसमखयाणं सागर संखंतरा होंति ॥ १ ॥" इति, अत्र यदाद्यं व्याख्यानं तत्स्त्रीवेदचिन्तायामपि द्रष्टव्यं, यच्च स्त्रीवेदचिन्तायां व्याख्यातं तदत्रापीति, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी

---

१ सम्यक्त्वे तु लब्धे पल्योपमपृथक्त्वेनैव श्रावको भवति। चरणोपशमक्षयाणां सागरोपमाणि संख्यातानि अन्तरं भवन्ति ॥ १ ॥

वर्षाष्टकादूर्ध्वमुत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष एव चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, कर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, चरणप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च सुषमसुषमारके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमेकं पल्योपममुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहकस्यापरविदेहकस्य वाऽकर्म्मभूमौ संहृतस्य जघन्येनोत्कर्षत एतावदायुःप्रमाणसम्भवात्, हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना प्रागिव, हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन देशोनपल्योपमासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः परिपूर्णपल्योपमासङ्ख्येयभागः, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति ॥ **देवपुरिसाण**मित्यादि, देवपुरुषाणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायाम-

सुरकुमारपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सातिरेकमेकं सागरोपमं, नागकुमारादिपुरुषाणां सर्वेषामपि जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोने द्वे पल्योपमे, व्यन्तरपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः पल्योपमं, ज्योतिष्कदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपमस्याष्टमो भाग उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, सौधर्मकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः द्वे सागरोपमे ईशान–[ग्रन्थाग्रम् २०००] कल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः साधिकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे सातिरेके सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषाणां च जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सप्त सागरोपमाणि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः सातिरेके द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मलोकदेवानां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश लान्तककल्पदेवानां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश महाशुक्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश सहस्रारकल्पदेवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश आनतकल्पदेवानां जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविंशतिः प्राणतकल्पदेवानां जघन्यत एकोनविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशतिः आरणकल्पदेवानां जघन्यतो विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकविंशतिः अच्युतकल्पदेवानां जघन्यत एकविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशतिः अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्विंशतिः अधस्तनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतश्चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः पञ्चविंशतिः मध्यमाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन पञ्चविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः षड्विंशतिः मध्यममध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतः षड्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तविंशतिः मध्यमोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन सप्तविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टाविंशतिः उपरितनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघ-

वर्षाष्टकादूर्ध्वमुत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष एव चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, कर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, चरणप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, तानि च सुषमसुषमारके वेदितव्यानि, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमेकं पल्योपममुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटी, पूर्वविदेहकस्यापरविदेहकस्य वाऽकर्मभूमौ संहृतस्य जघन्येनोत्कर्षेण एतावदायुःप्रमाणसम्भवात्, हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, भावना प्रागिव, हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाणां जन्म प्रतीत्य जघन्येन देशोनपल्योपमासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः परिपूर्णपल्योपमासङ्ख्येयभागः, संहरणमधिकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति ॥ देवपुरिसाणमित्यादि, देवपुरुषाणां सामान्यतो जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायाम-

सुरकुमारपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सातिरेकमेकं सागरोपमं, नागकुमारादिपुरुषाणां सर्वेषामपि जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतो देशोने द्वे पल्योपमे, व्यन्तरपुरुषाणां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः पल्योपमं, ज्योतिष्कदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपमस्याष्टमो भाग उत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, सौधर्मकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः पल्योपममुत्कर्षतः द्वे सागरोपमे ईशान–[ग्रन्थाग्रम् २०००] कल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः साधिकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे सातिरेके सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषाणां च जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सप्त सागरोपमाणि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतः सातिरेके द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मलोकदेवानां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश लान्तककल्पदेवानां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश महाशुक्रकल्पदेवपुरुषाणां जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश सहस्रारकल्पदेवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश आनतकल्पदेवानां जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविंशतिः प्राणतकल्पदेवानां जघन्यत एकोनविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशतिः आरणकल्पदेवानां जघन्यतो विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकविंशतिः अच्युतकल्पदेवानां जघन्यत एकविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशतिः अधस्तनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्विंशतिः अधस्तनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतश्चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः पञ्चविंशतिः मध्यमाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन पञ्चविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः षड्विंशतिः मध्यममध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्यतः षड्विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तविंशतिः मध्यमोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्येन सप्तविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टाविंशतिः उपरितनाधस्तनग्रैवेयकदेवानां जघ-

न्येनाष्टाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनत्रिंशत् उपरितनमध्यमग्रैवेयकदेवानां जघन्येनैकोनत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रिंशत् उपरितनोपरितनग्रैवेयकदेवानां जघन्यतस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षत एकत्रिंशत् सागरोपमाणि विजयवैजयन्तजयन्तापराजितविमानदेवानां जघन्येनैकत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि सर्वार्थसिद्धमहाविमानदेवानामजघन्योत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । कचिदेवं सूत्रपाठः—"देवपुरिसाण ठिई जहा पण्णवणाए ठिइपए तहा भाणियव्वा" इति, तत्र स्थितिपदेऽप्येवमेवोक्ता स्थितिरिति ॥ उक्तं पुरुषस्य भवस्थितिमानमधुना पुरुषः पुरुषत्वममुञ्चन् कियन्तं कालं निरन्तरमवतिष्ठते इति निरूपणार्थमाह—

पुरिसे णं भंते ! पुरिसे त्ति कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं । तिरिक्खजोणियपुरिसे णं भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं तं चेव, संचिट्ठणा जहा इत्थीणं जाव खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसस्स संचिट्ठणा । मणुस्सपुरिसाणं भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?, गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्ने० अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी एवं सव्वत्थ जाव पुव्वविदेहअवरविदेह, अकम्मभूमगमणुस्सपुरिसाण जहा अकम्मभूमकमणुस्सित्थीणं जाव अंतरदीवगाणं जच्चेव ठिती सच्चेव संचिट्ठणा जाव सव्वट्ठसिद्धगाणं ॥ (सू० ५४)

पुरुषो णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त ! पुरुष इति पुरुषभावापरित्यागेन 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम !

जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तावतः कालादूर्ध्वं मृत्वा स्त्र्यादिभावगमनाद्, उत्कर्षतः सातिरेकं सागरोपमशतपृथक्त्वं, सामान्येन तिर्यङ्नराम-रभवेष्वेतावन्तं कालं पुरुषेष्वेव भावसम्भवात्, सातिरेकता कतिपयमनुष्यभवैर्वेदितव्या, अत ऊर्ध्वं पुरुषनामकर्मोदयाभावतो नियमत एव स्त्र्यादिभावगमनात्। तिर्यग्योनिकपुरुषाणां यथा तिर्यग्योनिकस्त्रीणां तथा वक्तव्यं, तच्चैवम्—तिर्यग्योनिकपुरुषस्तिर्यग्योनिकपुरुषत्व-मजहत् जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्र पूर्वकोटिपृथक्त्वं सप्त भवाः पूर्वकोट्यायुषः पूर्वविदेहादौ (यतः) त्रीणि पल्योपमान्यष्टमे भवे देवकुरूत्तरकुरुषु, (यतः) विशेषचिन्तायां जलचरपुरुषो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्ध्वं मरणभावेन तिर्यग्योन्यन्तरे गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, पूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्य भूयो भूयस्तत्रैव द्व्यादिवारोत्पत्तिसम्भवात्। चतुष्पदस्थलचरपुरुषो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्यो-पमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि सामान्यतिर्यक्पुरुषस्येव भावनीयानि। उरःपरिसर्पस्थलचरपुरुषो भुजपरिसर्पस्थलचरपु-रुषश्च जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च जलचरपुरुषस्येव भावनीयं। खचरपुरुषो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, अन्तर्मुहूर्त्त-भावना सर्वत्रापि प्रागिव, उत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, स च सप्त वारान् पूर्वकोटिस्थितिपूत्पद्याष्टम-वारमन्तरद्वीपादिखचरपुरुषेषु पल्योपमासङ्ख्येयभागस्थितिषूत्पद्यमानस्य वेदितव्यः। 'मणुस्सपुरिसाणं जहा मणुस्सित्थीण'मिति, मनुष्यपुरुषाणां यथा मनुष्यस्त्रीणां तथा वक्तव्यं, तच्चैवं—सामान्यतो मनुष्यपुरुषस्य क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्ध्वं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्र सप्त भवाः पूर्वकोट्यायुषो महाविदेहेषु अष्टमस्तु देवकुर्वादिषु, धर्मचरणं प्रतीत्य समयमेकं, द्वितीयसमये मरणभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, उत्कर्षतोऽपि पूर्वकोट्यायुष

एव वर्षाष्टकादूर्द्ध्वं चरणप्रतिपत्तिभावात्, विशेषचिन्तायां सामान्यतः कर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषः कर्मभूमिरूपं क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तत्रान्तर्मुहूर्त्तभावना प्रागिव, त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि सप्त वारान् पूर्वकोट्यायुःसमन्वितेषूत्पद्याष्टमं वारमेकान्तसुषमायां भरतैरावतयोस्त्रिपल्योपमस्थितिपूत्पद्यमानस्य वेदितव्यानि, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयं, सर्वविरतिपरिणामस्यैकसामयिकस्यापि सम्भवात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, समप्रचरणकालस्याप्येतावत एव भावात्। भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यपुरुषोऽपि भरतैरावतक्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनपूर्वकोट्यभ्यधिकानि, तानि च पूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्य विदेहपुरुषस्य भरतादौ संहृत्यानीतस्य भरतादिवासयोगाद् भरतादिप्रवृत्तव्यपदेशस्य भवायुःक्षये एकान्तसुषमाप्रारम्भे समुत्पन्नस्य वेदितव्यानि, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, एतच्च द्वयमपि प्रागिव भावनीयं, पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषः क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च भूयो भूयस्तत्रैव सप्तवारानुत्पत्त्या भावनीयं, अत ऊर्द्ध्वं त्ववश्यं गत्यन्तरे योन्यन्तरे वा संक्रमभावात्, धर्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी। तथा सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषस्तद्भावमपरित्यजन् जन्म प्रतीत्य जघन्यत एकं पल्योपमं पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, संहरणं प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्चान्तर्मुहूर्त्तायुःशेषस्याकर्म्मभूमिषु संहृतस्य वेदितव्यं, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, तानि च देशोनपूर्वकोट्यायुःसमन्वितस्योत्तरकुर्वादौ संहृतस्य तत्रैव मृत्वोत्पन्नस्य वेदितव्यानि, देशोनता च पूर्वकोट्या गर्भकालेन न्यूनत्वाद्, गर्भस्थितस्य संहरणप्रतिषेधात्। हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनं पल्योपममुत्कर्षतः परिपूर्णं

पल्योपमं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकमेकं पल्योपमं, अत्र भावना प्रागुक्तानुसारेण स्वयं कर्त्तव्या । हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य जघन्यतो द्वे पल्योपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूने, उत्कर्षतः परिपूर्णे द्वे पल्योपमे, जघन्यत उत्कर्षतश्च तत्रैतावत आयुषः सम्भवात्, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं न्यूनान्तर्मुहूर्त्तायुषः संहरणाऽसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिके द्वे पल्योपमे, भावनाऽत्र प्राग्वत् । देवकुरूत्तरकुर्वकर्मभूमकमनुष्यपुरुषः क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतः पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनानि त्रीणि पल्योपमानि उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि, संहरणमधिकृत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि देशोनपूर्वकोट्यधिकानि । अन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषो जन्म प्रतीत्य देशोनं पल्योपमासङ्ख्येयभागमुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमासङ्ख्येयभागं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिसमभ्यधिकः पल्योपमासङ्ख्येयभागः । 'देवाणं जा चेव ठिई सा चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' देवानां यैव स्थितिः प्रागभिहिता सैव 'संचिट्ठणा' इति कायस्थितिर्भणितव्या, नन्वनेकभवभावाश्रया कायस्थितिः सा कथमेकस्मिन् भवे भवति ?, नैष दोषः, देवपुरुषो देवपुरुषत्वापरित्यागेन कियन्तं कालं यावन्निरन्तरं भवति ? इत्येतावदेवात्र विवक्षितं, तत्र देवो मृत्वाऽऽनन्तर्येण भूयो देवो न भवति ततः 'देवाणं जा ठिई सा चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा' इत्यतिदेशः कृतः ॥ तदेवमुक्तं सातत्येनावस्थानमिदानीमन्तरमाह—

पुरिसस्स णं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?, गोयमा ! जह० एक्कं समयं उक्को० वणस्सतिकालो तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो एवं जाव खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसाणं ॥ मणुस्सपुरिसाणं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?, गोयमा ! खेत्तं

पडुच्च जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं अणंताओ उस्स० जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, कम्मभूमकाणं जाव विदेहो जाव धम्मचरणे एक्को समओ सेसं जहित्थीणं जाव अंतरदीवकाणं ॥ देवपुरिसाणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, भवणवासिदेवपुरिसाणं ताव जाव सहस्सारो, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो । आणतदेवपुरिसाणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! जह० वासपुहुत्तं उक्को० वणस्सतिकालो, एवं जाव गेवेज्जदेवपुरिसस्सवि । अणुत्तरोववातियदेवपुरिसस्स जह० वासपुहुत्तं उक्को० संखेज्जाइं सागरोवमाइं साइरेगाइं ॥ (सू० ५५)

'पुरिसस्सणं' इत्यादि, पुरुषस्य णमिति वाक्यालङ्कारे पूर्ववत् भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, पुरुषः पुरुषत्वात्परिभ्रष्टः सन् पुनः कियता कालेन तदवाप्नोतीत्यर्थः, तत्र भगवानाह—गौतम! जघन्येनैकं समयं—समयादनन्तरं भूयोऽपि पुरुषत्वमवाप्नोतीति भावः, इयमत्र भावना—यदा कश्चित्पुरुष उपशमश्रेणिगत उपशान्ते पुरुषवेदे समयमेकं जीवित्वा तदनन्तरं म्रियते तदाऽसौ नियमाद्देवपुरुषेपूत्पद्यते इति समयमेकमन्तरं पुरुषत्वस्य, ननु स्त्रीनपुंसकयोरपि श्रेणिलाभो भवति तत्कस्मादनयोरप्येवमेकः समयोऽन्तरं न भवति?, उच्यते, स्त्रिया नपुंसकस्य च श्रेण्यारूढाववेदकभावानन्तरं मरणेन तथाविधशुभाध्यवसायतो नियमेन देवपुरुषत्वेनोत्पादात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स चैवमभिलपनीयः—"अणंताओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालतो खेत्तओ अणंता लोगा असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइ भागो" इति ॥ तदेवं सामान्यतः पुरुषत्वस्यान्तरमभिधाय सम्प्रति तिर्यक्पुरुषविष-

२ प्रतिपत्तौ पुरुषवेदस्यान्तरं सू० ५५

यमतिदेशमाह—'जं तिरिक्खजोणित्थीणमंतर'मित्यादि, यत्तिर्यग्योनिकस्त्रीणामन्तरं प्रागभिहितं तदेव तिर्यग्योनिकपुरुषाणामप्यविशेषितं वक्तव्यं, तच्चैवम्—सामान्यतस्तिर्यक्पुरुषस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं तावत्कालस्थितिना मनुष्यादिभवेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽसङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्ताख्यः, तावता कालेनामुक्तौ सत्यां नियोगतः पुरुषत्वयोगात्, एवं विशेषचिन्तायां जलचरपुरुषस्य स्थलचरपुरुषस्य खचरपुरुषस्यापि प्रत्येकं जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं ॥ सम्प्रति मनुष्यपुरुषत्वविषयान्तरप्रतिपादनार्थमतिदेशमाह—'जं मणुस्सइत्थीणमंतरं तं मणुस्सपुरिसाण'मिति, यन्मनुष्यस्त्रीणामन्तरं प्रागभिहितं तदेव मनुष्यपुरुषाणामपि वक्तव्यं, तच्चैवम्—सामान्यतो मनुष्यपुरुषस्य जघन्यतः क्षेत्रमधिकृत्यान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च प्रागिव भावनीयं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, धर्मचरणमधिकृत्य जघन्यत एकं समयं, चरणपरिणामात्परिभ्रष्टस्य समयानन्तरं भूयोऽपि कस्यचिच्चरणप्रतिपत्तिसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनापार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः, एवं भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य जन्म प्रतीत्य चरणमधिकृत्य च प्रत्येकं जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं । सामान्यतोऽकर्मभूमकमनुष्यपुरुषस्य जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तरं दश वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, अकर्मभूमकमनुष्यपुरुषत्वेन मृतस्य जघन्यस्थितिषु देवेषूत्पद्य[ते], ततोऽपि च्युत्वा कर्मभूमिषु स्त्रीत्वेन पुरुषत्वेन वोत्पद्य कस्याप्यकर्मभूमित्वेन भूयोऽप्युत्पादात्, देवभवाच्च्युत्वाऽनन्तरमकर्म्मभूमिषु मनुष्यत्वेन तिर्यक्सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियत्वेन वा उत्पादाभावादपान्तराले कर्म्मभूमिकेषु मृत्वोत्पादाभिधानं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, अकर्म्मभूमेः कर्म्मभूमिषु संहृत्यान्तर्मुहूर्त्तानन्तरं तथाविधबुद्धिपरावर्त्तादिभावतो भूयस्तत्रैव नयनसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एतावतः कालादूर्द्ध्वमकर्मभूमिषूत्पत्तिवत् संहरणस्यापि नियोगतो भावात् । एवं हैमवतैरण्यवतादिष्वप्यकर्म्मभूमिषु जन्मतः संहरणतश्च जघन्यत

उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं यावदन्तरद्वीपकाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषवक्तव्यता ॥ सम्प्रति देवपुरुषाणामन्तरप्रतिपादनार्थमाह—'देवपुरिसस्स णं भंते!' इत्यादि, देवपुरुषस्य भदन्त! कालतः कियच्चिरमन्तरं भवति ?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, देवभवाच्च्युत्वा गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येषूत्पद्य पर्याप्तिसमाप्त्यनन्तरं तथाविधाध्यवसायमरणेन भूयोऽपि कस्यापि देवत्वेनोत्पादसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवमसुरकुमारादारभ्य निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावत्सहस्रारकल्पदेवपुरुषस्यान्तरं, आनतकल्पदेवस्यान्तरं जघन्येन वर्षपृथक्त्वं, कस्मादेतावदिहान्तरमिति चेदुच्यते इह यो गर्भस्थः सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तः स शुभाध्यवसायोपेतो मृतः सन् आनतकल्पादारतो ये देवास्तेषूत्पद्यते नानतादिषु, तावन्मात्रकालस्य तद्योग्याध्यवसायविशुद्ध्यभावात्, ततो य आनतादिभ्यश्च्युतः सन् भूयोऽप्यानतादिषूत्पत्स्यते स नियमाच्चारित्रमवाप्य, चारित्रं चाष्टमे वर्षे, तत उक्तं जघन्यतो वर्षपृथक्त्वम्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवं प्राणतारणाच्युतकल्पग्रैवेयकदेवपुरुषाणामपि प्रत्येकमन्तरं जघन्यत उत्कर्षतश्च वक्तव्यम्, अनुत्तरोपपातिककल्पातीतदेवपुरुषस्य जघन्यतोऽन्तरं वर्षपृथक्त्वमुत्कर्षतः सङ्ख्येयानि सागरोपमाणि सातिरेकाणि, तत्र सङ्ख्येयानि सागरोपमाणि तदन्यवैमानिकेषु सङ्ख्येयवारोत्पत्त्या, सातिरेकाणि मनुष्यभवैः, तत्र सामान्याभिधानेऽप्येतदपराजितान्तमवगन्तव्यं, सर्वार्थसिद्धे सकृद्देवोत्पादतस्तत्रान्तरासम्भवात्, अन्ये त्वभिदधति—भवनवासिन आरभ्य आईशानादमरस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, सनत्कुमारादारभ्यासहस्राराच्च नव दिनानि, आनतकल्पादारभ्याच्युतकल्पं यावन्नव मासाः, नवसु ग्रैवेयकेषु सर्वार्थसिद्धमहाविमानवर्जेष्वनुत्तरविमानेषु च नव वर्षाणि, ग्रैवेयकान् यावत् सर्वत्राप्युत्कर्षतो वनस्पतिकालः, विजयादिषु चतुर्षु महाविमानेषु द्वे सागरोपमे, उक्तञ्च—"आईसाणादमरस्स

१ आईशानादन्तरममराणां हीनं मुहूर्त्तान्त । आ सहस्रारात् अच्युतात् अनुत्तरात् दिनमासवर्षनवकम् ॥ १ ॥ स्थावरकाल उत्कृष्टः सर्वार्थे द्वितीयो नोत्पादः । द्वे सागरोपमे विजयादिषु.

अंतरं हीणयं मुहुत्तंतो । आसहसारे अच्चुयणुत्तरदिणमासवासनव ॥ १ ॥ थावरकालुक्कोसो सव्वट्ठे बीयओ न उववाओ । दो अ-यरा विजयादिसु" इति ॥ तदेवमुक्तमन्तरं, साम्प्रतमल्पबहुत्वं वक्तव्यं, तानि च पञ्च, तद्यथा—प्रथमं सामान्यालपबहुत्वं, द्वितीयं त्रिविधतिर्यक्पुरुषविषयं, तृतीयं त्रिविधमनुष्यपुरुषविषयं, चतुर्थं चतुर्विधदेवपुरुषविषयं, पञ्चमं मिश्रपुरुषविषयं, तत्र प्रथमं तावदभिधित्सुराह—

अप्पाबहुयाणि जहेवित्थीणं जाव एतेसि णं भंते ! देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणियदेवपुरिसा भवणवइदेवपुरिसा असंखे० वाणमंतरदेवपुरिसा असंखे० जोतिसिया देवपुरिसा संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमकाणं अकम्मभूमकाणं अंतरदिव० देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमन्तराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं सोधम्माणं जाव सव्वट्ठसिद्धगाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा बहुगा वा जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगमणुस्सपुरिसा देवकुरूत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्ज० हरिवासरम्मगवासअक० दोवि संखेज्जगुणा हेमवतहेरण्णवतवासअकम्म० दोवि संखि० भरहेरवतवासकम्मभूमगमणु० दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभू० दोवि संखे० अणुत्तरोववा-

तियदेवपुरिसा असंखि० उवरिमगेविज्जदेवपुरिसा संखेज्ज० मज्झिमगेविज्जदेवपुरिसा संखेज्ज० हेट्ठिमगेविज्जदेवपुरिसा संखे० अच्चुयकप्पे देवपुरिसा संखे०, जाव आणतकप्पे देवपुरिसा संखेज्ज० सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखे० महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखे० जाव माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखे० सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असं० ईसाणकप्पे देवपुरिसा असंखे० सोधम्मे कप्पे देवपुरिसा संखे० भवणवासिदेवपुरिसा असंखे० खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा असंखे० थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० जलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा असंखे० वाणमंतरदेवपुरिसा संखे०, जोतिसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा ॥ (सू० ५६)

'पुरिसाणं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो देवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तिर्यग्योनिकपुरुषाणां यथा तिर्यग्योनिकस्त्रीणां मनुष्यपुरुषाणां यथा मनुष्यस्त्रीणामल्पबहुत्वं (तथा) वक्तव्यं। सम्प्रति देवपुरुषाणामल्पबहुत्वमाह—सर्वस्तोका अनुत्तरोपपातिकदेवपुरुषाः, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्य उपरितनग्रैवेयकदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिमानत्वात्, कथमेतदवसेयमिति चेदुच्यते—विमानबाहुल्यात्, तथाहि—अनुत्तरदेवानां पञ्च विमानानि, विमानशतं तूपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे, प्रतिविमानं चासङ्ख्येया देवाः, यथा चाधोऽधोवर्त्तीनि विमानानि तथा तथा देवा अपि प्राचुर्येण लभ्यन्ते, ततोऽवसी-

यते—अनुत्तरविमानवासिदेवपुरुषापेक्षया बृहत्तरक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा उपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे देवपुरुषाः (संख्येयगुणा) एवमुत्तरत्रापि भावना विधेया, तेभ्यो मध्यमग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यच्युतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यारणकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, यद्यप्यारणाच्युतकल्पौ समश्रेणीकौ समविमानसङ्ख्याकौ च तथाऽपि कृष्णपाक्षिकास्तथास्वाभाव्यात्प्राचुर्येण दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते । अथ के ते कृष्णपाक्षिकाः ?, उच्यते; इह द्वये जीवाः, तद्यथा—कृष्णपाक्षिकाः शुक्लपाक्षिकाश्च, तत्र येषां किञ्चिदूनोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तः संसारस्ते शुक्लपाक्षिकाः, इतरे दीर्घसंसारभाजिनः कृष्णपाक्षिकाः, उक्तञ्च—“जेसिंमवड्ढो पुग्गलपरियट्टो सेसओ य संसारो । ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण कण्हपक्खीया ॥ १ ॥” अत एव स्तोकाः शुक्लपाक्षिकाः, अल्पसंसाराणां स्तोकानामेव सम्भवात्, बहवः कृष्णपाक्षिकाः, दीर्घसंसाराणामनन्तानन्तानां भावात्, अथ कथमेतदवसातव्यं यथा कृष्णपाक्षिकाः प्राचुर्येण दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते, उच्यते, तथास्वाभाव्यात्, तच्च तथास्वाभाव्यमेवं पूर्वाचार्यैर्युक्तिभिरुपबृंहितं—कृष्णपाक्षिकाः खलु दीर्घसंसारभाजिन उच्यन्ते, दीर्घसंसारभाजिनश्च बहुपापोदयात्, बहुपापोदयाश्च क्रूरकर्माणः, क्रूरकर्माणश्च प्रायस्तथास्वाभाव्याद् तद्भवसिद्धिका अपि दक्षिणस्यां दिशि समुत्पद्यन्ते; यत उक्तम्—“पायमिह कूरकम्मा भवसिद्धीयावि दाहिणिल्लेसु । नेरइयतिरियमणुयासुराइठाणेसु गच्छंति ॥ १ ॥” ततो दक्षिणस्यां दिशि प्राचुर्येण कृष्णपाक्षिकाणां सम्भवादुपपद्यते—अच्युतकल्पदेवपुरुषापेक्षयाऽऽर-

---

१ येषामपार्धः पुद्गलपरावर्त्तः शेष एव संसारः । ते शुक्लपाक्षिकाः खलु अधिके पुनः कृष्णपाक्षिकाः ॥ १ ॥ २ प्राय इह क्रूरकर्माणो भवसिद्धिका अपि दाक्षिणात्येषु । नैरयिकतिर्यङ्मनुजासुरादिस्थानेषु गच्छन्ति ॥ १ ॥

णकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि प्राणतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यानतकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, अत्रापि प्राणतकल्पापेक्षया सङ्ख्येयगुणत्वं कृष्णपाक्षिकाणां दक्षिणस्यां दिशि प्राचुर्येण भावात्, एते च सर्वेऽप्यनुत्तरविमानवास्यादय आनतकल्पवासिपर्यन्तदेवपुरुषाः प्रत्येकं क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणा द्रष्टव्याः, "[1]आणयपाणयमाई पल्लस्सासंखभागो उ" इति वचनात्, केवलमसङ्ख्येयो भागो विचित्र इति परस्परं यथोक्तं सङ्ख्येयगुणत्वं न विरुध्यते, आनतकल्पदेवपुरुषेभ्यः सहस्रारकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिक्याः श्रेणेरसङ्ख्येयतमे भागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्योऽपि महाशुक्रकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरश्रेण्यसङ्ख्येयभागाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, कथमेतत्प्रत्येयमिति चेदुच्यते—विमानबाहुल्यात्, तथाहि—षट् सहस्राणि विमानानां सहस्रारकल्पे चत्वारिंशत्सहस्राणि महाशुक्रे, अन्यच्चाधोविमानवासिनो देवा बहुबहुतराः स्तोकस्तोकतरा उपरितनोपरितनविमानवासिनस्तत उपपद्यन्ते सहस्रारकल्पदेवपुरुषेभ्यो महाशुक्रकल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि लान्तककल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि ब्रह्मलोककल्पवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भूयोबृहत्तमश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भूयस्तरबृहत्तमनभःश्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्यः सनत्कुमारकल्पदेवा असङ्ख्येयगुणाः, विमानबाहुल्यात्, तथाहि—द्वादश शतसहस्राणि सनत्कुमारकल्पे. विमानानामष्टौ शतसहस्राणि माहेन्द्रकल्पे अन्यच्च दक्षिणदिग्भागवर्त्ती सनत्कुमारकल्पो माहेन्द्रकल्पश्चोत्तरदिग्वर्त्ती दक्षिणस्यां च दिशि बहवः

१ आनतप्राणतादयः पल्योपमस्यासङ्ख्यो भागस्तु

समुत्पद्यन्ते कृष्णपाक्षिकाः, तत उपपद्यन्ते माहेन्द्रकल्पात्सनत्कुमारकल्पे देवा असङ्ख्येयगुणाः, एते च सर्वेऽपि सहस्रारकल्पवासिदे-
वादयः सनत्कुमारकल्पवासिदेवपर्यन्ताः प्रत्येकं स्वस्थाने चिन्त्यमाना घनीकृतलोकैकश्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणा द्र-
ष्टव्याः, केवलं श्रेण्यसङ्ख्येयभागोऽसङ्ख्येयभेदभिन्नस्तत इत्थमसङ्ख्येयगुणतयाऽल्पबहुत्वमभिधीयमानं न विरोधभाक्, सनत्कुमार-
कल्पदेवपुरुषेभ्य ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशिसम्बन्धिनि द्वितीये वर्गमूले तृतीयेन वर्गमूलेन
गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्सङ्ख्याकासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो
भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यः सौधर्मकल्पवासिदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, विमानबाहुल्यात्, तथाहि—अष्टाविंशतिः शतसहस्राणि
विमानानामीशानकल्पे द्वात्रिंशच्छतसहस्राणि सौधर्म्मकल्पे, अपि च दक्षिणदिग्वर्त्ती सौधर्म्मकल्प ईशानकल्पश्चोत्तरदिग्वर्त्ती, दक्षि-
णस्यां च दिशि बहवः कृष्णपाक्षिका उत्पद्यन्ते, तत ईशानकल्पवासिदेवपुरुषेभ्यः सौधर्मकल्पवासिदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, नन्वियं
युक्तिः सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोरप्युक्ता, परं तत्र माहेन्द्रकल्पापेक्षया सनत्कुमारकल्पे देवा असङ्ख्येयगुणा उक्ता इह तु सौधर्मे कल्पे
सङ्ख्येयगुणास्तदेतत्कथम्?, उच्यते, तथावस्तुस्वाभाव्यात्, एतच्चावसीयते प्रज्ञापनादौ सर्वत्र तथाभणनात्, तेभ्योऽपि भवनवासि-
देवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः सम्बन्धिनि प्रथमे वर्गमूले द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिरुप-
जायते तावत्सङ्ख्याकासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाण-
त्वात्, तेभ्यो व्यन्तरदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन्
प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यः सङ्ख्येयगुणा ज्योतिष्कदेवपुरुषाः, षट्पञ्चाशदधिकशतद्वया-

ङ्गुलप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात् ॥ सम्प्रति पञ्चममल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषाः, क्षेत्रस्य स्तोकत्वात्, तेभ्योऽपि देवकुरूत्तरकुरुमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्य बहुत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्यातिबहुत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य समानत्वात्, तेभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवताकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रस्याल्पत्वेऽप्यल्पस्थितिकतया प्राचुर्येण लभ्यमानत्वात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, अजितस्वामिकाले उत्कृष्टपदे (इव) स्वभावत एव भरतैरावतेषु [च] मनुष्यपुरुषाणामतिप्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने च द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, क्षेत्रस्य तुल्यत्वात्, तेभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्मभूमकमनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रबाहुल्यादजितस्वामिकाले इव स्वभावत एव मनुष्यपुरुषाणां प्राचुर्येण सम्भवात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽनुत्तरोपपातिकदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, क्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागवर्त्याकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तदनन्तरमुपरितनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा मध्यमग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा अधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटदेवपुरुषा अच्युतकल्पदेवपुरुषा आरणकल्पदेवपुरुषाः प्राणतकल्पदेवपुरुषा आनतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, भावना प्रागिव, तदनन्तरं सहस्रारकल्पदेवपुरुषा लान्तककल्पदेवपुरुषा ब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषा माहेन्द्रकल्पदेवपुरुषाः सनत्कुमारकल्पदेवपुरुषा ईशानकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषेभ्यो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, भावना सर्वत्रापि प्रागिव, तेभ्यः खचरतिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्,

तेभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्रापि प्रागिव, तेभ्योऽपि वानमन्तरदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, सङ्ख्येययोजनकोटीप्रमाणैकप्रादेशिकश्रेणिमात्राणि खण्डानि यावन्त्येकस्मिन् प्रतरे भवन्ति तेषां यावान् द्वात्रिंशत्तमो भागस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो ज्योतिष्कदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिः प्रागेवोक्ता ॥

पुरिसवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवतियं कालं बंधठ्ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अठ्ठ संवच्छराणि, उक्को० दस सागरोवमकोडाकोडीओ, दसवाससयाइं अबाहा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ ॥ पुरिसवेदे णं भंते! किंपकारे पण्णत्ते?, गोयमा! वणदवग्गिजालसमाणे पण्णत्ते, सेत्तं पुरिसा ॥ (सू० ५७)

पुरुषवेदस्थितिर्जघन्यतोऽष्टौ संवत्सराणि, एतन्न्यूनस्य तन्निबन्धनविशिष्टाध्यवसायाभावतो जघन्यत्वेनासम्भवात्, उत्कर्षतो दश सागरोपमकोटीकोटयः, दश वर्षशतान्यबाधा, अबाधोना कर्म्मस्थितिः कर्मनिषेकः, अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ तथा पुरुषवेदो भदन्त! किंप्रकारः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! दवाग्निज्वालासमानः, प्रारम्भे तीव्रमदनदाह इति भावः, प्रज्ञप्तः ॥ व्याख्यातः पुरुषाधिकारः, सम्प्रति नपुंसकाधिकारप्रस्तावः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

से किं तं णपुंसका?, णपुंसका तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—नेरइयनपुंसका तिरिक्खजोणियनपुंसका मणुस्सजोणियणपुंसका ॥ से किं तं नेरइयनपुंसका?, नेरइयनपुंसका सत्तविधा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसका सक्करप्पभापुढविनेरइयनपुंसका जाव अधेसत्तमपुढविनेरइयणपुं-

सका, से तं नेरइयनपुंसका ॥ से किं तं तिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा–एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका, बेइंदि० तेइंदि० चउ० पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका ?, २ पञ्चविधा पण्णत्ता, तं० पु० आ० ते० वा० व० से तं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ॥ से किं तं बेइंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ अणेगविधा पण्णत्ता०, से तं बेइंदियतिरिक्खजोणिया, एवं तेइंदियावि, चउरिंदियावि ॥ से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा–जलयरा थलयरा खहयरा । से किं तं जलयरा ?, २ सो चेव पुव्वुत्तभेदो आसालियवज्जितो भाणियव्वो, से तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका॥ सो किं तं मणुस्सनपुंसका ?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा–कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवका, भेदो जाव भा० ॥ (सू० ५८)

२प्रतिपत्तौ पुरुषवेद स्थिति-प्रकारौ सू० ५७ नपुंसक-भेदाः सू० ५८

'से किं तं नपुंसगा' इत्यादि, अथ के ते नपुंसका ?, नपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–नैरयिकनपुंसकास्तिर्यग्योनिकनपुंसका मनुष्यनपुंसकाश्च ॥ नैरयिकनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते नैरयिकनपुंसकाः ?, पृथ्वीभेदेन सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकनपुंसकाः शर्कराप्रभापृथ्वीनैरयिकनपुंसकाः यावदधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, उपसंहारमाह—'से तं नेरइयनपुंसका' ॥ सम्प्रति तिर्यग्योनिकनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम्, भगवानाह–तिर्यग्योनिकनपुंसकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यावत्पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः ॥

एकेन्द्रियनपुंसकप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकास्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका वायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः, उपसंहारमाह—'सेत्तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका' ॥ द्वीन्द्रियनपुंसकप्रतिपादनार्थमाह—'बेइंदिए'त्यादि, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका भदन्त! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! अनेकविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—"पुलाकिमिया" इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावच्चतुरिन्द्रियभेदपरिसमाप्तिः ॥ पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका भदन्त! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च, एवं च प्राग्वत्सप्रभेदा वक्तव्याः, उपसंहारमाह—'से तं पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसगा'। 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते मनुष्यनपुंसकाः?, मनुष्यनपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमका अकर्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च, एतेऽपि प्राग्वत्सप्रभेदा वक्तव्याः ॥ उक्तो भेदः, सम्प्रति स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

णपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ॥ नेरइयनपुंसगस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० दसवाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, सव्वेसिं ठिती भाणियव्वा जाव अधेसत्तमापुढविनेरइया। तिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिती प०, गोयमा!, जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसक० जह० अंतो० उक्को० बावीसं वाससह-

स्साइं, पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?, जह० अंतो० उक्को० बावीसं वाससहस्साइं, सव्वेसिं एगिंदियणपुंसकाणं ठिती भाणियव्वा, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियणपुंसकाणं ठिती भाणितव्वा। पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, एवं जलयरतिरिक्खचउप्पदथलयरउरगपरिसप्पभुयगपरिसप्पखहयरतिरिक्ख० सव्वेसिं जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी। मणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडी, धम्मचरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। कम्मभूमगभरहेरवयपुव्वविदेहअवरविदेहमणुस्सणपुंसकस्सवि तहेव, अकम्मभूमगमणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जम्मणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० अंतोमु० साहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, एवं जाव अंतरदीवकाणं॥ णपुंसए णं भंते! णपुंसए त्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्को० तरुकालो। णेरइयणपुंसए णं भंते!, २ गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, एवं पुढवीए ठिती भाणियव्वा। तिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते! ति०?, २ गोयमा! जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं एगिंदियणपुंसकस्स णं, वणस्सतिकाइयस्सवि एवमेव,

सेसाणं जह० अंतो० उक्को० असंखिज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणिओसप्पिणीओ कालतो, खेत्तओ असंखेज्जा लोया । बेइंदियतेइंदियचउरिंदियनपुंसकाण य जह० अंतो० उक्को० संखेज्जं कालं । पंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसए णं भंते!?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिपुहुत्तं । एवं जलयरतिरिक्खचउप्पदथलचरउरगपरिसप्पभुयगपरिसप्पमहोरगाणवि । मणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० पुव्वकोडिपुहुत्तं, धम्मचरणं पडुच्च जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी । एवं कम्मभूमगभरहेरवयपुव्वविदेहअवरविदेहेसुवि भाणियव्वं। अकम्मभूमकमणुस्सणपुंसए णं भंते! जम्मणं (पडुच्च) जह० अंतो० उक्को० मुहुत्तपुहुत्तं, साहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। एवं सव्वेसिं जाव अंतरदीवगाणं ॥ णपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं । णेरइयणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, जह० अंतो० उक्को० तरुकालो, रयणप्पभापुढवीनेरइयणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० तरुकालो, एवं सव्वेसिं जाव अधेसत्तमा । तिरिक्खजोणियणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं। एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकस्स जह० अंतो० उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं, पुढविआउतेउवाऊणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सइकालो ।

वणस्सतिकाइयाणं जह० अंतो० उक्को० असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया, सेसाणं बेइंदियादीणं जाव खहयराणं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो। मणुस्सणपुंसकस्स खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, धम्मचरणं पडुच्च जह० एगं समयं उक्को० अणंतं कालं जावअवड्डपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं कम्मभूमकस्सावि भरतेरवतस्स पुव्वविदेहअवरविदेहकस्सवि। अकम्मभूमकमणुस्सणपुंसकस्स णं भंते! केवतियं कालं०?, जम्मणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, संहरणं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो एवं जाव अंतरदीवगत्ति ॥ (सू० ५९)

'नपुंसगस्स णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरमन्तर्मुहूर्त्तं तिर्यग्मनुष्यापेक्षया द्रष्टव्यं, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सप्तमपृथिवीनारकापेक्षया ॥ तदेवं सामान्यतः स्थितिरुक्ता, सम्प्रति विशेषतस्तां विचिचिन्तयिषुः प्रथमतः सामान्यतो विशेषतश्च नैरयिकनपुंसकविषयामाह—'नेरइयनपुंसगस्स ण'मित्यादि, सामान्यतो नैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, विशेषचिन्तायां रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षत एकं सागरोपमं शर्करापृथिवीनैरयिकनपुंकसस्य जघन्यत एकं सागरोपममुत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्त पङ्कप्रभापृथवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश धूमप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश तमःप्रभापृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वावि-

२ प्रतिपत्तौ नपुंसकस्थित्यन्तरे सू० ५९

शतिः अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकस्य जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, क्वचिदतिदेशसूत्रं 'जहा पण्णवणाए ठिइपदे तहे' त्यादि, तत्राप्येवमेवातिदेशव्याख्याऽपि कर्त्तव्या । सामान्यतस्तिर्यग्योनिकनपुंसकस्य स्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, सामान्यत एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि, विशेषचिन्तायां पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि अप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सप्त वर्षसहस्राणि तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि रात्रिन्दिवानि वातकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि वर्षसहस्राणि वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो दश वर्षसहस्राणि । द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वादश वर्षाणि । त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि । चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः षण्मासाः । सामान्यतः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, विशेषचिन्तायां जलचरस्य स्थलचरस्य खचरस्यापि पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी ॥ सामान्यतो मनुष्यनपुंसकस्यापि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, कर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी, 'धर्मचरणं' बाह्यवेषपरिकरितप्रव्रज्याप्रतिपत्तिमङ्गीकृत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्ध्वं मरणादिभावात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, संवत्सराष्टकादूर्द्ध्वं प्रतिपद्याजन्मपालनात्, भरतैरावतकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य च क्षेत्रं धर्म्मचरणं च प्रतीत्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैवमेव वक्तव्यम् । अकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य

जन्म प्रतीत्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेणाप्यन्तर्मुहूर्त्तम्, अकर्म्मभूमौ हि मनुष्या नपुंसकाः संमूर्च्छिमा एव भवन्ति, न गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, युगलधर्मिणां नपुंसकत्वाभावात्, संमूर्च्छिमाश्च जघन्यत उत्कर्षतो वाऽन्तर्मुहूर्त्तायुषः, केवलं जघन्यादुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तं बृहत्तरमवसेयं, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, संहरणादूर्ध्वमामरणान्तमवस्थानसम्भवात्, उत्कर्षतो देशोनता च पूर्वकोट्या गर्भान्निर्गतस्य संहरणसम्भवात्, एवं विशेषचिन्तायां हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य अन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसकस्य च जन्म संहरणं च प्रतीत्यैवमेव वक्तव्यम् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—'णपुंसगे णं भंते !' इत्यादि, नपुंसको भदन्त ! नपुंसक इत्यादि, सामान्यतस्तद्वेदापरित्यागेन कालतः कियच्चिरं भवति ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो वनस्पतिकालं, तत्रैकसमयता उपशमश्रेणिसमाप्तौ सत्यामवेदकत्वे सति उपशमश्रेणीतः प्रतिपततो नपुंसकवेदोदयसमयानन्तरं कस्यचिन्मरणात्, तथा मृतस्य चावश्यं देवोत्पादे पुंवेदोदयभावात्, वनस्पतिकालः—आवलिकासङ्ख्येयभागगतसमयराशिप्रमाणासङ्ख्येयपुद्गलपरावर्त्तप्रमाणः । नैरयिकनपुंसककायस्थितिचिन्तायां यदेव सामान्यतो विशेषतश्च स्थितिमानं जघन्यत उत्कर्षतश्चोक्तं तदेवावसातव्यं, भवस्थितिव्यतिरेकेण तत्रान्यस्याः कायस्थितेरसम्भवात् । सामान्यतस्तिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितिचिन्तायां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा गत्यन्तरे वेदान्तरे वा संक्रमात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, विशेषचिन्तायामेकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितावपि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं भावना प्राग्वत्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालो यथोदितरूपः, तत्रापि विशेषचिन्तायां पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयकालोऽसङ्ख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिणीप्रमाणः, तथा चाह—"उक्कोसेणमसंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पि-

णीओसप्पिणीओ कालतो, खेत्ततो असंखिज्जा लोगा" एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिककायस्थितिष्वपि वक्तव्यं, वनस्पतिकायि-
ककायस्थितौ तथा वक्तव्यं यथा सामान्यत एकेन्द्रियकायस्थितौ । द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्क-
र्षतः सङ्ख्येयः कालः, स च सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि प्रतिपत्तव्यः । एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थित्योरपि वक्त-
व्यम् । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसककायस्थितौ जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वं, तच्च निरन्तरं सप्तभवान् पूर्वकोट्यायुषो
नपुंसकत्वेनानुभवतो वेदितव्यं, तत उर्ध्वं त्ववश्यं वेदान्तरे विलक्षणभवान्तरे वा संक्रमात्, एवं जलचरस्थलचरखचरसामान्यतो मनु-
ष्यनपुंसककायस्थितिष्वपि वेदितव्यं, कर्मभूमकमनुष्यनपुंसककायस्थितौ क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतः पूर्वकोटीपृथक्त्वं
भावना प्रागिव, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, अत्रापि भावना पूर्ववत् । एवं भरतैरावतकर्म्मभूम-
कमनुष्यनपुंसककायस्थितौ पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसककायस्थितौ च वाच्यं, सामान्यतोऽकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसककाय-
स्थितिचिन्तायां जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावत्यपि कालेऽसकृदुत्पादात्, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तपृथक्त्वं, तत ऊर्द्ध्वं तत्र तथोत्पादा-
भावात्, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्ध्वं मरणादिभावात् उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी । एवं हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्य-
कवर्षदेवकुरूत्तरकुर्वन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसककायस्थितिष्वपि वक्तव्यम् ॥ तदेवमुक्ता कायस्थितिः, साम्प्रतमन्तरमभिधित्सुरिदमाह—
'नपुंसगस्स ण'मित्यादि, नपुंसकस्य णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, नपुंसको भूत्वा नपुंसकत्वात्प-
रिभ्रष्टः पुनः कियता कालेन नपुंसको भवतीत्यर्थः, भगवानाह—गौतम! जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता पुरुषादिकालेन व्यवधानात्,
उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, पुरुषादिकालस्यैतावत एव सम्भवात्, तथा चात्र सङ्ग्रहणिगाथा—"इत्थिनपुंसा संचि-

ट्ठणेसु-पुरिसंतरे य समओ उ। पुरिसनपुंसा संचिट्ठणंतरे सागर पुहुत्तं ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—संचिट्ठणा नाम सातत्येनावस्थानं, तत्र स्त्रिया नपुंसकस्य च सातत्येनावस्थाने पुरुषान्तरे च जघन्यत एकः समय. तथा यथा प्रागभिहितम्—"इत्थीए णं भंते ! इत्थीत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! एगेणं आदेसेणं जह० एगं समयं" इत्यादि, तथा—नपुंसगे णं भंते! नपुंसगत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जह० एक्कं समयं" इत्यादि, तथा—"पुरिसस्स णं भंते! अंतरं कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं" इत्यादि। तथा पुरुषस्य नपुंसकस्य यथाक्रमं संचिट्ठणा—सातत्येनावस्थानमन्तरं चोत्कर्षतः 'सागरपृथक्त्वं' पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् सागरोपमशतपृथक्त्वं, तथा च प्रागभिहितम्—"पुरिसे णं भंते! पुरिसेत्ति कालतो कियच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं" नपुंसकान्तरोत्कर्षप्रतिपादकं चेदमेवाधिकृतं तत्सूत्रमिति। तथा सामान्यतो नैरयिकनपुंसकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सप्तमनरकपृथिव्या उद्धृत्य तन्दुलमत्स्यादिभवेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः सप्तमनरकपृथिवीगमनस्य श्रवणात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, नरकभवादुद्धृत्य पारम्पर्येण निगोदेषु मध्ये गत्वाऽनन्तं कालमवस्थानात्, एवं विशेषचिन्तायां प्रतिपृथिव्यपि वक्तव्यं। तथा सामान्यचिन्तायां तिर्यग्योनिकनपुंसकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं, सातिरेकत्वभावना प्रागिव, विशेषचिन्तायां सामान्यत एकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्यान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं तावता द्वीन्द्रियादिकालेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे, सङ्ख्येयवर्षाणि त्रसकायस्थितिकालस्य एकेन्द्रियत्वव्यवधायकस्योत्कर्षतोऽप्येतावत एव सम्भवात्। पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः। एवमप्कायिकतेजःकायिकवायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानामपि वक्तव्यं। वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकस्य जघन्य-

तोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं यावत्, स चासङ्ख्येयः कालोऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, किमुक्तं भवति?—असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशानां प्रतिसमयमेकैकापहारे यावत्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो भवन्ति तावन्त इत्यर्थः, वनस्पति-भवात्प्रच्युतस्यान्यत्रोत्कर्षत एतावन्तं कालमवस्थानसम्भवात्, तदनन्तरं संसारिणो नियमेन भूयो वनस्पतिकायिकत्वेनोत्पादसम्भवात्। द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानां जलचरस्थलचरखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकानां सामान्यतो मनुष्यनपुंसकस्य च जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालो यथोक्तस्वरूपः प्रतिपत्तव्यः, कर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्यान्तरं क्षेत्रं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, धर्म्मचरणं प्रतीत्य जघन्यत एकं समयं यावत्, लब्धिपातस्य सर्वजघन्यस्यैकसामयिकत्वात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेवानन्तं कालं निर्द्धारयति—"अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूण"मिति, एवं भरतैरावतपूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकानामपि क्षेत्रं धर्म्मचरणं च प्रतीत्य जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं प्रत्येकं वक्तव्यम्। अकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकस्य जन्म प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता गत्यन्तरादिकालेन व्यवधानभावात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, संहरणं प्रतीत्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तथैवं—कोऽपि कर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकः केनाप्यकर्म्मभूमौ संहृतः, स च तावत्पुरुषस्थानापन्नत्वादकर्म्मभूमक इति व्यपदिश्यते, ततः कियत्कालानन्तरं तथाविधबुद्धिपरावर्त्तनभावतो भूयोऽपि कर्म्मभूमौ संहृतः, तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरप्यकर्म्मभूमावानीतः, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः। एवं विशेषचिन्तायां हैमवतहैरण्यवतहरिवर्षरम्यकदेवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकानामन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसकस्य च जन्म संहरणं च प्रतीत्य जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यम्॥ तदेवमुक्तमन्तरमधुनाऽल्पबहुत्वमाह—

एतेसि णं भंते! णेरइयणपुंसकाणं तिरिक्खजोणियनपुंसकाणं मणुस्सणपुंसकाण य कयरे कयरे-हिन्तो जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा! सव्वथोवा मणुस्सणपुंसका नेरइयनपुंसगा असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! रयणप्पहापुढविणेरइयणपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइयणपुंसका छट्ठपुढविणेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढविणेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविकाइय जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियपंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराण य कतरे२हिन्तो जाव विसेसाहिया वा ?, गोयमा! सव्वथोवा खहयरतिरिक्खजोणियणपुंसका, थलयरतिरिक्खजोणियनपुंसका संखेज्ज० जलयरतिरिक्खजोणियनपुंसका संखेज्ज० चतुरिंदियतिरि० विसेसाहिया तेइंदियति० विसेसाहिया बेइंदियति० विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खा असंखेज्जगुणा पुढविक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया विसेसाहिया, एवं आउवाउवणस्सतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिणपुंसकाणं अकम्मभूमिणपुंसकाणं अंत-

२प्रतिपत्तौ नपुंसकानामल्पबहुत्वं सू० ६०

रदीवकाण य कतरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?, गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगा दोवि संखेज्जगुणा एवं जाव पुव्वविदेहअवरविदेहकम्म० दोवि संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! णेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसकाणं जाव अधेसत्तमापुढविणेरइयणपुंसकाणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइय० वेइंदियतेइंदियचतुरिंदियपंचिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिकाणं अकम्मभूमिकाणं अंतरदीवकाण य कतरे २ हिंतो अप्पा ४, गोयमा! सव्वत्थोवा अधेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसका छट्ठपुढविनेरइयनपुंसका असंखेज्ज० जाव दोच्चपुढविणेरइयणपुं० असंखे० अंतरदीवगमणुस्सणपुंसका असंखेज्जगुणा, देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमिक० दोवि संखेज्जगुणा जाव पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा, रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसका असंखे० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका असं० थलयर० संखिज्ज० जलयर० संखिज्जगुणा चतुरिंदियतिरिक्खजोणिय० विसेसाहिया तेइंदिय० विसे० बेइंदिय० विसे० तेउक्काइयएगिंदिय० असं० पुढविकाइयएगिंदिय० विसेसाहिया

आउक्काइय० विसे० वाउक्काइय० विसेसा० वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ (सू० ६०)

'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका मनुष्यनपुंसकाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ तद्गतप्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् ॥ सम्प्रति नैरयिकनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, अभ्यन्तरश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि षष्ठपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि पञ्चमपृथ्वीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि चतुर्थपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि तृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, सर्वेषामप्येतेषां पूर्वपूर्वनैरयिकपरिमाणहेतुश्रेण्यसङ्ख्येयभागापेक्षयाऽसङ्ख्येयगुणासङ्ख्येयगुणश्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकेभ्योऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ तद्गतप्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्यैकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, प्रतिपृथिवि च पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्भाविनो नैरयिकाः सर्वस्तोकाः, तेभ्यो दक्षिणदिग्भाविनोऽसङ्ख्येयगुणाः, पूर्वपूर्वपृथिवीगतदक्षिणदिग्भाविभ्योऽप्युत्तरस्यामुत्तरस्यां पृथिव्यामसङ्ख्येयगुणाः पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्भाविनः, तथा चोक्तं प्रज्ञापनायाम्—"दिसाणुवाएणं सव्व-

थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणेहिंतो अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो छट्ठाए तमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविनेरइएहिंतो पंचमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा,दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा । दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढवीनेरइएहिंतो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिमपच्चत्थिमउत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा"। सम्प्रति तिर्यग्योनिकनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं'मित्यादि, सर्वस्तोकाः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यः स्थलचरतिर्यग्योनिकनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगतनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि जलचरतिर्यग्योनिकनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, बृहत्तमप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्योऽपि चतुरिन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, असङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणाकाशप्रदेशराशिप्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यस्त्रीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततरश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततमश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्यस्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अस-

ङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मबादरभेदभिन्नानां तेषामसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणत्वात्, तेभ्यः पृथिवीकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽप्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततरासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्योऽपि वायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, प्रभूततमासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् ॥ अधुना मनुष्यनपुंसकविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपजमनुष्यनपुंसकाः, एते च संमूर्च्छनजा द्रष्टव्याः, गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यनपुंसकानां तत्रासम्भवात्, संहृतास्तु कर्म्मभूमिजास्तत्र भवेयुरपि, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, तद्गतगर्भजमनुष्याणामन्तरद्वीपजगर्भजमनुष्येभ्यः सङ्ख्येयगुणत्वात्, गर्भजमनुष्योच्चाराद्याश्रयेण च संमूर्च्छिममनुष्याणामुत्पादात्, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, एवं तेभ्यो हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः तेभ्योऽपि हैमवतहैरण्यवतवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतवर्षकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, युक्तिः सर्वत्रापि तथैवानुसर्त्तव्या ॥ सम्प्रति नैरयिकतिर्यग्मनुष्यविषयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते !' इत्यादि, सर्वस्तोका अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकाः, तेभ्यः षष्ठपञ्चमचतुर्थतृतीयद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, द्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकेभ्योऽन्तरद्वीपजमनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, एतदसङ्ख्येयगुणत्वं संमूर्च्छनजमनुष्यापेक्षं, तेषां नपुंसकत्वादेतावतां च तत्र संमूर्च्छनसम्भवात्,

२ प्रतिपत्तौ नपुंसकानामल्पबहुत्वं सू० ६०

तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकाः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थानचिन्तायां तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसकेभ्योऽस्यां प्रत्यक्षत उपलभ्यमानायां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः स्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका जलचर-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, जलचरपञ्चेन्द्रियनपुंसकेभ्यश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका विशेषाधिकाः, द्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकेभ्यस्तेजस्कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः पृथिव्यम्बुवायुतिर्यग्यो-निकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, वाय्वेकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसकेभ्यो वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, युक्तिः सर्वत्रापि प्रागुक्तानुसारेण स्वयं भावनीया ॥ सम्प्रति नपुंसकवेदकर्म्मणो बन्धस्थितिं नपुंसकवेदस्य प्रकारं चाह—

णपुंसकवेदस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पन्नत्ता?, गोयमा! जह० सागरोवमस्स दोन्नि सत्तभागा पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागेण ऊणगा उक्को० वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोण्णि य वाससहस्साइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्माणिसेगो। णपुंसकवेदे णं भंते! किंपगारे पण्णत्ते?, गोयमा! महाणगरदाहसमाणे पण्णत्ते समणाउसो!, से तं णपुंसका ॥ (सू० ६१)

'नपुंसकवेयस्स णं भंते! कम्मस्स' इत्यादि, प्राग्वद्भावनीयं, नवरं महानगरदाहसमानमिति सर्वावस्थासु सर्वप्रकारं, मदनदाह(ःसमान)

इत्यर्थः ॥ सम्प्रत्यष्टावल्पबहुत्वानि वक्तव्यानि, तद्यथा—प्रथमं सामान्येन तिर्यक्स्त्रीपुरुषनपुंसकप्रतिबद्धम्, एवमेव मनुष्यप्रतिबद्धं द्वितीयं, देवस्त्रीपुरुषनारकनपुंसकप्रतिबद्धं तृतीयं, सकलसम्मिश्रं चतुर्थं, जलचर्यादिविभागतः पञ्चमं, कर्म्मभूमिजादिमनुष्यस्त्र्यादिविभागतः षष्ठं, भवनवास्यादिदेव्यादिविभागतः सप्तमं, जलचर्यादिविजातीयव्यक्तिव्यापकमष्टमं, तत्र प्रथममभिधित्सुराह—

एतेसि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसकाण य कतरे२हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा पुरिसा इत्थीओ संखि० णपुंसका अणंत०। एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणिइत्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणियपुरिसा तिरिक्खजोणिइत्थीओ असंखे० तिरिक्खजो० णपुंसगा अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सणपुंसकाण य कयरे २हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्व० मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखे० मणुस्सणपुंसका असंखेज्जगुणा ॥ एतेसिणं भंते! देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइयणपुंसका देवपुरिसा असं० देवित्थीओ संखेज्जगुणाओ ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजो० णपुंसकाणं मणुस्सित्थीणं मणुस्सपुरिसाणं मणुस्सनपुंसकाणं देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कतरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा मणुस्सित्थीओ संखे० मणुस्सणपुंसका असं० णेरइयणपुंसका असं० तिरि-

२ प्रतिपत्तौ नपुंसके बन्धस्थितिः प्रकारश्च सू० ६१ वेदानामल्पबहुत्वं सू० ६२

क्खजोणियपुरिसा असं० तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्ज० देवपुरिसा असं० देवित्थियाओ संखि० तिरिक्खजोणियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजो० णपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजो० णपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइय० बेइंदियतिरिक्खजोणिणपुंसकाणं तेइंदिय० चउरिंदिय० पंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं कतरे २ हिंतो जाव विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्ज० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० जलयरतिरिक्खजो० पुरिसा संखि० जलयरतिरिक्खजोणित्थीयाओ संखेज्जगु० खहयरपंचिंदियतिरिक्खजो० णपुंसका असंखे० थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणि० नपुंसगा संखि० जलयरपंचेंदियत्तिरिक्खजोणियनपुंसका संखे० चउरिंदियतिरि० विसेसाहिया तेइंदियणपुंसका विसेसाहिया बेइंदियनपुंसका विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका असं० पुढवि० णपुंसका० विसेसाहिया आउ० विसेसाहिया वाउ० विसेसा० वणप्फति० एगिन्दियणपुंसका अणंतगुणा ॥ एतेसि णं भंते! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमकाणं

अकम्मभूमकाणं अंतरदीवकाणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमाणं अकम्म० अंतरदीविकाण य कयरे २ हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! अंतरदीवगा मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा[ण] य एते णं दुन्नि य तुल्लावि सव्वत्थोवा देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा एते णं दोन्निवि तुल्ला संखे० हरिवासरम्मवासअकम्मभूमकमणुस्सित्थियाउ मणुस्सपुरिसा य एते[सि] णं दोन्निवि तुल्ला संखे० हेमवतहेरण्णवतअकम्मभूमकमणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा[ण] य दोन्वि तुल्ला संखे० भरहेरवतकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० भरहेरवतकम्ममणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० । पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमगमणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० । अंतरदीवगमणुस्सणपुंसका असंखे० देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमकमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा [ए] तहेव जाव पुव्वविदेहकम्मभूमकमणुस्सणपुंसका दोवि संखेज्जगुणा ॥ एतासि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासीणीणं वाणमन्तरीणीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणं जाव वेमाणियाणं सोधम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववातियाणं णेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविणेरइयणपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढविनेरइय० कतरे २ हिंतो अप्पा वा ४?, गोयमा! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववातियदेवपुरिसा उवरिमगेवेज्जदेवपुरिसा संखेज्जगुणा तं चेव जाव आणते कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

२ प्रतिपत्तौ नपुंसके बन्धस्थितिः प्रकारश्च सू० ६१ वेदानामल्पबहुत्वं सू० ६२

अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा, छट्ठीए पुढवीए नेरइय० असंखेज्जगुणा सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा पंचमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा चउत्थीए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा तच्चाए पुढवीए नेरइय० असंखेज्जगुणा माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा दोच्चाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा, इसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, सोधम्मे(कप्पे) देवपुरिसा संखेज्ज० सोधम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखे० भवणवासिदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा भवणवासिदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभापुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ जोतिसियदेवपुरिसा संखेज्जगुणा जोतिसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणा ॥ एतासि णं भंते! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसकाणं पुढविक्काइयएगिंदियति० जो० णपुंसकाणं आउक्काइयएगिंदिय० जो० णपुंसकाणं जाव वणस्सतिकाइयएगिंदियति० जो० णपुंसकाणं बेइंदियति० जो० णपुंसकाणं तेइंदियति० जो० णपुंसकाणं चउरिंदियति० जो० नपुंसकाणं पंचेंदियति०

जो० णपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमियाणं अकम्म० अंतरदीवयाणं मणुस्सणपुंसकाणं कम्मभूमिकाणं अकम्मभूमिकाणं अंतरदीवकाणं देवित्थीणं भवणवासिणीणं वाणमंतरीणीणं जोतिसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाणं सोधम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववातियाणं नेरइयणपुंसकाणं रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढविणेरइयणपुंसकाण य कयरे २ हिन्तो अप्पा वा ४?, गोयमा! अंतरदीवअकम्मभूमकमणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य, एते णं दोवि तुल्ला सव्वत्थोवा, देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सइत्थीओ पुरिसा य एते णं दोवि तुल्ला संखे० एवं हरिवासरम्मगवास० एवं हेमवतहेरण्णवयभरहेरवयकम्मभूमगमणुस्सपुरिसा दोवि संखे० भरहेरवतकम्म० मणुस्सित्थीओ दोवि संखे० पुव्वविदेहअवरविदेहकम्मभूमकमणुस्सपुरिसा दोवि संखे०, पुव्वविदेहअवरविदेहकम्म० मणुस्सित्थियाओ दोवि संखे० अणुत्तरोववातियदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा उवरिमगेवेज्जा देवपुरिसा संखे० जाव आणते कप्पे देवपुरिसा संखे० अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असंखे० छट्ठीए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखे० महासुक्के कप्पे देव० असं० पंचमाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० लंतए कप्पे देवपु० असं० चउत्थीए पुढवीए नेरइ-

यनपुंसका असं० बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असं० तच्चाए पुढवीए नेरइयण० असं० माहिंदे कप्पे देवपु० असंखे० सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असं० दोच्चाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असं० अंतरदीवगअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका असंखे० देवकुरुउत्तरकुरुअकम्मभूमगमणुस्सणपुंसका दोवि संखे० एवं जाव विदेहत्ति, ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असं० ईसाणकप्पे देवित्थियाओ संखे० सोधम्मे कप्पे देवपुरिसा संखे० सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्ज० भवणवासिदेवपुरिसा असंखे० भवणवासिदेवित्थियाओ संखिज्जगुणाओ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असं० खहयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखेज्जगुणा खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० थलयरतिरिक्खजोणियपुरिसा संखे० थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखे० जलयरतिरिक्खपुरिसा संखे० जलयरतिरिक्खजोणित्थियाउ संखे०, वाणमंतरदेवपुरिसा संखे० वाणमंतरदेवित्थियाओ संखे० जोतिसियदेवपुरिसा संखे० जोतिसियदेवित्थियाओ संखे० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियणपुंसा संखे० थलयरणपुंसका संखे० जलयरणपुंसका संखे० चतुरिंदियणपुंसका विसेसाहिया तेइंदिय० विसेसा० बेइंदिय० विसेसा० तेउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणियणपुंसका असं० पुढवी० विसेसा० आऊ० विसेसा० वाऊ० विसेसा० वणप्फतिकाइयएगिंदियतिरिक्खजो० णपुंसका अणंतगुणा ॥ (सू० ६२)

'एयासि णं भंते ! तिरिक्खजोणियइत्थीणं' इत्यादि, सर्वस्तोकास्तिर्यक्पुरुषाः, तेभ्यस्तिर्यक्स्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्नपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रति द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते !'** इत्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषाः सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यो मनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः सप्तविंशतिगुणत्वात्, ताभ्यो मनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः श्रेण्यसङ्ख्येयभागगतप्रदेशराशिप्रमाणत्वात् ॥ सम्प्रति तृतीयमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते ! देवित्थीण'**मित्यादि, सर्वस्तोका नैरयिकनपुंसका अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशौ स्वप्रथमवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवपुरुषा असङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणायां सूचौ यावन्तो नभःप्रदेशास्तावत्प्रमाणासु घनीकृतस्य लोकस्य एकप्रादेशिकीषु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात् ॥ सम्प्रति सकलसन्मिश्रं चतुर्थमल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं'**मित्यादि, सर्वस्तोका मनुष्यपुरुषास्तेभ्यो मनुष्यस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो मनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, अत्र युक्तिः प्रागुक्ता, तेभ्यो नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणा असङ्ख्येयश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यो देवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः प्रभूततरप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणा निगोदजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रति जलचर्यादिविभागतः पञ्चममल्पबहुत्वमाह—**'एयासि णं भंते !'** इत्यादि, सर्वस्तोकाः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकपुरुषाः, तेभ्यः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यः स्थल-

चरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यस्तत्स्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः सङ्ख्येयगुणास्त्रिगुणत्वात्, ताभ्यः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असंख्येयगुणाः, तेभ्यः स्थलचरजलचरतिर्यग्योनिकनपुंसका यथाक्रमं सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रिया यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततस्तेजःकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः पृथिव्यम्बुवायुकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततो वनस्पतिकायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः ॥ सम्प्रति कर्म्मभूमिजादिमनुष्यस्त्र्यादिविभागतः षष्ठमल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते !' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपकमनुष्यस्त्रियोऽन्तरद्वीपकमनुष्यपुरुषाश्च, एते च द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तत्रत्यस्त्रीपुंसानां युगलधर्मोपेतत्वात्, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषाश्च सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्र प्रागेवोक्ता, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, एवं हरिवर्षरम्यकपुरुषस्त्रियो हैमवतहैरण्यवतमनुष्यपुरुषस्त्रियश्च यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ततो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्या द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने परस्परं तुल्याः, तेभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽन्तरद्वीपकमनुष्यनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ततो हरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो हैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका

द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः ॥ सम्प्रति भवनवास्यादिदेव्यादिविभागतः सप्तममल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते! देवित्थीणं भवणवासिणीण'मित्यादि, सर्वस्तोका अनुत्तरोपपातिका देवपुरुषाः, तत उपरितनग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकाधस्तनग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽधःसप्तमपृथिवीनैरयिकनपुंसकसहस्रारमहाशुक्रकल्पदेवपुरुषपञ्चमपृथिवीनैरयिकनपुंसकलान्तककल्पदेवपुरुषचतुर्थपृथिवीनैरयिकनपुंसकब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषतृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकमाहेन्द्रसनत्कुमारकल्पदेवपुरुषद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्य ईशानकल्पदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ततः सौधर्म्मकल्पदेवपुरुषाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि सौधर्म्मकल्पदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, तेभ्यो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो भवनवासिदेव्यः सङ्ख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, ताभ्यो रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वानमन्तरदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो वानमन्तरदेव्यः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो ज्योतिष्काः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो ज्योतिष्कदेवस्त्रियः संख्येयगुणाः, द्वात्रिंशद्गुणत्वात् ॥ सम्प्रति विजातीयव्यक्तिव्यापकमष्टममल्पबहुत्वमाह—'एयासि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका अन्तरद्वीपका मनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषाश्च, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि तुल्याः, युगलधर्मोपेतत्वात्, एवं देवकुरूत्तरकुरुकर्म्मभूमकहरिवर्षरम्यकवर्षाकर्मभूमकहैमवतहैरण्यवताकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रीपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो भरतैरावतकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि

सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, ताभ्यः पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यपुरुषा द्वयेऽपि सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, तेभ्यो पूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यस्त्रियो द्वय्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, सप्तविंशतिगुणत्वात्, स्वस्थाने तु परस्परं तुलयाः, ताभ्योऽनुत्तरोपपातिकोपरितनग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकाधस्तनग्रैवेयकाच्युतारणप्राणतानतकल्पदेवपुरुषा यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततोऽधः-सप्तमषष्ठपृथिवीनैरयिक(न०) सहस्रारकल्पदेवपुरुषमहाशुक्रकल्पदेवपुरुषपञ्चमपृथिवीनैरयिक(न०) लान्तककल्पदेवपुरुषचतुर्थपृथवी-नैरयिकनपुंसकब्रह्मलोककल्पदेवपुरुषतृतीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकमाहेन्द्रकल्पसनत्कुमारकल्पदेवपुरुषद्वितीयपृथिवीनैरयिकनपुंसकान्तर-द्वीपकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, ततो देवकुरूत्तरकुर्वकर्म्मभूमकहरिवर्षरम्यकवर्षाकर्म्मभूमकहैमवतहैरण्यवताकर्मभूमक-भरतैरावतकर्म्मभूमकपूर्वविदेहापरविदेहकर्म्मभूमकमनुष्यनपुंसका यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, स्वस्वस्थानेषु तु द्वये परस्परं तुल्याः, तत ईशानकल्पदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तत ईशानकल्पदेवस्त्रियः सौधर्मकल्पदेवपुरुषाः सौधर्म्मकल्पदेवस्त्रियो यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततो भवनवासिदेवपुरुषा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो भवनवासिदेवस्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकन-पुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः खचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः खचरतिर्यग्योनिकस्त्रियः स्थलचरतिर्यग्योनिकपुरुषाः स्थलचरतिर्यग्योनिक-स्त्रियो जलचरतिर्यग्योनिकपुरुषा जलचरतिर्यग्योनिकस्त्रियो वानमन्तरा देवपुरुषा वानमन्तरदेवस्त्रियो ज्योतिष्कदेवपुरुषा ज्योतिष्क-देवस्त्रियो यथोत्तरं सङ्ख्येयगुणाः, ततः खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः स्थलचरजलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्यो-निकनपुंसकाः क्रमेण सङ्ख्येयगुणाः, ततश्चतुरिन्द्रियत्रीन्द्रियद्वीन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततस्तेजःकायिकैके-न्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका असङ्ख्येयगुणाः, ततः पृथिव्यब्वायुकायिकतिर्यग्योनिकनपुंसका यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततो वनस्पति-

कायिकैकेन्द्रियतिर्यग्योनिकनपुंसका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् ॥ सम्प्रति स्त्रीपुरुपनपुंसकानां भवस्थितिमानं कायस्थितिमानं च क्रमेणाभिधातुकाम आह—

इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! एगेणं आएसेणं जहा पुव्विं भणियं, एवं पुरिसस्सवि नपुंसकस्सवि, संचिट्ठणा पुनरवि तिण्हंपि जहापुव्विं भणिया, अंतरंपि तिण्हंपि जहापुव्विं भणियं तहा नेयव्वं ॥ (सू० ६३)

'इत्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?, इत्यादि, एतत्सर्वं प्रागुक्तवद्भावनीयम्, अपुनरुक्तता च प्राक् स्त्र्यादीनां पृथक् स्वस्वाधिकारे स्थित्यादि प्रतिपादितमिदानीं तु समुदायेनेति ॥ सम्प्रति स्त्रीपुरुपनपुंसकानामल्पबहुत्वमाह—(एयासि णं भंते! इत्थीणं पुरिसाणं नपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४ ?, सव्वथोवा पुरिसा इत्थीओ संखेज्जगुणा नपुंसका अणंतगुणा) 'एयासि णं भंते! इत्थीण'मित्यादि, सर्वस्तोकाः पुरुपाः स्त्र्यादिभ्यो हीनसङ्ख्याकत्वात्, तेभ्यः स्त्रियः सङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो नपुंसका अनन्तगुणाः, एकेन्द्रियाणामनन्तानन्तसङ्ख्योपेतत्वात् । इह पुरुपेभ्यः स्त्रियः सङ्ख्येयगुणा इत्युक्तं, तत्र काः स्त्रियः स्वजातिपुरुपापेक्षया कतिगुणा इति प्रश्नावकाशमाशङ्क्य तन्निरूपणार्थमाह—

तिरिक्खजोणित्थियाओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिगुणाउ तिरूवाधियाओ मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसेहिंतो सत्तावीसतिगुणाओ सत्तावीसयरूवाहियाओ देवित्थियाओ देवपुरिसेहिंतो बत्तीसइगुणाओ बत्तीसइरूवाहियाओ सेत्तं तिविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता

२ प्रतिपत्तौ वेदानां- स्थित्यादिः सू० ६३ अल्पबहुत्वं सू० ६४

॥ तिविहेसु होइ भेयो ठिई य संचिट्ठणंतरऽप्पबहुं । वेदाण य बंधठिई वेओ तह किंपगारो उ ॥ १ ॥ से तं तिविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ॥ (सू० ६४)

'तिरिक्खजोणित्थीओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो' इत्यादि, तिर्यग्योनिकस्त्रियस्तिर्यग्योनिकपुरुषेभ्यस्त्रिगुणास्त्रिरूपाधिकाः, मनुष्यस्त्रियो मनुष्यपुरुषेभ्यः सप्तविंशतिगुणाः सप्तविंशतिरूपाधिकाः, देवपुरुषेभ्यो देवस्त्रियो द्वात्रिंशद्गुणा द्वात्रिंशद्रूपाधिकाः, उक्तं च वृद्धाचार्यैरपि—"तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा । सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥ १ ॥ बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवाणं । देवीओ पण्णत्ता जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥ २ ॥" प्रतिपत्त्युपसंहारमाह—'**सेत्तं तिविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता**' इति ॥ सम्प्रत्यधिकृतप्रतिपत्त्यर्थाधिकारसंग्रहगाथामाह—'**तिविहेसु होइ भेओ**' इत्यादि, त्रिविधेषु वेदेषु वक्तव्येषु भवति प्रथमोऽधिकारो भेदः ततः स्थितिः तदनन्तरं '**संचिट्ठणं**'ति सातत्येनावस्थानं तदनन्तरमन्तरं ततोऽल्पबहुत्वं ततो वेदानां बन्धस्थितिः तदनन्तरं किंप्रकारो वेद इति ॥

इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाजीवाभिगमटीकायां द्वितीया प्रतिपत्तिः समाप्ता ॥ २ ॥

इति वेदत्रैविध्यनिरूपिका द्वितीया प्रतिपत्तिः ॥

तदेवमुक्ता द्वितीया प्रतिपत्तिः, सम्प्रति तृतीयप्रतिपत्त्यवसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—नेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा ॥ (सू० ६५)। से किं तं नेरइया ?, २ सत्तविधा पण्णत्ता, तंजहा—पढमापुढविनेरइया दोच्चापुढविनेरइया तच्चापुढविनेर० चउत्थापुढवीनेर० पंचमापु० नेरइ० छट्ठापु० नेर० सत्तमापु० नेरइया ॥ (सू० ६६)। पढमा णं भंते ! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?, गोयमा ! णामेणं घम्मा गोत्तेणं रयणप्पभा । दोच्चा णं भंते ! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?, गोयमा ! णामेणं वंसा गोत्तेणं सक्करप्पभा, एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, णामाणि इमाणि से लातव्वा(णि), (सेला तईया) अंजणा चउत्थी रिट्ठा पंचमी मघा छट्ठी माघवती सत्तमा, (जाव) तमतमागोत्तेणं पण्णत्ता। (सू० ६७)। इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी केवतिया बाहल्लेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी असिउत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाहा अणुगंतव्वा—आसीतं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च । अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥ १ ॥ (सू० ६८)

'तत्थ जे ते एवमाहंसु चउव्विहा' इत्यादि, 'तत्र' तेषु दशसु प्रतिपत्तिमत्सु मध्ये ये ते आचार्या एवमाख्यातवन्तश्चतुर्विधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमाख्यातवन्तस्तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते

३ प्रतिपत्तौ चतुर्धा जीवाः सप्तधा नारकाः पृथ्वीनां नामगोत्रे बाहल्यं च सू० ६५-६६-६७ ६८

नैरयिकाः?, सूरिराह—नैरयिकाः सप्तविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रथमायां पृथिव्यां नैरयिकाः प्रथमपृथिवीनैरयिका इत्यर्थः, एवं सर्वत्र भावनीयम् ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि नामगोत्रं वक्तव्यं, तत्र नामगोत्रयोरयं विशेषः—अनादिकालसिद्धमन्वर्थरहितं नाम सान्वर्थं तु नाम गोत्रमिति, तत्र नामगोत्रप्रतिपादनार्थमाह—'**इमा णं (पढमा णं) भंते!**' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी 'किंनामा' किमनादिकालप्रसिद्धान्वर्थरहितनामा? 'किंगोत्रा?' किमन्वर्थयुक्तनामा?, भगवानाह—गौतम! नाम्ना घर्म्मेति प्रज्ञप्ता गोत्रेण रत्नप्रभा, तथा चान्वर्थमुपदर्शयन्ति पूर्वसूरयः—रत्नानां प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा रत्नप्रभा रत्नबहुलेति भावः, एवं शेषसूत्राण्यपि प्रतिपृथिवि प्रश्ननिर्वचनरूपाणि भावनीयानि, नवरं शर्कराप्रभादीनामियमन्वर्थभावना—शर्कराणां प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा शर्कराप्रभा, एवं वालुका प्रभा पङ्कप्रभा इत्यपि भावनीयं, तथा धूमस्येव प्रभा यस्याः सा धूमप्रभा, तथा तमसः प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा तमःप्रभा, तमस्तमस्य—प्रकृष्टतमसः प्रभा—बाहुल्यं यत्र सा तमस्तमप्रभा, अत्र केपुचित्पुस्तकेषु सङ्ग्रहणिगाथे—"घम्मा वंसा सेला अंजण रिट्ठा मघा य माघवती। सत्तण्हं पुढवीणं एए नामा उ नायव्वा ॥ १ ॥ रयणा सक्कर वालुय पंका धूमा तमा [य] तमतमा य। सत्तण्हं पुढवीणं एए गोत्ता मुणेयव्वा ॥ २ ॥" अधुना प्रतिपृथिवि बाहुल्यमभिधित्सुराह—'**इमा णं भंते!**' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी कियद्वाहुल्येन प्रज्ञप्ता?, अत्र गोत्रेण प्रश्नो नाम्नो गोत्रं प्रधानतरं प्रधानेन च प्रश्नाद्युपपन्नमिति न्यायप्रदर्शनार्थः, उक्तञ्च—"न हीना वाक् सदा सता"मिति, भगवानाह—'अशीत्युत्तरम्' अशीतियोजनसहस्राभ्यधिकं योजनशतसहस्रं बाहुल्येन प्रज्ञप्ता। एवं सर्वाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं च होइ वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठोत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥ १ ॥"

इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी कतिविधा पण्णत्ता?, गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—खरकंडे पंकबहुले कंडे आवबहुले कंडे ॥ इमीसे णं भंते! रय० पुढ० खरकंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! सोलसविधे पण्णत्ते, तंजहा—रयणकंडे १ वइरे २ वेरुलिए ३ लोहितक्खे ४ मसारगल्ले ५ हंसगब्भे ६ पुलए ७ सोयंधिए ८ जोतिरसे ९ अंजणे १० अंजणपुलए ११ रयते १२ जातरूवे १३ अंके १४ फलिहे १५ रिट्ठे १६ कंडे ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए रयणकंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एगागारे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे। इमीसे णं भंते! रयणप्पभापुढवीए पंकबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एकागारे पण्णत्ते। एवं आवबहुले कंडे कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! एकागारे पण्णत्ते। सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवी कतिविधा पण्णत्ता?, गोयमा! एकागारा पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमा ॥ (सू० ६९)

'इमा णं भंते' इत्यादि इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी 'कतिविधा' कतिप्रकारा कतिविभागा प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! 'त्रिविधा' त्रिविभागा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'खरकाण्ड'मित्यादि, काण्डं नाम विशिष्टो भूभागः, खरं—कठिनं, पङ्कबहुलं ततोऽब्बहुलं चान्वर्थतः प्रतिपत्तव्यं, क्रमश्चैतेषामेवमेव, तद्यथा—प्रथमं खरकाण्डं तदनन्तरं पङ्कबहुलं ततोऽब्बहुलमिति ॥ 'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डं कतिविधं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! 'षोडशविधं' षोडशविभागं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—'रयणे' इति, पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् रत्नकाण्डं तच्च प्रथमं, द्वितीयं वज्रकाण्डं, तृतीयं वैडूर्यकाण्डं, चतुर्थं लोहितकाण्डं,

पञ्चमं मसारगल्लकाण्डं, षष्ठं हंसगर्भकाण्डं, सप्तमं पुलककाण्डम्, अष्टमं सौगन्धिककाण्डं, नवमं ज्योतीरसकाण्डं, दशममञ्जनकाण्डम्, एकादशमञ्जनपुलककाण्डं, द्वादशं रजतकाण्डं, त्रयोदशं जातरूपकाण्डं, चतुर्दशमङ्ककाण्डं, पञ्चदशं स्फटिककाण्डं षोडशं रिष्टरत्नकाण्डं, तत्र रत्नानि—कर्केतनादीनि तत्प्रधानं काण्डं रत्नकाण्डं, वज्ररत्नप्रधानं काण्डं वज्रकाण्डम्, एवं शेषाण्यपि, एकैकं च काण्डं योजनसहस्रबाहल्यम् ॥ 'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां रत्नकाण्डं 'कतिविधं' कतिप्रकारं कतिविभागमिति भावः प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—एकाकारं प्रज्ञप्तं। एवं शेषकाण्डविषयाण्यपि प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि क्रमेण भावनीयानि। एवं पङ्कबहुलाब्बहुलविषयाण्यपि। 'दोच्चा णं भंते' इत्यादि, द्वितीयादिपृथिवीविषयाणि सूत्राणि पाठसिद्धानि ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि नरकावाससङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं एतेणं अभिलावेणं सव्वासिं पुच्छा, इमा गाहा अणुगंतव्वा—तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दसेव तिण्णि य हवंति। पंचूणसयसहस्सं पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥ १ ॥ जाव अहेसत्तमाए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अपतिट्ठाणे ॥ (सू० ७०)। अत्थि णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदधीति वा घणवातेति वा तणुवातेति वा ओवासंतरेति वा?, हंता अत्थि, एवं जाव अहे सत्तमाए ॥ (सू० ७१)

'इमीसे णं भंते' इत्यादि, सुगमं, नवरमियमत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"तीसा य पण्णवीसा पणरस दस चेव सयसहस्साइं। तिण्णेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ १ ॥" अधःसप्तम्यां च पृथिव्यां कालादयो महानरका अप्रतिष्ठानाभिधस्य नरकस्य पूर्वादिक्रमेण, उक्तञ्च—"पुव्वेण होइ कालो अवरेणं अप्पइट्ठ महकालो। रोरू दाहिणपासे उत्तरपासे महारोरू ॥ १ ॥" रत्नप्रभादिषु च तमःप्रभापर्यन्तासु षट्सु पृथिवीषु प्रत्येकं नरकावासा द्विविधाः, तद्यथा—आवलिकाप्रविष्टाः प्रकीर्णकरूपाश्च, तत्र रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रयोदश प्रस्तटाः, प्रस्तटा नाम वेश्मभूमिकाकल्पाः, तत्र प्रथमप्रस्तटे पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु प्रत्येकमेकोनपञ्चाशत् नरकावासाः, चतसृषु विदिक्षु प्रत्येकमष्टचत्वारिंशत्, मध्ये च सीमन्तकाख्यो नरकेन्द्रक, सर्वसङ्ख्यया प्रथमप्रस्तटे नरकावासानामावलिकाप्रविष्टानामेकोननवत्यधिकानि त्रीणि शतानि ३८९, शेषेषु च द्वादशसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं यथोत्तरं दिक्षु विदिक्षु चैकैकनरकावासहानिभावाद् अष्टकाष्टकहीना नरकावासा द्रष्टव्याः, ततः सर्वसङ्ख्यया रत्नप्रभायां पृथिव्यामावलिकाप्रविष्टा नरकावासाश्चतुश्चत्वारिंशच्छतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि ४४३३, शेषास्त्वेकोनत्रिंशल्लक्षाणि पञ्चनवतिसहस्राणि पञ्च शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि २९९५५६७ प्रकीर्णकाः, तथा चोक्तम्—"सत्तट्ठी पंचसया पणनउइसहस्स लक्खगुणतीसं। रयणाए सेढिगया चोयालसया उ तित्तीसं ॥ १ ॥" उभयमीलने त्रिंशल्लक्षा नरकावासानां भवन्ति ३०००००० । शर्कराप्रभायामेकादश प्रस्तटाः, "नरकपटलान्यधोऽधो द्वन्द्वहीनानी"ति वचनात्, तत्र प्रथमे प्रस्तटे चतसृषु दिक्षु षट्त्रिंशद् आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः, विदिक्षु पञ्चत्रिंशत्, मध्ये चैको नरकेन्द्रकः, सर्वसङ्ख्यया द्वे शते पञ्चाशीत्यधिके २८५, शेषेषु तु दशसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, प्रतिदिक्प्रतिविदिक्षु(क् च) एकैकनरकावासहानेः, ततस्तत्र सर्वसङ्ख्ययाऽऽवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः षड्विंशतिशतानि पञ्चनवत्यधिकानि २६९५, शेषाश्चतुर्विंश-

तिलक्षाः सप्तनवतिः सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि २४९७३०५ पुष्पावकीर्णकाः, उक्तञ्च—"सत्ताणउइ सहस्सा चउवीसं लक्ख तिसय पंचऽहिया । बीयाए सेढिगया छव्वीससया उ पणनउया ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चविंशतिर्लक्षा नरकावासानाम् २५००००० । वालुकाप्रभायां नव प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे एकैकस्यां दिशि आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः पञ्चविंशतिः विदिशि चतुर्विंशतिः मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया सप्तनवतं शतं १९७, शेषेषु चाष्टसु प्रस्तटेषु प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकहानिः, तत्र च कारणं प्रागेवोक्तं, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासाश्चतुर्दश शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि १४८५, शेषास्तु पुष्पावकीर्णकाश्चतुर्दश लक्षा अष्टनवतिः सहस्राणि पञ्च शतानि पञ्चदशाधिकानि १४९८५१५, उक्तञ्च—"पंचसया पन्नारा अडनवइसहस्स लक्ख चोद्दस य । तइयाए सेढिगया पणसीया चोद्दससया उ ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चदश लक्षा नरकावासानाम् १५००००० । पङ्कप्रभायां सप्त प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे प्रत्येकं दिशि षोडश षोडश आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः विदिशि पञ्चदश पञ्चदश मध्ये चैको नरकेन्द्रकः सर्वसङ्ख्यया पञ्चविंशतिशतं १२५, शेषेषु षट्सु प्रस्तटेषु पूर्ववत् प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासाः सप्त शतानि सप्तोत्तराणि ७०७, शेषास्तु पुष्पावकीर्णका नव लक्षा नवनवतिः सहस्राणि द्वे शते त्रिनवत्यधिके ९९९२९३, उक्तञ्च—"तेणउया दोण्णि सया नवनउइसहस्स नव य लक्खा य । पंकाए सेढिगया सत्त सया हुंति सत्तहिया ॥ १ ॥" उभयमीलने नरकावासानां दश लक्षाः १०००००० । धूमप्रभायां पञ्च प्रस्तटाः, प्रथमे च प्रस्तटे एकैकस्यां दिशि नव नव आवलिकाप्रविष्टा नरकावासाः, विदिशि अष्टौ अष्टौ मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया एकोनसप्ततिः ६९, शेषेषु चतुर्षु प्रस्तटेषु पूर्ववत्प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्यया तत्रावलिकाप्रविष्टा नरकावासा द्वे शते पञ्चषष्ट्य-

धिके २६५, शेषाः पुष्पावकीर्णका द्वे लक्षे नवनवतिः सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि २९९७३५, उक्तञ्च—"सत्तसया पणतीसा नवनवइ [य] सहस्स दो य लक्खा य। धूमाए सेढिगया पणसट्ठा दो सया होंति ॥ १ ॥" सर्वसङ्ख्यया तिस्रो लक्षाः ३००००० नरकावासानाम् । तमःप्रभायां त्रयः प्रस्तटाः, तत्र प्रथमे प्रस्तटे प्रत्येकं दिशि चत्वारश्चत्वार आवलिकाप्रविष्टा नरकावासा विदिशि त्रयस्त्रयो मध्ये चैको नरकेन्द्रक इति सर्वसङ्ख्यया एकोनत्रिंशत् २९, शेषयोस्तु प्रस्तटयोः प्रत्येकं क्रमेणाधोऽधोऽष्टकाष्टकहानिः, ततः सर्वसङ्ख्ययाऽऽवलिकाप्रविष्टा नरकावासास्त्रिषष्टिः ६३, शेषास्तु नवनवतिः सहस्राणि नव शतानि द्वात्रिंशदधिकानि पुष्पावकीर्णकाः ९९९३२, उक्तञ्च—"नवनउई य सहस्सा नव चेव सया हवंति बत्तीसा । पुढवीए छट्ठीए पइण्णगाणेस संखेवो ॥ १ ॥" उभयमीलने पञ्चोनं नरकावासानां लक्षम् ९९९९५ ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवि घनोदध्याद्यस्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! अस्याः प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधो घनः—स्त्यानीभूतोदक उदधिर्घनोदधिरिति वा घनः—पिण्डीभूतो वातः घनवात इति वा तनुवात इति वा अवकाशान्तरमिति वा ?, अवकाशान्तरं नाम शुद्धमाकाशं, भगवानाह—हन्त! अस्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वाच्यं यावदधःसप्तम्याः ॥

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! सोलस जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! एक्कं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठे । इमीसे णं भंते! रय० पु० पंकबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! चतुरसीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं प-

ण्णत्ते । इमीसे णं भंते! रय० पु० आवबहुले कंडे केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असीतिजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पन्नत्ते । इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रय० पु० घणवाए केवतियं बाहल्लेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवातेऽवि ओवासंतरेऽवि । सक्करप्प० भंते! पु० घणोदही केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । सक्करप्प० पु० घणवाते केवइए बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! असंखे० जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं तणुवातेवि, ओवासंतरेवि जहा सक्करप्प० पु० एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७२)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सम्बन्धि यत्प्रथमं खरं—खराभिधानं काण्डं तत् कियद्बाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनसहस्राणि ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नं—रत्नाभिधानं काण्डं तत् कियद्बाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकं योजनसहस्रं । एवं शेषाण्यपि काण्डानि वक्तव्यानि यावद् रिष्टं—रिष्टाभिधानं काण्डम् । एवं पङ्कबहुलाऽब्बहुलकाण्डसूत्रे अपि व्याख्येये, पङ्कबहुलं काण्डं चतुरशीतिर्योजनसहस्राणि बाहल्येन, अब्बहुलं काण्डमशीतिर्योजनसहस्राणि, सर्वसङ्ख्यया रत्नप्रभाया बाहल्यमशीतिसहस्राधिकं लक्षं, तस्या अधो घनोदधिः विंशतिर्योजनसहस्राणि बाहल्येन, तस्याप्यधो घनवातोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि बाहल्येन, तस्याप्यधोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि

तनुवातो बाहल्येन, तस्याप्यधोऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि बाहल्येनावकाशान्तरम् । एवं शेषाणामपि पृथिवीनां घनोदध्यादयः प्रत्येकं तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तम्याः ॥

इमीसेणं भंते! रयणप्प० पु० असीउत्तरजोयण(सय)सहस्सबाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो कालनीललोहितहालिद्दसुक्किल्लाइं गंधतो सुरभिगंधाइं दुब्भिगंधाइं रसतो तित्तकडुयकसायअंबिलमहुराइं फासतो कक्खडमउयगरुयलहुसीतउसिणणिद्धलुक्खाइं संठाणतो परिमंडलवट्टतंसचउरंसआययसंठाणपरिणयाइं अन्नमन्नबद्धाइं ॥ अण्णमण्णपुट्ठाइं अण्णमण्णओगाढाइं अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?, हंता अत्थि। इमीसेणं भंते! रयणप्प भाए पु० खरकंडस्स सोलसजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव परिणयाइं?, हंता अत्थि । इमीसे णं रयणप्प० पु० रयणनामगस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्ज० तं चेव जाव हंता अत्थि, एवं जाव रिट्ठस्स, इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० पंकबहुलस्स कंडस्स चउरासीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्ते तं चेव, एवं आवबहुलस्सवि असीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स । इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणोदधिस्स वीसं जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेण तहेव । एवं घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स तहेव, ओवासंतरस्सवि तं चेव ॥ सक्करप्पभाए णं भंते! पु० बत्तीसुत्तरजोयणसतस-

हस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएण छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णतो जाव घडत्ताए चिट्ठंति?, हंता अत्थि, एवं घणोदहिस्स वीसजोयणसहस्सबाहल्लस्स घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स, एवं जाव ओवासंतरस्स, जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ७३)

'इमीसे णं भंते' इत्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यामशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायां क्षेत्रच्छेदेन—बुद्ध्या प्रतरकाण्डविभागेन छिद्यमानायाम्, अस्तीति निपातोऽत्र बहुलवचनार्थगर्भः, सन्ति द्रव्याणि वर्णतः कालानि नीलानि लोहितानि हारिद्राणि शुक्लानि, गन्धतः सुरभिगन्धीनि दुरभिगन्धीनि च, रसतस्तिक्तरसानि कटुकानि कषायाणि अम्लानि मधुराणि, स्पर्शतः कर्कशानि मृदूनि गुरुकाणि लघूनि शीतानि उष्णानि स्निग्धानि रूक्षाणि, संस्थानतः परिमण्डलानि वृत्तानि त्र्यस्राणि चतुरस्राणि आयतानि, कथम्भूतान्येतानि सर्वाण्यपि ? इत्यत आह—'अन्नमन्नपुट्ठाइं' इत्यादि, अन्योऽन्यं—परस्परं स्पृष्टानि—स्पर्शमात्रोपेतानि, तथाऽन्योऽन्यं—परस्परमवगाढानि यत्रैकं द्रव्यमवगाढं तत्रान्यदपि देशतः कचित्सर्वतोऽवगाढमित्यर्थः, तथाऽन्योऽन्यं—परस्परं स्नेहेन प्रतिबद्धानि येनैकस्मिन् चाल्यमाने गृह्यमाणे वाऽपरमपि चलनादिधर्मोपेतं भवति, एवम् 'अन्नोन्नघडत्ताए चिट्ठंति' इति, अन्योऽन्यं—परस्परं घटन्ते—संबध्नन्तीति अन्योऽन्यघटास्तद्भावोऽन्योऽन्यघटता तया—परस्परसंबद्धतया तिष्ठन्ति, भगवानाह—'हंता अत्थि' 'हन्त !' इति प्रत्यवधारणे सन्त्येवेत्यर्थः । एवमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डस्य षोडशयोजनसहस्रप्रमाणबाहल्यस्य, तदनन्तरं रत्नकाण्डस्य योजनसहस्रबाहल्यस्य, ततो वज्रकाण्डस्य यावद्रिष्ठकाण्डस्य, तदनन्तरमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां पङ्कबहुलकाण्डस्य चतुरशीतियोजनसहस्रबाहल्यस्य, तदनन्तरमब्बहुलकाण्डस्याशीतियोजनसहस्रबाहल्यस्य, तदनन्तरमस्या एव रत्नप्रभाया घ-

नोदधेर्योजनविंशतिसहस्रप्रमाणबाहल्यस्य, ततोऽसङ्ख्यातयोजनसहस्रप्रमाणबाहल्यस्य घनवातस्य, तत एतावत्प्रमाणबाहल्यस्य तनुवातस्य, ततोऽवकाशान्तरस्य तावत्प्रमाणस्य। ततः शर्कराप्रभायाः पृथिव्या द्वात्रिंशत्सहस्रोत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यपरिमाणायाः, तस्या एवाधस्ताद्यथोक्तप्रमाणबाहल्यानां घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणाम्, एवं यावदधःसप्तम्याः पृथिव्या अष्टसहस्राधिकयोजनशतसहस्रपरिमाणबाहल्यायाः, ततस्तस्या एवाधःसप्तमपृथिव्या अधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणां प्रश्ननिर्वचनसूत्राणि यथोक्तद्रव्यविषयाणि भावनीयानि ॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

इमा णं भंते! रयणप्प० पु० किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० खरकंडे किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते। इमीसे णं भंते! रयणप० पु० रयणकंडे किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते। एवं जाव-रिट्ठे। एवं पंकबहुलेवि, एवं आवबहुलेवि घणोदधीवि घणवाएवि तणुवाएवि ओवासंतरेवि, सव्वे झल्लरिसंठिते पण्णत्ते। सक्करप्पभा णं भंते! पुढवी किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! झल्लरिसंठिता पण्णत्ता, सक्करप्पभापुढवीए घणोदधी किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! झल्लरिसंठिते पण्णत्ते, एवं जाव ओवासंतरे, जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं जाव अहेसत्तमाएवि ॥ (सू० ७४)

'इमा णं भंते' इत्यादि, 'इयं' प्रत्यक्षत उपलभ्यमाना णमिति वाक्यालङ्कृतौ रत्नप्रभापृथिवी किमिव संस्थिता किंसंस्थिता प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! झल्लरीव संस्थिता झल्लरीसंस्थिता प्रज्ञप्ता, विस्तीर्णवलयाकारत्वात्। एवमस्यामेव रत्नप्रभायां पृथिव्यां खरकाण्डं, तत्रापि

रत्नकाण्डं, ततो वज्रकाण्डं, ततो यावद् रिष्टकाण्डं, तदनन्तरं पङ्कबहुलकाण्डं, ततो जलकाण्डं, तदनन्तरमस्या एव रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणि यावदधःसप्तमीपृथिवी, तस्याश्चाधस्तात्क्रमेण घनोदधिघनवाततनुवातावकाशान्तराणि झल्लरीसंस्थानानि वक्तव्यानि ॥ ननु चैताः सप्तापि पृथिव्यः सर्वासु दिक्षु किमलोकस्पर्शिन्य उत न? इति, उच्यते, नेति ब्रूमः, यद्येवं ततः—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीएं पुरत्थिमिल्लातो उवरिमंताओ केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते?, गोयमा! दुवालसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं दाहिणिल्लातो पच्चत्थिमिल्लातो उत्तरिल्लातो। सक्करप्प० पु० पुरत्थिमिल्लातो चरिमंतातो केवतियं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते?, गोयमा! तिभागूणेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं चउद्दिसिंपि। वालुयप्प० पु० पुरत्थिमिल्लातो पुच्छा, गोयमा! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं चउद्दिसिंपि, एवं सव्वासिं चउसुवि दिसासु पुच्छितव्वं। पंकप्प० चोद्दसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। पंचमाए तिभागूणेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। छट्ठीए सतिभागेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते। सत्तमीए सोलसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं जाव उत्तरिल्लातो ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० पुरत्थिमिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—घणोदधिवलए

घणवायवलए तणुवायवलए। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० दाहिणिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविधे पण्णत्ते, तंजहा,—एवं जाव उत्तरिल्ले, एवं सव्वासिं जाव अधेसत्तमाए उत्तरिल्ले॥ (सू० ७८)

'इमी से णं भंते' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'पुरत्थिमिल्लाओ' इति पूर्वदिग्भाविनश्चरमान्तात् 'केवइयाए' इति कियत्याऽबाधया—अपान्तरालरूपया लोकान्तोऽलोकावधिपरिच्छिन्नः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—द्वादश योजनानि, द्वादशयोजनप्रमाणयेत्यर्थः, अबाधया लोकान्तः प्रज्ञप्तः, किमुक्तं भवति?—रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पूर्वस्यां दिशि चरमपर्यन्तात्परतोऽलोकादर्वाग् अपान्तरालं द्वादश योजनानि, एवं दक्षिणस्यामपरस्यामुत्तरस्यां चापान्तरालं वक्तव्यं, दिग्ग्रहणं चोपलक्षणं तेन सर्वासु विदिक्ष्वपि यथोक्तमपान्तरालमवसातव्यं, शेषाणां तु पृथिवीनां सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमपर्यन्तादलोकः क्रमेणाधोऽधस्त्रिभागोनेन योजनेनाधिकैर्द्वादशभिर्योजनैरवगन्तव्यः, तद्यथा—शर्कराप्रभायाः पृथिव्याः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमपर्यन्तादलोकादर्वागपान्तरालं त्रिभागोनानि त्रयोदश योजनानि, वालुकाप्रभायाः सत्रिभागानि त्रयोदश योजनानि, पङ्कप्रभायाः परिपूर्णानि चतुर्दश योजनानि, धूमप्रभायास्त्रिभागोनानि पञ्चदश योजनानि, तमःप्रभायाः सत्रिभागानि पञ्चदश योजनानि, अधःसप्तमपृथिव्याः परिपूर्णानि षोडश योजनानि, सूत्राक्षराणि पूर्ववद्योजनीयानि॥ अथामूनि रत्नप्रभादीनां द्वादशयोजनप्रमाणादीनि अपान्तरालानि किमाकाशरूपाणि उत घनोदध्यादिव्याप्तानि?, उच्यते, घनोदध्यादिव्याप्तानि, तत्र कस्मिन्नपान्तराले कियान् घनोदध्यादिः? इति प्रतिपादनार्थमाह—'इमी से णं भंते' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पूर्वदिग्भावी 'चरमान्तः' अपान्तराललक्षणः 'कतिविधः' कतिप्रकारः

कतिविभाग इत्यर्थः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! त्रिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'घनोदधिवलयः' वलयाकारघनोदधिरूप इत्यर्थः, एवं घनवातवलयस्तनुवातवलयश्च, इयमत्र भावना—सर्वासां पृथिवीनामधो यत्प्राग् बाहल्येन घनोदध्यादीनां परिमाणमुक्तं तन्मध्यभागे द्रष्टव्यं, ते हि मध्यभागे यथोक्तप्रमाणबाहल्यास्ततः प्रदेशहान्या प्रदेशहान्या हीयमानाः स्वस्वपृथिवीपर्यन्तेषु तनुतरा भूत्वा स्वां स्वां पृथिवीं वलयाकारेण वेष्टयित्वा स्थिताः, अत एवामूनि वलयान्युच्यन्ते, तेषां च वलयानामुच्चैस्त्वं सर्वत्र स्वस्वपृथिव्यनुसारेण परिभावनीयं, तिर्यग्बाहल्यं पुनरग्रे वक्ष्यते, इदानीं तु विभागमात्रमेवापान्तरालस्य प्रतिपादयितुमिष्टमिति तदेवोक्तं, एवमस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः शेषासु दिक्षु, एवं शेषाणामपि पृथिवीनां चतसृष्वपि दिक्षु प्रत्येकं २ विभागसूत्रं भणितव्यम् ॥ सम्प्रति घनोदधिवलयस्य तिर्यग्बाहल्यमानमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पुढवीए घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! छ जोयणाणि बाहल्लेणं पण्णत्ते । सक्करप्प० पु० घणोदधिवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! सतिभागाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । वालुयप्पभाए पुच्छा गोयमा ! तिभागूणाइं सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं प० । एवं एतेणं अभिलावेणं पंकप्पभाए सत्त जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते । धूमप्पभाए सतिभागाइं सत्त जोयणाइं पण्णत्ते । तमप्पभाए तिभागूणाइं अट्ठ जोयणाइं । तमतमप्पभाए अट्ठ जोयणाइं ॥ इमीसे णं रयणप्प० पु० घणवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोयमा ! अद्धपंचमाइं जोयणाइं बाहल्लेणं । सक्करप्पभाए पुच्छा, गोयमा ! कोसूणाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं,

एवं एतेणं अभिलावेणं वालुयप्पभाए पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं, पंकप्पभाए सक्कोसाइं पंच जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ताइं। धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइं जोयणाइं बाहल्लेणं पन्नत्ताइं, तमप्पभाए कोसूणाइं छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, अहेसत्तमाए छजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० तणुवायवलए केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! छक्कोसेणं बाहल्लेणं पण्णत्ते, एवं एतेणं अभिलावेणं सक्करप्पभाए सतिभागे छक्कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। वालुयप्पभाए तिभागूणे सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। पंकप्पभाए पुढवीए सत्तकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। धूमप्पभाए सतिभागे सत्तकोसे। तमप्पभाए तिभागूणे अट्ठकोसे बाहल्लेणं पन्नत्ते। अधेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणोदधिवलयस्स छज्जोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णतो काल जाव हंता अत्थि। सक्करप्पभाए णं भंते! पु० घणोदधिवलयस्स सतिभागछजोयणबाहल्लस्स खेत्तच्छेदेणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि, एवं जाव अधेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० घणवातवलयस्स अद्धपंचमजोयणबाहल्लस्स खेत्तछेदेणं छि० जाव हंता अत्थि, एवं जाव अहेसत्तमाए जं जस्स बाहल्लं। एवं तणुवायवलयस्सवि जाव अधेसत्तमा जं जस्स बाहल्लं ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते

पण्णत्ते ॥ जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं सव्वतो संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति, एवं जाव अधेसत्तमाए पु० घणोदधिवलए, णवरं अप्पणप्पणं पुढविं संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठति। इमीसे णं रयणप्प० पु० घणवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारे तहेव जाव जे णं इमीसे णं रयणप्प० पु० घणोदधिवलयं सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ताणं चिट्ठइ एवं जाव अहेसत्तमाए घणवातवलए। इमीसे णं रयणप्प० पु० तणुवातवलए किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव जेणं इमीसे रयणप्प० पु० घणवातवलयं सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ता णं चिट्ठइ, एवं जाव अधेसत्तमाए तणुवातवलए॥ इमा णं भंते! रयणप्प० पु० केवतिआयामविक्खंभेणं? पं० गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, एवं जाव अधेसत्तमा॥ इमा णं भंते! रयणप्प० पु० अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं पण्णत्ता?, हंता गोयमा! इमा णं रयण० पु० अंते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं, एवं जाव अधेसत्तमा॥ (सू० ७६)

'इमीसे ण' मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च चरमान्ते घनोदधिवलयः कियद्बाहल्येन—तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! षड् योजनानि बाहल्येन—तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः, तत ऊर्ध्वं प्रतिपृथिवि योजनस्य त्रिभागो वक्तव्यः, तद्यथा—शर्कराप्रभायाः सत्रिभागानि षड् योजनानि वालुकाप्रभायास्त्रिभागोनानि सप्त योजनानि पङ्कप्रभायाः परि-

पूर्णानि सप्त योजनानि धूमप्रभायाः सत्रिभागानि सप्त योजनानि तमःप्रभायास्त्रिभागोनान्यष्टौ योजनानि अधःसप्तमपृथिव्याः परिपूर्णान्यष्टौ योजनानि, सूत्राक्षराणि तु सर्वत्र पूर्ववद्योजनीयानि ॥ सम्प्रति घनवातवलयस्य तिर्यग्बाहल्यपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या घनवातवलयस्तिर्यग्बाहल्येनार्द्धपञ्चमानि—सार्द्धानि चत्वारि योजनानि प्रज्ञप्तः, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिपृथिवि गव्यूतं वर्द्धनीयं, तथा चाह—द्वितीयस्याः पृथिव्याः क्रोशोनानि पञ्च योजनानि, तृतीयस्याः पृथिव्याः परिपूर्णानि पञ्च योजनानि, चतुर्थ्याः पृथिव्याः सक्रोशानि पञ्च योजनानि, पञ्चम्याः पृथिव्या अर्द्धषष्ठानि—सार्द्धानि पञ्च योजनानि, षष्ठ्याः पृथिव्याः क्रोशोनानि षड् योजनानि, सप्तम्याः पृथिव्याः परिपूर्णानि षड् योजनानि ॥ सम्प्रति तनुवातवलयस्य तिर्यग्बाहल्यपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्यास्तनुवातवलयः 'कियत्' किंप्रमाणं 'वाहल्येन' तिर्यग्बाहल्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—षट्क्रोशबाहल्येन प्रज्ञप्तः, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिपृथिवि क्रोशस्य त्रिभागो वर्द्धनीयः, तथा चाह—द्वितीयस्याः पृथिव्याः सत्रिभागान् षट् क्रोशान् वाहल्येन प्रज्ञप्तः, तृतीयस्याः पृथिव्यास्त्रिभागोनान् सप्त क्रोशान् चतुर्थ्याः पृथिव्याः परिपूर्णान् सप्त क्रोशान् पञ्चम्याः पृथिव्याः सत्रिभागान् सप्त क्रोशान् षष्ठ्याः पृथिव्यास्त्रिभागोनान् अष्टौ क्रोशान्, अधःसप्तम्याः परिपूर्णान् अष्टौ क्रोशान्, उक्तञ्च—"छच्चेव अद्धपंचमजोयणसड्ढं च होइ रयणाए। उदही घणतणुवाया (उ)जहासंखेण निद्दिट्ठा ॥ १ ॥ सतिभागगाउगाउयं च तिभागो गाउयस्स वोद्धव्वो। आइधुवे पक्खेवो अहो अहो जाव सत्तमिया ॥ २ ॥" एतेषां च त्रयाणामपि घनोदध्यादिविभागानामेकत्र मीलने प्रतिपृथिवि यथोक्तमपान्तरालमानं भवति ॥ सम्प्रत्येतेष्वेव घनोदध्यादिवलयेषु क्षेत्रच्छेदेन कृष्णवर्णाद्युपेतद्रव्यास्तित्वप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, पूर्ववद्भावनीयं,

बाहल्यपरिमाणमपि घनोदध्यादीनां प्रतिपृथिवि प्रागुक्तमुपयुज्य वक्तव्यम् ॥ सम्प्रति घनोदध्यादिसंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या घनोदधिवलयः किमिव संस्थितः किंसंस्थितः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! 'वृत्तः' चक्रवालतया परिवर्त्तुलो वलयस्य—मध्यशुषिरस्य वृत्तविशेषस्याकारः—आकृतिर्वलयाकारः स इव संस्थानं वलयाकारसंस्थानं तेन संस्थितो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः ॥ कथमेवमवगम्यते वलयाकारसंस्थानसंस्थित इति?, तत आह—'जेण' मित्यादि, येन कारणेनेमां रत्नप्रभां पृथिवीं 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च 'संपरिक्षिप्य' सामस्त्येन वेष्टयित्वा 'तिष्ठति' वर्त्तते तेन कारणेन वलयाकारसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः । एवं घनवातवलयसूत्रं तनुवातवलयसूत्रं च परिभावनीयं, नवरं घनवातवलयो घनोदधिवलयं संपरिक्षिप्येति वक्तव्यः, तनुवातवलयो घनवातवलयं संपरिक्षिप्येति । एवं शेपास्वपि पृथिवीषु प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सूत्राणि भावनीयानि ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी कियद् 'आयामविष्कम्भेन' समाहारो द्वन्द्वः, आयामविष्कम्भाभ्यां प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेन, किमुक्तं भवति?—असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामेन, असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि विष्कम्भेन च, आयामविष्कम्भयोस्तु परस्परमल्पबहुत्वचिन्तने तुल्यत्वं, तथाऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि 'परिक्षेपेण' परिधिना प्रज्ञप्ता, एवमेकैका पृथिवी तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी अन्ते मध्ये च सर्वत्र समा 'बाहल्येन' पिण्डभावेन प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतमेत्यादि सुगमम् । एवं क्रमेणैकैका पृथिवी तावद्वक्तव्या यावत्सप्तमी ॥

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा? सव्वजीवा उववण्णा?, गोयमा!

इमीसे णं रय० पु० सव्वजीवा उववण्णपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवा उववण्णा, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते! रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा? सव्वजीवेहिं विजढा?, गोयमा! इमा णं रयण० पु० सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वजीवविजढा, एवं जाव अधेसत्तमा॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा? सव्वपोग्गला पविट्ठा? गोयमा! इमीसे णं रयण० पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा? सव्वपोग्गला विजढा?, गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पु० सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा, एवं जाव अधेसत्तमा॥ (सू० ७७)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सामान्येन उपपन्नपूर्वा इति—उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, तथा सर्वजीवाः 'उपपन्नाः' उत्पन्ना युगपद्?, भगवानाह—गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वजीवाः सांव्यवहारिकजीवराश्यन्तर्गताः प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सामान्येन 'उपपन्नपूर्वाः' उत्पन्नपूर्वाः कालक्रमेण, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वजीवाः 'उपपन्ना' उत्पन्ना युगपत्, सकलजीवानामेककालं रत्नप्रभापृथिवीत्वेनोत्पादे सकलदेवनारकादिभेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात्, एवमेकैकस्याः पृथिव्यास्तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याः॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं च भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी 'सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा' इति सर्वजीवैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, तथा सर्वजीवैर्युगपद् 'विजढा' परित्यक्ता?, भगवानाह—गौतम!

३ प्रतिपत्तौ उद्देशः १ रत्नप्रभा तया सर्वजीवपुद्गलोत्पादः सू० ७७

इयं रत्नप्रभा पृथिवी प्रायोवृत्तिमाश्रित्य सर्वजीवैः सांव्यवहारिकैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, न तु युगपत्परित्यक्ता, सर्वजीवैः एककालपरित्यागस्यासम्भवात् तथानिमित्ताभावात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथ्वी ॥ 'इमीसे ण' मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गला लोकोदरविवरवर्त्तिनः कालक्रमेण 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, तथा सर्वे पुद्गलाः 'प्रविष्टाः' एककालं तद्भावेन परिणताः ?, भगवानाह—गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां सर्वे पुद्गलाः लोकवर्त्तिनः 'प्रविष्टपूर्वाः' तद्भावेन परिणतपूर्वाः, संसारस्यानादित्वात्, न पुनरेककालं सर्वपुद्गलाः 'प्रविष्टाः' तद्भावेन परिणताः, सर्वपुद्गलानां तद्भावेन परिणतौ रत्नप्रभाव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रापि पुद्गलाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यात् । एवं सर्वासु पृथिवीषु क्रमेण वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां पृथिव्यामिति ॥ 'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण 'विजढपुव्वा' इति परित्यक्तपूर्वा तथैव सर्वैः पुद्गलैरेककालं परित्यक्ता ?, भगवानाह—गौतम! इयं रत्नप्रभा पृथिवी सर्वपुद्गलैः कालक्रमेण परित्यक्तपूर्वा, संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वपुद्गलैरेककालं परित्यक्ता, सर्वपुद्गलैरेककालपरित्यागे तस्याः सर्वथा स्वरूपाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वाभाव्यतः शाश्वतत्वात्, एतच्चानन्तरमेव वक्ष्यति । एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वाच्या यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं सासया असासया?, गोयमा! सिय सासता सिय असासया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया?, गोयमा! दव्वट्ठयाए सासता, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुचति—तं चेव जाव सिय असासता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ इमा णं भंते! रयणप्पभापु० कालतो

केवचिरं होइ?, गोयमा! न कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति ॥ भुविं च भवइ य भविस्सति य धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिता णिचा एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ७८)

'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी किं शाश्वती अशाश्वती?, भगवानाह–गौतम! स्यात्–कथञ्चित्कस्यापि नयस्याभिप्रायेणेत्यर्थः शाश्वती, स्यात्–कथञ्चिदशाश्वती ॥ एतदेव सविशेषं जिज्ञासुः पृच्छति—'से केणट्ठेण'मित्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स च प्रश्ने, केन 'अर्थेन' कारणेन भदन्त! एवमुच्यते यथा स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वतीति?, भगवानाह–गौतम! 'दव्वट्ठयाए' इत्यादि, द्रव्यार्थतया शाश्वतीति, तत्र द्रव्यं सर्वत्रापि सामान्यमुच्यते, द्रवति–गच्छति तान् तान् पर्यायान् विशेषानिति वा द्रव्यमितिव्युत्पत्तेर्द्रव्यमेवार्थः–तात्त्विकः पदार्थो यस्य न तु पर्यायाः स द्रव्यार्थः–द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादको नयविशेषस्तद्भावो द्रव्यार्थता तया द्रव्यमात्रास्तित्वप्रतिपादकनयाभिप्रायेणेतियावत् शाश्वती, द्रव्यार्थिकनयमतपर्यालोचनायामेवंविधस्य रत्नप्रभायाः पृथिव्या आकारस्य सदा भावात्, 'वर्णपर्यायैः' कृष्णादिभिः 'गन्धपर्यायैः' सुरभ्यादिभिः 'रसपर्यायैः' तिक्तादिभिः 'स्पर्शपर्यायैः' कठिनत्वादिभिः 'अशाश्वती' अनित्या, तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालानन्तरं वाऽन्यथाभवनात्, अतादवस्थ्यस्य चानित्यत्वात्, न चैवमपि भिन्नाधिकरणे नित्यत्वानित्यत्वे, द्रव्यपर्याययोर्भेदाभेदोपगमात्, अन्यथोभयोरप्यसत्त्वापत्तेः, तथाहि–शक्यते वक्तुं परपरिकल्पितं द्रव्यमसत्, पर्यायव्यतिरिक्तत्वात्, बालत्वादिपर्यायशून्यवन्ध्यासुतवत्, तथा परपरिकल्पिताः पर्याया असन्तः, द्रव्यव्यतिरिक्तत्वात्, वन्ध्यासुतगतबालत्वादिपर्यायवत्, उक्तञ्च—"द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः। क कदा केन किंरूपा?,

दृष्टा मानेन केन वा ? ॥ १ ॥" इति कृतं प्रसङ्गेन, विस्तरार्थिना च **धर्मसङ्ग्रहणिटी**का निरूपणीया । **'से तेणट्ठेण'**मित्याद्युपसंहारमाह, सेशब्दोऽथशब्दार्थः स चात्र वाक्योपन्यासे अथ **'एतेन'** अनन्तरोदितेन कारणेन गौतम ! एवमुच्यते—स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथिवी, इह यद् यावत्सम्भवास्पदं तत्तावन्तं कालं शश्वद्भवति तदा तदपि शाश्वतमुच्यते यथा तत्रान्तरेषु 'आकप्पट्ठाई पुढवी सासया' इत्यादि, ततः संशयः—किमेषा रत्नप्रभा पृथवी सकलकालावस्थायितया शाश्वती उतान्यथा यथा तत्रान्तरीयैरुच्यत इति ?, ततस्तदपनोदार्थं पृच्छति—**'इमा णं भंते'** इत्यादि, इयं भदन्त ! रत्नप्रभा पृथिवी कालतः **'कियच्चिरं'** कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह—गौतम ! न कदाचिन्नासीत्, सदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति भावः, अत्रापि स एव हेतुः, सदा भावादिति, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति भावः, अपर्यवसितत्वात् । तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—**'भुविं चे'**त्यादि, अभूत् भवति भविष्यति च, एवं त्रिकालभावित्वेन **'ध्रुवा'** ध्रुवत्वादेव **'नियता'** नियतावस्थाना, धर्म्मास्तिकायादिवत्, नियतत्वादेव च शाश्वती, शश्वद्भावः प्रलयाभावात्, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पद्मपौण्डरीकह्रद इवान्यतरपुद्गलविचटनेऽप्यन्यतरपुद्गलोपचयभावात्, अक्षया अक्षयत्वादेव च अव्यया, मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत्, अव्ययत्वादेव **'अवस्थिता'** स्वप्रमाणावस्थिता, सूर्यमण्डलादिवत्, एवं सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या जीवस्वरूपवत्, यदि वा ध्रुवादयः शब्दा इन्द्रशक्रादिवत्पर्यायशब्दा नानादेशजविनेयानुग्रहार्थमुपन्यस्ता इत्यदोषः, एवमेकैका पृथिवी क्रमेण तावद्वक्तव्या यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रति प्रतिपृथिवीषु(वि)विभागतोऽन्तरं विचिन्तयिषुरिदमाह—

[इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! असिउत्तरं जोयणसतसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । इमी से णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लातो चरिमंताओ खरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लातो चरमंताओ रयणस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लातो चरिमंतातो वइरस्स कण्डस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, ?, गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अबाधाए अंतरे प० ॥ इमीसे णं रयण० पु० उवरिल्लाओ चरिमंताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं भंते ! केवतियं अबाधाए अंतरे प०?, गोयमा ! दो जोयणसहस्साइं इमीसे णं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते, एवं जाव रिट्ठस्स उवरिल्ले पन्नरस जोयणसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरिमंते सोलस जोयणसहस्साइं ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० उवरिल्लाओ चरिमंताओ पंकबहुलस्स कंडस्स उवरिल्ले चरिमंते एस णं अबाधाए केवतियं अंतरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते । हेट्ठिल्ले चरिमंते एक्कं जोयणसयसहस्सं आवबहुलस्स उवरि एक्कं जोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले

॥ ९९ ॥

चरिमंते असीउत्तरं जोयणसयसहस्सं। घणोदहि उवरिल्ले असिउत्तरजोयणसयसहस्सं हेट्ठिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं । इमीसे णं भंते! रयण० पुढ० घणवातस्स उवरिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं । हेट्ठिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं । इमीसे णं भंते! रयण० पु० तणुवातस्स उवरिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे हेट्ठिल्लेवि असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं, एवं ओवासंतरेवि ॥ दोच्चाए णं भंते! पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! बत्तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । सक्करप्प० पु० उवरि घणोदधिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते बावण्णुत्तरं जोयणसयसहस्सं अबाधाए । घणवातस्स असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पण्णत्ताइं। एवं जाव उवासंतरस्सवि जावऽधेसत्तमाए, णवरं जीसे जं बाहल्लं तेण घणोदधी संबंधेतव्वो बुद्धीए । सक्करप्पभाए अणुसारेणं घणोदहिसहिताणं इमं पमाणं ॥ तच्चाए णं भंते! अडयालीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं। पंकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। धूमप्पभाए पु० अट्ठतीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं । तमाए पु० छत्तीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं। अधेसत्तमाए पु० अट्ठावीसुत्तरं जोयणसतसहस्सं जाव अधेसत्तमाए। एस णं भंते!

पुढवीए उवरिल्लातो चरिमंतातो उवासंतरस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ (सू० ७९)

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्या भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्य प्रथमस्य खरकाण्डस्य विभागस्य 'उवरिल्लात्' इति उपरितनाच्चरमान्तात्परतो योऽधस्तनः 'चरमान्तः' चरमपर्यन्तः 'एस ण'मिति एतत्, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, अन्तरं 'कियत्' कियद्योजनप्रमाणम् 'अबाधया' अन्तरत्वव्याघातरूपया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! 'एकं योजनसहस्रम्' एकं योजनसहस्रप्रमाणमन्तरं प्रज्ञप्तम् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो यो वज्रकाण्डस्योपरितनश्चरमान्त एतदन्तरं 'कियत्' किंप्रमाणमबाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! एकं योजनसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, रत्नकाण्डाधस्तनचरमान्तस्य वज्रकाण्डोपरितनचरमान्तस्य च परस्परसंलग्नतया उभयत्रापि तुल्यप्रमाणत्वभावात् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्ताद् वज्रकाण्डस्य योऽधस्तनश्चरमान्तः एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! द्वे योजनसहस्रे अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, एवं काण्डे काण्डे द्वौ द्वावालापकौ वक्तव्यौ, काण्डस्य चाधस्तने चरमान्ते चिन्त्यमाने योजनसहस्रपरिवृद्धिः कर्त्तव्या यावद् रिष्टस्य काण्डस्याधस्तने चरमान्ते चिन्त्यमाने षोडश योजनसहस्राणि अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यम् ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतो यः पङ्कबहुलस्य काण्डस्योपरितनश्चरमान्तः एतत् 'कियत्' किंप्रमाणमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! षोडश योजनसहस्राणि अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । 'इमीसे ण'मित्यादि, तस्यैव पङ्कबहुलस्य काण्डस्याधस्तनश्चरमान्त एकं यो-

जनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं । 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्य भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतोऽब्बहुलस्य काण्डस्य य उपरितनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! एकं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं । 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त ! रत्नप्रभायाः पृथिव्या रत्नकाण्डस्योपरितनाच्चरमान्तात्परतोऽब्बहुलस्य काण्डस्य योऽधस्तनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! अशीत्युत्तरं योजनशतसहस्रम् । घनोदधेरुपरितने चरमान्ते पृष्टे एतदेव निर्वचनमशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रम्, अधस्तने पृष्टे इदं निर्वचनं—द्वे योजनशतसहस्रे अबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । घनवातस्योपरितने चरमान्ते पृष्टे इदमेव निर्वचनं, घनोदध्यधस्तनचरमान्तस्य घनवातोपरितनचरमान्तस्य च परस्परं संलग्नत्वात् । घनवातस्याधस्तने चरमान्ते पृष्टे एतन्निर्वचनम्—असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । एवं तनुवातस्योपरितने चरमान्ते अधस्तने चरमान्ते अवकाशान्तरस्याप्युपरितनेऽधस्तने च चरमान्ते इत्थमेव निर्वचनं वक्तव्यम्, असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति, सूत्रपाठस्तु प्रत्येकं सर्वत्रापि पूर्वानुसारेण स्वयं परिभावनीयः सुगमत्वात् ॥ 'दोच्चाए णं' इत्यादि, द्वितीयस्या भदन्त ! पृथिव्या उपरितनाच्चरमान्तात्परतो योऽधस्तनश्चरमान्त एतत् 'कियत्' किंप्रमाणमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह—गौतम ! 'द्वात्रिंशदुत्तरं' द्वात्रिंशत्सहस्राधिकं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् । घनोदधेरुपरितने चरमान्ते पृष्टे एतदेव निर्वचनं द्वात्रिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रम्, अधस्तने चरमान्ते पृष्टे इदं निर्वचनं—द्विपञ्चाशदुत्तरं योजनशतसहस्रम् । एतदेव घनवातस्योपरितनचरमान्तपृच्छायामपि, घनवातस्याधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम्, असङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यमिति भावः ॥ 'तच्चाए णं

भंते!' इत्यादि, तृतीयस्या भदन्त! पृथिव्या उपरितनाच्चरमान्ताद् अधस्तनश्चरमान्त एतदन्तरं कियद् अबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! अष्टाविंशत्युत्तरं शत(सहस्र)म्—अष्टाविंशतिसहस्राधिकं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्। एतदेव घनोदधेरुपरितनचरमान्तपृच्छायामपि निर्वचनम्। अधस्तनचरमान्तपृच्छायामष्टाचत्वारिंशदुत्तरं योजनशतसहस्रमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तमिति वक्तव्यम्। एतदेव घनवातस्योपरितनचरमान्तपृच्छायामपि। अधस्तनचरमान्तपृच्छायां तनुवातावकाशान्तरयोरुपरितनाधस्तनचरमान्तपृच्छासु च यथा रत्नप्रभायां तथा वक्तव्यम्। एवं चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमपृथिवीविषयाणि सूत्राण्यपि भावनीयानि॥

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी दोचं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला विसेसाहिया संखेज्जगुणा? वित्थरेणं किं तुल्ला विसेसहीणा संखेज्जगुणहीणा?, गोयमा! इमा णं रयण० पु० दोचं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं नो तुल्ला विसेसाहिया नो संखेज्जगुणा, वित्थारेणं नो तुल्ला विसेसहीणा णो संखेज्जगुणहीणा। दोचा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला? एवं चेव भाणितव्वं। एवं तचा चउत्थी पंचमी छट्ठी। छट्ठी णं भंते! पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला विसेसाहिया संखेज्जगुणा?, एवं चेव भाणियव्वं। सेवं भंते! २। नेरइयउद्देसओ पढमो॥ (सू० ८०)

'इमा णं भंते!' इत्यादि, इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी द्वितीयां पृथिवीं शर्कराप्रभां 'प्रणिधाय' आश्रित्य 'बाहल्येन' पिण्डभावेन किं तुल्या विशेषाधिका सङ्ख्येयगुणा?, बाहल्यमधिकृत्येदं प्रश्नत्रयम्, ननु एका अशीत्युत्तरयोजनलक्षमाना अपरा द्वात्रिंशदु-

त्तरयोजनलक्षमानेत्युक्तं ततस्तदर्थावगमे सत्युक्तलक्षणं प्रश्नत्रयमयुक्तं, विशेषाधिकेति स्वयमेवार्थपरिज्ञानात्, सत्यमेतत्, केवलं प्रश्न-
श्नोऽयं तदन्यमोहापोहार्थः, एतदपि कथमवसीयते ? इति चेत्स्वाववोधाय प्रश्नान्तरोपन्यासात्, तथा चाह—विस्तरेण—विष्कम्भेन
किं ? तुल्या विशेषहीना सङ्ख्येयगुणहीना ? इति, भगवानाह—गौतम ! इयं रत्नप्रभा पृथिवी द्वितीयां शर्कराप्रभापृथिवीं प्रणिधाय बाहल्येन
न [च] तुल्या किन्तु विशेषाधिका नापि सङ्ख्येयगुणा, कथमेतदेवम् ? इति चेदुच्यते—इह रत्नप्रभा पृथिवी अशीत्युत्तरयोजनलक्षमाना,
शर्कराप्रभा द्वात्रिंशदुत्तरयोजनलक्षमाना, तदत्रान्तरमष्टाचत्वारिंशद् योजनसहस्राणि ततो विशेषाधिका घटते न तुल्या नापि सङ्ख्ये-
यगुणा, विस्तरेण न तुल्या किन्तु विशेषहीना नापि सङ्ख्येयगुणहीना, प्रदेशादिवृद्ध्या प्रवर्द्धमाने तावति क्षेत्रे शर्कराप्रभाया एवं [च]
वृद्धिसम्भवात्, एवं सर्वत्र भावनीयम् ॥ [तृतीयप्रतिपत्तौ समाप्तः प्रथमोद्देशकः, साम्प्रतं द्वितीयः प्रारभ्यते, तस्य चेदमादिसूत्रम्—]
सम्प्रति कस्यां पृथिव्यां कस्मिन् प्रदेशे नरकावासाः ? इत्येतत्प्रतिपादनार्थं प्रथमं तावदिदमाह—

कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा ॥ इमीसे णं रयणप्प० पु० असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवतियं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवतिए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! इमीसे णं रयण० पु० असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अडसत्तरी जोयणसयसहस्सा, एत्थ णं रयणप्पभाए पु० नेरइयाणं तीसं निरयावाससयसहस्साइं भवंतित्तिमक्खाया ॥

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णरएसु वेयणा, एवं एएणं अभिलावेणं उवजुंजिऊण भाणियव्वं ठाणप्पयाणुसारेणं, जत्थ जं वाहल्लं जत्थ जत्तिया वा नरयावाससयसहस्सा जाव अहेसत्तमाए पुढवीए, अहेसत्तमाए मज्झिमं केवतिए कति अणुत्तरा महइ महालता महाणिरया पण्णत्ता एवं पुच्छितव्वं वागरेयव्वंपि तहेव ॥ (सू० ८१)

'कइ णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः? इति, विशेषाभिधानार्थमेतदभिहितम्, उक्तञ्च—"पुव्वभणियंपि जं पुण भन्नई तत्थ कारणं अत्थि । पडिसेहो य अणुण्णा कारण(हेउ)विसेसोवलंभो वा ॥ १ ॥" भगवानाह—गौतम! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभा यावत्तमस्तमप्रभा ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, अस्या भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरि 'कियत्' किंप्रमाणमवगाह्य—उपरितनभागात् कियद् अतिक्रम्येत्यर्थः अधस्तात् 'कियत्' किंप्रमाणं वर्जयित्वा मध्ये 'कियति' किंप्रमाणे कियन्ति नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्याया उपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधस्तादेकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा 'मध्ये' मध्यभागे 'अट्टसत्तरे' अष्टसप्ततिसहस्राधिके योजनशतसहस्रे 'अत्र' एतस्मिन् रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां योग्यानि त्रिंशन्नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, अनेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनता प्रवेदिता ॥ 'ते णं नरगा' इत्यादि, ते नरका 'अन्तः' मध्यभागे 'वृत्ताः' वृत्ताकाराः 'वहिः' वहिर्भागे 'चतुरस्राः' चतुरस्राकाराः, इदं च पीठोपरिवर्त्तिनं मध्यभागमधिकृत्य प्रोच्यते, सकलपीठाद्यपेक्षया तु आवलिकाप्रविष्टा वृत्तत्र्यस्रच-

१ पूर्वभणितमपि यत् पुनर्भण्यते तत्र कारणमस्ति । प्रतिषेधोऽनुज्ञा कारणविशेषोपलम्भश्च ॥ १ ॥

तुरस्रसंस्थाना: पुष्पावकीर्णास्तु नानासंस्थाना: प्रतिपत्तव्या:, एतच्चाग्रे स्वयमेव वक्ष्यति, "अहे खुरप्पसंठाणसंठिया" इति, 'अध:' भूमितले क्षुरप्रस्येव—प्रहरणविशेषस्य(इव) यत् संस्थानम्—आकारविशेषस्तीक्ष्णतालक्षणस्तेन संस्थिता: क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिता:, तथाहि—तेषु नरकावासेषु भूमितले मसृणत्वाभावत: शर्करिले पादेषु न्यस्यमानेषु शर्करामात्रसंस्पर्शेऽपि क्षुरप्रेणेव पादा: कृत्यन्ते, तथा "**निच्चंधयार-तमसा**" नित्यान्धकारा: उद्द्योताभावतो यत्तमस्तेन—तमसा नित्यं—सर्वकालमन्धकारो येषु ते नित्यान्धकारा:, तत्रापवरकादिष्वपि तमोऽन्धकारोऽस्ति केवलं स बहि: सूर्यप्रकाशे मन्दतमो भवति नरकेषु तु तीर्थकरजन्मदीक्षादिकालव्यतिरेकेणान्यदा सर्वकालमप्युद्द्योतलेशस्याप्यभावतो जात्यन्धस्येव मेघच्छन्नकालार्द्धरात्र इवातीव बहलतरो भवति, तत उक्तं तमसानित्यान्धकारा:, तमश्च तत्र सदाऽवस्थितमुद्द्योतकारिणामभावात्, तथा चाह—"**ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा**" व्यपगत:—परिभ्रष्टो ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्ररूपाणाम् उपलक्षणमेतत्तारारूपाणां च ज्योतिष्काणां पन्था—मार्गो यत्र ते व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्कपथा:, तथा "**मेयवसा-पूयरुहिरमंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला**" इति स्वभावत: संपन्नैर्मेदोवसापूतिरुधिरमांसैर्यश्चिक्खिल्ल:—कर्दमस्तेन लिप्तम्—उपदिग्धम् अनुलेपनेन—सकृल्लिप्तस्य पुन: पुनरुपलेपनेन तलं—भूमिका येषां ते मेदोवशापूतिरुधिरमांसचिक्खिल्ललिप्तानुलेपनतला अत एवाशुचय:—अपवित्रा, बीभत्सा दर्शनेऽप्यतिजुगुप्सोत्पत्ते: परमदुरभिगन्धा:—मृतगवादिकडेवरेभ्योऽप्यतीवानिष्टदुरभिगन्धा:, "**काऊअगणिवन्नाभा**" इति लोहे धम्यमाने यादृक् कपोतो—बहुकृष्णरूपोऽग्नेर्वर्ण:, किमुक्तं भवति?—यादृशी बहुकृष्णवर्णरूपाऽग्निज्वाला विनिर्गच्छतीति, तादृशी आभा—वर्णस्वरूपं येषां ते कपोताग्निवर्णाभा:, तथा कर्कश:—अतिदुस्सहोऽसिपत्रस्येव स्पर्शो येषां ते कर्कशस्पर्शा:, अत एव '**दुरहियासा**' इति दु:खेनाध्यास्यन्ते—सह्यन्ते इति दुरध्यासा अशुभा दर्शनतो नरका:, तथा गन्ध-

रसस्पर्शशब्दैरशुभा—अतीवासातरूपा नरकेषु वेदना । एवं सर्वास्वपि पृथिवीष्वालापको वक्तव्यः, स चैवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता मज्झे चेव केवइए केवइया णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! सक्करप्पभाए णं पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहित्ता हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे तीसुत्तरजोयणसयसहस्से एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पणवीसा नरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरएसु वेयणा। वालुयप्पभाए णं भंते! पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठं एगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता, मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पण्णरस निरयावाससयसहस्सा भवन्तीति मक्खायं, ते णं नरगा जाव असुभा नरगेसु वेयणा। पंकप्पभाए णं भंते! पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! पंकप्पभाए णं पुढवीए वीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभा पुढविणेरइयाणं दस निरयावाससयसहस्सा निरयावासा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा जाव असुभा नरगेसु वेयणा। धूमप्पभाए णं भंते! पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि केवइयं ओगाहेत्ता, हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?, गोयमा! धूमप्पभाए णं पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसह-

३ प्रतिपत्तौ उद्देशः १ नरकावासस्वरूपं तत्स्थानं च सू० ८१

स्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं तिन्नि नेरइयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरगेसु वेयणा इति, [ग्रन्थाग्रम् ३०००]। तमप्पभाए णं भंते! पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि केवतियं ओगाहेत्ता हेट्ठा केवतियं वज्जेत्ता मज्झे केवतिए केवतिया नरगावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! तमप्पभाए णं पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा एगं जोयणसयसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं तमापुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे नरगावाससयसहस्से भवन्तीति मक्खायं, ते णं णरगा अंतो वट्टा जाव असुभा नरगेसु वेयणा। अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहेत्ता हेट्ठा केवइयं वज्जेत्ता मज्झे केवइए केवइया अणुत्तरा महइमहालया महानरगावासा पण्णत्ता?, गोयमा! अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठावि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए मज्झे अप्पइट्ठाणे, ते णं महानरगा अंतो वट्टा जाव असुभा महानरगेसु वेयणा" इति। इदं च सकलमपि सूत्रं सुगमं, तत्र बाहल्यपरिमाणनरकावासयोग्यमध्यभागपरिमाणनरकावाससङ्ख्यानामिमाः सङ्ग्रहणिगाथा:—"आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हेट्ठिमया॥ १॥ अट्ठुत्तरं च तीसं छव्वीसं चेव सयसहस्सं तु। अट्ठारस सोलसगं चोद्दसमहियं तु छट्ठीए॥ २॥ अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमहे वज्जिऊण तो भणिया।

मज्झे तिसु सहस्सेसु होंति निरया तमतमाए ॥ ३ ॥ तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दस चेव मयसहस्साइं । तिन्नि य पंचूणेगं पंचेव अणुत्तरा निरया ॥ ४ ॥" पाठसिद्धाः ॥ सम्प्रति नरकावाससंस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका किंसंठिया पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आवलियपविट्ठा य आवलियबाहिरा य, तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टा तंसा चउरंसा, तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, तंजहा—अयकोट्ठसंठिता पिट्ठपयणगसंठिता कंडूसंठिता लोहीसंठिता कडाहसंठिता थालीसंठिता पिहडगसंठिता किमियडसंठिता किन्नपुडगसंठिआ उडवसंठिया मुरवसंठिता मुयंगसंठिया नंदिमुयंगसंठिया आलिंगकसंठिता सुघोससंठिया दद्दरयसंठिता पणवसंठिया पडहसंठिया भेरिसंठिआ झल्लरीसंठिया कुतुंबकसंठिया नालिसंठिया, एवं जाव तमाए ॥ अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए णरका किंसंठिता पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टे य तंसा य ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! तिण्णि जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, तंजहा—हेट्ठा घणा सहस्सं मज्झे झुसिरा सहस्सं उप्पिं संकुइया सहस्सं, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसेणं भंते ! रयणप्प० पु० नरगा केवतियं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता,

३ प्रतिपत्तौ उद्देशः १ नरकावासानां संस्थानं तद्बाहल्यं च सू० ८२

तंजहा—संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडा ते णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एवं जाव तमाए, अहेसत्तमाए णं भंते! पुच्छा, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे ते संखेज्जवित्थडे से णं एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीसं च धणुसतं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते असंखेज्जवित्थडा ते णं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता (सू० ८२)

'इमीसे णं भंते'! इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः किमिव संस्थिताः किंसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! नरका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आवलिकाप्रविष्टाश्च आवलिकाबाह्याश्च, चशब्दावुभयेषामप्यशुभतातुल्यतासूचकौ, आवलिकाप्रविष्टा नामाष्टासु दिक्षु समश्रेण्यवस्थिताः, आवलिकासु—श्रेणिषु प्रविष्टा—व्यवस्थिता आवलिकाप्रविष्टाः, ते संस्थानमधिकृत्य त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वृत्तास्त्र्यस्राश्चतुरस्राः, तत्र ये ते आवलिकाबाह्यास्ते नानासंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अयःकोष्ठो—लोहमयः कोष्ठस्तद्वत्संस्थिता अयःकोष्ठसंस्थिताः, 'पिट्ठपयणगसंठिया' इति यत्र सुरासंधानाय पिष्टं पच्यते तत्पिष्टपचनकं तद्व-

त्संस्थिताः 'पिट्ठपयणगसंठिया' अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"अयकोट्ठपिट्ठपयणगकंडूलोहीकडाहसंठाणा । थाली पिहडग किण्ह(ग) उडए मुरवे मुयंगे य ॥ १ ॥ नंदिमुइंगे आलिंग सुघोसे दद्दरे य पणवे य । पडहगझल्लरिभेरीकुत्तुंबगनाडिसंठाणा ॥ २ ॥" कण्डुः—पाकस्थानं लोहीकटाहौ प्रतीतौ तद्वत्संस्थानाः स्थाली—उषा पिहडं—यत्र प्रभूतजनयोग्यं धान्यं पच्यते उटजः—तापसाश्रमो मुरजो—मर्दलविशेषः नन्दीमृदङ्गो—द्वादशविधतूर्यान्तर्गतो मृदङ्गः, स च द्विधा, तद्यथा—मुकुन्दो मर्दलश्च, तत्रोपरि सङ्कुचितोऽधो विस्तीर्णो मकुन्दः उपर्यधश्च समो मर्दलः आलिङ्गो—मृन्मयो मुरजः सुघोषो—देवलोकप्रसिद्धो घण्टाविशेष आतोद्यविशेषो वा दर्दरो—वाद्यविशेषः पणवो—भाण्डानां पटहः पटहः—प्रतीतः, भेरी—ढक्का, झल्लरी—चर्मावनद्धा विस्तीर्णवलयाकारा, कुस्तुम्बकः—संप्रदायगम्यः, नाडी—घटिका, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु तावद्वक्तव्यं यावत्षष्ठ्यां, सूत्रपाठोऽप्येवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए नरका किंसंठिया पन्नत्ता ?, गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—आवलिकापविट्ठा य आवलियाबाहिरा य" इत्यादि ॥ अधःसप्तमीविषयं सूत्रं साक्षादुपदर्शयति—'अहेसत्तमाए णं भंते!' इत्यादि, अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां नरकाः 'किंसंस्थिताः' किमिव संस्थिताः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'वट्टे य तंसा य' इति, अधःसप्तम्यां हि पृथिव्यां नरका आवलिकाप्रविष्टा एव न आवलिकाबाह्याः, आवलिकाप्रविष्टा अपि पञ्च, नाधिकाः, तत्र मध्येऽप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रो वृत्तः, सर्वेषामपि नरकेन्द्राणां वृत्तत्वात्, शेषास्तु चत्वारः पूर्वादिषु दिक्षु, ते च त्र्यस्राः, तत उक्तं वृत्तश्च त्र्यस्राश्च ॥ सम्प्रति नरकावासानां बाहल्यप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कियद्बाहल्येन—बहलस्य भावो बाहल्यं—पिण्डभाव उत्सेध इत्यर्थः तेन प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम! त्रीणि योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तने पादपीठे घना—निचिताः

सहस्रं—योजनसहस्रं, मध्ये—पीठस्योपरि मध्यभागे सुषिराः सहस्रं—योजनसहस्रं, तत 'उप्पिं'ति उपरि सङ्कुचिताः शिखराकृत्या सङ्कोचमुपगता योजनसहस्रं, तत एवं सर्वसङ्ख्यया नरकावासानां त्रीणि योजनसहस्राणि बाहल्यतो भवन्ति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां, तथा चोक्तमन्यत्रापि—हेट्ठा घणा सहस्सं उप्पिं संकोचतो सहस्सं तु । मज्झे सहस्स सुसिरा तिन्नि सहस्सूसिया नरया ॥ १ ॥" सम्प्रति नरकावासानामायामविष्कम्भप्रतिपादनार्थमाह—'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः किंप्रमाणमायामविष्कम्भेन, समाहारो द्वन्द्वस्तेनायामविष्कम्भाभ्यामित्यर्थः, कियत् 'परिक्षेपेण' परिरयेण प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृताश्च असङ्ख्येयविस्तृताश्च, सङ्ख्येययोजनप्रमाणं विस्तृतं—विस्तरो येषां ते सङ्ख्येयविस्तृताः, एवमसङ्ख्येयं विस्तृतं येषां ते असङ्ख्येयविस्तृताः, चशब्दौ स्वगतानेकसङ्ख्याभेदप्रकाशनपरौ, तत्र ये ते सङ्ख्येयविस्तृतास्ते सङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेन सङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण, तत्र ये तेऽसङ्ख्येयविस्तृतास्तेऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेन असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावत्षष्ठी पृथिवी, सूत्रपाठस्त्वेवम्—सक्करप्पभाए णं भन्ते! पुढवीए नरगा केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिरयेणं पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संखेज्जवित्थडा य, असंखेज्जवित्थडा य" इत्यादि ॥ 'अहेसत्तमाए णं भंते!' इत्यादि, अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां नरकाः कियदायामविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृत एकः, स चाप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रकोऽवसातव्यः, असङ्ख्येयविस्तृताः शेषाश्चत्वारः, तत्र योऽसौ सङ्ख्येयविस्तृतोऽप्रतिष्ठानाभिधानो नरकेन्द्रकः स एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशत्यधिके त्रयः

क्रोशा अष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदश अङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्, इदं च परिक्षेपपरिमाणं गणितभावनया जम्बूद्वीपपरिक्षेपपरिमाणवद्भावनीयं, तत्र ये ते शेषाश्चत्वारोऽसङ्ख्येयविस्तृतास्तेऽसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेनासङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि ॥ सम्प्रति नरकावासानां वर्णप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! काला कालावभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका केरिसका गंधेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! से जहाणामए अहिमडेति वा गोमडेति वा सुणगमडेति वा मज्जारमडेति वा मणुस्समडेति वा महिसमडेति वा मूसगमडेति वा आसमडेति वा हत्थिमडेति वा सीहमडेति वा वग्घमडेति वा विगमडेति वा दीवियमडेति वा मयकुहियचिरविणट्ठकुणिमवावण्णदुब्भिगंधे असुइविलीणविगयबीभत्थदरिसणिज्जे किमिजालाउलसंसत्ते, भवेयारूवे सिया ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरका चेव अकंततरका चेव जाव अमणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० णरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! से जहानामए असिपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा कलंबचीरियापत्तेइ वा सत्तग्गेइ वा कुंतग्गेइ वा तोमरग्गेति वा नारायग्गेति वा सूलग्गेति वा लउ-

लग्गेति वा भिंडिमालग्गेति वा सूचिकलावेति वा कवियच्छूति वा विंचुयकंटएति वा इंगालेति वा जालेति वा मुम्मुरेति वा, अच्चिति वा अलाएति वा सुद्धागणीइ वा, भवे एतारूवे सिया ?, णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव जाव अमणामतरका चेव फासे णं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए ॥ (सू० ८३)

'इमीसे णं भंते !' इत्यादि, अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः कीदृशा वर्णेन प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! कालाः, तत्र कोऽपि निष्प्रतिभतया मन्दकालोऽप्याशङ्क्येत ततस्तदाशङ्काव्यवच्छेदार्थं विशेषणान्तरमाह—'कालावभासाः' कालः—कृष्णोऽवभासः—प्रतिभाविनिर्गमो येभ्यस्ते कालावभासाः, कृष्णप्रभापटलोपचिता इति भावः, अत एव 'गम्भीररोमहर्षाः' गम्भीरः—अतीवोत्कटो रोमहर्षो—रोमोद्धर्षो भयवशाद् येभ्यस्ते गम्भीररोमहर्षाः, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम ते कृष्णावभासा यद्दर्शनमात्रेणापि नारकजन्तूनां भयसम्पादनेन अनर्गलं रोमहर्षमुत्पादयन्तीति, अत एव भीमा—भयानका भीमत्वादेव उत्त्रासनकाः, उत्त्रास्यन्ते नारका जन्तव एभिरिति उत्त्रासना उत्त्रासना एव उत्त्रासनकाः, किं बहुना ?—'वर्णेन' वर्णमधिकृत्य परमकृष्णाः प्रज्ञप्ताः, यत ऊर्ध्वं न किमपि भयानकं कृष्णमस्तीति भावः, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ गन्धमधिकृत्याह—'इमीसे णं भंते !' इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! तद्यथा नाम—'अहिमृत इति वा' अहिमृतो नाम मृताहिदेहः, एवं सर्वत्र भावनीयं, गोमृत इति वा अश्वमृत इति वा मार्जारमृत इति वा हस्तिमृत इति वा सिंहमृत इति वा व्याघ्रमृत इति वा द्वीपः—चित्रकः, सर्वत्र अहिश्चासौ मृतश्च अहिमृत इत्येवं विशेषणसमासः, इह मृतकं सद्यःसंपन्नं न विगन्धि भवति तत आह—'मयकुहियविणट्ठ-

कुणिमवावण्णे'त्यादि, मृतः सन् कुथितः—पूतिभावमुपगतो मृतकुथितः, स चोच्छूनावस्थामात्रगतोऽपि भवति, न च स तथा विगन्धस्तत आह—विनष्टः—उच्छूनावस्थां प्राप्य स्फुटित इति भावः, सोऽपि तथा दुरभिगन्धो न भवति तत आह—'कुणिमवावण्ण'त्ति व्यापन्नं—विशरारुभूतं कुणिमं—मांसं यस्य स तथा, ततो विशेषणसमासः, 'दुरभिगन्धः' इति दुरभिः—सर्वेषामाभिमुख्येन दुष्टो गन्धो यस्यासौ दुरभिगन्धः, अशुचिश्च विलीनो—मनसः कलिमलपरिणामहेतुः 'विगय' इति विगतं प्रनष्टं यदभिमुखतया प्राणिनां गतं—गमनं यस्मिन्, तथा बीभत्सया—निन्दया दर्शनीयो बीभत्सादर्शनीयः ततो विशेषणसमासः अशुचिविगतबीभत्सादर्शनीयः 'किमिजालाउलसंसत्ते' इति संसक्तः सन् कृमिजालाकुलो जातः कृमिजालाकुलसंसक्तः, मयूरव्यंसकादित्वात्समासः संसक्तशब्दस्य च परनिपातः, एतावत्युक्ते गौतम आह—'भवे एयारूवे सिया?' इति, स्याद् भवेद्—भवेयुरेतद्रूपाः—यथोक्तविशेषणविशिष्टा अहिमृतादिरूपा गन्धेनाधिकृता नरकाः, सूत्रे च बहुवचनेऽप्येकवचनं प्राकृतत्वात्, भगवानाह—गौतम! 'नायमर्थः समर्थो' नायमर्थ उपपन्नो, यतोऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरका इतो—यथोक्तविशेषणविशिष्टाहिमृतादेरनिष्टतरा एव, तत्र किञ्चिद्रम्यमपि कस्याप्यनिष्टतरं भवति तत आह—अकान्ततरा एव—स्वरूपतोऽप्यकमनीयतरा एव, अभव्या एवेति भावः, तत्राकान्तमपि कस्यापि प्रियं भवति यथा गर्त्ताशूकरस्याशुचिः, तत आह—अप्रियतरा एव न कस्यापि प्रिया इति भावः, अत एवामनोज्ञतरा एव, अमनआपतरा एव गन्धमधिकृत्य प्रज्ञप्ताः, तत्र मनोज्ञं—मनोऽनुकूलमात्रं यत्पुनः स्वविषये मनोऽत्यन्तमासक्तं करोति तन्मनआपम्, एकार्थिका वा एते सर्वे शब्दाः शक्रेन्द्रपुरन्दरादिवत् नानादेशजविनेयजनानुग्रहार्थमुपात्ताः, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ स्पर्शमधिकृत्याह—'इमीसे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! तद्यथा नाम—'असिपत्रमिति वा' असिः—खड्गं तस्य पत्रमसिपत्रं क्षुरप्रमिति वा

कदम्बचीरिकापत्रमिति वा, कदम्बचीरिका—तृणविशेषः, स च दर्भादप्यतीव छेदकः, शक्तिः—प्रहरणविशेषस्तदग्रमिति वा, कुन्ताग्रमिति वा, तोमराग्रमिति वा, भिण्डिमालः—प्रहरणविशेषस्तदग्रमिति वा, सूचीकलाप इति वा, वृश्चिकदंश इति वा, कपिकच्छूरिति वा, कपिकच्छूः—कण्डूविजनको वल्लीविशेषः, अङ्गार इति वा, अङ्गारो—निर्धूमाग्निः, ज्वालेति वा, ज्वाला—अनलसंबद्धा, मुर्मुर इति वा, मुर्मुरः—फुम्फुकादौ मसृणोऽग्निः, अर्चिरिति वा, अर्चिः—अनलविच्छिन्ना ज्वाला, अलातम्—उल्मुकं, शुद्धाग्निः—अयस्पिण्डाद्यनुगतोऽग्निर्विद्युदादिर्वा, इतिशब्दः सर्वत्रापि उपमाभूतवस्तुस्वरूपपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्दः परस्परसमुच्चये, इह कस्यापि नरकस्य स्पर्शः शरीरावयवच्छेदकोऽपरस्य भेदकोऽन्यस्य व्यथाजनकोऽपरस्य दाहक इत्यादि ततः साम्यप्रतिपत्त्यर्थमसिपत्रादीनां नानाविधानामुपमानानामुपादानं, 'भवे एयारूवे सिया?' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नरकावासानां महत्त्वमभिधित्सुराह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केमहालिया पण्णत्ता?, गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूवसंठाणसंठिते वट्टे रथचक्कवालसंठाणसंठिते वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिते एक्कं जोयणसतसहस्सं आयामविक्खंभेणं जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे जाव इणामेव इणामेवत्तिकट्टु इमं केवलकप्पं जंबूद्दीवं २ तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरिताए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए [छेगाए] दिव्वाए दिव्वगतीए वीतिवयमाणे २ जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा

तिआहं वा उक्कोसेणं छम्मासेणं वीतिवएज्जा, अत्थेगतिए वीइवएज्जा अत्थेगतिए नो वीतिवएज्जा, एमहालता णं गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमाए; णवरं अधेसत्तमाए अत्थेगतियं नरगं वीइवइज्जा, अत्थेगइए नरगे नो वीतिवएज्जा ॥ (सू० ८४)

'इमीसे ण'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः 'किंमहान्तः' किंप्रमाणा महान्तः प्रज्ञप्ताः?, पूर्वं ह्यसङ्ख्येयविस्तृता इति कथितं, तच्चासङ्ख्येयत्वं नावगम्यत इति भूयः प्रश्नः, अत एवात्र निर्वचनं भगवानुपमयाऽभिधत्ते, गौतम! अयमिति यत्र संस्थिता वयं णमिति वाक्यालङ्कारे अष्टयोजनोच्छ्रितया रत्नमय्या जम्ब्वा उपलक्षितो द्वीपो जम्बूद्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां—धातकीखण्डलवणादीनां सर्वाभ्यन्तरः—आदिभूतः 'सर्वक्षुल्लकः' सर्वेभ्यो द्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको—ह्रस्वः सर्वक्षुल्लकः, तथाहि—सर्वे लवणादयः समुद्राः सर्वे धातकीखण्डादयो द्वीपा अस्माज्जम्बूद्वीपादारभ्य प्रवचनोक्तेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणायामविष्कम्भपरिधयः ततोऽयं शेषसर्वद्वीपसमुद्रापेक्षया सर्वलघुरिति, तथा वृत्तो यतः 'तैलापूपसंस्थानसंस्थितः' तैलेन पक्वोऽपूपस्तैलापूपः, तैलेन हि पक्वोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतेन पक्व इति तैलविशेषणं, तस्येव संस्थानं तैलापूपसंस्थानं तेन संस्थितस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतः पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तो यतः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः, अनेकधोपमानोपमेयभावो नानादेशजविनेयप्रतिपत्त्यर्थः, एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजनशते सप्तविंशे त्रयः क्रोशा अष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदश अङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, परिक्षेपपरिमाणगणितभावना क्षेत्रसमासटीकातो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीकातो वा वेदितव्या । 'देवे ण'मित्यादि, देवश्च णमिति वाक्याल-

ङ्कारे, 'महर्द्धिकः' महती ऋद्धिर्विमानपरिवारादिका यस्य स महर्द्धिकः, महती द्युतिः शरीराभरणविषया यस्य स महाद्युतिकः, महद् बलं—शारीरः प्राणो यस्य स महाबलः, महद् यशः—ख्यातिर्यस्य स महायशाः, तथा 'महेसक्खे' इति महेश इति महान् ईश्वर इत्याख्या यस्य स महेशाख्यः, अथवा ईशनमीशो भावे घञ्प्रत्यय ऐश्वर्यमित्यर्थः, 'ईशं ऐश्वर्ये' इति वचनात्, तत ईशम्—ऐश्वर्यमात्मनः ख्याति—अन्तर्भूतण्यर्थतया ख्यापयति—प्रथयति ईशाख्यः, महांश्चासावीशाख्यश्च महेशाख्यः, कचित् 'महासोक्खे' इति पाठः, तत्र महत् सौख्यं यस्य प्रभूतसद्वेदोदयवशात्स महासौख्यः, अन्ये पठन्ति—'महासक्खे' इति तत्रायं शब्दसंस्कारो—महाश्वाक्षः, इयं चात्र पूर्वाचार्यप्रदर्शिता व्युत्पत्तिः—आशुगमनादश्वो—मनः अक्षाणि—इन्द्रियाणि स्वविषयव्यापकत्वात् अश्वश्चाक्षाणि च अश्वाक्षाणि महान्ति अश्वाक्षाणि यस्यासौ महाश्वाक्षः, तथा 'महाणुभागे' इति अनुभागो—विशिष्टवैक्रियादिकरणविषयाऽचिन्त्या शक्तिः 'भागोऽचिंता सत्ती' इति वचनात्, महान् अनुभागो यस्य स महानुभागः, अमूनि महर्द्धिक इत्यादीनि विशेषणानि तत्सामर्थ्यातिशयप्रतिपादकानि यावदिति चप्पुटिकात्रयकरणकालावधिप्रदर्शनपरम् 'इणामेव इणामेवेतिकट्टु' एवमेव मुधिकया एवमेव 'मोरकुला मुहा य मुहियत्ति नायव्वा' इति वचनाद् अवज्ञयेति भावः, उक्तञ्च मूलटीकायाम् "इणामेव इणामेवेति कट्टु एवमेव मुधिकयाऽवज्ञयेति" 'इतिकृत्वे'ति हस्तदर्शितचप्पुटिकात्रयकरणसूचकं केवलकल्पं—परिपूर्णं जम्बूद्वीपं त्रिभिरप्सरोनिपातैः, अप्सरोनिपातो नाम चप्पुटिका, तत्र तिसृभिश्चप्पुटिकाभिरिति द्रष्टव्यं, चप्पुटिकाश्च कालोपलक्षणं, ततो यावता कालेन तिस्रश्चप्पुटिकाः पूर्यन्ते तावत्कालमध्य इत्यर्थः, त्रिसप्तकृत्वः—एकविंशतिवारान् अनुपरिवर्त्त्य—सामस्त्येन परिभ्रम्य 'हव्वं' शीघ्रमागच्छेत्, स इत्थम्भूतगमनशक्तियोग्यो देवः तया देवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया प्रशस्तविहायोगतिनामोदयात्प्रशस्तया शीघ्रसंचरणात्त्वरितया त्वरा संजाताऽस्यामिति

त्वरिता तया त्वरितया शीघ्रतरमेव तया प्रदेशान्तराक्रमणमिति, चपलेव चपला तया, क्रोधाविष्टस्येव श्रमासंवेदनात् चण्डेव चण्डा तया, निरन्तरं शीघ्रत्वगुणयोगात् शीघ्रा तया शीघ्रया, परमोत्कृष्टवेगपरिणामोपेता जवना तया, अन्ये तु जितया विपक्षजेतृत्वेनेति व्याचक्षते, 'छेकया' निपुणया, वातोद्धूतस्य दिगन्तव्यापिनो रजस इव या गतिः सा उद्धूता तया, अन्ये त्वाहुः—उद्धतया दर्पातिशयेनेति, 'दिव्यया' दिवि—देवलोके भवा दिव्या तया देवगत्या व्यतिव्रजन् जघन्यतः 'एकाहं वा' एकमहर्यावत्, एवं द्व्यहं त्र्यहमुत्कर्षतः षण्मासान् यावद् व्यतिव्रजेत्, तत्रास्त्येतद् यदुत एककान् कांश्चन नरकान् 'व्यतिव्रजेत्' उल्लङ्घ्य परतो गच्छेत्, तथाऽस्त्येतद् यदुत इत्थंभूतयापि गत्या षण्मासानपि यावन्निरन्तरं गच्छन् एककान् कांश्चन नरकान् 'न व्यतिव्रजेत्' नोल्लङ्घ्य परतो गच्छेत्, अतिप्रभूताऽऽयामतया तेषामन्तस्य प्राप्तुमशक्यत्वात्, एतावन्तो महान्तो गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः प्रज्ञप्ताः, एवमेकैकस्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्यां, नवरमधःसप्तम्यामेवं वक्तव्यम्—"अत्थेगइयं नरगं वीइवएज्जा अत्थेगइए नरगे नो वीइवएज्जा" अप्रतिष्ठानाभिधस्यैकस्य नरकस्य लक्षयोजनायामविष्कम्भतयाऽन्तस्य प्राप्तुं शक्यत्वात् शेषाणां च चतुर्णामतिप्रभूतासङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वेनान्तस्य प्राप्तुमशक्यत्वात् ॥ सम्प्रति किंमया नरका इति निरूपणार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किंमया पण्णत्ता?, गोयमा! सव्ववइरामया पण्णत्ता, तत्थ णं नरएसु बहवे जीवा य पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति, सासता णं ते णरगा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ८५)

३ प्रतिपत्तौ
उद्देशः २
नरकावासप्रमाणं
नरकाणां
सशाश्वततरत्वे
सू० ८५

'इमीसे णं भंते!' इत्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नरकाः 'किंमयाः' किंविकाराः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! 'सव्ववइरामया' इति सर्वात्मना वज्रमयाः प्रज्ञप्ताः, वज्रशब्दस्य सूत्रे दीर्घान्तता प्राकृतत्वात्, 'तत्र च' तेषु नरकेषु णमिति वाक्यालङ्कारे बहवो जीवाश्च खरबादरपृथिवीकायिकरूपाः पुद्गलाश्च 'अपक्रामन्ति' च्यवन्ते 'व्युत्क्रामन्ति' उत्पद्यन्ते, एतदेव शब्दद्वयं यथाक्रमं पर्यायद्वयेन व्याचष्टे—'चयंति उववज्जंति' च्यवन्ते उत्पद्यन्ते, किमुक्तं भवति?—एके जीवाः पुद्गलाश्च यथायोगं गच्छन्ति अपरे त्वागच्छन्ति, यस्तु प्रतिनियतसंस्थानादिरूप आकारः स तदवस्थ एवेति, अत एवाह—शाश्वता णमिति पूर्ववत् ते नरका द्रव्यार्थतया तथाविधप्रतिनियतसंस्थानादिरूपतया वर्णपर्यायैर्गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः पुनरशाश्वताः, वर्णादीनामन्यथाऽन्यथाभवनात्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी पृथिवी ॥ साम्प्रतमुपपातं विचिचिन्तयिषुराह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया कतोहिंतो उववज्जंति किं असण्णीहिंतो उववज्जंति सरीसिवेहिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति चउप्पएहिंतो उववज्जंति उरगेहिंतो उववज्जंति इत्थियाहिंतो उववज्जंति मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतोवि उववज्जंति[1],—असण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसिवा ततिय पक्खी। सीहा जंति चउत्थीं उरगा पुण पंचमीं जंति ॥ १ ॥ छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं जंति। जाव अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइया णो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव णो इत्थियाहिंतो उवव-

१ (सेसासु इमाए गाहाए अणुगंतव्वा, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाथा घोसेयव्वा).

ज्जंति मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतिया एक्कसमएणं केव-तिया उववज्जंति?, गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखिज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पुढवीए णेरतिया समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवतिकालेणं अवहिता सिता?, गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए स-मए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति नो चेव णं अवहिता सिता जाव अधेसत्तमा ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतियाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्को-सेणं सत्त धणूइं तिण्णि य रयणीओ छच्च अंगुलाइं, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जह० अंगु-लस्स संखेज्जतिभागं उक्को० पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ, दोच्चाए भवधारणिज्जे जह-ण्णओ अंगुलासंखेज्जभागं उक्को० पण्णरस धणू अड्ढाइज्जातो रयणीओ उत्तरवेउव्विया जह० अंगुलस्स संखेज्जभागं उक्को० एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी, तच्चाए भवधारणिज्जे एक्कतीसं धणू एक्का रयणी, उत्तरवेउव्विया बासट्ठिं धणूइं दोण्णि रयणीओ, चउत्थीए भवधारणिज्जे बासट्ठ ध-णूइं दोण्णि य रयणीओ, उत्तरवेउव्विया पणवीसं धणुसयं, पंचमीए भवधारणिज्जे पणवीसं ध-

णुसयं, उत्तरवे० अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, छट्ठीए भवधारणिज्जा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया पंचधणुसयाइं, सत्तमाए भवधारणिज्जा पंचधणुसयाइं उत्तरवेउव्विए धणुसहस्सं ॥ (सू० ८६)

'इमीसे ण'मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाः कुत उत्पद्यन्ते?, किमसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते सरीसृपेभ्य उत्पद्यन्ते पक्षिभ्य उत्पद्यन्ते चतुष्पदेभ्य उत्पद्यन्ते उरगेभ्य उत्पद्यन्ते स्त्रीभ्य उत्पद्यन्ते मत्स्यमनुष्येभ्य उत्पद्यन्ते?, भगवानाह—गौतम! असञ्ज्ञिभ्योऽप्युत्पद्यन्ते यावन्मत्स्यमनुष्येभ्योऽप्युत्पद्यन्ते, **'सेसासु इमाए गाहाए अणुगंतव्वा'** इति, **'शेषासु'** शर्कराप्रभादिषु पृथिवीष्वनया गाथया, जातावेकवचनं गाथाद्विकेनेत्यर्थः, उत्पद्यमाना अनुगन्तव्याः, तदेव गाथाद्विकमाह—**'अस्सण्णी खलु पढम'**मित्यादि, असञ्ज्ञिनः—संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियाः खलु प्रथमां नरकपृथिवीं गच्छन्ति, खलुशब्दोऽवधारणे, तथा अवधारणमेवम्—असञ्ज्ञिनः प्रथमामेव यावद् गच्छन्ति न परत इति, नतु त एव प्रथमामिति गर्भजसरीसृपादीनामपि उत्तरपृथिवीषट्कगामिनां तत्र गमनात्, एवमुत्तरत्राप्यवधारणं भावनीयम्। **'दोच्चं च सरीसिवा'** इति द्वितीयामेव शर्कराप्रभाख्यां पृथिवीं यावद्गच्छन्ति सरीसृपाः—गोधानकुलादयो गर्भव्युत्क्रान्ता न परतः, तृतीयामेव गर्भजाः पक्षिणो गृध्रादयः, चतुर्थीमेव सिंहाः, पञ्चमीमेव गर्भजा उरगाः, षष्ठीमेव स्त्रियः स्त्रीरत्नाद्या महाक्रूराध्यवसायिन्यः, सप्तमीं यावद् गर्भजा मत्स्या मनुजा अतिक्रूराध्यवसायिनो महापापकारिणः, आलापकश्च प्रतिपृथिवि एवम्—"सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति?, गोयमा! नो असन्नीहिंतो उववज्जंति सरीसिवेहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति। वालुयप्पभाए णं भंते!

पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति ?, गोयमा ! नो असण्णीहिंतो उववज्जंति नो सरीसिवे-
हिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति" एवमुत्तरोत्तरपृथिव्यां पूर्वपूर्वप्रतिषेधसहितोत्तरप्रतिषेध-
स्तावद्वक्तव्यो यावदधःसप्तम्यां स्त्रीभ्योऽपि प्रतिषेधः, तत्सूत्रं चैवम्—"अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए नेरइया किं असण्णीहिंतो
उववज्जंति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?, गोयमा ! नो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव नो इत्थीहिंतो उववज्जंति, मच्छमणुस्सेहिंतो
उववज्जंति" ॥ सम्प्रत्येकस्मिन् समये कियन्तोऽस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नारका उत्पद्यन्ते ? इति निरूपणार्थमाह । (इमीसे णं) 'रयण-
प्पभापुढविए नेरइया णं भंते !' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त ! एकसमयेन कियन्त उत्पद्यन्ते ?, भगवानाह—गौतम ! ज-
घन्यत एको द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येया असङ्ख्येया वा, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति
प्रतिसमयमेकैकनारकापहारे सकलनारकापहारकालमानं विचिचिन्तयिपुरिदमाह—'रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते !' इत्यादि, रत्न-
प्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त ! समये समये एकैकसङ्ख्यया अपह्रियमाणाः २ कियता कालेन सर्वात्मनाऽपह्रियन्ते ?, भगवानाह—गौतम !
'ते णं असंखेज्जा समए २ अवहीरमाणा' इत्यादि, ते रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका असङ्ख्येयास्ततः समये समये एकैकसङ्ख्यया अप-
ह्रियमाणा असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्रियन्ते, इदं च नारकपरिमाणप्रतिपत्त्यर्थं कल्पनामात्रं, 'नो चेव णं अवहिया
सिया' इति न पुनरपहृताः स्युः, किमुक्तं भवति ?—न पुनरेवं कदाचनाप्यपहृता अभवन् नाप्यपह्रियन्ते नाप्यपहरिष्यन्त इति, एवं
पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति शरीरपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभापुढवी' इत्यादि, रत्नप्र-
भापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त ! 'किंमहती' किंप्रमाणा महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?, 'जहा पण्णवणाए ओगाहणसंठाणपदे'

इति, यथा प्रज्ञापनायामवगाहनासंस्थानाख्यपदे तथा वक्तव्या, सा चैवं—द्विविधा रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां शरीरावगाहना—भवधारणीया उत्तरवैक्रिया च, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् परिपूर्णान्यङ्गुलानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तावेका वितस्तिः, शर्कराप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तावेका वितस्तिः, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षत एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, वालुकाप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षत एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सार्द्धानि द्वाषष्टिधनूंषि, पङ्कप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः सार्द्धानि द्वाषष्टिधनूंषि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चविंशं धनुःशतं, धूमप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चविंशं धनुःशतं, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, तमःप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतोऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्चधनुःशतानि, तमस्तमःप्रभायां भवधारणीया जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षतः पञ्च धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया जघन्यतोऽङ्गुलसङ्ख्येयभाग, उत्कर्षतो धनुःसहस्रमिति । यदि पुनः प्रतिप्रस्तटे चिन्ता क्रियते तदैवमवगन्तव्या—तत्र जघन्या भवधारणीया सर्वत्राप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागः, उत्तरवैक्रिया तु अङ्गुलसङ्ख्येयभागः, उक्तं च मूलटीकाकारेणान्यत्र—"उत्तरवैक्रिया तु तथाविधप्रयत्नाभावादाद्यसमयेऽप्यङ्गुलसङ्ख्येयभागमात्रैवे"ति, उत्कृष्टा तु भवधारणीयाया रत्नप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे त्रयो हस्ता अत ऊर्ध्वं क्रमेण प्रतिप्रस्तटं सार्द्धानि षट्पञ्चाशदङ्गुलानि प्रक्षिप्यन्ते, तत एवं परिमाणं भवति, द्वितीये प्रस्तटे धनुरेकमेको हस्तः सार्द्धानि चाष्टावङ्गुलानि, तृतीये धनुरेकं

त्रयो हस्ताः सप्तदशाङ्गुलानि, चतुर्थे द्वे धनुषी द्वौ हस्तौ सार्द्धमेकमङ्गुलं, पञ्चमे त्रीणि धनूंषि दशाङ्गुलानि, षष्ठे त्रीणि धनूंषि द्वौ हस्तौ सार्द्धान्यष्टादशाङ्गुलानि, सप्तमे चत्वारि धनूंषि एको हस्तस्त्रीणि चाङ्गुलानि, अष्टमे चत्वारि धनूंषि त्रयो हस्ताः सार्द्धान्येकादशाङ्गुलानि, नवमे पञ्च धनूंषि एको हस्तो विंशतिरङ्गुलानि, दशमे षड् धनूंषि सार्द्धानि चत्वार्यङ्गुलानि, एकादशे षड् धनूंषि द्वौ हस्तौ त्रयोदशाङ्गुलानि, द्वादशे सप्त धनूंषि सार्द्धान्येकविंशतिरङ्गुलानि, त्रयोदशे सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् च परिपूर्णान्यङ्गुलानि, उक्तञ्च—"रयणाए पढमपयरे हत्थतियं देह उस्सए भणियं । छप्पन्नंगुलसड्ढा पयरे पयरे हवइ वुड्ढी ॥ १ ॥"

प्र.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
ध.	०	१	१	२	३	३	४	४	५	६	६	७	७
ह.	३	१	३	२	०	२	१	३	१	०	२	०	३
अं.	०	८॥	१७	१॥	१०	१८॥	३	११॥	२०	४॥	१३	२१॥	६

शर्कराप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः षट् चाङ्गुलानि, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं त्रयो हस्तास्त्रीणि चाङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटेऽष्ट धनूंषि द्वौ हस्तौ नव चाङ्गुलानि, तृतीये नव धनूंषि एको हस्तो द्वादश चाङ्गुलानि, चतुर्थे दश धनूंषि पञ्चदशाङ्गुलानि, पञ्चमे दश धनूंषि त्रयो हस्ता अष्टादशाङ्गुलानि, षष्ठे एकादश धनूंषि द्वौ हस्तावेकविंशतिरङ्गुलानि, सप्तमे द्वादश धनूंषि द्वौ हस्तौ, अष्टमे त्रयोदश धनूंषि एको हस्तस्त्रीणि चाङ्गुलानि, नवमे चतुर्दश धनूंषि षट् चाङ्गुलानि, दशमे चतुर्दश धनूंषि त्रयो हस्ता नव चाङ्गुलानि, एकादशे पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तौ एका वितस्तिः, उक्तञ्च—"सो चेव य बीयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । हत्थ तिय तिन्नि अङ्गुल पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥ १ ॥ एक्कारसमे पयरे पन्नरस धणूणि दोण्णि रयणीओ । बारस य अंगुलाइं देहपमाणं तु विन्नेयं ॥ २ ॥" अत्र 'सो चेव य बीयाए' इति य एव प्रथमपृथिव्यां त्रयोदशे प्रस्तटे उत्सेधो भणितो

३ प्रतिपत्तौ
उद्देशः २
उपपातः
संख्याऽवगाहनामानं
सू० ८६

यथा सप्त धनूंषि त्रयो हस्ताः पट् चाङ्गुलानीति स एव द्वितीयस्यां शर्कराप्रभायां पृथिव्यां प्रथमे प्रस्तटे उत्सेधो भवति, शेषं सुगमम् ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	प्र.
७	८	९	१०	१०	११	१२	१३	१४	१४	१५	ध.
३	२	१	०	३	२	२	१	०	३	२	ह.
६	९	१	१५	१८	२१	०	३	६	९	१२	अं.

वालुकाप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे पञ्चदश धनूंषि द्वौ हस्तौ द्वादश चाङ्गुलानि, अत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं सप्त हस्ताः सार्द्धानि चैकोनविंशतिरङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटे सप्तदश धनूंषि द्वौ हस्तौ सार्द्धानि सप्ताङ्गुलानि, तृतीये एकोनविंशतिर्धनूंषि द्वौ हस्तौ त्रीण्यङ्गुलानि, चतुर्थे एकविंशतिर्धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि च द्वाविंशतिरङ्गुलानि, पञ्चमे त्रयोविंशतिर्धनूंषि एको हस्तोऽष्टादश चाङ्गुलानि, पष्ठे पञ्चविंशतिर्धनूंपि एको हस्तः सार्द्धानि त्रयोदशाङ्गुलानि, सप्तमे सप्तविंशतिर्धनूंषि एको हस्तो नव चाङ्गुलानि, अष्टमे एकोनत्रिंशद् धनूंषि एको हस्तः सार्द्धानि चत्वार्यङ्गुलानि, नवमे एकत्रिंशद्धनूंषि एको हस्तः, उक्तञ्च—"सो चेव य तइयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । सत्त य रयणी अंगुल गुणवीसं सड्ढ वुड्ढी य ॥ १ ॥ पयरे पयरे य तहा नवमे पयरंमि होइ उस्सेहो । धणुयाणि एगतीसं एक्का रयणी य नायव्वा ॥ २ ॥" अत्रापि 'सो चेव य तइयाए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो' इति य एव द्वितीयस्यां शर्कराप्रभायामेकादशे प्रस्तटे उत्सेधः स एव तृतीयस्यां वालुकाप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे भवति, शेषं सुगमं । पङ्कप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे एकत्रिंशद्धनूंपि एको हस्तः, तत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं पञ्च धनूंषि विंशतिरङ्गुलानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटे षट्त्रिंशद्धनूंषि एको हस्तो विंशतिरङ्गुलानि, तृतीये एकचत्वारिंशद्धनूंषि द्वौ हस्तौ पोडशाङ्गुलानि, चतुर्थे षट्चत्वारिंशद्धनूंषि त्रयो हस्ता द्वादशाङ्गुलानि, पञ्चमे द्विपञ्चाशद्धनूंषि अष्टावङ्गुलानि, षष्ठे सप्तपञ्चाशद्धनूंषि

एको हस्तश्चत्वार्यङ्गुलानि, सप्तमे द्वाषष्टिः धनूंषि द्वौ हस्तौ, उक्तञ्च—"सो चेव चउत्थीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । पञ्च धणु वीस अंगुल पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥ १ ॥ जा सत्तमए पयरे नेरइयाणं तु होइ उस्सेहो । बासट्ठी धणुयाइं दोण्णि य रयणी य बोद्धव्वा ॥ १ ॥" अत्रापि 'सो चेवे'त्यस्यार्थः पूर्वानुसारेण भावनीयः । धूमप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे द्वाषष्टिर्धनूंषि द्वौ हस्तौ, तत ऊर्ध्वं तु प्रतिप्रस्तटं पञ्चदश धनूंषि सार्द्धहस्तद्वयाधिकानि क्रमेण प्रक्षेप्तव्यानि, तेनेदं परिमाणं भवति—द्वितीये प्रस्तटेऽष्टसप्ततिर्धनूंषि एका वितस्तिः, तृतीये त्रिनवतिर्धनूंषि त्रयो हस्ताः, चतुर्थे नवोत्तरं धनुःशतमेको हस्त एका वितस्तिः, पञ्चमे पञ्चविंशं धनुःशतं, उक्तञ्च—"सो चेव पंचमीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । पनरस धणूणि दो हत्थ सड्ढ पयरेसु वुड्ढी य ॥ १ ॥ तह पंचमए पयरे उस्सेहो धणुसयं तु पणवीसं ।" 'सो चेव य' इत्यस्यार्थोऽत्रापि पूर्ववत् । तमःप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे पञ्चविंशं धनुःशतं ततः परतरे तु प्रस्तटद्वये क्रमेण प्रत्येकं सार्द्धानि द्वाषष्टिर्धनूंषि प्रक्षेप्तव्यानि, तत एवं परिमाणं भवति—द्वितीये सार्द्धसप्ताशीत्यधिकं धनुःशतं, तृतीयेऽर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि, उक्तञ्च—"सो चेव य छट्टीए पढमे पयरंमि होइ उस्सेहो । बासट्ठि धणु य सड्ढा पयरे पयरे य वुड्ढी य ॥१॥ (सड्ढा य सत्तसीइ बीए पयरंमि होइ धणुयसयं) छट्ठीएँ तइयपयरे दो सय पण्णासया होंति ॥ २ ॥" सप्तमपृथिव्यां पञ्च धनुःशतानि, उत्तरवैक्रिया तु सर्वत्रापि भवधारणीयापेक्षया द्विगुणप्रमाणाऽवसातव्या ॥ सम्प्रति संहननप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरइयाणं सरीरया किंसंघयणी पण्णत्ता?, गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणा, णेवट्ठी णेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति, एवं जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण०

पु० नेरतियाणं सरीरा किंसंठिता पण्णत्ता ?, गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया तेवि हुंडसंठिता पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते ! रयण० पुं० णेरतियाणं सरीरगा केरिसता वण्णेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! काला कालोभासा जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते रयण० पु० नेरइयाणं सरीरया केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! से जहानामए अहिमडे इ वा तं चेव जाव अहेसत्तमा ॥ इमीसे णं रयण० पु० नेरइयाणं सरीरया केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?, गोयमा ! फुडितच्छविविच्छविया खरफरुसझामझुसिरा फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अधेसत्तमा ॥ (सू० ८७)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त ! 'किंसंहननिनः' केन संहननेन संहननवन्तः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! 'छण्हं संघयणाण' मित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त ! शरीरकाणि 'किंसंस्थितानि' केन संस्थानेन संस्थानवन्ति प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां शरीराणि द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भवधारणीयानि उत्तरवैक्रियाणि च, तत्र यानि भवधारणीयानि तानि तथाभवस्वाभाव्यादवश्यं हुण्डनामकर्मोदयतो हुण्डसंस्थानानि, यान्यपि चोत्तरवैक्रियरूपाणि तान्यपि यद्यपि शुभमहं वैक्रियं करिष्यामीति चिन्तयति तथाऽपि तथाभवस्वाभाव्यतो हुण्डसंस्थाननामकर्मोदयत उत्पाटितसकलरोमपिच्छकपोतपक्षिण इव हु-

ण्डसंस्थानानि भवन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति नारकाणां शरीरेषु वर्णप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि वर्णेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! 'काला कालोभासा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमपृथिव्याम् ॥ अधुना गन्धप्रतिपादनार्थमाह—रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि गन्धेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! 'से जहानामए अहिमडे इ वा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति स्पर्शप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते!' इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! शरीरकाणि कीदृशानि स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! स्फटितच्छविविच्छवयः, इहैकत्र छविशब्दस्त्वग्वाची अपरत्र छायावाची, ततोऽयमर्थः—स्फटितया—राजिशतसङ्कुलया त्वचा विच्छवयो—विगतच्छायाः स्फटितच्छविविच्छवयः, तथा खरम्(राणि)—अतिशयेन परुषाणि खरपरुषाणि ध्यामानि—दग्धच्छायानि शुपिराणि—शुपिरशतकलितानि, ततः पदत्रयस्यापि पदद्वयपदद्वयमीलनेन विशेषणसमासः, सुपक्केष्टकाध्यामतुल्यानीतिभावः, स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि, एवं प्रतिपृथिवि तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रत्युच्छ्वासप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरतियाणं केरिसया पोग्गला ऊसासत्ताए परिणमंति?, गोयमा! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं ऊसासत्ताए परिणमंति, एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं आहारस्सवि सत्तसुवि ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरतियाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! एक्का काउलेसा पण्णत्ता, एवं सक्करप्पभाएऽवि, वालुयप्पभाए पुच्छा, दो

लेसाओ पण्णत्ताओ तं०—नीललेसा कापोतलेसा य, तत्थ जे काउलेसा ते बहुतरा जे णीललेस्सा पण्णत्ता ते थोवा, पंकप्पभाए पुच्छा, एक्का नीललेसा पण्णत्ता, धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ, तंजहा—किण्हलेस्सा य नीललेस्सा य, ते बहुतरका जे नीललेस्सा, ते थोवतरका जे किण्हलेसा, तमाए पुच्छा, गोयमा! एक्का किण्हलेस्सा, अधेसत्तमाए एक्का परमकिण्हलेस्सा ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरइया किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी?, गोयमा! सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि सम्मामिच्छदिट्ठीवि, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण० पु० णेरतिया किं नाणी अण्णाणी?, गोयमा! णाणीवि अण्णाणीवि, जे णाणी ते णियमा तिणाणी, तंजहा—आभिणिबोधितणाणी सुयणाणी अवधिणाणी, जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी अत्थेगइया तिअन्नाणी, जे दुअन्नाणी ते णियमा मतिअन्नाणी य सुयअण्णाणी य, जे तिअन्नाणी ते नियमा मतिअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणीवि, सेसा णं णाणीवि अण्णाणीवि तिण्णि जाव अधेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयण० किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी?, तिण्णिवि, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभापु० नेरइया किं सागारोवउत्ता अणा-

---

१ टीकाकृद्भि अत्र 'सक्करपभापुढवीनेरइया कि नाणी अन्नाणी?, गोयमा! नाणीवि अन्नाणीवि, जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी आभि० सुय० ओहि०, जे अन्नाणी ते नियमा तिअन्नाणी मतिअन्नाणी सुअअ० विभंगनाणी, एवं' इति पाठ इतः प्राक् वाचनान्तरगतोऽनुसृत·

गारोवउत्ता?, गोयमा! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए ॥ [इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० नेरइया ओहिणा केवतियं खेत्तं जाणंति पासंति?, गोयमा! जहण्णेणं अद्धुट्ठगाउताइं उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं । सक्करप्पभापु० जह० तिन्नि गाउयाइं उक्को० अद्धुट्ठाइं, एवं अद्धद्धगाउयं परिहायति जाव अधेसत्तमाए जह० अद्धगाउयं उक्कोसेणं गाउयं] ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरतियाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्विय-समुग्घाए, एवं जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ८८)

'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कीदृशाः पुद्गला उच्छ्वासतया परिणमन्ति?, भगवानाह—गौतम! ये पुद्गला अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोज्ञा अमनआपाः, अमीषां पदानां व्याख्यानं प्राग्वत्, ते तेषां रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणामुच्छ्वासतया परिणमन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ साम्प्रतमाहारप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कीदृशाः पुद्गला आहारतया परिणमन्ति?, भगवानाह—गौतम! ये पुद्गला अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोज्ञा अमनआपास्ते तेषामाहारतया परिणमन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् । इह पुस्तकेषु बहुधाऽन्यथापाठो दृश्यते, अत एव वाचनाभेदोऽपि समग्रो दर्शयितुं न शक्यते, केवलं बहुषु पुस्तकेषु योऽविसंवादी पाठस्तत्प्रतिपत्त्यर्थं सुगमान्यप्यक्षराणि संस्कारमात्रेण विव्रियन्तेऽन्यथा सर्वमेतदुत्तानार्थं सूत्रमिति ॥ सम्प्रति लेश्याप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि,

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! कापोतलेश्या प्रज्ञप्ता, एवं शर्कराप्रभानैरयिकाणामपि, नवरं तेषां कापोतलेश्या सङ्क्लिष्टतरा वेदितव्या, वालुकाप्रभानैरयिकाणां द्वे लेश्ये, तद्यथा—नीललेश्या च कापोतलेश्या च, तत्र ते बहुतरा ये कापोतलेश्याः, उपरितनप्रस्तटवर्त्तिनां नारकाणां कापोतलेश्याकत्वात् तेषां चातिभूयस्कत्वात्, ते स्तोकतरा ये नीललेश्याकाः, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाणामेका नीललेश्या, सा च तृतीयपृथिवीगतनीललेश्याऽपेक्षयाऽविशुद्धतरा, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां द्वे लेश्ये, तद्यथा—कृष्णलेश्या च नीललेश्या च, तत्र ते बहुतरा ये नीललेश्याकाः, ते स्तोकतरा ये कृष्णलेश्याकाः, भावनाऽत्रापि प्राग्वत्, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकाणां कृष्णलेश्या, सा च पञ्चमपृथिवीगतकृष्णलेश्याऽपेक्षयाऽविशुद्धतरा, अधःसप्तमपृथिवीनैरयिकाणामेका परमकृष्णलेश्या, उक्तं च **व्याख्याप्रज्ञप्तौ**—"काऊ दोसु तइयाएँ मीसिया नीलिया चउत्थीए । पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ १ ॥" सम्प्रति सम्यग्दृष्टित्वादिविशेषप्रतिपादनार्थमाह—'**रयणे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयो वा?, भगवानाह—गौतम! सम्यग्दृष्टयोऽपि मिथ्यादृष्टयोऽपि सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽपि, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वाच्यं यावत्तमस्तमायाम् ॥ सम्प्रति ज्ञान्यज्ञानिचिन्तां कुर्वन्नाह—'**रयणे**'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! ज्ञानिनोऽपि अज्ञानिनोऽपि, सम्यग्दृशां ज्ञानित्वान्मिथ्यादृशामज्ञानित्वात्, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञानिनः, अपर्याप्तावस्थायामपि तेषामवधिज्ञानसम्भवात्, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्यस्तेषामुत्पादात्, त्रिज्ञानित्वमेव भावयति, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनः, येऽज्ञानिनस्ते '**अत्थेगइया**' इति अस्तीतिनिपातोऽत्र बहुवचनगर्भः सन्त्येकका द्व्यज्ञानिनः सन्त्येककास्त्र्यज्ञानिनः, तत्र येऽसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य उत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तावस्थायां विभङ्गा-

सम्भवाद् द्व्यज्ञानिनः, शेषकालं तु तेषामपि त्र्यज्ञानिता, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य उत्पन्नानां तु सर्वकालमपि त्र्यज्ञानितैव, अपर्याप्तावस्थायामपि तेषां विभङ्गभावात्, तत्र ये द्व्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, ये त्र्यज्ञानिनस्ते मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च। 'सक्करप्पभापुढवी'त्यादि, शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनोऽपि, तत्रापि सम्यग्दृशां मिथ्यादृशां च भावात्, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्रिज्ञानिनः, तद्यथा—आभिनिवोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च, येऽज्ञानिनस्ते नियमात्त्र्यज्ञानिनः, सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य एव तत्रोत्पादात्, त्र्यज्ञानित्वमेव दर्शय[ती]ति, तद्यथा—मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एवं शेषास्वपि पृथिवीषु वक्तव्यं, तत्रापि सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियेभ्य एवोत्पादात् ॥ सम्प्रति योगप्रतिपादनार्थमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनः?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधा अपि, एवं प्रतिपृथिवि तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ अधुना साकारानाकारोपयोगचिन्तां कुर्वन्नाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताः?, भगवानाह—साकारोपयुक्ता अपि अनाकारोपयुक्ता अपि, एवं तावद् यावदधःसप्तम्याम् ॥ अधुना समुद्घातचिन्तां करोति—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! चत्वारः समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातश्च, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तम्याम् ॥ सम्प्रति क्षुत्पिपासे चिन्तयति—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभा० पु० नेरतिया केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! एगमेगस्स णं रयणप्पभापुढविनेरतियस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदधी वा सव्वपोग्गले वा

आसगंसि पक्खिवेज्जा णो चेव णं से रयणप्प० पु० णेरतिए तित्ते वा सिता वितण्हे वा सिता, एरिसया णं गोयमा! रयणप्पभाए णेरतिया खुधप्पिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, एवं जाव अधेसत्तमाए॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० नेरतिया किं एकत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तंपि पभू विउव्वित्तए?, गोयमा! एगत्तंपि पभू पुहुत्तंपि पभू विउव्वित्तए, एगत्तं विउव्वेमाणा एगं महं मोग्गररूवं वा एवं मुसुंढिकरवत्तअसिसत्तीहलगतामुसलचक्कणारायकुंततोमरसूललउड-भिंडमाला य जाव भिंडमालरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा मोग्गररूवाणि वा जाव भिंडमालरूवाणि वा ताइं संखेज्जाइं णो असंखेज्जाइं संबद्धाइं नो असंबद्धाइं सरिसाइं नो असरिसाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहणमाणा अभिहणमाणा वेयणं उदीरेंति उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं, एवं जाव धूमप्पभाए पुढवीए। छट्ठसत्तमासु णं पुढवीसु नेरइया बहू महंताइं लोहियकुंथूरूवाइं वइरामइतुंडाइं गोमयकीडसमाणाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा खायमाणा खायमाणा सयपोरागकिमिया विव चालेमाणा २ अंतो अंतो अणुप्पविसमाणा २ वेदणं उदीरंति उज्जलं जाव दुरहियासं॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० नेरइया किं सीतवेदणं वेइंति उसिणवेदणं वेइंति सीउसिणवेदणं वेदेंति?, गोयमा! णो सीयं वेदणं वेदेंति उसिणं वेदणं

वेदेंति नो सीतोसिणं, [ते अप्पयरा उण्हजोणिया वेदेंति,] एवं जाव वालुयप्पभाए, पंकप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीयंपि वेदणं वेदेंति, उसिणंपि वेयणं वेयंति, नो सीओसिणवेयणं वेयंति, ते बहुतरगा जे उसिणं वेदणं वेदेंति, ते थोवयरगा जे सीतं वेदणं वेइंति। धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा! सीतंपि वेदणं वेदेंति उसिणंपि वेदणं वेदेंति णो सीतो०, ते बहुतरगा जे सीयवेदणं वेदेंति ते थोवयरका जे उसिणवेदणं वेदेंति। तमाए पुच्छा, गोयमा! सीयं वेदणं वेदेंति नो उसिणं (वेदणं) वेदेंति नो सीतोसिणं वेदणं वेदेंति, एवं अहेसत्तमाए णवरं परमसीयं ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरइया केरिसयं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति?, गोयमा! ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तसिता णिच्चं छुहिया णिच्चं उव्विग्गा निच्चं उपप्पुआ णिच्चं वहिया निच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं निरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति, एवं जाव अधेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पतिट्ठाणे, तत्थ इमे पंच महापुरिसा अणुत्तरेहिं दंडसमादाणेहिं कालमासे कालं किच्चा अप्पतिट्ठाणे णरए णेरति(य)त्ताए उववण्णा, तंजहा—रामे १, जमदग्गिपुत्ते, दढाउ २, लच्छतिपुत्ते, वसु ३, उवरिचरे, सुभूमे कोरव्वे ४, बंभ ५, दत्ते चुलणिसुते ६, ते णं तत्थ नेरतिया जाया काला कालो० जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, तंजहा—ते णं तत्थ वेदणं वेदेंति उज्जलं विउलं जाव दुरहि-

यासं ॥ उसिण वेदणिज्जेसु णं भंते ! णेरतिएसु णेरतिया केरिसयं उसिणवेदणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ? गोयमा ! से जहाणामए कम्मारदारए सिता तरुणे बलवं जुगवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपादपासपिट्ठंतरोरु [संघाय] परिणए लंघणपवणजवणवग्गणपमद्दणसमत्थे तलजमलजुयलबहुफलिहणिभबाहू घणणिचितवलियवट्टखंधे चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठियसमाहयणिचितगत्तगत्ते उरस्सबलसमण्णागए छेए दक्खे पट्ठे कुसले णिउणे मेहावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं उदगवारसमाणं गहाय तं ताविय ताविय कोट्टित कोट्टित उब्भिदिय उब्भिदिय चुण्णिय चुण्णिय जाव एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं संहणेज्जा, से णं तं सीतं सीतीभूतं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से णं तं उम्मिसियणिमिसियंतरेणं पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा णो चेव णं संचाएति अविरायं वा अविलीणं वा अविद्धत्थं वा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए ॥ से जहा वा मत्तमातंगे [पाए] कुंजरे सट्ठिहायणे पढमसरयकालसमतंसि वा चरमनिदाघकालसमयंसि वा उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए आउरे सुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एक्कं महं पुक्खरिणिं पासेज्जा चाउक्कोणं समतीरं अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीतलजलं संछण्णपमत्ताभिसमुणालं बहुउप्पलकुमुद-

णलिणसुभगसोगंधियपुंडरीय (महापुंडरीय) सयपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियं छप्पयपरिभुज्ज-माणकमलं अच्छविमलसलिलपुण्णं परिहत्थभमंतमच्छकच्छभं अणेगसउणगणमिहुणयविरइ-यसद्दुन्नइयमहुरसरनाइयं तं पासइ, तं पासित्ता तं ओगाहइ, ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा तिण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि पविणिज्जा जरंपि पवि० दाहंपि पवि० णिद्दाएज्ज वा पयला-एज्ज वा सतिं वा रतिं वा धितिं वा मतिं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूए संकसमाणे संकस-माणे सायासोक्खबहुले यावि विहरिज्जा, एवामेव गोयमा! असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणि-ज्जेहिंतो णरएहिंतो कुंभारागणी इ वा णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं मणुस्सलोयंसि भवंति (गोलियालिंगाणि वा सोंडियालिंगाणि वा भिंडियालिंगाणि वा) अयागराणि वा तंबाग-राणि वा तउयागरा० सीसाग० रुप्पागरा० सुवन्नागराणि वा हिरण्णागरा० कुंभारागणी इ वा मुसागणी वा इट्टयागणी वा कवेल्लुयागणी वा लोहारंबरिसे इ वा जंतवाडचुल्ली वा हंडियलि-त्थाणि वा सोंडियलि० णलागणी ति वा, तिलागणी वा तुसागणी ति वा, तत्ताइं समज्जोती-भूयाइं फुल्लकिंसुयसमाणाइं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं पमुचमाणाइं इंगालसहस्साइं पविक्खरमाणाइं अंतो २ हुहुयमाणाइं चिट्ठंति ताइं पासइ, ताइं पासित्ता ताइं ओगाहइ ताइं ओगाहित्ता से णं तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा तण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि पविणेज्जा

जरंपि पविणेज्जा दाहंपि पविणेज्जा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा सतिं वा रतिं वा धिइं वा मतिं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूयए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, भवेयारूवे सिया ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु नेरतिया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव उसिणवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति॥ सीयवेदणिज्जेसु णं भंते णिरएसु णेरतिया केरिसयं सीयवेदणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?, गोयमा ! से जहाणामए कम्मारदारए सिया तरुणे जुगवं बलवं जाव सिप्पोवगते एगं महं अयपिंडं दगवारसमाणं गहाय ताविय ताविय कोट्टिय कोट्टिय जह० एक्काहं वा दुआहं वा तियाहं वा उक्कोसे णं मासं हणेज्जा, से णं तं उसिणं उसिणभूतं अयोमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए सीयवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से तं [उमिसियनिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामीतिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा, तं चेव णं जाव णो चेव णं संचाएज्जा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए, से णं से जहाणामए मत्तमायंगे तहेव जाव सोक्खबहुले यावि विहरेज्जा] एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए सीतवेदणेहिंतो णरएहिंतो नेरतिए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं इहं माणुस्सलोए हवंति, तंजहा—हिमाणि वा हिमपुंजाणि वा हिमपडलाणि वा हिमपडलपुंजाणि वा तुसाराणि वा तुसारपुंजाणि वा हिमकुंडाणि वा हिमकुंडपुंजाणि वा सीताणि वा ताइं पासति पासित्ता ताइं ओगाहति ओगाहित्ता से णं तत्थ

सीतंपि पविणेज्जा तण्हंपि प० खुहंपि प० जरंपि प० दाहंपि प० निद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा जाव उसिणे उसिणभूए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा, गोयमा! सीयवेयणिज्जेसु नरएसु नेरतिया एत्तो अणिट्ठयरियं चेव सीतवेदणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ॥ (सू० ८९)

'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशीं क्षुधं पिपासां (च) प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमानाः 'विहरन्ति' अवतिष्ठन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'एगमेगस्स णं'मित्यादि, एकैकस्य रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकस्य 'असब्भाव(प्र)स्थापनया' असद्भावकल्पनया ये केचन पुद्गला उदधयश्चेति शेषः तान् 'आस्यके' मुखे सर्वपुद्गलान् सर्वोदधीन् प्रक्षिपेत्, तथाऽपि 'नो चेव णं'मित्यादि, नैव रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकः तृप्तो वा वितृष्णो वा स्यात् लेशतः अत्र प्रबलभस्मकव्याध्युपेतः पुरुषो दृष्टान्तः। 'एरिसिया णं'मित्यादि, ईदृशीं णमिति वाक्यालङ्कृतौ गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः क्षुधं पिपासां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी॥ सम्प्रति वैक्रियशक्तिं विचिचिन्तयिषुरिदमाह—'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! प्रत्येकं किम् 'एकत्वम्' एकं रूपं विकुर्वितुं प्रभवः उत 'पृथक्त्वं' पृथक्त्वशब्दो बहुवाची, आह च कर्म्मप्रकृतिसङ्ग्रहणिचूर्णिकारोऽपि—"पुहुत्तशब्दो बहुत्तवाई" इति, प्रभूतानि रूपाणि विकुर्वितुं प्रभवः?, 'विकुर्व विक्रियायाम्' इत्यागमप्रसिद्धो धातुरस्ति यस्य विकुर्वाण इति प्रयोगस्ततो विकुर्वितुमित्युक्तं, भगवानाह—एकत्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं पृथक्त्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं, तत्रैकं रूपं विकुर्वतो मुद्गररूपं वा मुद्गरः—प्रतीतः मुषण्ढिरूपं वा मुषण्ढिः—प्रहरणविशेषः, करपत्ररूपं वा असिरूपं वा शक्तिरूपं वा हलरूपं वा गदारूपं वा मुशलरूपं वा चक्ररूपं वा नाराचरूपं वा कुन्तरूपं वा तोमररूपं वा शूलरूपं वा लकुटरूपं वा भिण्डमालरूपं वा विकुर्वन्ति, करपत्रादयः

प्रतीताः, भिण्डमालः—शस्त्रजातिविशेषः, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा क्वचित्पुस्तकेषु—“मुग्गरमुसुंढिकरकयअसिसत्ति हलं गयामुसलचक्का। नारायकुंततोमरसूललउडभिंडिमाला य ॥१॥” गतार्था, नवरं '**करकय**'त्ति क्रकचं करपत्रमित्यर्थः, पृथक्त्वं विकुर्वन्तो मुद्गररूपाणि वा यावत् भिण्डमालरूपाणि वा, तान्यपि **सदृशानि**, (समानरूपाणि) 'नोऽसदृशानि'(अ) समानरूपाणि, तथा '**सङ्ख्येयानि**' परिमितानि न '**असङ्ख्येयानि**' सङ्ख्यातीतानि, विसदृशकरणेऽसङ्ख्येयकरणे वा शक्त्यभावात्, तथा '**संबद्धानि**' स्वात्मनः शरीरसंलग्नानि '**नासंबद्धानि**' न स्वशरीरात्पृथग्भूतानि, स्वशरीरात्पृथग्भूतकरणे शक्त्यभावात्, विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वाऽन्योऽन्यस्य कायमभिघ्नन्तो वेदनामुदीरयन्ति, किंविशिष्टामित्याह—'**उज्ज्वलां**' दुःखरूपतया जाज्वल्यमानां सुखलेशेनाप्यकलङ्कितामिति भावः, '**विपुलां**' सकलशरीरव्यापितया विस्तीर्णां '**प्रगाढां**' प्रकर्षेण मर्मप्रदेशव्यापितयाऽतीवसमवगाढां कर्कशामिव कर्कशां, किमुक्तं भवति?—यथा कर्कशः पाषाणसंघर्षः शरीरस्य खण्डानि त्रोटयति एवमात्मप्रदेशान् त्रोटयन्तीव या वेदनोपजायते सा कर्कशा तां, कटुकामिव कटुकां पित्तप्रकोपपरिकलितवपुषो रोहिणीं—कटुद्रव्यमिवोपभुज्यमानमतिशयेनाप्रीतिजनिकामिति भावः, तथा '**परुषां**' मनसोऽतीव रौक्ष्यजनिकां '**निष्ठुराम्**' अशक्यप्रतीकारतया दुर्भेदां '**चण्डां**' रुद्रां रौद्राध्यवसायहेतुत्वात् '**तीव्राम्**' अतिशायिनीं '**दुःखां**' दुःखरूपां '**दुर्गां**' दुर्लङ्घ्यामत एव दुरधिसह्याम्, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावत्पञ्चम्याम्। '**छट्ठसत्तमीसु ण**'मित्यादि, षष्ठसप्तम्योः पुनः पृथिव्योर्नैरयिकाः बहूनि महान्ति गोमयकीटप्रमाणत्वात्, '**लोहितकुन्थुरूपाणि**' आरक्तकुन्थुरूपाणि वज्रमयतुण्डानि, गोमयकीटसमानानि विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वा '**अन्योऽन्यस्य**' परस्परस्य '**कायं**' शरीरं समतुरङ्गा इवाचरन्तः समतुरङ्गायमाणाः, अश्वा इवान्योऽन्यमारुहन्त इत्यर्थः, '**खायमाणा खायमाणा**' भक्षयन्तो भक्षयन्तोऽन्तरन्तः '**अनुप्रवेशयन्तः**' अनुप्रविशन्तः '**सयपोरागकिमिया इव**' शतपर्वकृमय

इव इक्षुपर्वक्रमय इव 'चालेमाणा चालेमाणा' शरीरस्य मध्यभागेन संचरन्तः संचरन्तो वेदनामुदीरयन्त्युज्ज्वलामित्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति क्षेत्रस्वभावजां वेदनां प्रतिपादयति—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! किं शीतां वेदनां वेदयन्ते उष्णां वेदनां वेदयन्ते शीतोष्णां वा?, भगवानाह—गौतम! न शीतां वेदनां वेदयन्ते किन्तु उष्णां वेदनां वेदयन्ते, ते हि शीतयोनिका योनिस्थानानां केवलहिमानीप्रख्यशीतप्रदेशात्मकत्वात्, योनिस्थानव्यतिरेकेण चान्यत् सर्वमपि भूम्यादि खादिराङ्गारादपि महाप्रतप्तमतस्ते उष्णवेदनामनुभवन्ति, नापि शीतोष्णां वेदनां वेदयन्ते, शीतोष्णस्वभावतया वेदनाया नरकेषु मूलतोऽप्यसम्भवात्, एवं शर्कराप्रभावालुकाप्रभानैरयिका अपि वक्तव्याः, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छायाम् भगवानाह—गौतम! शीतामपि वेदनां वेदयन्ते नरकावासभेदेनोष्णामपि वेदनां वेदयन्ते नरकावासभेदेनैव, न तु शीतोष्णां, तत्र ते वहुतरा ये उष्णां वेदनां वेदयन्ते, प्रभूततराणां शीतयोनित्वात्, ते स्तोकतरा ये शीतां वेदनां वेदयन्ते, अल्पतराणामुष्णयोनित्वात्, एवं धूमप्रभायामपि वक्तव्यं, नवरं ते वहुतरा ये शीतवेदनां वेदयन्ते, वहूनामुष्णयोनित्वात्, ते स्तोकतरा ये उष्णवेदनां वेदयन्ते, अल्पतराणां शीतयोनित्वात्, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकपृच्छायां भगवानाह—गौतम! शीतां वेदनां वेदयन्ते नोष्णां नापि शीतोष्णां, तत्रत्यानां सर्वेषामुष्णयोनित्वात्, योनिस्थानव्यतिरेकेण चान्यस्य सर्वस्यापि नरकभूम्यादेर्महाहिमानीप्रख्यत्वात्, एवं तमस्तमाप्रभापृथिवीनैरयिका अपि वक्तव्या, नवरं परमां शीतवेदनां वेदयन्ते इति वक्तव्यं, तमःप्रभापृथिवीतः तमस्तमप्रभापृथिव्यां शीतवेदनाया अतिप्रवलत्वात् ॥ सम्प्रति भवानुभवप्रतिपादनार्थमाह—'रयणे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं नरकभवं प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमानाः 'विहरन्ति' अवतिष्ठन्ते?, भगवानाह—गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका 'नित्यं' सर्वकालं क्षेत्रस्वभावजमहानिविडान्धकारदर्शनतो भीताः, सर्वत उपजातशङ्कत्वात्,

तथा 'नित्यं' सर्वकालं स्वत एवाग्रेऽपि 'त्रस्ताः' परमाधार्मिकदेवपरस्परोदीरितदुःखसंपातभयात्रासमुपपन्नाः, तथा 'नित्यं' सर्वकालं परमाधार्मिकैः परस्परं वा 'त्रासिताः' त्रासं ग्राहिताः, तथा 'नित्यमुद्विग्नाः' यथोक्तरूपदुःखानुभवतस्तद्गतावासपराङ्मुखचित्ताः, तथा 'नित्यं' सर्वकालम् 'उपप्लुताः' उपप्लवेनोपेता न तु मनागपि रतिमासादयन्ति, एवं 'नित्यं' सर्वकालं परममशुभम् 'अतुलम्' अशुभत्वेनानन्यसदृशम् 'अनुबद्धम्' अशुभत्वेन निरन्तरमुपचितं निरयभवं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति, एवं पृथिव्यां पृथिव्यां तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, अस्यां चाधःसप्तम्यां क्रूरकर्माणः पुरुषा उत्पद्यन्ते नान्ये, तथा चास्यैवार्थस्य प्रदर्शनार्थं पञ्च पुरुषान् उपन्यस्यति—'अहेसत्तमाए ण'मित्यादि, अधःसप्तम्यां पृथिव्यामप्रतिष्ठाने नरके 'इमे' अनन्तरं वक्ष्यमाणस्वरूपाः पञ्च महापुरुषाः 'अनुत्तरैः' सर्वोत्तमप्रकर्षप्राप्तैः 'दण्डसमादानैः' समादीयते कर्म्म एभिरिति समादानानि—कर्म्मोपादानहेतवः दण्डा एव—मनोदण्डादयः प्राणव्यपरोपणाध्यवसायरूपाः समादानानि दण्डसमादानानि तैः कालमासे कालं कृत्वोत्पन्नाः, तद्यथा—रामो जामदग्निसुतः पर्शुराम इत्यर्थः, दाढादालः छातीसुतः, वसू राजा उपरिचरः, स हि देवताऽधिष्ठिताकाशस्फटिकसिंहासनोपविष्टः सन्नाकाशस्फटिकमयस्य सिंहासनस्यादर्शनतो लोकेष्वेवं प्रसिद्धिमगमत्—सत्यवादी किलैष वसुराजा न प्राणात्ययेऽप्यलीकं भाषते ततः सत्त्वावर्जितदेवताकृतप्रातिहार्य एवमुपर्याकाशे चरतीति, स चान्यदा हिंस्रवेदार्थप्ररूपकस्य पर्वतस्य पक्षमभिगृह्य सम्यग्दृष्टेर्नारदस्य पक्षमनभिगृह्णन्नलीकवादित्वात्प्रकुपितदेवताचपेटाहतः सिंहासनात्परिभ्रष्टो रौद्रध्यानमभिरूढः सप्तमपृथिव्यामप्रतिष्ठाननरकमयासीत्, सुभूमोऽष्टमश्चक्रवर्त्ती कौरव्यः कौरव्यगोत्रो ब्रह्मदत्तश्चुलनीसुतः 'ते णं तत्थ वेयणं वेयंती' त्यादि, 'ते' परशुरामादयस्तत्र—अप्रतिष्ठाने नरके वेदनां वेदयन्ते उज्ज्वलां यावद् दुरध्यासामिति प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नरकेपूष्णवेदनायाः स्वरूपमभिधित्सुराह—'उसिणवेदणिज्जेसु णं

भंते !' इत्यादि, उष्णवेदनेषु णमिति पूर्ववत् भदन्त ! नरकेषु नैरयिकाः कीदृशीमुष्णवेदनां प्रत्यनुभवन्तः–प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति ?, भगवानाह–गौतम ! स 'यथानामकः' अनिर्दिष्टनामकः कश्चित् 'कम्मारदारकः' लोहकारदारकः स्यात्, किंविशिष्टः ? इत्याह—'तरुणः' प्रवर्द्धमानवयाः, आह–दारकः प्रवर्द्धमानवया एव भवति तत. किमनेन विशेषणेन ?, न, आसन्नमृत्योः प्रवर्द्धमानवयस्त्वाभावात्, न ह्यासन्नमृत्युः प्रवर्द्धमानवया भवति, न च तस्य विशिष्टसामर्थ्यसम्भवः, आसन्नमृत्युत्वादेव, विशिष्टसामर्थ्यप्रतिपादनार्थश्चैष आरम्भस्ततोऽर्थवद्विशेषणम्, अन्ये तु व्याचक्षते–इह यद्द्रव्यं विशिष्टवर्णादिगुणोपेतमभिनवं च तत्तरुणमिति लोके प्रसिद्धं, यथा तरुणमिदमश्वत्थपत्रमिति, ततः स कर्मारदारकस्तरुण इति किमुक्तं भवति ?–अभिनवो विशिष्टवर्णादिगुणोपेतश्चेति, बलं–सामर्थ्यं तदस्यास्तीति बलवान्, तथा युगं–सुषमदुष्षमादिकालः स स्वेन रूपेण यस्यास्ति न दोषदुष्टः स युगवान्, किमुक्तं भवति ?–कालोपद्रवोऽपि सामर्थ्यविघ्नहेतुः स चास्य नास्तीति प्रतिपत्त्यर्थमेतद्विशेषणं, युवा–यौवनस्थः, युवावस्थायां हि बलातिशय इत्येतदुपादानम्, 'अप्पायंके' इति अल्पशब्दोऽभाववाची अल्पः–सर्वथाऽविद्यमान आतङ्को–ज्वरादिर्यस्यासावल्पातङ्कः, 'थिरग्गहत्थे' स्थिरौ अग्रहस्तौ यस्य स स्थिराग्रहस्तः, 'दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणए' इति दृढानि–अतिनिबिडचयापन्नानि पाणिपादपार्श्वपृष्ठान्तरोरूणि परिणतानि यस्य स दृढपाणिपादपार्श्वपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, सुखादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथा घनम्–अतिशयेन निचितौ–निबिडतरचयमापन्नौ वलिताविव वलितौ वृत्तौ स्कन्धौ यस्य स घननिचितवलितवृत्तस्कन्धः, 'चम्मेट्ठगदुघणमुट्ठियसमाहयनिचियगायगत्ते' चर्मेष्टकेन द्रुघणेन मुष्टिकया च–मुष्ट्या च समाहत्य ये निचितीकृतगात्रास्ते चर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतनिचितगात्रास्तेषामिव गात्रं यस्य स चर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतनिचितगात्रगात्रः, 'उरस्सबलसमन्नागए' इति उरसि

भवमुरस्सं तत्र तद्बलं च उरस्यबलं तत्र समन्वागतः—समनुप्राप्त उरस्यबलसमन्वागतः, आन्तरोत्साहवीर्ययुक्त इति भावः, **'तलजमलजुयलबाहू'** इति, तलौ—तालवृक्षौ तयोर्यमलयुगलं—समश्रेणीकं युगलं तलयमलयुगलं, तद्वदतिसरलौ पीवरौ च बाहू यस्य स तलयमलयुगलबाहुः, **'लंघणपवणजवणपमद्दणसमत्थे'** इति, लङ्घने—अतिक्रमणे प्लवने—मनाक् पृथुतरविक्रमगतिगमने जवने—अतिशीघ्रगतौ प्रमर्दने—कठिनस्यापि वस्तुनश्चूर्णनकरणे समर्थः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः, कचित् **'लंघणपवणजवणवायामणसमत्थे'** इति पाठस्तत्र व्यायामने—व्यायामकरणे इति व्याख्येयं, **'छेकः'** द्वासप्ततिकलापण्डितः **'दक्षः'** कार्याणामविलम्बितकारी, **'प्रष्ठः'** वाग्मी **'कुशलः'** सम्यक्क्रियापरिज्ञानवान् **'मेधावी'** परस्पराव्याहतपूर्वापरानुसन्धानदक्षः, अत एव **'निपुणसिप्पोवगए'** इति निपुणं यथा भवति एवं शिल्पं—क्रियासु कौशलमुपगतः—प्राप्तो निपुणशिल्पोपगतः, एकं महान्तमयस्पिण्डम् **'उदकवारकसमानं'** लघुपानीयघटसमानं गृहीत्वा **'तम्'** अयस्पिण्डं तापयित्वा तापयित्वा ततो घनेन कुट्टयित्वा कुट्टयित्वा यावदेकाहं वा द्व्यहं वा यावदुत्कर्षतोऽर्द्धमासं संहन्यात्, ततो णमिति वाक्यालङ्कारे **'तम्'** अयस्पिण्डं शीतं, स च शीतो वह्निमिनाग्मात्रेणापि स्यादत आह— **'शीतीभूतं'** सर्वात्मना शीतत्वेन परिणतं अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वा **'असद्भावस्थापनया'** असद्भावकल्पनया नैतद्भूत् न भवति भविष्यति वा केवलमसद्भूतमिदं कल्प्यत इति, उष्णवेदनेषु नरकेषु प्रक्षिपेत्, प्रक्षिप्य च स पुरुषो णमिति वाक्यालङ्कारे **'उम्मिसियनिमिसियंतरेण'** उन्मिषितनिमिषितान्तरेण यावताऽन्तरेण—यावता व्यवधानेन उन्मेषनिमेषौ क्रियेते तावदन्तरप्रमाणेन कालेनातिक्रान्तेन पुनरपि प्रत्युद्धरिष्यामीतिकृत्वा यावद् द्रष्टुं प्रवर्त्तते तावत् **'प्रवितरमेव'** प्रस्फुटितमेव, यदिवा **'प्रविलीनमेव'** नवनीतमिव सर्वथा गलितमेव, यदिवा **'प्रविध्वस्तमेव'** सर्वथा भस्मसाद्भूतमेव पश्येत्, न पुनः शक्नुयाद् अचिरात्तं अप्रस्फुटितं अविलीनं

वा अविध्वस्तं वा पुनरपि प्रत्युद्धर्त्तुम्, एवंरूपा नाम तत्रोष्णवेदना ॥ अस्यैवार्थस्य स्पष्टतरभावनार्थं दृष्टान्तान्तरमाह—'से जहानामए' इत्यादि, 'से' सकलजनप्रसिद्धो यथेति दृष्टान्तत्वोपदर्शने वाशब्दो विकल्पने, अयं वा दृष्टान्तो विवक्षितार्थप्रतिपत्तये बोद्धव्य इति विकल्पनभावना, 'मत्तः' मदकलितः 'मातङ्गः' हस्ती, इह मातङ्गोऽन्त्यजोऽपि संभवति ततस्तदाशङ्काव्युदासार्थं नानादेशजविनेयजनानुग्रहाय (वा) पर्यायद्वयमाह—'द्विपः' द्वाभ्यां मुखेन करेण चेत्यर्थः पिबतीति द्विपः, 'मूलविभुजादय' इति कप्रत्ययः, कौ जीर्यतीति कुञ्जरः, यदिवा कुञ्जे—वनगहने रमति—रतिमाबध्नातीति कुञ्जरः 'कचिदि'ति डप्रत्ययः, षष्टिहायनाः—संवत्सरा यस्य स षष्टिहायनः 'प्रथमशरत्कालसमये' कार्त्तिकमाससमये, इह प्राय ऋतवः सूर्यर्त्तवो गृह्यन्ते ते चाषाढादयो द्विद्विमासप्रमाणाः, प्रवचने च क्रमेणैवंनामानः, तद्यथा—प्रथमः प्रावृट् द्वितीयो वर्षारात्रः तृतीयः शरत् चतुर्थो हेमन्तः पञ्चमो वसन्तः षष्ठो ग्रीष्मः, तथा चाह पादलिप्तसूरिः—"पाउस वासारत्तो, सरओ हेमंत वसन्त गिम्हो य। एए खलु छप्पि रिऊ, जिणवरदिट्ठा मए सिट्ठा ॥१॥" ततः प्रथमशरत्कालसमयः कार्त्तिकसमय इति विवृत्तम्, आह च मूलटीकाकृत्—"प्रथमशरत्—कार्त्तिकमासः" तस्मिन् वाशब्दो विकल्पने 'चरमनिदाघकालसमये वा' चरमनिदाघकालसमयो—ज्येष्ठमासपर्यन्तस्तस्मिन्, वाशब्दो विकल्पने, 'उष्णाभिहतः' सूर्यखरकिरणप्रतापाभिभूतः, अत एवोष्णैः सूर्यकिरणैः सर्वतः प्रतप्ताङ्गतया शोषभावतस्तृषाभिहतः, तत्रापि पानीयगवेषणार्थमितस्ततः स्वेच्छया परिभ्रमतः कथञ्चिद्दवाग्निप्रत्यासत्तौ गमनतो दवाग्निज्वालाभिहतः अत एव 'आतुरः' कचिदपि स्वास्थ्यमलभमानः सन् आकुलः, सर्वाङ्गपरितापसम्भवेन गलतालुशोषभावात् शुषितः, कचित् 'झिज्जिए' इति पाठस्तत्र 'क्षितः' क्षीणशरीर इति व्याख्येयम्, असाधारणतृड्वेदनासमुच्छलनात्पिपासितः, अत एव दुर्बलः शारीरमानसावष्टम्भरहितत्वात्, 'क्लान्तः' ग्लानिमुपगतः

'क्लमू ग्लानौ' इति वचनात्, एकां महतीं **'पुष्करिणीं'** पुष्कराण्यस्यां विद्यन्ते इति पुष्करिणी तां, किंविशिष्टामित्याह— **'चतुष्कोणां'** चत्वारः कोणा—अश्रयो यस्याः सा तथा तां, समं—विषमोन्नतिवर्जितं सुखावतारं तीरं—तटं यस्याः सा समतीरा ताम्, आनुपूर्व्येण—नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण न त्वेकहेलयैव कचिद्गर्त्तारूपा कचिदुन्नतिरूपा इति भावः, सुष्ठु—अतिशयेन यो जातो वप्रः—केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरम्—अलब्धस्ताघं शीतलं जलं यस्यां सा आनुपूर्व्यसुजातवप्रगम्भीरशीतलजला ताम्, **'संछण्णपत्तभिसमुणाल'**मिति संछन्नानि—जलेनान्तरितानि पत्रबिसमृणालानि यस्यां सा संछन्नपत्रबिसमृणाला ताम्, इह बिसमृणालसाहचर्यात् पत्राणि—पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि, बिसानि—कन्दाः मृणालानि—पद्मनालाः, तथा बहुभिरुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रैः केसरैः—केसरप्रधानैः फुल्लैः—विकसितैरुपचिता बहूत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रकेसरफुल्लोपचिता तां, तथा षट्पदैः—भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि यस्याः सा षट्पदपरिभुज्यमानकमला तां, तथाऽच्छेन—स्वरूपतः स्फटिकवच्छुद्धेन विमलेन—आगन्तुकमलरहितेन सलिलेन पूर्णा अच्छविमलसलिलपूर्णा तां, तथा **पडिहत्था**—अतिरेकता (तः) अतिप्रभूता इत्यर्थः भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यस्यां सा पडिहत्थभ्रमन्मत्स्यकच्छपा, तथा अनेकैः शकुनिगणमिथुनकैः गणशब्दस्य प्राकृतत्वादस्थानेऽप्युपनिपातः, शकुनिमिथुनकैर्विचरितैः—इतस्ततः स्वेच्छया प्रवृत्तैः शब्दोन्नतिकम्—उन्नतशब्दं मधुरस्वरं नादितं यस्यां सा अनेकशकुनिगणमिथुनकविचरितशब्दोन्नतिकमधुरस्वरनादिता, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तां दृष्ट्वाऽवगाहेत, अवगाह्य च **'उण्णमपि'** परिदाहमपि शरीरस्य तत्र **'प्रविनयेत्'** प्रकर्षेण सर्वात्मना स्फोटयेत्, तथा क्षुधामपि प्रविनयेत् प्रत्यासन्नतटवर्त्तिशल्लक्यादिकिसलयभक्षणात्, तृषमपि प्रविनयेत् जलपानात्, ज्वरमपि परिसंतापसमुत्थं प्रवि-

नयेत् परिदाघक्षुत्पिपासाऽपगमात्, एवं सकलक्षुदादिदोषापगमतः सुखासिकाभावेन निद्रायेत प्रचलायेत, तत्र अनिद्रावान् निद्रावान् भवतीति च्व्यर्थविवक्षायां निद्रादिभ्यो धर्मिणि क्यविति कर्म्मणि क्यप्प्रत्ययः, एवं प्रचलाशब्दादपि निद्रादेराकृतिगणत्वात्, निद्राप्रचलयोस्त्वयं विशेषः–सुखप्रबोधा स्वापावस्था निद्रा, ऊर्द्धस्थितस्यापि या पुनश्चैतन्यमस्फुटीकुर्वती समुपजायते निद्रा सा प्रचला, एवं च क्षणमात्रनिद्रालाभतोऽतिस्वस्थीभूतः 'स्मृतिं वा' पूर्वानुभूतस्मरणं 'रतिं वा' तदवस्थाऽऽसक्तिरूपां 'धृतिं वा' चित्तस्वास्थ्यं 'मतिं वा' सम्यगीहापोहरूपाम् 'उपलभेत' प्राप्नुयात्, ततः 'शीतः' बाह्यशरीरप्रदेशशीतीभावात्, 'शीतीभूतः' शरीरान्तरपि निर्वृतीभूतः सन् 'संकसमाणे' इति सम्–एकीभावेन कसन्–गच्छन् 'सातसौख्यबहुलश्चापि' सातम्–आह्लादस्तत्प्रधानं सौख्यं सातसौख्यं न त्वभिमानमात्रजनितमाह्लादविरहितं सातसौख्येन बहुलो–व्याप्तः सातसौख्यबहुलश्चापि 'विहरेत्' स्वेच्छया परिभ्रमेत्, 'एवमेव' अनेनैवानन्तरोदितदृष्टान्तप्रकारेण हे गौतम! 'असद्भावप्रस्थापनया' असद्भावकल्पनया नेदं वक्ष्यमाणमभूत् केवलं नरकगतोष्णवेदनायाथात्म्यप्रतिपत्तयेऽसत्कल्प्यत इति भावः, उष्णवेदनेभ्यो नरकेभ्यो नैरयिकोऽनन्तरमुद्वर्त्तितो विनिर्गतः सन् 'यानि' इमानि प्रत्यक्षत उपलभ्यमानानि 'इह' मनुष्यलोके स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—"गोलियालिंगाणि वा, सोंडियालिंगाणि वा, भिंडियालिंगाणि वा, एते अग्नेराश्रयविशेषाः, अन्ये तु देशभेदनीत्या पिष्टपाचनकाग्न्यादिभेदेनैतेषां स्वरूपं कथयन्ति, तदप्यविरुद्धमेवेति, तैलाग्निरिति वा तुषाग्निरिति वा बुसाग्निरिति वा नडाग्निरिति वा, नडः–तृणविशेषः, 'अयागराणीति वा' आर्षत्वान्नपुंसकनिर्देशः अयआकरा इति वा, येषु निरन्तरं महामूषास्वयोदलं प्रक्षिप्याऽय उत्पाट्यते ते अयआकराः, एवं ताम्राकरा इति वा त्रप्वाकरा इति वा सीसकाकरा इति वा रूप्याकरा इति वा सुवर्णाकरा इति वा हिरण्याकरा इति वा, सुवर्णहिरण्ययोरत्र विशेषो वर्णा-

दिकृतो वेदितव्यः, इष्टकापाक इति वा कुम्भकारापाक इति वा कवेल्लुकापाक इति वा लोहकाराम्वरीष इति वा, अम्बरीषः—कोष्ठकः, यन्त्रवाडचुल्ली इवेति, यन्त्रम्—इक्षुपीडनयन्त्रं तत्प्रधानः पाटको यन्त्रपाटकः तत्र चुल्ली यत्रेक्षुरसः पच्यते, इत्थम्भूतानि यानि मनुष्यलोके स्थानानि 'तप्तानि' वह्निसंपर्कतस्तप्तीभूतानि, तानि च कानिचिद् अयआकरप्रभृतीनि कदाचिदुष्णस्पर्शमात्राण्यपि संभवन्ति ततो विशेषप्रतिपादनार्थमाह—'समजोईभूयाइ' प्राकृतत्वात्समशब्दस्य पूर्वनिपातः, 'ज्योतिःसमभूतानि' साक्षादग्निवर्णानि जातानीति भावः, एतदेवोपमया स्पष्टयति—'फुल्लकिंशुकसमानानि' प्रफुल्लपलाशकुसुमकल्पानि 'उक्कासहस्साइं' इति ये मूलाग्नितो विच्युत्य विच्युत्याग्निकणाः प्रसर्पन्ति ते उल्का इत्युच्यन्ते तासां सहस्राणि उल्कासहस्राणि मुञ्चन्ति ज्वालासहस्राणि विनिर्मुञ्चन्ति अङ्गारसहस्राणि प्रविक्षरन्ति 'अन्तरन्तर्हूहूयमानानि' अतिशयेन जाज्वल्यमानानि, क्वचित् 'अंतो अंतो सुहुयहुयासणा' इति पाठः, 'अन्तरन्तः सुहुतहुताशनानि' सुष्ठु हुतो हुताशनो येषु तानि तथा तिष्ठन्ति तानि पश्येत् दृष्ट्वा चावगाहेत, अवगाह्य च 'उष्णमपि' नरकोष्णवेदनाजनितं वहिःशरीरस्य परितापमपि प्रविनयेत्, नरकगताद्रुष्णस्पर्शोदयआकरादिपूष्णस्पर्शस्यातीव मन्दत्वात्, एवं च सुखासिकाभावतस्तृषामपि क्षुधमपि दाहमपि अन्तःशरीरसमुत्थं प्रविनयेत्, तथा च सति तृडादिदोषापगमतो निद्रायेत वा प्रचलायेत वा स्मृतिं वा रतिं वा धृतिं वा उपलभेत, ततः शीतः शीतीभूतः सन् 'संकसन् संकसन्' संक्रामन् संक्रामन् सातसौख्यबहुलो विहरेत्, अमीषां पदानामर्थः प्राग्वद्भावनीयः । एतावत्युक्ते भगवान् गौतमः पृच्छति—'भवे एयारूवे सिया ?' 'स्यात्' संभाव्यते एतद् यथा भवेद् उष्णवेदनीयेषु नरकेषु एतद्रूपा उष्णवेदना ?, भगवानाह—गौतम ! नायमर्थः समर्थो यदुष्णवेदनीयेषु नरकेषु नैरयिका इति, अनन्तरं प्रतिपादितस्वरूपाया उष्णवेदनायाः अनिष्टतरिकामेव अप्रियतरिकामेव अमनोज्ञत-

रिकामेव अमनआपतरिकामेव वेदनां 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति ॥ सम्प्रति शीतवेदनीयेषु नरकेषु शीतवेदनास्वरूपं प्रतिपादयति—'सीयवेयणिज्जेसु ण'मित्यादि, शीतवेदनीयेषु भदन्त! निरयेषु नैरयिकाः कीदृशीं शीतवेदनां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ?, स यथानामकः कर्म्मकरदारकः स्यात् तरुण इत्यादिविशेषणकदम्बकं प्राग्वत्तावद् यावत्संहन्यात् नवरमुत्कर्षतो मासमित्यत्र ब्रूयात्, ततः 'सः' कर्म्मकरदारकः 'तम्' अयस्पिण्डमुष्णं स चोष्णो बाह्यप्रदेशमात्रापेक्षयाऽपि स्यादत आह—'उष्णीभूतं' सर्वात्मनाऽग्निवर्णीभूतमिति भावः, अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वाऽसद्भावप्रस्थापनया शीतवेदनीयेषु नरकेषु प्रक्षिपेत्, ततः 'स' पुरुषः 'तम्' अयस्पिण्डमित्यादि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावद्विहरति, तच्चैवम्—'से णं तं उम्मिसियनिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा पविलीणमेव पासेज्जा पविद्धत्थमेव पासेज्जा नो चेव णं संचाएइ अविरायं अविलीणं अविद्धत्थं पुणरवि पच्चुद्धरित्तए से जहानामए मत्तमायंगे जाव सायासोक्खबहुलेयावि विहरइत्ति' 'एवामेवे'त्यादि, अनेनैवाधिकृतदृष्टान्तोक्तेन प्रकारेण गौतम! असद्भावप्रस्थापनया शीतवेदनीयेभ्यो नरकेभ्योऽनन्तरमुद्वृत्तः सन् यानीमानि मनुष्यलोके स्थानानि भवन्ति, तद्यथा—हिमानि वा हिमपुञ्जानि वा, सूत्रे नपुंसकनिर्देशः प्राकृतत्वात्, हिमपटलानि वा हिमकूटानि वा, एतान्येव पदानि नानादेशजविनेयानुग्रहाय पर्यायैर्व्याचष्टे—'सीयाणि वा सीयपुंजाणि वा' इत्यादि, तानि पश्येत्, दृष्ट्वा तान्यवगाहेत, अवगाह्य 'शीतमपि' नरकजनितं शीतलमपि प्रविनयेत्, ततः सुखासिकाभावतस्तृषमपि क्षुधमपि ज्वरमपि नरकवेदनीयनरकसंपर्कसमुत्थं जाड्यमपि प्रविनयेत्, ततः शीतत्वादिदोषापगमतोऽनुत्तरं स्वास्थ्यं लभमानो निद्रायेत वा प्रचलायेत वा स्मृतिं वा रतिं वा धृतिं वा लभेत, ततो नरकगतजाड्यापगमाद् उष्णः, स च बहिःप्रदेशमात्रतोऽपि स्यात्तत आह—'उष्णीभूतः' अन्तरपि नरकगतजा-

ड्यापगमात् जातोत्साह इत्यर्थः, स एवंभूतः सन् यथास्वसुखं (संकसन्) संक्रामन् सातसौख्यबहुलो विहरेत्, एवमुक्ते गौतम आह—'भवेयारूवे सिया?' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नैरयिकाणां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

इमीसे णं भंते! रयणप्प० पु० णेरतियाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणवि उक्कोसेणवि ठिती भाणितव्वा जाव अधेसत्तमाए ॥ (सू० ९०) ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए णेरतिया अणंतरं उव्वट्टिय कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं नेरतिएसु उववज्जंति? किं तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति?, एवं उव्वट्टणा भाणितव्वा जहा वक्कंतीए तहा इहवि जाव अहेसत्तमाए ॥ (सू० ९१)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सागरोपमं, एवं शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यत एकं सागरोपममुत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि, वालुकाप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्त, पङ्कप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतो दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश, तमःप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः, तमस्तमःप्रभायां जघन्यतो द्वाविंशतिसागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, कचित् 'जहा पण्णवणाए ठिइपदे' इत्यतिदेशः सोऽप्येवमेवार्थतो भावनीयः, तदेवं प्रतिपृथिवि स्थितिपरिमाणमुक्तं, यदा तु प्रतिप्रस्तटं स्थितिपरिमाणं चिन्त्यते तदैवमवगन्तव्यम्—रत्नप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिर्दशवर्षसहस्राणि १०००० उत्कृष्टा नवतिः ९००००,

द्वितीये प्रस्तटे एषैव शतगुणिता जघन्या उत्कृष्टा च वेदितव्या, तद्यथा—जघन्या दशवर्षलक्षा १०००००० उत्कृष्टा नवतिवर्षलक्षाः ९००००००, तृतीये प्रस्तटे जघन्यतो नवतिवर्षलक्षा उत्कृष्टा पूर्वकोटी, चतुर्थे जघन्या पूर्वकोटी उत्कृष्टा सागरोपमस्य दशमो भागः, पञ्चमे जघन्या सागरोपमस्यैको दशभाग उत्कृष्टा द्वौ दशभागौ, षष्ठे जघन्या सागरोपमस्य द्वौ दशभागावुत्कृष्टा त्रयः, सप्तमे जघन्या त्रयः सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टाश्चत्वारः, अष्टमे जघन्या चत्वारः सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा पञ्च, नवमे जघन्या पञ्च सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा षट्, दशमे जघन्या षट् सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा सप्त, एकादशे जघन्या सप्त उत्कृष्टाऽष्टौ, द्वादशे जघन्याऽष्टौ उत्कृष्टा नव, त्रयोदशे जघन्या नव सागरोपमस्य दशभागा उत्कृष्टा दश, परिपूर्णमेकं सागरोपममिति भावः । शर्कराप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या एकं सागरोपमं उत्कृष्टा एकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्यैकादशभागौ, द्वितीये प्रस्तटे जघन्या एकं सागरोपमं द्वौ सागरोपमस्यैकादशभागौ उत्कृष्टा एकं सागरोपमं चत्वारः सागरोपमस्यैकादशभागाः, तृतीये जघन्या एकं सागरोपमं चत्वारः सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा एकं सागरोपमं षट् सागरोपमस्यैकादशभागाः, चतुर्थे जघन्या एकं सागरोपमं षट् सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा एकं सागरोपमम् अष्टौ सागरोपमस्यैकादशभागाः, पञ्चमे जघन्या एकं सागरोपमं अष्टौ सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा एकं सागरोपमं दश सागरोपमस्यैकादश भागाः, षष्ठे जघन्या एकं सागरोपमं दश सागरोपमस्यैकादशभागा उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे एकः सागरोपमस्यैकादशभागः, सप्तमे जघन्या द्वे सागरोपमे एकः सागरोपमस्यैकादशभाग उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे त्रयः सागरोपमस्यैकादशभागाः, अष्टमे जघन्या द्वे सागरोपमे त्रयः सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे पञ्च सागरोपमस्यैकादशभागाः, नवमे जघन्या द्वे सागरोपमे पञ्च सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे साग-

रोपमे सप्त सागरोपमस्यैकादशभागाः, दशमे जघन्या द्वे सागरोपमे सप्त सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टा द्वे सागरोपमे नव सागरोपमस्यैकादशभागाः, एकादशे जघन्या द्वे सागरोपमे नव सागरोपमस्यैकादशभागाः उत्कृष्टानि परिपूर्णानि त्रीणि सागरोपमाणि । वालुकाप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि उत्कृष्टा त्रीणि सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य नवभागाः, द्वितीये जघन्या त्रीणि सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा त्रीणि सागरोपमाणि अष्टौ सागरोपमस्य नवभागाः, तृतीये जघन्या त्रीणि सागरोपमाणि अष्टौ सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा चत्वारः सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य नवभागाः, चतुर्थे जघन्या चत्वारि सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा चत्वारि सागरोपमाणि सप्त सागरोपमस्य नवभागाः, पञ्चमे जघन्या चत्वारि सागरोपमाणि सप्त सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा पञ्च सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य नवभागौ, षष्ठे जघन्येन पञ्च सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य नवभागौ उत्कृष्टा पञ्च सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य नवभागाः, सप्तमे जघन्या पञ्च सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा षट् सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य नवभागः, अष्टमे जघन्या षट् सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य नवभागः उत्कृष्टा षट् सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य नवभागाः, नवमे जघन्या षट् सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य नवभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि सप्त सागरोपमाणि, एषोऽत्र तात्पर्यार्थः—सागरोपमत्रयस्योपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेण चत्वारः सागरोपमस्य नवभागा वर्द्धयितव्यास्ततो यथोक्तपरिमाणं भवति । पङ्कप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिः सप्त सागरोपमाणि उत्कृष्टा सप्त सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः, द्वितीये जघन्या सप्त सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा सप्त सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य सप्तभागाः, तृतीये जघन्या सप्त सागरोपमाणि षट् सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टाऽष्टौ सागरोप-

माणि द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ, चतुर्थे जघन्याऽष्टौ सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य सप्तभागौ उत्कृष्टाऽष्टौ सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य सप्तभागाः, पञ्चमे जघन्याऽष्टौ सागरोपमाणि पञ्च सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा नव सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य सप्तभागः, षष्ठे जघन्या नव सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य सप्तभागः उत्कृष्टा नव सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः सप्तमे जघन्या नव सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य सप्तभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि दश सागरोपमाणि, अत्रापीयं भावना—सागरोपमसप्तकस्योपरि त्रयस्त्रयः सागरोपमस्य सप्तभागाः प्रतिप्रस्तटं क्रमेण वर्द्धयितव्यास्ततो भवति यथोक्तं परिमाणमिति। धूमप्रभायाः प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिर्दश सागरोपमाणि उत्कृष्टा एकादश सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य पञ्चभागौ, द्वितीये जघन्या एकादश सागरोपमाणि द्वौ सागरोपमस्य पञ्चभागौ उत्कृष्टा द्वादश सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य पञ्चभागाः, तृतीये जघन्या द्वादश सागरोपमाणि चत्वारः सागरोपमस्य पञ्चभागाः उत्कृष्टा चतुर्दश सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः, चतुर्थे जघन्या चतुर्दश सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य पञ्चभागः उत्कृष्टा पञ्चदश सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य पञ्चभागाः, पञ्चमे जघन्या पञ्चदश सागरोपमाणि त्रयः सागरोपमस्य पञ्चभागाः उत्कृष्टा परिपूर्णानि सप्तदश सागरोपमाणि, एष चात्र भावार्थः—सागरोपमदशकस्योपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेणैकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्य पञ्चभागाविति वर्द्धयितव्यं ततो यथोक्तं परिमाणं भवति। तमःप्रभायां प्रथमे प्रस्तटे जघन्या स्थितिः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कृष्टाऽष्टादश सागरोपमाणि द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागौ, द्वितीये जघन्याऽष्टादश सागरोपमाणि द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागौ उत्कृष्टा विंशतिः सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य त्रिभागः, तृतीये जघन्या विंशतिः सागरोपमाणि एकः सागरोपमस्य त्रिभागः उत्कृष्टा द्वाविंशतिः सागरोपमाणि, अत्राप्येष तात्पर्यार्थः—सप्तदश साग-

राणामुपरि प्रतिप्रस्तटं क्रमेणैकं सागरोपमं द्वौ च सागरोपमस्य त्रिभागाविति वर्द्धयितव्यं, ततो यथोक्तं परिमाणं भवति। सप्तम्यां तु पृथिव्यामेक एव प्रस्तट इति तत्र पूर्वोक्तमेव परिमाणं द्रष्टव्यम् ॥ सम्प्रति नैरयिकाणामुद्वर्त्तनामाह—'रयणप्पभापुढवि'इत्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! अनन्तरमुद्धृत्त्य क्व गच्छन्ति?, एतदेव व्याचष्टे—कोत्पद्यन्ते इत्यादि, यथा प्रज्ञापनायां [यथा] व्युत्क्रान्तिपदे तथा वक्तव्यं यावत्तमस्तमायां, तच्चातिप्रभूतमिति तत एवावधार्यम्, एष च सङ्क्षेपार्थः रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका यावत्तमःप्रभापृथिवीनैरयिका अनन्तरमुद्धृत्ता नैरयिकदेवैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसंमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियासङ्ख्येयवर्षायुष्कवर्जेषु शेषेषु तिर्यङ्मनुष्येषूत्पद्यन्ते, सप्तमपृथिवीनैरयिकास्तु गर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियेष्वेव न शेषेषु ॥ सम्प्रति नरकेषु पृथिव्यादिस्पर्शस्वरूपमाह—

इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरतिया केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए, इमीसे णं भंते! रयण० पु० नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए, एवं जाव वणप्फतिफासं अधेसत्तमाए पुढवीए। इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु?, हंता! गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु, दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं पुच्छा, हंता गोयमा! दोच्चा णं पुढवी जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु, एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिता पुढवी अहेसत्तमं पुढविं पणिहाय सव्वक्खुड्डिया

सव्वंतेसु (सू० ९२) इमीसे णं भंते ! रयणप्प० पु० तीसाए नरयावाससयसहस्सेसु इक्कमिक्कंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वा?, हंता गोयमा! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो, एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए णवरं जत्थ जत्तिया णरका। [इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पु० निरयपरिसामंतेसु जे पुढविक्काइया जाव वणप्फतिकाइया ते णं भंते! जीवा महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महाआसवतरा चेव महावेयणतरा चेव?, हंता गोयमा! इमीसे णं [भंते!] रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु तं चेव जाव महावेदणतरका चेव, एवं जाव अधेसत्तमा] (सू० ९३)। पुढवीं ओगाहित्ता, नरगा संठाणमेव बाहल्लं। विक्खंभपरिक्खेवे वण्णो गंधो य फासो य ॥ १ ॥ तेसिं महालयाए उवमा देवेण होइ कायव्वा। जीवा य पोग्गला वक्कमंति तह सासया निरया ॥ २ ॥ उववायपरीमाणं अवहारुच्चत्तमेव संघयणं। संठाणवण्णगंधा फासा ऊसासमाहारे ॥ ३ ॥ लेसा दिट्ठी नाणे जोगुवओगे तहा समुग्घाया। तत्तो खुहापिवासा विउव्वणा वेयणा य भए ॥ ४ ॥ उववाओ पुरिसाणं ओवम्मं वेयणाएँ दुविहाए। उव्वट्टणपुढवी उ, उववाओ सव्वजीवाणं ॥ ५ ॥ एयाओ संगहणिगाहाओ ॥ (सू० ९४) ॥ बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं पृथिवीस्पर्शं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'अणिट्ठं

अकंतं अप्पियं अमणुन्नं अमणामं' अस्यार्थः प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावत्तमस्तमायाम्, एवमप्तेजोवायुवनस्पतिस्पर्शसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं तेजःस्पर्शः—उष्णरूपतापरिणतनरककुड्यादिस्पर्शः परोदीरितवैक्रियरूपो वा वेदितव्यो न तु साक्षाद् बादराग्निकायस्पर्शः, तत्रासम्भवात् ॥ **'इमीसे ण'**मित्यादि, अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति नरकावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् नरकावासे **'सर्वे प्राणाः'** द्वीन्द्रिया **'सर्वे भूताः'** वनस्पतिकायिकाः **'सर्वे सत्त्वाः'** पृथिव्यादयः **'सर्वे जीवाः'** पञ्चेन्द्रियाः, उक्तञ्च—"प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता, भूताश्च तरवः स्मृताः । जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः ॥ १ ॥" पृथिवीकायिकतया अप्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पतिकायिकतया नैरयिकतया उत्पन्नाः उत्पन्नपूर्वाः?, भगवानाह—**'हंते'**त्यादि, हन्तेति प्रत्यवधारणे गौतम! **'असकृत्'** अनेकवारम्, अथवा **'अनन्तकृत्वः'** अनन्तान् वारान्, संसारस्यानादित्वात्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, नवरं यत्र यावन्तो नरकास्तत्र तावन्त उपयुज्य वक्तव्याः । क्वचिदिदमपि सूत्रं दृश्यते—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु णं जे बायरपुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया ते णं भंते! जीवा! महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महासवतरा चेव महावेयणतरा चेव, हंता गोयमा! जाव महावेयणतरा चेव, एवं जाव अहेसत्तमा ॥" अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां **नरकपरिसमन्तेषु**—नरकावासपर्यन्तवर्त्तिषु प्रदेशेषु बादरपृथिवीकायिकाः **'जाव वणप्फइकाइय'**त्ति बादराप्कायिका बादरवायुकायिका बादरवनस्पतिकायिकास्ते भदन्त! जीवाः **'महाकम्मतरा चेव'** महत्—प्रभूतमसातवेदनीयं कर्म्म येषां ते महाकर्म्माणः, अतिशयेन महाकर्म्माणो महाकर्म्मतराः, **'चेवे'** त्यवधारणे, महाकर्म्मतरा एव कुतः? इत्याह—**'महाकिरियतरा चेव'** महती क्रिया—प्राणातिपातादिकाऽऽसीत् प्राग् जन्मनि तद्भवेषु तदध्यवसायानिवृत्त्या येषां ते महाक्रियाः, अतिशयेन महाक्रिया

महाक्रियतराः, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायाद्धेतावत्र प्रथमा, ततोऽयमर्थः—यतो महाक्रियतरा एव ततो महाकर्म्मतरा एव, महाक्रियतरत्वमपि कुतः? इत्याह—'महाश्रवतरा एव' महान्त आश्रवाः—पापोपादानहेतव आरम्भादयो येषामासीरन् ते महाश्रवाः, अतिशयेन महाश्रवा महाश्रवतराः, 'चेवे'ति पूर्ववत्, तदेवं यतो महाकर्म्मतरा एव ततो महावेदनतरा एव, नरकेषु क्षेत्रस्वभावजाया अपि वेदनाया अतिदुःसहत्वात्, भगवानाह—हंता गौतम! 'ते णं जीवा महाकम्मतरा चेवे'त्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी ॥ सम्प्रत्युद्देशकार्थसङ्ग्रहणिगाथाः प्राह—आसामक्षरमात्रगमनिका—प्रथमं 'पुढवीओ' इति पृथिव्योऽभिधेयास्तद्यथा—"कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?" इत्यादि। तदनन्तरम् 'ओगाहित्ता नरगा' इति, यस्यां पृथिव्यां यदवगाह्य यादृशाश्च नरकास्तदभिधेयं, यथा—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता" इत्यादि। ततो नरकाणां संस्थानं ततो वाहल्यं तदनन्तरं विष्कम्भपरिक्षेपौ ततो वर्णस्ततो गन्धस्तदन्तरं स्पर्शस्ततस्तेषां नरकाणां महत्तायामुपमा देवेन भवति कर्त्तव्या, ततो जीवाः पुद्गलाश्च तेषु नरकेषु व्युत्क्रामन्तीति, तथा शाश्वताशाश्वता नरका इति वक्तव्यं, तत उपपातो वक्तव्यः, तद्यथा—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए कतो उववज्जंति?" इत्यादि, तत एकसमयेनोत्पद्यमानानां परिमाणं ततोऽपहारस्तत उच्चत्वं तदनन्तरं संहननं ततः संस्थानं ततो वर्णस्तदनन्तरं गन्धस्ततः स्पर्शस्तत उच्छ्वासवक्तव्यता तदनन्तरमाहारस्ततो लेश्या ततो दृष्टिस्तदनन्तरं ज्ञानं ततो योगस्ततोऽप्युपयोगस्तदनन्तरं समुद्घातस्ततः क्षुत्पिपासे ततो विकुर्वणा, तद्यथा—"रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पहू विउव्वित्तए" इत्यादि, ततो वेदना ततो भयं तदनन्तरं पञ्चानां पुरुषाणामधःसप्तम्यामुपपातस्तत औपम्यं वेदनाया द्विविधायाः, उष्णवेदनायाः शीतवेदना-

याश्चेत्यर्थः, ततः स्थितिर्वक्तव्या तदनन्तरमुद्वर्त्तना ततः स्पर्शः पृथिव्यादिस्पर्शो वक्तव्यः, ततः सर्वजीवानामुपपातः, तद्यथा—"इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया" इत्यादि॥ तृतीयप्रतिपत्तौ समाप्तो द्वितीयो नरकोद्देशकः ॥ सम्प्रति तृतीय आरभ्यते, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरतिया केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं, एवं जाव अहेसत्तमाए [एवं नेयव्वं] ॥ एत्थ किर अतिवयंती नरवसभा केसवा जलचरा य। मंडलिया रायाणो जे य महारंभकोडुंबी ॥ १ ॥ भिन्नमुहुत्तो नरएसु होति तिरियमणुएसु चत्तारि । देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणा भणिया ॥ २ ॥ जे पोग्गला अणिट्ठा नियमा सो तेसि होइ आहारो। संठाणं तु जहण्णं नियमा हुंडं तु नायव्वं ॥ ३ ॥ असुभा विउव्वणा खलु नेरइयाणं तु होइ सव्वेसिं। वेउव्वियं सरीरं असंघयण हुंडसंठाणं ॥ ४ ॥ अस्साओ उववण्णो अस्साओ चेव चयइ निरयभवं । सव्वपुढवीसु जीवो सव्वेसु ठिइविसेसेसुं ॥५॥ उववाएण व सायं नेरइओ देवकम्मुणा वावि । अज्झवसाणनिमित्तं अहवा कम्माणुभावेणं ॥ ६ ॥ नेरइयाणुप्पाओ उक्कोसं पंचजोयणसयाइं। दुक्खेणभिहुयाणं वेयणसयसंपगाढाणं ॥ ७ ॥ अच्छिनिमीलियमेत्तं नत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं । नरए नेरइयाणं अहोनिसं पच्चमाणाणं ॥ ८ ॥ तेयाकम्मसरीरा सुहुमसरीरा य जे अपज्जत्ता । जीवेण मुक्कमेत्ता

वयंति सहस्ससो भेयं ॥ ९ ॥ अतिसीतं अतिउण्हं अतितण्हा अतिखुहा अतिभयं वा । निरए नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥ १० ॥ एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ । उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा ॥ ११ ॥ नारयउद्देसओ तइओ ॥ से तं नेरतिया ॥ (सू० ९५)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं 'पुद्गलपरिणामं' आहारादिपुद्गलविपाकं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! अनिष्टमित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, एवं वेदनालेश्यानामगोत्रारतिभयशोकक्षुत्पिपासाव्याधिउच्छ्वासानुतापक्रोधमानमायालोभाहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञासूत्राणि वक्तव्यानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य । अरई भए य सोगे खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य । चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे ॥ २ ॥" सम्प्रति सप्तमनरकपृथिव्यां ये गच्छन्ति तान् प्रतिपादयति—इह परिग्रहसञ्ज्ञापरिणामवक्तव्यतायां चरमसूत्रं सप्तमनरकपृथ्वीविषयं तदनन्तरं चेयं गाथा ततः 'एत्थे' त्यनन्तरमुक्ताऽधःसप्तमी पृथिवी परामृश्यते, 'अत्र' अधःसप्तमनरकपृथिव्यां 'किल' इत्याप्तवादसूचने आप्तवचनमेतदिति भावः, 'अतिव्रजन्ति' अतिशयेन—बाहुल्येन गच्छन्ति नरवृषभाः 'केशवाः' वासुदेवाः 'जलचराश्च' तन्दुलमत्स्यप्रभृतयः 'माण्डलिकाः' वसुप्रभृतय इव 'राजानः' चक्रवर्त्तिनः सुभूमादय इव ये च महारम्भाः कुटुम्बिनः—कालसौकरिकादय इव ॥ सम्प्रति नरकेषु प्रस्ताव-

त्तिर्यगादिषु चोत्तरवैक्रियावस्थानकालमानमाह—भिन्नः—खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तः अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, नरकेपूत्कर्षतो विकुर्वणास्थितिकालः, तिर्यग्मनुष्येषु चत्वार्यन्तर्मुहूर्त्तानि, देवेष्वर्द्धमास उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालः भणितः एष उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालो भणितस्तीर्थकरगणधरैः ॥ सम्प्रति नरकेष्वाहारादिस्वरूपमाह—ये पुद्गला अनिष्टा नियमात्स तेषां भवत्याहारः, 'संस्थानं तु' संस्थानं पुनस्तेषां हुण्डं हुण्डमपि जघन्यमतिनिकृष्टमनिष्टं वेदितव्यं, एतच्च भवधारणीयशरीरमधिकृत्य वेदितव्यम्, उत्तरवैक्रियसंस्थानस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, इयं च प्रागुक्तार्थसङ्ग्रहगाथा ततो न पुनरुक्तदोषः ॥ सम्प्रति विकुर्वणास्वरूपमाह—सर्वेषां नैरयिकाणां विकुर्वणा 'खलु' निश्चितमशुभा भवति, यद्यपि शुभं विकुर्विष्याम इति ते चिन्तयन्ति तथाऽपि तथाविधप्रतिकूलकर्मोदयतस्तेषामशुभैव विकुर्वणा भवति, तदपि च वैक्रियं—उत्तरवैक्रियशरीरमसंहननम्, अस्थ्यभावात्, उपलक्षणमेतत् भवधारणीयं च वैक्रियशरीरमसंहननं, तथा हुण्डसंस्थानं तत् उत्तरवैक्रियशरीरं, हुण्डसंस्थाननाम्न एव भवप्रत्ययत उदयभावात् ॥ कश्चित् जीवः 'सर्वास्वपि पृथिवीषु' रत्नप्रभादिषु तमस्तमापर्यन्तासु सर्वेष्वपि च 'स्थितिविशेषेषु' जघन्यादिरूपेषु 'असातः' असातोदयकलित उपपन्नः, उत्पत्तिकालेऽपि प्राग्भवमरणकालानुभूतमहादुःखानुवृत्तिभावात्, उत्पत्त्यनन्तरमपि 'असात एव' असातोदयकलित एव सकलमपि निरयभवं 'त्यजति' क्षपयति, न तु जातुचिदपि सुखलेशमप्यास्वादयति ॥ आह—किं तत्र कदाचित्सातोदयोऽपि भवति येनेदमुच्यते?, उच्यते, भवति, तथा चाह—'उववाएण' इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, उपपातकाले 'सातं' सातवेदनीयकर्मोदयं कश्चिद्वेदयते, यः प्राग्भवे दाघच्छेदादिव्यतिरेकेण मरणमुपगतोऽनतिसङ्क्लिष्टाध्यवसायी समुत्पद्यते, तदानीं हि न तस्य प्राग्भवानुबद्धमाधिरूपं दुःखं नापि क्षेत्रस्वभावजं नापि परमाधार्म्मिककृतं नापि परस्परोदीरितं तत एवंविधदुःखाभावादसौ सातं कश्चित् वेदयते इत्युच्यते, 'देवकम्मुणा वावि' इति देवकर्म्मणा

वचंति सहस्ससो भेयं ॥ ९ ॥ अतिसीतं अतिउण्हं अतितण्हा अतिखुहा अतिभयं वा । निरए नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥ १० ॥ एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होइ अस्साओ । उववाओ उप्पाओ अच्छि सरीरा उ बोद्धव्वा ॥ ११ ॥ नारयउद्देसओ तइओ ॥ से तं नेरतिया ॥ (सू० ९५)

'रयणप्पभे'त्यादि, रत्नप्रभापृथिवीनैरयिका भदन्त! कीदृशं 'पुद्गलपरिणामं' आहारादिपुद्गलविपाकं 'प्रत्यनुभवन्तः' प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! अनिष्टमित्यादि प्राग्वत्, एवं प्रतिपृथिवि तावद्वक्तव्यं यावदधःसप्तमी, एवं वेदनालेश्यानामगोत्रारतिभयशोकक्षुत्पिपासाव्याधिउच्छ्वासानुतापक्रोधमानमायालोभाहारभयमैथुनपरिग्रहसञ्ज्ञासूत्राणि वक्तव्यानि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य । अरई भए य सोगे खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥ उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य । चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाणं तु परिणामे ॥ २ ॥" सम्प्रति सप्तमनरकपृथिव्यां ये गच्छन्ति तान् प्रतिपादयति—इह परिग्रहसञ्ज्ञापरिणामवक्तव्यतायां चरमसूत्रं सप्तमनरकपृथ्वीविषयं तदनन्तरं चेयं गाथा ततः 'एत्थे' त्यनन्तरमुक्ताऽधःसप्तमी पृथिवी परामृश्यते, 'अत्र' अधःसप्तमनरकपृथिव्यां 'किल' इत्याप्तवादसूचने आप्तवचनमेतदिति भावः, 'अतिव्रजन्ति' अतिशयेन—बाहुल्येन गच्छन्ति नरवृषभाः 'केशवाः' वासुदेवाः 'जलचराश्च' तन्दुलमत्स्यप्रभृतयः 'माण्डलिकाः' वसुप्रभृतय इव 'राजानः' चक्रवर्तिनः सुभूमादय इव ये च महारम्भाः कुटुम्बिनः—कालसौकरिकादय इव ॥ सम्प्रति नरकेषु प्रस्तावा-

त्तिर्यगादिषु चोत्तरवैक्रियावस्थानकालमानमाह—भिन्नः—खण्डो मुहूर्त्तो भिन्नमुहूर्त्तः अन्तर्मुहूर्त्तमित्यर्थः, नरकेषूत्कर्षतो विकुर्वणास्थितिकालः, तिर्यग्मनुष्येषु चत्वार्यन्तर्मुहूर्त्तानि, देवेष्वर्द्धमास उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालः भणितः एष उत्कर्षतो विकुर्वणाऽवस्थानकालो भणितस्तीर्थकरगणधरैः ॥ सम्प्रति नरकेष्वाहारादिस्वरूपमाह—ये पुद्गला अनिष्टा नियमात्स तेषां भवत्याहारः, **'संस्थानं तु'** संस्थानं पुनस्तेषां हुण्डं हुण्डमपि जघन्यमतिनिकृष्टमनिष्टं वेदितव्यं, एतच्च भवधारणीयशरीरमधिकृत्य वेदितव्यम्, उत्तरवैक्रियसंस्थानस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, इयं च प्रागुक्तार्थसङ्ग्रहगाथा ततो न पुनरुक्तदोषः ॥ सम्प्रति विकुर्वणास्वरूपमाह—सर्वेषां नैरयिकाणां विकुर्वणा **'खलु'** निश्चितमशुभा भवति, यद्यपि शुभं विकुर्विष्याम इति ते चिन्तयन्ति तथाऽपि तथाविधप्रतिकूलकर्मोदयतस्तेषामशुभैव विकुर्वणा भवति, तदपि च वैक्रियं—उत्तरवैक्रियशरीरमसंहननम्, अस्थ्यभावात्, उपलक्षणमेतत् भवधारणीयं च वैक्रियशरीरमसंहननं, तथा हुण्डसंस्थानं तत् उत्तरवैक्रियशरीरं, हुण्डसंस्थाननाम्न एव भवप्रत्ययत उदयभावात् ॥ कश्चित् जीवः **'सर्वास्वपि पृथिवीषु'** रत्नप्रभादिषु तमस्तमापर्यन्तासु सर्वेष्वपि च **'स्थितिविशेषेषु'** जघन्यादिरूपेषु **'असातः'** असातोदयकलित उपपन्नः, उत्पत्तिकालेऽपि प्राग्भवमरणकालानुभूतमहादुःखानुवृत्तिभावात्, उत्पत्त्यनन्तरमपि **'असात एव'** असातोदयकलित एव सकलमपि निरयभवं **'त्यजति'** क्षपयति, न तु जातुचिदपि सुखलेशमप्यास्वादयति ॥ आह—किं तत्र कदाचित्सातोदयोऽपि भवति येनेदमुच्यते?, उच्यते, भवति, तथा चाह—**'उववाएण'** इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, उपपातकाले **'सातं'** सातवेदनीयकर्मोदयं कश्चिद्वेदयते, यः प्राग्भवे दाघच्छेदादिव्यतिरेकेण मरणमुपगतोऽनतिसङ्क्लिष्टाध्यवसायी समुत्पद्यते, तदानीं हि न तस्य प्राग्भवानुबद्धमाधिरूपं दुःखं नापि क्षेत्रस्वभावजं नापि परमाधार्म्मिककृतं नापि परस्परोदीरितं तत एवंविधदुःखाभावादसौ सातं कश्चित् वेदयते इत्युच्यते, **'देवकम्मुणा वावि'** इति देवकर्म्मणा

पूर्वसाङ्गतिकदेवप्रयुक्तया क्रियया, तथाहि—गच्छति पूर्वसाङ्गतिको देवः पूर्वपरिचितस्य नैरयिकस्य वेदनोपशमनार्थं यथा **बलदेवः** कृष्णवासुदेवस्य, स च वेदनोपशमो देवकृतो मनाक्कालमात्र एव भवति, तत ऊर्ध्वं नियमात्क्षेत्रस्वभावजाऽन्योऽन्या वा वेदना प्रवर्त्तते, तथास्वाभाव्यात्, **'अज्झवसाणनिमित्त'** मिति अध्यवसाननिमित्तं सम्यक्त्वोत्पादकाले तत ऊर्ध्वं कदाचित्तथाविधविशिष्टशुभाध्यवसायप्रत्ययं कश्चिद् नैरयिको बाह्यक्षेत्रस्वभावजवेदनासद्भावेऽपि सातोदयमेवानुभवति, सम्यक्त्वोत्पादकाले हि जात्यन्धस्य चक्षुर्लाभ इव महान् प्रमोद उपजायते, तदुत्तरकालमपि कदाचित्तीर्थकरगुणानुमोदनाद्यनुगतां विशिष्टां भावनां भावयतः, ततो बाह्यक्षेत्रस्वभावजवेदनासद्भावेऽप्यन्तः सातोदयो विजृम्भमाणो न विरुध्यते, **'अहवा कम्माणुभावेण'**मिति अथवा **'कर्म्मानुभावेन'** बाह्यतीर्थकरजन्मदीक्षाज्ञानापवर्गकल्याणसंभूतिलक्षणबाह्यनिमित्तमधिकृत्य तथाविधस्य च सातवेदनीयस्य कर्म्मणोऽनुभावेन—विपाकोदयेन कश्चित्सातं वेदयते, न चैतद्व्याख्यानमनार्षं यत उक्तं **वसुदेवचरिते,** इह नैरयिकाः कुम्भ्यादिषु पच्यमानाः कुन्तादिभिर्भिद्यमाना वा भयोत्रस्तास्तथाविधप्रयत्नवशादूर्द्ध्वमुत्प्लवन्ते, ततस्तदुत्पातपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—नैरयिकाणां दुःखेनाभिद्रुतानां—सर्वात्मना व्याप्तानां **'वेदनाशतसंप्रगाढानां'** वेदनाशतानि—अपरिमिता वेदनाः संप्रगाढानि—अवगाढानि येषां ते वेदनाशतसंप्रगाढाः सुखादिदर्शनात् निष्ठान्तस्य परनिपातः, तेषां हेतुहेतुमद्भावश्चात्र, यतो वेदनाशतसंप्रगाढास्ततो दुःखेनाभिद्रुताः, तेषां जघन्यत उत्पातो गव्यूतमात्रम्, एतच्च संप्रदायादवसीयते, तथा च दृश्यते कचिदेवमपि पाठः—"नेरइयाणुप्पाओ गाउय उक्कोस• पंचजोयणसयाइं" इति, उत्कर्षतः पञ्च योजनशतानि इति। दुःखेनाभिहतानामित्युक्तं ततो दुःखमेव निरूपयति—नरके नैरयिकाणामुष्णवेदनया शीतवेदनया वाऽहर्निशं पच्यमानानां न **'अक्षिनिमीलनमात्रमपि'** अक्षिनिकोचकालमात्रमपि अस्ति सुखं, किन्तु दुःखमेव केवलं **'प्रतिबद्धम्'**

अनुबद्धं सदाऽनुगतमिति भावः ॥ अथ यत्तेषां वैक्रियशरीरं तत्तेषां मरणकाले कथं भवति? इति तन्निरूपणार्थमाह—तैजसकार्म्मणशरीराणि यानि 'सूक्ष्मशरीराणि' (च) सूक्ष्मनामकर्म्मोदयवतां पर्याप्तानामपर्याप्तानां चौदारिकशरीराणि वैक्रियाहारकशरीराणि च तेषामपि प्रायो मांसचक्षुरग्राह्यतया सूक्ष्मत्वात् तथा यानि 'अपर्याप्तानि' अपर्याप्तशरीराणि तानि जीवेन मुक्तमात्राणि सन्ति सहस्रशो भेदं व्रजन्ति विसकलितास्तत्परमाणुसङ्घाता भवन्तीत्यर्थः ॥ एतासामेव गाथानां संग्राहिकां गाथामाह—'एत्थ' इति पदोपलक्षिता प्रथमा द्वितीया 'भिन्नमुहुत्तो' इति तृतीया 'पोग्गला' इति 'जे पोग्गला अणिट्ठा' इत्यादि चतुर्थी 'अशुभा' इति (जे) 'असुभा विउव्वणा खलु' इत्यादि, एवं शेषपदान्यपि भावनीयानि ॥ तृतीयप्रतिपत्तौ तृतीयो नरकोद्देशकः समाप्तः ॥ तदेवमुक्तो नारकाधिकारः, सम्प्रति तिर्यगधिकारो वक्तव्यः, तत्र चेदमादिसूत्रम्—

से किं तं तिरिक्खजोणिया?, तिरिक्खजोणिया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—एगिंदियतिरिक्खजोणिया बेइंदियतिरिक्खजोणिया तेइंदियतिरिक्खजोणिया चउरिंदियतिरिक्खजोणिया पंचिंदियतिरिक्खजोणियाय। से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणिया?, २ पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वणस्सइकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया। से किं तं पुढविक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया बादरपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया य। से किं तं सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरि०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तसुहुम० अपज्जत्तसुहुम० से तं सुहुमा।

से किं तं बादरपुढविकाइय०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तबादरपु० अपज्जत्तबादरपु०, से तं बायरपुढविकाइयएगिंदिय०। से तं पुढवीकाइयएगिंदिया। से किं तं आउकाइयएगिंदिय०?, २ दुविहा पण्णत्ता, एवं जहेव पुढविकाइयाणं तहेव, वाउकायभेदो एवं जाव वणस्सतिकाइया से तं वणस्सइकाएगिंदियतिरिक्ख०। से किं तं बेइंदियतिरिक्ख०?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तकबेइंदियति० अपज्जत्तबेइंदियति०, से तं बेइंदियतिरि० एवं जाव चउरिंदिया। से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया थलयरपंचेंदियतिरिक्खजो० खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से किं तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य। से किं तं संमुच्छिमजलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिता?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगसंमुच्छिम० अपज्जत्तगसंमुच्छिम० जलयरा, से तं संमुच्छिम० पंचिंदियतिरिक्ख०। से किं तं गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगगब्भवक्कंतिय० अपज्जत्तगगब्भ० से तं गब्भवक्कंतियजलयर०, से तं जलयरपंचेंदियतिरि०। से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, २ दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—चउप्पयथलयरपंचेंदिय० परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता।

से किं तं चउप्पदथलयरपंचिंदिय०? चउप्पय० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिय० गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता य, जहेव जलयराणं तहेव चउक्कतो भेदो, सेत्तं चउप्पदथलयरपंचेंदिय०। से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्ख०?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता। से किं तं उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, उरगपरि० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—जहेव जलयराणं तहेव चउक्कतो भेदो, एवं भुयगपरिसप्पाणवि भाणितव्वं, से तं भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता, से तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता। से किं तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?, खह० २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता य। से किं तं संमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिता?, संमु० २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिंया अपज्जत्तगसंमुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य, एवं गब्भवक्कंतियावि जाव पज्जत्तगगब्भवक्कंतियावि जाव अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियावि खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! कतिविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे जोणिसंगहे

पण्णत्ते, तंजहा—अंडया पोयया संमुच्छिमा, अंडया तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसगा, पोतया तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसया, तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसका ॥ (सू० ९६)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते तिर्यग्योनिकाः?, सूरिराह—तिर्यग्योनिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एकेन्द्रिया इत्यादि सूत्रं प्रायः सुगमं केवलं भूयान् पुस्तकेषु वाचनाभेद इति यथाऽवस्थितवाचनाक्रमप्रदर्शनार्थमक्षरसंस्कारमात्रं क्रियते—एकेन्द्रिया यावत्प-ञ्चेन्द्रियाः । अथ के ते एकेन्द्रियाः?, एकेन्द्रियाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पृथिवीकायिका यावद्वनस्पतिकायिकाः । अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, पृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मपृथिवीकायिकाश्च वादरपृथिवीकायिकाश्च । अथ के ते सूक्ष्मपृथि-वीकायिकाः?, सूक्ष्मपृथिवीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च । अथ के ते वादरपृथिवीकायिकाः?, वादरपृथि-वीकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं तावद्वक्तव्यं यावद्वनस्पतिकायिकाः । अथ के ते द्वीन्द्रियाः?, द्वी-न्द्रिया द्विविधाः प्रज्ञप्ताः—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया अपि वक्तव्याः । अथ के ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः?, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—जलचराः स्थलचराः खचराश्च । अथ के ते जलचराः?, जलचरा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्त-द्यथा—संमूर्च्छिमा गर्भव्युत्क्रान्तिकाश्च । अथ के ते संमूर्च्छिमा.?, संमूर्च्छिमा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च । अथ

१ अण्डजव्यतिरिक्ता सर्वेऽपि जरायुजा अजरायुजा वा गर्भव्युत्क्रान्तिका पञ्चेन्द्रिया अत्रैवान्तर्भावनीया इति न चतुर्विधा, समाधास्यति चैवमग्रे, केवल-मत्र जरायुजतया पक्षिणामप्रसिद्धे न समाधेरादति .

के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः ?, गर्भव्युत्क्रान्तिका द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तका अपर्याप्तकाश्च, एवं चतुष्पदा उरःपरिसर्प्पा भुजपरिसर्पाः पक्षिणश्च प्रत्येकं चतुष्प्रकारा वक्तव्याः ॥ सम्प्रति पक्षिणां प्रकारान्तरेण भेदप्रतिपादनार्थमाह—'पक्खि णं (खहयरपंचिंदियतिरि०) भंते !' इत्यादि, पक्षिणां भदन्त ! 'कतिविधः' कतिप्रकारः 'योनिसङ्ग्रहः' योन्या सङ्ग्रहणं योनिसङ्ग्रहो योन्युपलक्षितं ग्रहणमित्यर्थः (प्रज्ञप्तः ?), भगवानाह—गौतम ! त्रिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अण्डजा—मयूरादयः पोतजा—वागुल्यादयः संमूर्च्छिमाः खञ्जरीटादयः, अण्डजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, पोतजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, तत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, संमूर्च्छिमानामवश्यं नपुंसकवेदोदयभावात् ॥

एतेसि णं भंते ! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी ?, गोयमा ! सम्मदिट्ठीवि मिच्छदिट्ठीवि सम्मामिच्छदिट्ठीवि ॥ ते णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?, गोयमा ! णाणीवि अण्णाणीवि तिण्णि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ॥ ते णं भंते ! जीवा किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी ?, गोयमा ! तिविधावि ॥ ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?, गोयमा ! सागारोवउत्तावि अणागारोवउत्तावि ॥ ते णं भंते ! जीवा कओ उववज्जंति किं नेरतिएहिंतो उव० तिरिक्खजोणिएहिंतो उव० ?, पुच्छा, गोयमा ! असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगअंतरदीवगवज्जेहिंतो उववज्जंति ॥ तेसि णं भंते ! जीवाणं

केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! पंच समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए जाव तेयासमुग्घाए ॥ ते णं भंते! जीवा मारणांतियसमुग्घाएणं किं समोहता मरंति असमोहता मरंति?, गोयमा! समोहतावि म० असमोहयावि मरंति ॥ ते णं भंते! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?—किं नेरतिएसु उववज्जंति? तिरिक्ख० पुच्छा, गोयमा! एवं उव्वट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहेव ॥ तेसि णं भंते! जीवाणं कति जातीकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! बारस जातीकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा ॥ भुयगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! कतिविधे जोणीसंगहे पण्णत्ते?, गोयमा! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तंजहा—अंडगा पोयगा संमुच्छिमा, एवं जहा खहयराणं तहेव, णाणत्तं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता दोच्चं पुढविं गच्छंति, णव जातीकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं, सेसं तहेव ॥ उरगपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते! पुच्छा, जहेव भुयगपरिसप्पाणं तहेव, णवरं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता जाव पंचमिं पुढविं गच्छंति, दस जातीकुलकोडी ॥ चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्ख० पुच्छा, गोयमा! दुविधे पण्णत्ते, तंजहा—

जराउया (पोयया) य संमुच्छिमा य, (से किं तं) जराउया (पोयया)?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी पुरिसा णपुंसका, तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसया । तेसि णं भंते! जीवाणं कति लेस्साओ पण्णत्ताओ?, सेसं जहा पक्खीणं, णाणत्तं ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, उव्वट्टित्ता चउत्थिं पुढविं गच्छंति, दस जातीकुलकोडी ॥ जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, जहा भुयगपरिसप्पाणं णवरं उव्वट्टित्ता जाव अधेसत्तमं पुढविं अद्धतेरस जातीकुलकोडीजोणीपमुह० जाव प० ॥ चउरिंदियाणं भंते! कति जातीकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! नव जाईकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा [जाव] समक्खाया। तेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा! अट्ठजाईकुल जावमक्खाया। बेइंदियाणं भंते! कइ जाई०?, पुच्छा, गोयमा! सत्त जाईकुलकोडीजोणीपमुह० ॥ (सू० ९७)

"एएसि ण'मित्यादि, 'एतेषां' पक्षिणां भदन्त! जीवानां कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, तेषां द्रव्यतो भावतो वा सर्वा लेश्याः, परिणामसम्भवात् ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! पक्षिणो जीवाः कि सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधा अपि ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त! जीवाः किं ज्ञानिनोऽज्ञानिनः?, भगवानाह—गौतम! द्वयेऽपि, ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽपीत्यर्थः, तत्र ये ज्ञानिनस्ते द्विज्ञानिनस्त्रिज्ञानिनो वा येऽप्यज्ञानिनस्तेऽपि द्व्यज्ञानिनस्त्र्यज्ञानिनो वा ॥ 'ते ण'मित्यादि, ते भदन्त! जीवाः किं मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययो-

गिनः ?, भगवानाह—गौतम ! त्रयोऽपि ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त ! जीवाः किं साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताः ?, भगवानाह—द्वयेऽपि, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ताश्चेत्यर्थः ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त ! पक्षिणो जीवाः कुत उत्पद्यन्ते ? नैरयिकेभ्य इत्यादि यथा प्रज्ञापनायां व्युत्क्रान्तिपदे तथा द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त ! पक्षिणां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पल्योपमासङ्ख्येयभागः ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त ! जीवानां कति समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः ?, भगवानाह—गौतम ! पञ्च समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मारणान्तिकसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातस्तैजससमुद्घातश्च ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त ! जीवा मारणान्तिकसमुद्घातेन किं समवहता म्रियन्ते असमवहता म्रियन्ते ?, भगवानाह—गौतम ! समवहता अपि म्रियन्ते असमवहता अपि म्रियन्ते ॥ 'ते णं भंते!' इत्यादि, ते भदन्त ! जीवा अनन्तरमुद्वृत्त्य क्व गच्छन्ति ?, एतदेव व्याचष्टे—'एवं उव्वट्टणा' इत्यादि, यथा द्विविधप्रतिपत्तौ तथा द्रष्टव्यम् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां भदन्त ! जीवानां 'कति' किंप्रमाणानि जातिकुलकोटीनां योनिप्रमुखाणि—योनिप्रवाहानि शतसहस्राणि योनिप्रमुखशतसहस्राणि जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भवन्ति ?, भगवानाह—द्वादश जातिकुलकोटीयोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तत्र जातिकुलयोनीनामिदं परिस्थूरमुदाहरणं पूर्वाचार्यैरुपादर्शि—जातिरिति किल तिर्यग्जातिस्तस्याः कुलानि—कृमिकीटवृश्चिकादीनि, इमानि च कुलानि योनिप्रमुखाणि, तथाहि—एकस्यामेव योनौ अनेकानि कुलानि भवन्ति, तथाहि—छगणयोनौ कृमिकुलं कीटकुलं वृश्चिककुलमित्यादि, अथवा जातिकुलमित्येकं पदं, जातिकुलयोन्योश्च परस्परं विशेषः एकस्यामेव योनावनेकजातिकुलसम्भवात्, तद्यथा—एकस्यामेव छग-

१ व्युत्क्रान्तिपदवत्तत्र भणितत्वात् वृत्तौ यथायथं, मूले तु प्रज्ञापनाया व्युत्क्रान्तिपद एव यथायथ सूत्रमिति वक्तीएत्ति सूत्रं.

णयोनौ कृमिजातिकुलं कीटजातिकुलं वृश्चिकजातिकुलमित्यादिं, एवं चैकस्यामेव योनाववान्तरजातिभेदभावादनेकानि योनिप्रवाहाणि
जातिकुलानि संभवन्तीत्युपपद्यते, खचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानां द्वादश जातिकुलकोटिशतसहस्राणि, अत्र सङ्ग्रहणिगाथा—"जोणी-
संगहलेस्सादिट्ठी नाणे य जोग उवओगे । उववायठिईसमुग्घाय चयणं जाई कुलविही उ ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका—प्रथमं योनि-
सङ्ग्रहद्वारं ततो लेश्याद्वारं ततो दृष्टिद्वारमित्यादि ॥ 'भुयगाणं भंते!' इत्यादि, भुजगानां भदन्त! कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः?,
इत्यादि पक्षिवत् सर्वं—निरवशेषं वक्तव्यं, नवरं स्थितिच्यवनकुलकोटिषु नानात्वं, तद्यथा—स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटी,
च्यवनम्—उद्वर्त्तना, तत्र नरकगतिचिन्तायामधो यावद्द्वितीया पृथिवी उपरि यावत्सहस्रारः कल्पस्तावदुत्पद्यते, नव तेषां जातिकुलको-
टियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । एवमुरःपरिसर्पाणामपि वक्तव्यं, नवरं तत्र च्यवनद्वारेऽधश्चिन्तायां यावत्पञ्चमी पृथिवीति
वक्तव्यं, कुलकोटिचिन्तायां दश जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ 'चउप्पयाण'मित्यादि, चतुष्पदानां भदन्त!
कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! द्विविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—पोतजाः संमूर्च्छिमाश्च, इह येऽण्डजव्यति-
रिक्ता गर्भव्युत्क्रान्तास्ते सर्वे जरायुजा अजरायुजा वा पोतजा इति [पूर्वमपि विवक्षिताः परमत्र तु सर्वेऽपि गर्भव्युत्क्रान्तिकाः पोत-
जतया] विवक्षितमतोऽत्र द्विविधो यथोक्तस्वरूपो योनिसङ्ग्रह उक्तः, अन्यथा गवादीनां जरायुजत्वात् (सर्पादीनामण्डजत्वात्) तृती-
योऽपि जरायु(अण्डज)लक्षणो योनिसङ्ग्रहो वक्तव्यः स्यादिति, तत्र ये ते पोतजास्ते त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च,
तत्र ये ते संमूर्च्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, शेषद्वारकलापः पूर्ववत्, नवरं स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, च्यवनद्वारे-
ऽधश्चिन्तायां यावच्चतुर्थी पृथिवी ऊर्ध्वं यावत्सहस्रारः, जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राण्यत्रापि दश ॥ 'जलचराणा'मित्यादि, जल-

चराणां भदन्त! कतिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! त्रिविधो योनिसङ्ग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अण्डजाः पोतजाः संमूर्छिमाश्च, अण्डजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, पोतजास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाश्च, तत्र ये ते संमूर्छिमास्ते सर्वे नपुंसकाः, शेषमुरःपरिसर्पवक्तव्यतावत्, नवरं स्थितिच्यवनजातिकुलकोटिषु नानात्वं, स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त-मुत्कर्षतः पूर्वकोटी, च्यवनद्वारेऽधश्चिन्तायां यावत्सप्तमी ऊर्ध्वं यावत्सहस्रारः, कुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि अर्धत्रयोदश सार्धानि द्वादशेत्यर्थः ॥ 'चउरिंदियाण'मित्यादि, चतुरिन्द्रियाणां भदन्त! कति जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—नव जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, एवं त्रीन्द्रियाणामष्टौ जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि, द्वीन्द्रियाणां सप्त जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । इह जातिकुलकोट्यो योनिजातीयत्वेन भिन्नजातीयाभिधानप्रसङ्गतो गन्धाङ्गानि भिन्नजातीयत्वात् प्ररूपयति—

कइ णं भंते! गंधा पण्णत्ता? कइ णं भंते! गंधसया पण्णत्ता?, गोयमा! सत्त गंधा सत्त गंधसया पण्णत्ता ॥ कइ णं भंते! पुप्फजाई कुलकोडीजोणिपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! सोलसपुप्फजातीकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता, तंजहा—चत्तारि जलयराणं चत्तारि थलयराणं चत्तारि महारुक्खियाणं चत्तारि महागुम्मियाणं ॥ कति णं भंते! वल्लीओ कति वल्लीसता पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि वल्लीओ चत्तारि वल्लीसता पण्णत्ता ॥ कति णं भंते! लताओ कति लतासता पण्णत्ता?, गोयमा! अट्ठ लयाओ अट्ठ लतासता पण्णत्ता ॥ कति णं भंते! हरितकाया हरितकाय...

भंते! हरियकाया हरियकायसया पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता, फलसहस्सं च बिंटबद्धाणं फलसहस्सं च णालबद्धाणं, ते सव्वे हरितकायमेव समोयरंति, ते एवं समणुगम्ममाणा २ एवं समणुगाहिज्जमाणा २ एवं समणुपेहिज्जमाणा २ एवं समणुचिंतिज्जमाणा २ एएसु चेव दोसु काएसु समोयरंति, तंजहा—तसकाए चेव थावरकाए चेव, एवमेव सपुव्वावरेणं आजीवियदिट्ठंतेणं चउरासीति जातिकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खाया ॥ (सू० ९८)

'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! गन्धाङ्गानि, क्वचिद् गन्धा इति पाठस्तत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् गन्धा इति गन्धाङ्गानीति द्रष्टव्यं प्रज्ञप्तानि ?, तथा कति गन्धाङ्गशतानि प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—गौतम ! सप्त गन्धाङ्गानि सप्त गन्धाङ्गशतानि प्रज्ञप्तानि, इह सप्त गन्धाङ्गानि परिस्थूरजातिभेदादमूनि, तद्यथा—मूलं त्वक् काष्ठं निर्यासः पत्रं पुष्पं फलं च, तत्र मूलं मुस्तावालुकोशीरादि, त्वक् सुवर्णछल्लीत्वचाप्रभृति, काष्ठं चन्दनागुरुप्रभृति, निर्यासः कर्पूरादिः, पत्रं जातिपत्रतमालपत्रादि, पुष्पं प्रियङ्गुनागरपुष्पादि, फलं जातिफलकक्कोलकैलालवङ्गप्रभृति, एते च वर्णमधिकृत्य प्रत्येकं कृष्णादिभेदात्पञ्चपञ्चभेदा इति वर्णपञ्चकेन गुण्यन्ते जाताः पञ्चत्रिंशत्, गन्धचिन्तायामेते सुरभिगन्धय एवेत्येकेन गुणिताः पञ्चत्रिंशत् जाताः पञ्चत्रिंशदेव **'एकेन गुणितं तदेव भवती'**ति न्यायात्, तत्राप्येकैकस्मिन् वर्णभेदे रसपञ्चकं द्रव्यभेदेन विविक्तं प्राप्यते इति सा पञ्चत्रिंशत् रसपञ्चकेन गुण्यते जाताः पञ्चसप्ततिशतं, स्पर्शाश्च यद्यप्यष्टौ भवन्ति तथाऽपि गन्धाङ्गेषु यथोक्तरूपेषु प्रशस्ता व्यवहारतश्चत्वार एव मृदुलघुशीतोष्णरूपास्ततः पञ्चसप्ततं शतं स्पर्शचतु-

ष्टयेन गुण्यते जातानि सप्त शतानि, उक्तञ्च—“मूलतयकट्ठनिज्जासपत्तपुप्फफलमेय गंधंगा । वण्णादुत्तरभेया गंधंगसया मुणेयव्वा ॥ १ ॥” अस्य व्याख्यानरूपं गाथाद्वयम्—“मुत्थासुवण्णछल्ली अगुरू वाला तमालपत्तं च । तह य पियंगू जाईफलं च जाईएँ गंधगा ॥ १ ॥ गुणणाए सत्त सया पंचहिँ वण्णेहि सुरभिगंधेणं । रसपणएणं तह फासेहि य चउहिँ मित्ते(पसत्थे)हि ॥ २ ॥” अत्र ‘जाईए गंधंगा’ इति जात्या जातिभेदेनामूनि गन्धाङ्गानि, शेषं भावितम् ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त! पुष्पजातिकुलकोटिशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! षोडश पुष्पजातिकुलकोटिशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चत्वारि ‘जलजानां’ पद्मानां जातिभेदेन, तथा चत्वारि ‘स्थलजानां’ कोरण्टकादीनां जातिभेदेन, चत्वारि महागुल्मिकादीनां जात्यादीनां, चत्वारि ‘महावृक्षाणां’ मधुकादीनामिति ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त! वल्लयः? कति वल्लिशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चतस्रो वल्लयस्त्रपुष्यादिमूलभेदेन, ताश्च मूलटीकाकृता वैविक्त्येन न व्याख्याता इति संप्रदायादवसेयाः, चत्वारि वल्लिशतान्येवावान्तरजातिभेदेन ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त! लताः कति लताशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! अष्टौ लता या मूलभेदेन ता अपि संप्रदायादवसातव्याः, मूलटीकाकारेणाव्याख्यानात्, अष्टौ लताशतानि प्रज्ञप्तानि, अवान्तरजातिभेदेन ॥ ‘कइ ण’मित्यादि, कति भदन्त! हरितकायाः कति हरितकायशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! त्रयो हरितकायाः प्रज्ञप्ताः—जलजाः स्थलजा उभयजाः, एकैकस्मिन् शतमवान्तरभेदानामिति, त्रीणि हरितकायशतानि । ‘फलसहस्सं चे’त्यादि, फलसहस्रं च ‘वृन्तवन्धानां’ वृन्ताकप्रभृतीनां फलसहस्रं च नालबद्धानां, ‘तेऽवि सव्वे’ इत्यादि, तेऽपि सर्वे भेदा अपिशब्दादन्येऽपि तथाविधाः ‘हरितकायमेव समवतरन्ति’ हरितकायेऽन्तर्भवन्ति हरितकायोऽपि वनस्पतौ वनस्पतिरपि स्थावरेषु स्थावरा अपि जीवेषु, तत एवं समनुगम्यमाना २ स्तथा जात्यन्तर्भा-

समनुमाह्यमाणाः परेण सूत्रत एव, तथा समनुप्रेक्ष्यमाणाः समनुप्रेक्ष्यमाणा अनु-
वेन स्वत एव सूत्रतः, तथा समनुमाह्यमाणाः समनुमाह्यमाणाः परेण सूत्रत एव, तथा समनुप्रेक्ष्यमाणाः काययोः समवतरन्ति,
प्रेक्षया अर्थालोचनरूपया, तथा समनुचिन्त्यमानाः समनुचिन्त्यमानास्तथा तथा तन्त्रयुक्तिभिः, एतयोरेव द्वयोः कायनोः समवतरन्ति,
तद्यथा—त्रसकाये च स्थावरकाये च, 'एवामेव' इत्यादि, 'एवमेव' उक्तेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणं' पूर्वं चापरं च पूर्वापरं सह पू-
र्वापरं येन स सपूर्वापरः उक्तप्रकारस्तेन, उक्तविषयपौर्वापर्यालोचनयेति भावार्थः, 'आजीवगदिट्ठंतेणं'ति आ—सकलजगदभिव्याप्त्या
जीवानां यो दृष्टान्तः—परिच्छेदः स आजीवदृष्टान्तस्तेन सकलजीवदर्शनेनेत्यर्थः, आह च मूलटीकाकारः—"आजीवदृष्टान्तेन सक-
लजीवनिदर्शनेने"ति, चतुरशीतिजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मयाऽन्यैश्च ऋषभादिभिरिति, अत्र चतुरशी-
तिसङ्ख्योपादानमुपलक्षणं, तेनान्यान्यपि जातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि वेदितव्यानि, तथाहि—पक्षिणां द्वादश जातिकुलकोटि-
योनिप्रमुखशतसहस्राणि भुजगपरिसर्पाणां नव उरगपरिसर्पाणां दश चतुष्पदानां दश जलचराणामर्द्धत्रयोदशानि चतुरिन्द्रियाणां नव
त्रीन्द्रियाणामष्टौ द्वीन्द्रियाणां सप्त पुष्पजातीनां षोडश, एतेषां चैकत्र मीलने त्रिनवतिजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि सार्द्धानि
भवन्ति, ततश्चतुरशीतिसङ्ख्योपादानमुपलक्षणमवसेयं, न चैतद् व्याख्यानं स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं चूर्णौ—'आजीवगदिट्ठं-
तेणं'ति अशेषजीवनिदर्शनेन चउरासीजातिकुलकोडि योनिप्रमुखशतसहस्रा एतत्प्रमुखा अन्येऽपि विद्यन्ते इति ॥ कुलकोटिविचारणे
विशेषाधिकाराद्विमानान्यप्यधिकृत्य विशेषप्रश्नमाह—

अत्थि णं भंते! विमाणाइं सोत्थीयाणि सोत्थियावत्ताइं सोत्थियपभाइं सोत्थियकन्ताइं सो-

---

१ टीकाकृदभिप्रायेण अच्चियाइं अच्चियावत्ताइं इत्यादि पाठसभव

त्थियवन्नाइं सोत्थियलेसाइं सोत्थियज्झयाइं सोत्थिसिंगाराइं सोत्थिकूडाइं सोत्थिसिट्ठाइं सोत्थुत्तरवडिंसगाइं?, हंता अत्थि। ते णं भंते! विमाणा केमहालता प०? गोयमा! जावतिए णं सूरिए उदेति जावइएणं च सूरिए अत्थमति एवतिया तिण्णोवासंतराइं अत्थेगतियस्स देवस्स एगे विक्कमे सिता, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगतीए वीतीवयमाणे २ जाव एकाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासा वितीवएज्जा, अत्थेगतिया विमाणं वितीवइज्जा अत्थेगतिया विमाणं नो वीतीवएज्जा, एमहालता णं गोयमा! ते विमाणा पण्णत्ता, अत्थि णं भंते! विमाणाइं अंचीणि अच्चिरावत्ताइं तहेव जाव अच्चुत्तरवडिंसगातिं?, हंता अत्थि, ते विमाणा केमहालता पण्णत्ता?, गोयमा! एवं जहा सोत्थी(याई)णि णवरं एवतियाइं पंच उवासंतराइं अत्थेगतियस्स देवस्स एगे विक्कमे सिता सेसं तं चेव॥ अत्थि णं भंते! विमाणाइं कामाइं कामावत्ताइं जाव कामुत्तरवडिंसयाइं?, हंता अत्थि, ते णं भंते! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?, गोयमा! जहा सोत्थीणि णवरं सत्त उवासंतराइं विक्कमे सेसं तहेव॥ अत्थि णं भंते! विमाणाइं विजयाइं वेजयंताइं जयंताइं अपराजिताइं?, हंता अत्थि, ते णं भंते! विमाणा के०?, गोयमा! जाव-

१ सोत्थियाइ इत्यादि टीकाकृदभिप्रायेण पाठोऽत्र.

तिए सूरिए उदेइ एवइयाइं नव ओवासंतराइं, सेसं तं चेव, नो चेव णं ते विमाणे वीईवएज्जा एमहालया णं विमाणा पण्णत्ता, समणाउसो! ॥ (सू० ९९) तिरिक्खजोणियउद्देसओ पढमो ॥

'**अत्थि णं भंते**' इत्यादि, अस्तीति निपातो बह्वर्थे '**सन्ति**' विद्यन्ते णमिति वाक्यालङ्कारे '**विमानानि**' विशेषतः पुण्यप्राणिभिर्मन्यन्ते—तद्गतसौख्यानुभवनेनानुभूयन्ते इति विमानानि, तान्येव नामग्राहमाह—अर्चींषि—अर्चिर्नामानि, एवमर्चिरावर्त्तानि अर्चिःप्रभाणि अर्चिःकान्तानि अर्चिर्वर्णानि अर्चिर्लेश्यानि अर्चिर्ध्वजानि अर्चिःशृङ्गा(राणि) अर्चिःसृ(शि)ष्टानि अर्चिःकूटानि अर्चिरुत्तरावतंसकानि सर्वसङ्ख्यया एकादश नामानि, भगवानाह—'**हंता अत्थि**' हंतेति प्रत्यवधारणे अस्तीति निपातो बह्वर्थे सन्त्येवैतानि विमानानीति भावः । '**केमहालया ण**'मित्यादि, किंमहान्ति कियत्प्रमाणमहत्त्वानि णमिति पूर्ववत् भदन्त! तानि विमानानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! '**जाव य उएइ सूरो**' इत्यादि, जम्बूद्वीपे सर्वोत्कृष्टे दिवसे सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानः सूर्यो यावति क्षेत्रे उदेति यावति च क्षेत्रे सूर्योऽस्तमुपयाति, एतावन्ति त्रीणि अवकाशान्तराणि, उदयास्तमितप्रमितमधिकृतं क्षेत्रं त्रिगुणमित्यर्थः, अस्त्येतद्—बुद्ध्या परिभावनीयमेतद् यथैकस्य विवक्षितस्य देवस्यैको विक्रमः स्यात्, तत्र जम्बूद्वीपे सर्वोत्कृष्टे दिवसे सूर्य उदेति सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकस्य च योजनस्यैकविंशतिः षष्टिभागा एतावति क्षेत्रे, उक्तञ्च—"सीयालीससहस्सा, दोण्णि सया जोयणाण तेवट्ठी । इगवीस सट्ठिभागा कक्कडमाइंमि पेच्छ नरा ॥ १ ॥" ४७२६३$\frac{२१}{६०}$, एतावत्येव क्षेत्रे तस्मिन् सर्वोत्कृष्टे दिवसेऽस्तमुपयाति, तत एतत्क्षेत्रं द्विगुणीकृतमुदयास्तापान्तरालप्रमाणं भवति, तच्चैतावत्—चतुर्नवतिः सहस्राणि पञ्च शतानि षड्विंशत्यधिकानि योजनानामेकस्य च योजनस्य [च] द्वाचत्वारिंशत्षष्टिभागाः ९४५२६$\frac{४२}{६०}$ एतावत्त्रिगुणीकृतं यथोक्तविमानपरिमाणक-

रणाय देवस्यैको विक्रमः परिकल्प्यते, स चैवंप्रमाणः—द्वे लक्षे त्र्यशीतिः सहस्राणि पञ्च शतानि अशीत्यधिकानि योजनानाम् एकस्य च योजनस्य षष्टिभागाः षट् २८३५८०$\frac{६}{६०}$ इति ॥ **'से णं देवे'** इत्यादि, 'सः'विवक्षितो देवः **'तया'** सकलदेवजनप्रसिद्धया उत्कृष्टया त्वरितया चपलया चण्डया शीघ्रया उद्धतया जवनया छेकया दिव्यया देवगत्या, अमीषां पदानामर्थः प्राग्वद्भावनीयः, व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् जघन्यत एकाहं वा द्व्यहं वा यावदुत्कर्षतः षण्मासान् यावद् **'व्यतिव्रजेत्'** गच्छेत्, तत्रैवं गमने अ [ग्रन्थाग्रम् ४०००] स्त्येतद् यथैकं किञ्चन विमानं पूर्वोक्तानां विमानानां मध्ये **'व्यतिव्रजेत्'** अतिक्रामेत्, तस्य पारं लभेतेति भावः, तथाऽस्त्येतद् यथैककं विमानं न व्यतिव्रजेत्, न तस्य पारं लभेत, उभयत्रापि जातावेकवचनं, ततोऽयं भावार्थः—उक्तप्रमाणेनापि क्रमेण यथोक्तरूपयाऽपि च गत्या षण्मासानपि यावदधिकृतो देवो गच्छति तथापि केषाञ्चिद्विमानानां पारं लभते केषाञ्चित्पारं न लभते इति, एतावन्महान्ति तानि विमानानि प्रज्ञप्तानि हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! विमानानि स्वस्तिकानि स्वस्तिकावर्त्तानि स्वस्तिकप्रभाणि स्वस्तिककान्तानि स्वस्तिकवर्णानि स्वस्तिकलेश्यानि स्वस्तिकध्वजानि स्वस्तिकशृङ्गाराणि स्वस्तिकशिष्टानि स्वस्तिककूटानि स्वस्तिकोत्तरावतंसकानि?, **'हंता अत्थि'** इत्यादि, समस्तं प्राग्वत्, नवरमत्र **'एवइयाइं पंच ओवासंतराइं'** इति कण्ठ्यं, उदयास्तापान्तरालक्षेत्रं पञ्चगुणं क्रियत इति भावः ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! विमानानि कामानि कामावर्तानि कामप्रभाणि कामकान्तानि कामवर्णानि कामलेश्यानि कामध्वजानि कामशृङ्गाराणि कामशिष्टानि कामकूटानि कामोत्तरावतंसकानि?, **'हंता अत्थि'** इत्यादि सर्वं पूर्ववत् नवरमत्रोदयास्तापान्तरालक्षेत्रं सप्तगुणं कर्त्तव्यं, शेषं तथैव ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानि विमानानि?, **'हंता अत्थी'**त्यादि प्राग्वत्, नवरमत्र **'एवइयाइं**

नव ओवासंतराइं' इति वक्तव्यं शेषं तथैव, उक्तञ्च—"जावइ उदेइ सूरो जावइ सो अत्थमेइ अवरेणं । तियपणसत्तनवगुणं काउं पत्तेय पत्तेयं ॥ १ ॥ सीयालीस सहस्सा दो य सया जोयणाण तेवट्ठा । इगवीस सट्ठिभागा कक्खडमाइंमि पेच्छ नरा ॥ २ ॥ एयं दुगुणं काउं गुणिज्जए तिपणसत्तमाईहिं । आगयफलं च जं तं कमपरिमाणं वियाणाहि ॥ ३ ॥ चत्तारिवि सकमेहिं चंडादिगईहिं जंति छम्मासं । तहवि य न जंति पारं केसिंचि सुरा विमाणाणं ॥ ४ ॥" अस्यां तृतीयप्रतिपत्तौ तिर्यग्योन्यधिकारे प्रथमोद्देशकः ॥

उक्तः प्रथमोद्देशकः, इदानी द्वितीयस्यावसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

कतिविहा णं भंते! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया। से किं तं पुढविकाइया?, पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइया बादरपुढविकाइया य। से किं तं सुहुमपुढविकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, सेत्तं सुहुमपुढविकाइया। से किं तं बादरपुढविकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, एवं जहा पण्णवणापदे, सण्हा सत्तविधा पण्णत्ता, खरा अणेगविहा पन्नत्ता, जाव असंखेज्जा, से त्तं बादर पुढविकाइया। सेत्तं पुढविक्काइया। एवं चेव जहा पण्णवणापदे तहेव निरवसेसं भाणितव्वं जाव वणप्फतिकाइया, एवं जाव जत्थेको तत्थ सिता संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिता अणंता, सेत्तं बादरवणप्फतिकाइया, से तं वणस्सइकाइया। से किं तं तसकाइया?, २ चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया तेइंदिया च-

उरिंदिया पंचेंदिया। से किं तं बेइंदिया?, २ अणेगविधा पण्णत्ता, एवं जं चेव पण्णवणापदे तं चेव निरयसेसं भाणितव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवा, सेतं अणुत्तरोववाइया, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, से तं तसकाइया॥ (सू० १००)

'कइविहा ण'मित्यादि, कतिविधा भदन्त! संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! षड्विधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पृथिवीकायिका अप्कायिका यावत्त्रसकायिकाः। अथ के ते पृथिवीकायिकाः?, इत्यादि प्रज्ञापनागतं प्रथमं प्रज्ञापनापदं निरवशेषं वक्तव्यं यावदन्तिमं 'से तं देवा' इति पदम्॥ सम्प्रति विशेषाभिधानाय भूयोऽपि पृथिवीकायविषयं सूत्रमाह—

कतिविधा णं भंते! पुढवी पण्णत्ता?, गोयमा! छव्विहा पुढवी पण्णत्ता, तंजहा—सण्हापुढवी सुद्धपुढवी वालुयापुढवी मणोसिलापु० सक्करापु० खरपुढवी॥ सण्हापुढवीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्कोसेणं एगं वाससहस्सं। सुद्धपुढवीए पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० बारस वाससहस्साइं। वालुयापुढवीपुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० चोद्दस वाससहस्साइं। मणोसिलापुढवीणं पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० सोलस वाससहस्साइं। सक्करापुढवीए पुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० अट्ठारस वाससहस्साइं। खरपुढविपुच्छा, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० बावीस वाससहस्साइं॥ नेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं

उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती, एयं सव्वं भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धदेवत्ति ॥ जीवे णं भंते! जीवेत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! सव्वद्धं, पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! सव्वद्धं, एवं जाव तसकाइए ॥ (सू० १०१)। पडुप्पन्नपुढविकाइया णं भंते! केवतिकालस्स णिल्लेवा सिता?, गोयमा! जहण्णपदे असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं उक्कोसपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं, जहन्नपदातो उक्कोसपए असंखेज्जगुणा, एवं जाव पडुप्पन्नवाउक्काइया ॥ पडुप्पन्नवणप्फइकाइयाणं भंते! केवतिकालस्स निल्लेवा सिता?, गोयमा! पडुप्पन्नवण० जहण्णपदे अपदा उक्कोसपदे अपदा, पडुप्पन्नवणप्फतिकाइयाणं णत्थि निल्लेवणा ॥ पडुप्पन्नतसकाइयाणं पुच्छा, जहण्णपदे सागरोवमसतपुहुत्तस्स उक्कोसपदे सागरोवमसतपुहुत्तस्स, जहण्णपदा उक्कोसपदे विसेसाहिया ॥ (सू० १०२)

'कइविहा ण'मित्यादि, कतिविधा णमिति पूर्ववत्, भदन्त! पृथिवी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—'श्लक्ष्णपृथिवी' मृद्वी चूर्णितलोष्टकल्पा, 'शुद्धपृथिवी' पर्वतादिमध्ये, मनःशिला—लोकप्रतीता, वालुका—सिकतारूपा, शर्करा—मुरुण्डपृथिवी, 'खरापृथिवी' पाषाणादिरूपा ॥ अधुना एतासामेव स्थितिनिरूपणार्थमाह—'सण्हपुढवीकाइयाण'मित्यादि, श्लक्ष्णपृथिवीकायिकानां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत एकं वर्षसहस्रं । एवमनेनाभिलापेन शेषाणामपि पृथिवीनामनया गाथया उत्कृष्टमनुगन्तव्यं, तामेव गाथामाह—'सण्हा य'इत्यादि, (सण्हा य सुद्धवालुअ मणोसिला

सक्करा य खरपुढवी । इगबारचोद्दससोलढारबावीससमसहस्सा ॥ १ ॥) श्लक्ष्णपृथिव्या एकं वर्षसहस्रमुत्कर्षतः स्थितिः, शुद्धपृथिव्या द्वादश वर्षसहस्राणि, वालुकापृथिव्याश्चतुर्दश सहस्राणि, मनःशिलापृथिव्याः षोडश वर्षसहस्राणि, शर्करापृथिव्या अष्टादश वर्षसहस्राणि, खरपृथिव्या द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, सर्वासामपि चामीषां पृथिवीनां जघन्येन स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं वक्तव्या ॥ सम्प्रति स्थितिनिरूपणाप्रस्तावान्नैरयिकादीनां चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण स्थितिं निरूपयितुकाम आह—'नेरइयाणं भंते!' इत्यादि, नैरयिकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, इत्येवं प्रज्ञापनागतस्थितिपदानुसारेण चतुर्विंशतिदण्डकक्रमेण तावद्वक्तव्यं यावत्सर्वार्थसिद्धविमानदेवानां स्थितिनिरूपणा, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते ॥ तदेवं भवस्थितिनिरूपणा कृता, सम्प्रति कायस्थितिनिरूपणार्थमाह—'जीवे णं भंते!' इत्यादि, अथ कायस्थितिरिति कः शब्दार्थः?, उच्यते, कायो नाम जीवस्य विवक्षितः सामान्यरूपो विशेषरूपो वा पर्यायविशेषस्तस्मिन् स्थितिः कायस्थितिः, किमुक्तं भवति?—यस्य वस्तुनो येन पर्यायेण—जीवत्वलक्षणेन पृथिवीकायादित्वलक्षणेन वाऽऽदिश्यते व्यवच्छेदेन यद्भवनं सा कायस्थितिः, तत्र जीव इति "जीव प्राणधारणे" जीवति—प्राणान् धारयतीति जीवः, प्राणाश्च द्विधा—द्रव्यप्राणा भावप्राणाश्च, तत्र द्रव्यप्राणा आयुःप्रभृतयः, उक्तञ्च—"पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः । प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥" भावप्राणा ज्ञानादयः यैर्मुक्तोऽपि जीवतीति व्यपदिश्यते, उक्तञ्च—"ज्ञानादयस्तु भावप्राणा मुक्तोऽपि जीवति स तैर्ही"ति, इह च विशेषानुपादानादुभयेषामपि ग्रहणं णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! जीव इति—जीवनपर्यायविशिष्टः कालतः—कालमधिकृत्य कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—सर्वाद्धां, संसार्यवस्थायां द्रव्यभावप्राणानधिकृत्य मुक्त्यवस्थायां भावप्राणानधिकृत्य सर्वत्रापि जीवनस्य विद्यमानत्वात्, अथवा जीव इति न एकः

प्रतिनियतो जीवो विवक्ष्यते किन्तु जीवसामान्यं, ततः प्राणधारणलक्षणजीवनाभ्युपगमेऽपि न कश्चिद्दोषः, तथाहि—'जीवे णं भंते!' इत्यादि, जीवो णमिति पूर्ववद् भदन्त! जीव इति—जीवन्निति प्राणान् धारयन्नित्यर्थः कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! सर्वाद्धां, जीवसामान्यस्यानाद्यनन्तत्वात्, न चैतद् व्याख्यानं स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत उक्तं मूलटीकायां—"जीवे णं भंते इत्यादि, एषा ओघकायस्थितिः सामान्यजीवापेक्षिणीति सर्वाद्धया निर्वचनम्"। एवं च पृथिवीकायादिष्वप्यदोषः, एतत्सामान्यस्य सर्वदैव भावादिति। एवं गतीन्द्रियकायादिद्वारैर्यथा प्रज्ञापनायामष्टादशे कायस्थितिनामके पदे कायस्थितिरुक्ता तथाऽत्र सर्वं निरवशेषं वक्तव्यं यथा उपरि तत्पदगतं न किमपि तिष्ठति, गतीन्द्रियकायादिद्वारसङ्ग्राहके चेमे गाथे—"गइ इंदिए य काए जोगे वेए कसाय लेसा य। सम्मत्तनाणदंसणसंजयउवओगआहारे ॥ १ ॥ भासगपरित्तपज्जत्तसुहुम सण्णी भवऽत्थि चरिमे य। एएसिं तु पयाणं कायठिई होइ नायव्वा ॥ २ ॥" सूत्रपाठस्तु लेशतो दर्श्यते—"नेरइया णं भंते! णेरइयत्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। तिरिक्खजोणिए णं भंते! तिरिक्खजोणियत्ति कालतो केवच्चिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणमणंतं कालं अणंता उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अणंता लोगा असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो" इत्यादि ॥ सम्प्रति सामान्यपृथिवीकायादिगतकायस्थितिनिरूपणार्थमाह—'पुढविक्काइए णं भंते!' इत्यादि, पृथिवीकायिको भदन्त!, सामान्यरूपोऽत एव जातावेकवचनं न व्यक्त्येकत्वे, पृथिवीकाय इति कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! सर्वाद्धां, पृथिवीकायसामान्यस्य सर्वदैव भावात्। एवमप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायसूत्राण्यपि भावनीयानि ॥ सम्प्रति विवक्षिते काले जघन्यपदे उत्कृष्टपदे वा कियन्तोऽभिनवा उत्पद्यमानाः पृथिवीकायिकादयः? इत्येतन्निरूपणार्थमाह

—'पडुप्पन्नपुढविक्काइया णं भंते! केवइकालस्स निल्लेवा सिया' इत्यादि, प्रत्युत्पन्नपृथिवीकायिकाः—तत्कालमुत्पद्यमानाः पृथिवीकायिका भदन्त! 'केवइकालस्स' त्ति तृतीयार्थे षष्ठी कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, प्रतिसमयमेकैकापहारेणापह्रियमाणाः कियता कालेन सर्वे एव निष्ठामुपयान्तीति भावः, भगवानाह—गौतम! जघन्यपदे यदा सर्वस्तोका भवन्ति तदेत्यर्थः, असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्प्पिणीभिरुत्कृष्टपदेऽपि यदा सर्ववहवो भवन्ति तदाऽपीति भावः असङ्ख्येयाभिरुत्सार्पिण्यवसार्प्पिणीभिर्नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदिनोऽसङ्ख्येयगुणाः। एवमप्तेजोवायुसूत्राण्यपि भावनीयानि॥ वनस्पतिसूत्रमाह—'पडुप्पण्णे'त्यादि, प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिका भदन्त! कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, भगवानाह—गौतम! प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिका जघन्यपदेऽपदा—इयता कालेनापह्रियन्ते इत्येतत्पदविरहिता अनन्तानन्तत्वात्, उत्कृष्टपदेऽप्यपदा, अनन्तानन्ततया निर्लेपनाऽसम्भवात्, तथा चाह—'पडुप्पन्नवणस्सइकाइयाणं नत्थि निल्लेवणा' इति सुगमं, नवरमनन्तानन्तत्वादिति हेतुपदं स्वयमभ्यूह्यम्॥ 'पडुप्पण्णतसकाइया ण'मित्यादि, प्रत्युत्पन्नत्रसकायिका भदन्त! कियता कालेन निर्लेपाः स्युः?, भगवानाह—गौतम! जघन्यपदे सागरोपमशतपृथक्त्वस्य—तृतीयार्थे षष्ठी प्राकृतत्वात् सागरोपमशतपृथक्त्वेन, उत्कृष्टपदेऽपि सागरोपमशतपृथक्त्वेन नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसेयं। इदं च सर्वमुच्यमानं विशुद्धलेश्यसत्त्वमभि प्राप्तं यथाऽवस्थिततया सम्यगवभासते नान्यथेत्यविशुद्धविशुद्धलेश्यविषयं किञ्चिद्विवक्षुराह—

अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहएणं अप्पाणएणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अण- ॥ १४१ ॥

गारे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहयासमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहतासमोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, नो तिणट्ठे समट्ठे। विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे असमोहतेणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, हंता जाणति पासति जहा अविसुद्धलेस्सेणं आलावगा एवं विसुद्धलेस्सेणवि छ आलावगा भाणितव्वा, जाव विसुद्धलेस्से णं भंते! अणगारे समोहतासमोहतेणं अप्पाणेणं विसुद्धलेस्सं देवं देविं अणगारं जाणति पासति?, हंता जाणति पासति ॥ (सू०१०३)

'अविसुद्धलेस्से ण'मित्यादि, 'अविसुद्धलेश्यः' कृष्णादिलेश्यो भदन्त! 'अनगारः' न विद्यते अगारं—गृहं यस्यासौ अनगारः—साधुः 'असमवहतः' वेदनादिसमुद्घातरहितः 'समवहतः' वेदनादिसमुद्घाते गतः। एवमिमे द्वे सूत्रे असमवहतसमवहताभ्यामात्मभ्यामविशुद्धलेश्यपरविषये प्रतिपादिते एवं समवहतासमवहताभ्यामात्मभ्यां विशुद्धलेश्यपरविषये द्वे सूत्रे भावयितव्ये। तथाऽन्ये अविसुद्धलेश्यविशुद्धलेश्यपरविषये द्वे सूत्रे समवहतासमवहतेनात्मनेति पदेन, समवहतासमवहतो नाम वेदनादिसमुद्घातक्रियाविष्टो न तु परिपूर्णं समवहतो नाप्यसमवहतः सर्वथा। तदेवमविशुद्धलेश्ये ज्ञातरि साधौ षट् सूत्राणि प्रवृत्तानि, एवमेव विशुद्धलेश्येऽपि

साधौ ज्ञातरि षट् सूत्राणि भावनीयानि, नवरं सर्वत्र जानाति पश्यतीति वक्तव्यं, विशुद्धलेश्याकतया यथाऽवस्थितज्ञानदर्शनभावात्, आह च मूलटीकाकारः—"शोभनमशोभनं वा वस्तु यथावद्विशुद्धलेश्यो जानाती"ति, समुद्घातोऽपि च तस्याप्रतिबन्धक एव, न च तस्य समुद्घातोऽत्यन्ताशोभनो भवति, उक्तं च मूलटीकायाम्—"समुद्घातोऽपि तस्याप्रतिबन्धक एवे"त्यादीति ॥ तदेवं यतोऽविशुद्धलेश्यो न जानाति विशुद्धलेश्यो जानाति ततः सम्यग्मिथ्याक्रिययोरेकदा निषेधमभिधित्सुराह—

अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति एवं भासेन्ति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेति, तंजहा—सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्तकिरियं च, जं समयं संमत्तकिरियं पकरेति तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति, जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ तं समयं संमत्तकिरियं पकरेइ, समत्तकिरियापकरणताए मिच्छत्तकिरियं पकरेति मिच्छत्तकिरियापकरणताए संमत्तकिरियं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरितातो पकरेति, तंजहा—संमत्तकिरियं च मिच्छत्तकिरियं च, से कहमेतं भंते! एवं?, गोयमा! जन्नं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेंति, तहेव जाव सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्तकिरियं च, जे ते एवमाहंसु तं णं मिच्छा, अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेति, तंजहा—सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा, जं समयं संमत्तकिरियं

पकरेति णो तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति, तं चेव जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेति नो तं समयं संमत्तकिरियं पकरेति, संमत्तकिरियापकरणयाए नो मिच्छत्तकिरियं पकरेति मिच्छत्तकिरियापकरणयाए णो संमत्तकिरियं पकरेति, एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेति, तंजहा—सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा ॥ (सू० १०४)। से तं तिरिक्खजोणियउद्देसओ बीओ समत्तो ॥

'**अन्नउत्थिया णं भंते!**' इत्यादि, '**अन्ययूथिकाः**' अन्यतीर्थिका भदन्त! चरकादय एवमाचक्षते सामान्येन '**एवं भाषन्ते**' स्वशिष्यान् श्रवणं प्रत्यभिमुखानवबुध्य विस्तरेण व्यक्तं कथयन्ति, एवं '**प्रज्ञापयन्ति**' प्रकर्षेण ज्ञापयन्ति यथा स्वात्मनि व्यवस्थितं ज्ञानं तथा परेष्वप्यापादयन्तीति, एवं '**प्ररूपयन्ति**' तत्त्वचिन्तायामसंदिग्धमेतदिति निरूपयन्ति, इह खल्वेको जीव एकेन समयेन युगपद्वे क्रिये प्रकरोति, तद्यथा—'**सम्यक्त्वक्रियां च**' सुन्दराध्यवसायात्मिकां '**मिथ्यात्वक्रिया च**' असुन्दराध्यवसायात्मिका, '**जं समय**'-मिति प्राकृतत्वात्सप्तम्यर्थे द्वितीया यस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति '**तं समय**'मिति तस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति, यस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति तस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, अन्योऽन्यसंवलितोभयनियमप्रदर्शनार्थमाह—सम्यक्त्वक्रियाप्रकरणेन मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति मिथ्यात्वक्रियाप्रकरणेन सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, तदुभयकरणस्वभावस्य तत्तत्क्रियाकरणात्सर्वात्मना प्रवृत्तेः, अन्यथा क्रियाऽयोगादिति, '**एवं खल्वि**'त्यादि निगमनं प्रतीतार्थं, '**से कहमेयं भंते!**' इत्यादि, तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्?, तदेवं गौतमेन प्रश्ने कृते सति भगवानाह—गौतम! यत् णमिति वाक्यालङ्कारे '**अन्ययूथिकाः**' अन्यतीर्थिका एवमाचक्षते

इत्यादि प्राग्वत् यावत्तत् मिथ्या ते एवमाख्यातवन्तः, अहं पुनर्गौतम! एवमाचक्षे एवं भाषे एवं प्रज्ञापयामि एवं प्ररूपयामि, इह खलु एको जीव एकेन समयेनैकां क्रियां प्रकरोति, तद्यथा—सम्यक्त्वक्रियां वा मिथ्यात्वक्रियां वा, अत एव यस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति न तस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति यस्मिन् समये मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति न तस्मिन् समये सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, परस्परवैविक्त्यनियमप्रदर्शनार्थमाह—सम्यक्त्वक्रियाप्रकरणेन न मिथ्यात्वक्रियां प्रकरोति मिथ्यात्वक्रियाप्रकरणेन न सम्यक्त्वक्रियां प्रकरोति, सम्यक्त्वक्रियामिथ्यात्वक्रिययोः परस्परपरिहारावस्थानात्मकतया जीवस्य तदुभयकरणस्वभावत्वायोगात्, अन्यथा सर्वथा मोक्षाभावप्रसक्तेः, कदाचिदपि मिथ्यात्वानिवर्त्तनात् ॥ अस्यां तृतीयप्रतिपत्तौ तिर्यग्योन्यधिकारे द्वितीयोदेशकः समाप्तः ॥

व्याख्यातस्तिर्यग्योनिजाधिकारः, सम्प्रति मनुष्याधिकारव्याख्यावसरः, तत्रेदमादिसूत्रम्—

से किं तं मणुस्सा?, मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य ॥ (सू० १०५) । से किं तं संमुच्छिममणुस्सा?, २ एगागारा पण्णत्ता ॥ कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति?, गोयमा! अंतोमणुस्सखेत्ते जहा पण्णवणाए जाव सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा ॥ (सू० १०६)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते मनुष्याः?, सूरिराह—मनुष्या द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संमूर्च्छिममनुष्याश्च गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याश्च, चशब्दौ द्वयानामपि मनुष्यत्वजातितुल्यतासूचकौ ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते संमूर्च्छिममनुष्याः?, सूरिराह—संमूर्च्छिममनुष्याः 'एकाकाराः' एकस्वरूपाः प्रज्ञप्ताः । अथ क तेषां सम्भवः? इति जिज्ञासिपुर्गौतमः पृच्छति—**'कहि णं भंते!'**

इत्यादि, क्व भदन्त! संमूर्च्छिममनुष्याः संमूर्च्छन्ति?, भगवानाह—अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे इत्यादि सूत्रं प्राग्वद्भावनीयं यावत् अंतोमुहुत्तद्धा-उया चेव कालं पकरेंति, उपसंहारमाह—'सेत्तं संमुच्छिममणुस्सा' ॥ सम्प्रति गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यप्रतिपादनार्थमाह—

से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा?, २ तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा ॥ (सू० १०७) से किं तं अंतरदीवगा?, २ अट्ठावीसतिविधा पण्णत्ता, तंजहा—एगुरूया आभासिता वेसाणिया णांगोली हयकण्णगा० आयंसमुहा० आसमुहा० आसकण्णा० उक्कामुहा० घणदंता जाव सुद्धदंता ॥ (सू० १०८)

'से किं त'मित्यादि, अथ के ते गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याः?, सूरिराह—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कर्मभूमका अकर्म्मभूमका आन्तरद्वीपकाः, तत्र 'अस्त्यनानुपूर्व्यपी'ति न्यायप्रदर्शनार्थमान्तरद्वीपकप्रतिपादनार्थमाह—'से किं त'मित्यादि, अथ के ते आन्तरद्वीपकाः?, लवणसमुद्रमध्ये अन्तरे अन्तरे द्वीपा अन्तरद्वीपा अन्तरद्वीपेषु भवा आन्तरद्वीपकाः, 'राष्ट्रेभ्यः' इति वुञ्, सूरिराह—आन्तरद्वीपका अष्टाविंशतिविधाः प्रज्ञप्ताः, तानेव तद्यथेत्यादिना नामग्राहमुपदर्शयति—एकोरुकाः १ आभाषिकाः २ वैषाणिकाः ३ नाङ्गोलिकाः ४ हयकर्णाः ५ गजकर्णाः ६ गोकर्णाः ७ शष्कुलीकर्णाः ८ आदर्शमुखाः ९ मेण्ढमुखाः १० अयोमुखाः ११ गोमुखाः १२ अश्वमुखाः १३ हस्तिमुखाः १४ सिंहमुखाः १५ व्याघ्रमुखाः १६ अश्वकर्णाः १७ सिंहकर्णाः १८ अकर्णाः १९ कर्णप्रावरणाः २० उल्कामुखाः २१ मेघमुखाः २२ विद्युद्दन्ताः २३ विद्युज्जिह्वाः २४ घनदन्ताः २५ लष्टदन्ताः २६ गूढदन्ताः २७

शुद्धदन्ताः २८, इह एकोरुकादिनामानो द्वीपाः परं 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इति न्यायान्मनुष्या अप्येकोरुकादय उक्ता यथा पञ्चालदेशनिवासिनः पुरुषाः पञ्चाला इति ॥ तथा चैकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपं पिपृच्छिषुराह—

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं एगोरूमणुस्साणं एगोरूदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते तिन्नि जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं णव एकूणपण्णजोयणसए किंचि विसेसेण परिक्खेवेणं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं च वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। सा णं पउमवरवेदिया अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं एगूरुयदीवं समंता परिक्खेवेणं पण्णत्ता। तीसे णं पउमवरवेदियाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया निम्मा एवं वेतियावण्णओ जहा रायपसेणईए तहा भाणियव्वो ॥ (सू०१०९)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानां इह एकोरुकादयो मनुष्याः शिखरिण्यपि पर्वते विद्यन्ते ते च मेरोरुत्तरदिग्वर्त्तिन इति तद्व्यवच्छेदार्थं दाक्षिणात्यानामित्युक्तं, एकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरपर्वतस्यान्यत्रासम्भवात् अस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे इति प्रतिपत्तव्यं, 'मन्दरपर्वतस्य' मेरोर्दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवद्वर्षधरपर्वतस्य, क्षुल्लग्रहणं महाहिमवद्वर्षधरपर्वतस्य व्यवच्छेदार्थं, पूर्वस्मात् पूर्वरूपाच्चरमान्ताद् उत्तरपूर्वेण—उत्तरपूर्वस्यां दिशि लवण-

समुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानामेकोरुकमनुष्याणामेकोरुकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, स च त्रीणि योजनशतान्यायामविष्कम्भेण समाहारो द्वन्द्वः आयामेन विष्कम्भेन चेत्यर्थः, नव 'एकोनपञ्चाशानि' एकोनपञ्चाशदधिकानि योजनशतानि ९४९ परिक्षेपेण, परिमाणगणितभावना—"विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ" इति करणवशात्स्वयं कर्त्तव्या सुगमत्वात् ॥

सा णं पउमवरवेतिया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता । से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं वेतियासमेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे, एवं जहा रायपसेणइयवणसंडवण्णओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तणाण य वण्णगंधफासो सद्दो तणाणं वावीओ उप्पायपव्वया पुढविसिलापट्टगा य भाणितव्वा जाव तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति ॥ (सू० ११०)

'से ण'मित्यादि, स एकोरुकनामा द्वीप एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन परिक्षिप्तः, तत्र पद्मवरवेदिकावर्णको वनषण्डवर्णकश्च वक्ष्यमाणजम्बूद्वीपजगत्युपरिपद्मवरवेदिकावनपण्डवर्णकवद् भावनीयः, स च तावद् यावच्चरमं 'आसयंती'ति पदम् ॥

एगोरूयदीवस्स णं दीवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेति वा, एवं सयणिज्जे भाणितव्वे जाव पुढविसिलापट्टगंसि तत्थ णं बहवे एगुरूयदीवया

मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति जाव विहरंति, एगुरूयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे उद्दालका कोद्दालका कतमाला णयमाला णट्टमाला सिंगमाला संखमाला दंतमाला सेलमालगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ! कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव बीयमंतो पत्तेहि य पुप्फेहि य अच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अतीव २ उवसोभेमाणा उवसोहेमाणा चिट्ठंति, एक्कोरूयदीवे णं दीवे रुक्खा बहवे हेरुयालवणा भेरुयालवणा मेरुयालवणा सेरुयालवणा सालवणा सरलवणा सत्तवण्णवणा पूतफलिवणा खज्जूरिवणा णालिएरिवणा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति, एगुरूदीवे णं तत्थ २ बहवे तिलया लवया नग्गोधा जाव रायरुक्खा णंदिरुक्खा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति, एगुरूयदीवे णं तत्थ बहूओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमिताओ एवं लयावण्णओ जहा उववाइए जाव पडिरूवाओ, एकोरूयदीवे णं तत्थ २ बहवे सेरियागुम्मा जाव महाजातिगुम्मा ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमंति विधूयग्गसाहा जेण वायविधूयग्गसाला एगुरूयदीवस्स बहूसमरमणिज्जभूमिभागं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति, एकोरूयदीवे णं तत्थ २ बहूओ वणरातीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणरातीतो किण्हातो किण्होभासाओ जाव रम्माओ महामेहणिगुरुंबभूताओ जाव महतीं गंधद्धणिं मुयंतीओ पासादीताओ ४। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे मत्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणा-

उसो! जहा से चंदप्पभमणिसिलागवरसीधुपवरवारुणिसुजातफलपत्तपुप्फचोयणिज्जा संसारब-हुदव्वजुत्तसंभारकालसंधयासवा महुमेरगरिट्ठाभदुद्धजातीपसन्नमेल्लगसताउ खज्जूरमुद्दियासार-काविसायणसुपक्कखोयरसवरसुरावण्णरसगंधफरिसजुत्तबलवीरियपरिणामा मज्जविहित्थबहुप्प-गारा तदेवं ते मत्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेदा फलेहिं पुण्णा वीसंदंति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति १। एक्कोरुए दीवे तत्थ २ बहवो भिंगंगया णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से बारगघडकरगकलसकक्करि-पायंकंचणिउदंकवद्धणिसुपविट्ठरपारीचसकभिंगारकरोडिसरगथरगपत्तीथालणत्थगववलियअवप-दगवारकविचित्तवट्टकमणिवट्टकसुत्तिचारुपिणयाकंचणमणिरयणभत्तिविचित्ता भायणविधीए ब-हुप्पगारा तहेव ते भिंगंगयावि दुमगणा अणेगबहुगविविहवीससाए परिणताए भाजणविधीए उववेया फलेहिं पुन्नाविव विसट्टंति कुसविकुस० जाव चिट्ठंति २। एगोरुगदीवे णं दीवे तत्थ २ बहवे तुडियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से आलिंगमुयंगपणवपडहदद्दरग-करडिडिंडिमभंभाहोरंभकण्णियारखरमुहिमुगुंदसंखियपरिलीवव्वगपरिवाइणिवंसावेणुवीणासु-घोसविवंचिमहतिकच्छभिरगसगातलतालकंसतालसुसंपउत्ता आतोज्जविधीणिउणगंधव्वसमय-कुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणसुद्धा तहेव ते तुडियंगयावि दुमगणा अणेगबहुविविधवीससापरि-

णामाए ततविततघणसुसिराए चउव्विहाए आतोज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टन्ति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ३। एगोरुयदी० तत्थ २ बहवे दीवसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से संझाविरागसमए नवणिहिपतिणो दीविया चक्कवालविंदे पभूयवट्टिपलित्ताणेहिं धणिउज्जालियतिमिरमद्दए कणगणिगरकुसुमितपालियातयवणप्पगासो कंचणमणिरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहिं दीवियाहिं सहसा पज्जालिऊसवियणिद्धतेयदिप्पंतविमलगहगणसमप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरिउल्लोयचिल्लियाहिं जावुज्जलपहसियाभिरामाहिं सोभेमाणा तहेव ते दीवसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणामाए उज्जोयविधीए उववेदा फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ४। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे जोतिसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से अचिरुग्गयसरयसूरमंडलपडंतउक्कासहस्सदिप्पंतविज्जुज्जालहुयवहनिद्धूमजलियनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जकिंसुयासोयजावासुयणकुसुमविमउलियपुंजमणिरयणकिरणजच्चहिंगुलुयणिगररूवाइरेगरूवा तहेव ते जोतिसिहावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए उज्जोयविहीए उववेदा सुहलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा कूडाय इव ठाणठिया अन्नमन्नसमोगाढाहिं लेस्साहिं साए पभाए सपदेसे सव्वओ समंता ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंति कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति

५। एगुरुयदीवे तत्थ २ बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले भासंतमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए विरल्लि-विचित्तमल्लसिरिदाममल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइमेण मल्लेण छेयसिप्पियं विभारतिएण सव्वतो चेव समणुबद्धे पविरललवंतविप्पइट्ठेहिं पंचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोभ-माणेहिं सोभमाणे वणमालतग्गए चेव दिप्पमाणे तहेव ते चित्तंगयावि दुमगणा अणेगबहुवि-विहवीससापरिणयाए मल्लविहीए उववेया कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ६। एगुरूयदीवे तत्थ २ बहवे चित्तरसा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से सुगंधवरकलमसालिवि-सिट्ठणिरुवहतदुद्धरद्धे सारयघयगुडखंडमहुमेलिए अतिरसे परमण्णे होज्ज उत्तमवण्णगंधमंते रण्णो जहा वा चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं सूतपुरिसेहिं सज्जिएहिं वाउकप्पसेअसित्ते इव ओ-दणे कलमसालिणिज्जत्तिएवि एक्के सव्वप्फमिउवसयसगसित्थे अणेगसालणगसंजुत्ते अहवा पडिपुण्णदव्वुवक्खडेसु सक्कए वण्णगंधरसफरिसजुत्तबलविरियपरिणामे इंदियबलपुट्ठिवद्धणे खु-प्पिवासमहणे पहाणे गुलकटियखंडमच्छंडियउवणीए पमोयगे सण्हसमियगब्भे हवेज्ज परमइट्ठंग-संजुत्ते तहेव ते चित्तरसावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए भोजणविहीए उववेदा कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति ७। एगुरूए दीवे णं तत्थ २ बहवे मणियंगा नाम दुमगणा प-

पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से हारद्धहारवट्टणगमउडकुंडलवासुत्तगहेमजालमणिजालकणगजालगमुत्तगउचिइयकडगाखुडियएकावलिकंठसुत्तमंगरिमउरत्थगेवेज्जसोणिसुत्तगचूलामणिकणगतिलगफुल्लसिद्धत्थयकण्णवालिससिसूरउसभचक्कगतलभंगतुडियहत्थिमालगवलक्खदीणारमालिता चंदसूरमालिता हरिसयकेयूरवलयपालंबअंगुलेज्जगकंचीमेहलाकलावपयरगपायजालघंटियखिंखिणिरयणोरुजालत्थिगियवरणेउरचलणमालिया कणगणिगरमालिया कंचणमणिरयणभत्तिचित्ता भूसणविधी बहुप्पगारा तहेव ते मणियंगावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणताए भूसणविहीए उववेया कुसवि० जाव चिट्ठंति ८। एगुरूयए दीवे तत्थ २ बहवे गेहागारा नाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो!, जहा से पागारट्टालगचरियदारगोपुरपासायाकासतलमंडवएगसालविसालगतिसालगचउरंसचउसालगब्भघरमोहणघरवलभिघरचित्तसालमालयभत्तिघरवट्टतंसचतुरंसणंदियावत्तसंठियायतपंडुरतलमुंडमालहम्मियं अहव णं धवलहरअद्धमागहविब्भमसेलद्धसेलसंठियकूडागारड्ढसुविहिकोट्ठगअणेगघरसरणलेणआवणविडंगजालचंदणिज्जूहअपवरकदोवालिचंदसालियरूवविभत्तिकलिता भवणविही बहुविकप्पा तहेव ते गेहागाराविदुमगणा अणेगबहुविविधवीससापरिणयाए सुहारुहणे सुहोत्ताराए सुहनिक्खमणप्पवेसाए दद्दरसोपाणपंतिकलिताए पइरिक्काए सुहविहाराए मणोऽणुकूलाए भवणविहीए उववेया कुसवि० जाव

चिट्ठंति ९। एगोरुयदीवे तत्थ २ बहवे अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से अणेगसो मंतणुतं कंबलदुगुल्लकोसेज्जकालमिगपट्टचीणंसुयबरणातवारवणिगयतुआभरणचित्तसहिणगकल्लाणगभिंगिणीलकज्जलबहुवण्णरत्तपीतसुक्किलमक्खयमिगलोमहेमप्फरुण्णगअवसरत्तगसिंधुओसभदामिलवंगकलिंगनेलिणतंतुमयभत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पकारा हवेज्ज वरपट्टणुग्गता वण्णरागकलिता तहेव ते अणियणावि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससापरिणताए वत्थविधीए उववेया कुसविकुसवि० जाव चिट्ठंति १०। एगोरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ते णं मणुया अणुवमतरसोमचारुरूवा भोगुत्तमगयलक्खणा भोगसस्सिरीया सुजायसव्वंगसुंदरंगा सुपतिट्ठियकुम्मचारुचलणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला नगनगरसागरमगरचक्कंकवरंकलक्खणंकियचलणा अणुपुव्वसुसाहतंगुलीया उण्णयतणुतंबणिद्धणखा संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा एणीकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गणिमग्गगूढजाणू गतससणसुजातसण्णिभोरू वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासितगती सुजातवरतुरगगुज्झदेसा आइण्णहतोव णिरुवलेवा पमुइयवरतुरियसीहअतिरेगवट्टियकडी साहयसोणिंदमुसलदप्पणणिगरितवरकणगच्छक(रु)सरिसवरवइरपलितमज्झा उज्जुयसमसहितसुजातजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुकुमालमउयरमणीज्जरोमराती गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुरर-

विकिरणतरुणबोधितअकोसायंतपउमगंभीरवियडणाभी झसविहगसुजातपीणकुच्छी झसोदरा सुइकरणा पम्हवियडणाभा सण्णयपासा संगतपासा सुंदरपासा सुजातपासा मितमाइयपीणरतियपासा अकरुंडुयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी पसत्थवत्तीसलक्खणधरा कणगसिलातलुज्जलपसत्थसमयलोवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छी सिरिवच्छंकियवच्छा पुरवरफलिहवट्टियभुया भुयगीसरविपुलभोगआयाणफलिहउच्छूढदीहबाहू जूयसन्निभपीणरतियपीवरपउट्ठसंठियसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसुनिगूढपव्वसंधी रत्ततलोवइतमउयमंसलपसत्थलक्खणसुजायअच्छिद्दजालपाणी पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगुलीया तंबतलिणसुचिरुइरणिद्धणक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा चक्कपाणिलेहा दिसासोअत्थियपाणिलेहा चंदसूरसंखचक्कदिसासोअत्थियपाणिलेहा अणेगवरलक्खणुत्तमपसत्थसुचिरतियपाणिलेहा वरमहिसवराहसीहसद्दूलउसभणागवरपडिपुन्नविउलउन्नतमइंदखंधा चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा अवट्ठितसुविभत्तसुजातचित्तमंसूमंसलसंठियपसत्थसद्दूलविपुलहणुयाओ तवितासिलप्पवालबिंबफलसन्निभाहरोट्ठा पंडुरससिसगलविमलनिम्मलसंखगोखीरफेणदगरयमुणालिया धवलदंतसेढी अखंडदंता अफुडियदंता अविरलदंता सुजातदंता एगदंतसेढिव्व अणेगदंता हुतवहनिद्धंतधोततत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा गरुलाययउज्जुतुंगणासा अवदालियपोंडरीयणयणा कोकासितध-

वलपत्तलच्छा आणामियचावरुइलकिण्हपूराइयसंठियसंगतआयतसुजाततणुकसिणनिद्धभुमया अल्लीणप्पमाणजुत्तसवणा सुस्सवणा पीणमंसलकवोलदेसभागा अचिरुग्गयबालचंदसंठियपसत्थविच्छिन्नसमणिडाला उडुवतिपडिपुण्णसोमवदणा छत्तागारुत्तमंगदेसा घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियसिस्से दाडिमपुप्फपगासतवणिज्जसरिसनिम्मलसुजायकेसंतकेसभूमी सामलिबोंडघणणिचियछोडियमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणसुगंधसुंदरभुयमोयगभिंगिणीलकज्जलपहट्ठभमरगणणिद्धणिकुरुंबनिचियकुंचियचियपदाहिणावत्तमुद्धसिरया लक्खणवंजणगुणोववेया सुजायसुविभत्तसुरूवगा पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, ते णं मणुया हंसस्सरा कोंचस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसा छायाउज्जोतियंगमंगा वज्जरिसभनारायसंघयणा समचउरंससंठाणसंठिया सिणिद्धछवी णिरायंका उत्तमपसत्थअइसेसनिरुवमतणू जल्लमलकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरा निरुवमलेवा अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोतपरिणामा सउणिव्व पोसपिट्ठंतरोरुपरिणता विग्गहियउन्नयकुच्छी पउमुप्पलसरिसगंधणिस्सासपुरभिवदणा अट्ठधणुसयं ऊसिया, तेसिं मणुयाणं चउसट्ठि पिट्ठिकरंडगा पण्णत्ता समणाउसो!, ते णं मणुया पगतिभद्दगा पगतिविणीतगा पगतिउवसंता पगतिपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीता अप्पिच्छा असंनिहिसं-

घया अचंडा विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छियकामगामिणो य ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। तेसि णं भंते! मणुयाणं केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति?, गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति, एगोरुयमणुईणं भंते! केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अच्चंतविसप्पमाणपउमसूमालकुम्मसंठितविसिट्ठचलणाओ उज्जुमिओ पीवरनिरंतरपुट्ठसाहितंगुलीता उण्णयरतियनलिणंव सुइणिद्धणखा रोमरहियवट्टलट्ठसंठियअजहण्णपसत्थलक्खणअकोप्पजंघजुयला सुणिम्मियसुगूढजाणुमंडलसुबद्धसंधी कयलिक्खंभातिरेगसंठियणिव्वणसुकुमालमउयकोमलअविरलसमसहितसुजातवट्टपीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीचीपट्टसंठियपसत्थविच्छिन्नपिहुलसोणी वदणायामप्पमाणदुगुणितविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारणीतो वज्जविराइयपसत्थलक्खणणिरोदरा तिवलिवलीयतणुणमियमज्झियाओ उज्जुयसमसहितजच्चतणुकसिणणिद्धआदेज्जलडहसुविभत्तसुजातकंतसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराई गंगावत्तपदाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोधितअकोसायंतपउमवणगंभीरवियडणाभी अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छी सण्णयपासा संगयपासा सुजायपासा मितमातियपीणरइयपासा अकरंडुयकणगरुयगनिम्मलसुजायणिरुवहयगातलट्ठी कंचणकलससमपमाणसमसहितसुजातलट्ठचूचुयआमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुण्णयरतियसंठियपयोधराओ भुयंगणु-

पुव्वतणुयगोपुच्छवट्टसमसहियणमियआएज्जललियवाहाओ तंबणहा मंसलग्गहत्था पीवरकोमलवरंगुलीओ णिद्धपाणिलेहा रविससिसंखचक्कसोत्थियसुविभत्तसुविरतियपाणिलेहा पीणुण्णयकक्खवत्थिदेसा पडिपुण्णगलकवोला चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा मंसलसंठियपसत्थहणुया दाडिमपुप्फप्पगासपीवरकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा दधिदगरयचंदकुंदवासंतिमउलअच्छिद्दविमलदसणा रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहा कणय(व)रमुउलअकुडिलअब्भुग्गतउज्जुतुंगणासा सारदणवकमलकुमुदकुवलयविमुक्कदलणिगरसरिसलक्खणअंकियकंतणयणा पत्तलचवलायंततंबलोयणाओ आणामितचावरुइलकिण्हब्भराइसंठियसंगतआययसुजातकसिणणिद्धभमुया अल्लीणपमाणजुत्तसवणा पीणमट्ठरमणिज्जगंडलेहा चउरंसपसत्थसमणिडाला कोमुतिरयणिकरविमलपडिपुन्नसोमवयणा छत्तुन्नयउत्तिमंगा कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरया छत्तज्झयजुगथूभदामिणिकमंडलुकलसवाविसोत्थियपडागजवमच्छकुम्मरहवरमगरसुकथालअंकुसअट्ठावयवीइसुपइट्ठकमयूरसिरिदामाभिसेयतोरणमेइणिउदधिवरभवणगिरिवरआयंसललियगतउसभसीहचमरउत्तमपसत्थबत्तीसलक्खणधरातो हंससरिसगतीतो कोतिलमधुरगिरसुस्सराओ कंता सव्वस्स अणुनतातो ववगतवलिपलिया चंगदुव्वण्णवाहीदोभग्गसोगमुक्काओ उच्चत्तेण य नराण थोवूणमूसियाओ सभावसिंगाराचारचारुवेसा संगतगतहसितभणियचेट्ठियविला-

ससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसला सुंदरथणजहणवदणकरचलणणयणमाला वण्णलावण्णजोवणविलासकलिया नंदणवणविवरचारिणीउव्व अच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जा पासाईतातो दरिसणिज्जातो अभिरूवाओ पडिरूवाओ। तासि णं भंते! मणुईणं केवतिकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति?, गोयमा! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति। ते णं भंते! मणुया किमाहारमाहारेंति?, गोयमा! पुढविपुप्फफलाहारा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। तीसे णं भंते! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते?, गोयमा! से जहाणामए गुलेति वा खंडेति वा सक्करांति वा मच्छंडियाति वा भिसकंदेति वा पप्पडमोयएति वा पुप्फउत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा अकोसितातिं वा विजतातिं वा महाविजयाइ वा आयंसोवसाति वा अणोवसाति वा चाउरक्के गोखीरे चउठाणपरिणए गुडखंडमच्छंडिउवणीए मंदग्गिकडीए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं, भवेतारूवे सिता?, नो इणट्ठे समट्ठे, तीसे णं पुढवीए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव मणामतराए चेव आसाए णं पण्णत्ते, तेसि णं भंते! पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते?, गोयमा! से जहानामए चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे पवरभोयणे सतसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणं उववेते गंधेणं उववेते रसेणं उववेते फासेणं उववेते आसाइणिज्जे वीसाइणिज्जे दीवणिज्जे बिंहणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे सव्विंदियगातपल्हायणिज्जे, भवेतारूवे सिता?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आस्साए णं

पण्णत्ते । ते णं भंते! मणुया तमाहारमाहारित्ता कहिं वसहिं उवेंति?, गोयमा! रुक्खगेहालता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । ते णं भंते! रुक्खा किंसंठिया पण्णत्ता?, गोयमा! कूडागारसंठिता पेच्छाघरसंठिता सत्तागारसंठिया झयसंठिया थूभसंठिया तोरणसंठिया गोपुरचेतियपा(या)लगसंठिया अट्टालगसंठिया पासादसंठिया हम्मतलसंठिया गवक्खसंठिया वालग्गपोत्तियसंठिता वलभीसंठिता अण्णे तत्थ बहवे वरभवणसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिता सुहसीयलच्छाया णं ते दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगोरूयदीवे दीवे गेहाणि वा गेहावणाणि वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, रुक्खगेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे २ गामाति वा णगराति वा जाव सन्निवेसाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, जहिच्छितकामगामिणो ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे असीति वा मसीइ वा कसीइ वा पणीति वा वणिज्जाति वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयअसिमसिकिसिपणियवाणिज्जा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे हिरण्णेति वा सुवन्नेति वा कंसेति वा दूसेति वा मणीति वा मुत्तिएति वा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जेति वा?, हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं तिव्वे ममत्तभावे समुप्पज्जति । अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे रायाति वा जुवरायाति वा ईसरेति

वा तलवरेइ वा माडंबियाति वा कोडुंबियाति वा इब्भाति वा सेट्ठीति वा सेणावतीति वा सत्थवाहाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयइड्ढीसक्कारा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगूरूयदीवे २ दासाति वा पेसाइ वा सिस्साति वा भयगाति वा भाइल्लगाइ वा कम्मगरपुरिसाति वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतआभिओगिता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे माताति वा पियाति वा भायाति वा भइणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाइ वा सुण्हाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं णं मणुयाणं तिव्वे पेमबंधणे समुप्पज्जति, पयणुपेज्जबंधणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे अरीति वा वेरिएति वा घातकाति वा वहकाति वा पडिणीताति वा पच्चामित्ताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतवेराणुबंधा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरूए दीवे मित्ताति वा वतंसाति वा घडिताति वा सहीति वा सुहियाति वा महाभागाति वा संगतियाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतपेम्मा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरूयदीवे आवाहाति वा वीवाहाति वा जण्णाति वा सद्धाति वा थालिपाकाति वा चेलोवणतणाति वा सीमंतुण्णयणाइ वा पिति(मत)पिंडनिवेदणाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतआवाहविवाहजण्णसद्धथालिपागचोलोवणतणसीमंतुण्णयणमतपिंडनिवेदणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता सम-

णाउसो!। अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे २ इंदमहाति वा खंदमहाति वा रुद्दमहाति वा सिवमहाति वा वेसमणमहाइ वा मुगुंदमहाति वा णागमहाति वा जक्खमहाति वा भूतमहाति वा कूवमहाति वा तलायणदिमहाति वा दहमहाति वा पव्वयमहाति वा रुक्खरोवणमहाति वा चेइयमहाइ वा थूभमहाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतमहमहिमा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगोरुयदीवे दीवे णडपेच्छाति वा णट्टपेच्छाति वा मल्लपेच्छाति वा मुट्ठियपेच्छाइ वा विडंबगपेच्छाइ वा कहगपेच्छाति वा पवगपेच्छाति वा अक्खायगपेच्छाति वा लासगपेच्छाति वा लंखपे० मंखपे० तूणइल्लपे० तुंबवीणपे० कावणपे० मागहपे० जल्लपे०?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतकोउहल्ला णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे सगडाति वा रहाति वा जाणाति वा जुग्गाति वा गिल्लीति वा थिल्लीति वा पिपिल्लीइ वा पवहणाणि वा सिवियाति वा संदमाणियाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, पादचारविहारिणो णं ते मणुस्सगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे आसाति वा हत्थीति वा उट्टाति वा गोणाति वा महिसाति वा खराति वा घोडाति वा अजाति वा एलाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । अत्थि णं भंते! एगूरुयगदीवे दीवे सीहाति वा वग्घाति वा विगाति वा दीवियाइ वा अच्छाति वा परच्छाति वा परस्सराति वा

तरच्छाति वा बिडालाइ वा सुणगाति वा कोलसुणगाति वा कोकंतियाति वा ससगाति वा चित्तलाति वा चिल्ललगाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पवाहं वा उप्पायंति वा छविच्छेदं वा करेंति, पगतिभद्दका णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे सालीति वा वीहीति गोधूमाति वा जवाति वा तिलाति वा इक्खूति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे गत्ताइ वा दरीति वा घंसाति वा भिगूति वा उवाएति वा विसमेति वा विज्जलेति वा धूलीति वा रेणूति वा पंकेइ वा चलणीति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, एगूरुयदीवे णं दीवे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगूरुयदीवे दीवे खाणूति वा कंटएति वा हीरएति वा सक्कराति वा तणकयवराति वा पत्तकयवराइ वा असुतीति वा पूतियाति वा दुब्भिगंधाइ वा अचोक्खाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगयखाणुकंटकहीरसक्करतणकयवरपत्तकयवरअसुतिपूतियदुब्भिगंधमचोक्खपरिवज्जिए णं एगुरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे दंसाति वा मसगाति वा पिसुयाति वा जूताति वा लिक्खाति वा ढंकुणाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतदंसमसगापिसुतजूतालिक्खढंकुणपरिवज्जिए णं एगुरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे अहीइ वा

अयगराति वा महोरगाति वा?, हंता अत्थि, नो चेव णं ते अन्नमन्नस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आयाहं वा पबाहं वा छविच्छेयं वा करेंति, पगइभद्दगा णं ते वालगगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे गहदंडाति वा गहमुसलाति वा गहगज्जितााति वा गहजुद्धाति वा गहसंघाडगाति वा गहअवसव्वाति वा अब्भाति वा अब्भरुक्खाति वा संझाति वा गंधव्वनगराति वा गज्जितााति वा विज्जुताति वा उक्कापातााति वा दिसादाहाति वा णिग्घाताति वा पंसुविट्ठीति वा जुवगाति वा जक्खालित्ताति वा धूमिताति वा महिताति वा रउग्घाताति वा चंदोवरागाति वा सूरोवरागाति वा चंदपरिवेसाइ वा सूरपरिवेसाति वा पडिचंदाति वा पडिसूराति वा इंदधणूति वा उदगमच्छाति वा अमोहाइ वा कविहसियाइ वा पाईणवायाइ वा पडीणवायाइ वा जाव सुद्धवाताति वा गामदाहाति वा नगरदाहाति वा जाव सण्णिवेसदाहाति वा पाणक्खतजणक्खयकुलक्खयधणक्खयवसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे डिंबाति वा डमराति वा कलहाति वा बोलाति वा खाराति वा वेराति वा विरुद्धरज्जाति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतडिंबडमरकलहबोलखारवेरविरुद्धरज्जविवज्जिता णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरुयदीवे दीवे महाजुद्धाति वा महासंगामाति वा महासत्थनिवयणाति वा महापुरिसवाणाति वा महारुधिरवाणाति वा नागवाणाति वा खेण-

वाणाइ वा तामसवाणाइ वा कुब्भूतियाइ वा कुलरोगाति वा गामरोगाति वा णगररोगाति वा मंडलरोगाति वा सिरोवेदणाति वा अच्छिवेदणाति वा कण्णवेदणाति वा णक्कवेदणाइ वा दंतवेदणाइ वा नखवेदणाइ वा कासाति वा सासाति वा जराति वा दाहाति वा कच्छूति वा खसराति- वा कुट्ठाति वा कुडाति वा दगराति वा अरिसाति वा अजीरगाति वा भगंदराइ वा इंदग्गहाति वा खंदग्गहाति वा कुमारग्गहाति वा णागग्गहाति वा जक्खग्गहाति वा भूतग्गहाति वा उव्वेयग्गहाति वा धणुग्गहाति वा एगाहियग्गहाति वा बेयाहियगहिताति वा तेयाहियगहियाइ वा चाउत्थगाहियाति वा हिययसूलाति वा मत्थगसूलाति वा पाससूलाइ वा कुच्छिसूलाइ वा जोणिसूलाइ वा गाममारीति वा जाव सन्निवेसमारीति वा पाणक्खय जाव वसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतरोगायंका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!। अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे अतियासाति वा मंदवासाति वा सुवुट्ठीइ वा मंदवुट्ठीति वा उद्दवाहाति वा पवाहाति वा दगुब्भेयाइ वा दगुप्पीलाइ वा गामवाहाति वा जाव सन्निवेसवाहाति वा पाणक्खय० जाव वसणभूतमणारिताति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे, ववगतदगोवद्दवा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! । अत्थि णं भंते! एगुरूयदीवे दीवे अयागराति वा तम्बागराइ वा सीसागराति वा सुवण्णागराति वा रतणागराति वा वइरागराइ वा वसुहाराति वा हिरण्णवासाति वा सुवण्णा-

वासाति वा रयणवासाति वा वइरवासाति वा आभरणवासाति वा पत्तवासाति वा पुप्फवासाति वा फलवासाति वा बीयवासा० मल्लवासा० गंधवासा० वण्णवासा० चुण्णवासा० खीरवुट्ठीति वा रयणवुट्ठीति वा हिरण्णवुट्ठीति वा सुवण्ण० तहेव जाव चुण्णवुट्ठीति वा सुकालाति वा दुकालाति वा सुभिक्खाति वा दुभिक्खाति वा अप्पग्घाति वा महग्घाति वा कयाइ वा महाविक्कयाइ वा सण्णिहीइ वा सचयाइ वा निधीइ वा निहाणाति वा चिरपोराणाति वा पहीणसामियाति वा पहीणसेउयाइ वा पहीणगोत्तागाराइं वा जाइं इमाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसन्निवेसेसु सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउमुहमहापहपहेसु णगरणिद्धमणसुसाणगिरिकंदरसन्तिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति, नो तिणट्ठे समट्ठे । एगुरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा! जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं असंखेज्जतिभागेण ऊणगं उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं । ते णं भंते! मणुया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति ?, गोयमा! ते णं मणुया छम्मासावसेसाउया मिहुणताइं पसवंति अउणासीइं राइंदियाइं मिहुणाइं सारक्खंति संगोविंति य, सारक्खित्ता २ उस्ससित्ता निस्ससित्ता कासित्ता छीतित्ता अक्किट्ठा अव्वहिता अपरियाविया [पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं परियाविय] सुहंसुहेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु

देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति, देवलोयपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे दीवे चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वतस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं तिन्नि जोयण० सेसं जहा एगुरूयाणं णिरवसेसं सव्वं ॥ कहि णं भंते!! दाहिणिल्लाणं णंगोलिमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसताइं सेसं जहा एगुरुयमणुस्साणं ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयण० सेसं जहा एगुरुयाणं ॥ (सू० १११)

'एगोरुयदीवस्स णं भंते!' इत्यादि, एकोरुकद्वीपस्य णमिति पूर्ववत् भदन्त! 'कीदृशः' क इव दृश्यः 'आकारभावप्रत्यवतारः' भूम्यादिस्वरूपसम्भवः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! एकोरुकद्वीपे 'बहुसमरमणीयः' प्रभूतसमः सन् रम्यो भूमिभागः प्रज्ञप्तः। 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादिरुत्तरकुरुगमस्तावदनुसर्त्तव्यो यावदनुसज्जनासूत्रं, नवरमत्र नानात्वमिदं—मनुष्या अष्टौ धनुःशतान्युच्छ्रिता वक्तव्याश्चतुःषष्टिः पृष्ठकरण्डकाः—पृष्ठवंशाः, बृहत्प्रमाणानां हि ते बहवो भवन्ति, एकोनाशीतिं च रात्रिन्दिवानि स्वापत्यान्यनुपालयन्ति, स्थितिस्तेषां जघन्येन देशोनः पल्योपमासङ्ख्येयभागः, एतदेव व्याचष्टे—पल्योपमासङ्ख्येयभागन्यूनः, उत्कर्षतः

परिपूर्णः पल्योपमासङ्ख्येयभागः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानामाभाषिकमनुष्याणामाभाषिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पूर्वस्माच्चरमान्तात् 'दक्षिणपूर्वेण' दक्षिणपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानामाभाषिकमनुष्याणामाभाषिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषवक्तव्यता एकोरुकवद्वक्तव्या यावत्स्थितिसूत्रम् ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! दाक्षिणात्यानां नाङ्गोलिकमनुष्याणां नाङ्गोलिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मंदरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पाश्चात्याच्चरमान्ताद् 'दक्षिणपश्चिमेन' दक्षिणपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि दाक्षिणात्यानां नाङ्गोलिकमनुष्याणां नाङ्गोलिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषं यथैकोरुकाणां तथा वक्तव्यं यावत्स्थितिसूत्रम् ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! वैशालिकमनुष्याणां वैशालिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणेन' दक्षिणस्यां दिशि क्षुल्लहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य पाश्चात्याच्चरमान्ताद् 'उत्तरपश्चिमेन' उत्तरपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं त्रीणि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे दंष्ट्राया उपरि वैशालिकमनुष्याणां वैशालिकद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, शेषमेकोरुकवद् वक्तव्यं यावत्स्थितिसूत्रम् ॥

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! एगुरूयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, चत्तारि जोयणसयाइं

आयामविक्खंभेणं बारस जोयणसया पन्नट्ठी किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेतियाए अवसेसं जहा एगुरूयाणं। कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं गजकण्णमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! आभासियदीवस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुदं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं। एवं गोकण्णमणुस्साणं पुच्छा। वेसाणितदीवस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुदं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं। सक्कुलिकण्णाणं पुच्छा, गोयमा! णंगोलियदीवस्स उत्तरपच्चत्थिमिल्लातो चरिमंतातो लवणसमुदं चत्तारि जोयणसताइं सेसं जहा हयकण्णाणं॥ आतंसमुहाणं पुच्छा, हतकण्णयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लातो चरिमंतातो पंच जोयणसताइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आयंसमुहमणुस्साणं आयंसमुहदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, आसमुहाईणं छ सया, आसकन्नाईणं सत्त, उक्कामुहाईणं अट्ठ, घणदंताइणं जाव नव जोयणसयाइं,—एगूरुयपरिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपन्नाइं। बारसपन्नट्ठाइं हयकण्णाईणं परिक्खेवो ॥१॥ आयंसमुहाईणं पन्नरसेकासीए जोयणसते किंचिविसेसाधिए परिक्खेवेणं, एवं एतेणं कमेणं उवउज्झिऊण णेतव्वा चत्तारि चत्तारि एगपमाणा, णाणत्तं ओगाहे, विक्खंभे परिक्खेवे पढमबीततितियचउक्काणं उग्गहो विक्खंभो परिक्खेवो भणितो, चउत्थचउक्के छजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं अट्ठारसत्ताणउते जोयणसते विक्खंभेणं। पंचम-

चउक्के सत्त जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं बावीसं तेरसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं। छट्ठचउक्के अट्ठजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं पणुवीसं गुणतीसजोयणसए परिक्खेवेणं । सत्तमचउक्के नव- जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणसहस्साइं अट्ठ पणयाले जोयणसए परिक्खेवेणं। जस्स य जो विक्खंभो उग्गहो तस्स तत्तिओ चेव । पढमाइयाण परिरतो जाण सेसाण अ- हिओ उ ॥ १ ॥ सेसा जहा एगुरूयदीवस्स जाव सुद्धदंतदीवे देवलोकपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं एगुरूयमणुस्साणं एगुरुयदीवे णामं दीवे प- ण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिस्स वासधरपव्वयस्स उत्तर- पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसताइं ओगाहित्ता एवं जहा दाहिणि- ल्लाण तहा उत्तरिल्लाण भाणितव्वं, णवरं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स विदिसासु, एवं जाव सुद्धदंतदीवेत्ति जाव सेत्तं अंतरदीवका ॥ (सू० ११२)। से किं तं अकम्मभूमगमणुस्सा?, २ तीसविधा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं हेमवएहिं, एवं जहा पण्णवणापदे जाव पंचहिं उत्तरकुरूहिं, सेत्तं अकम्मभूमगा। से किं तं कम्मभूमगा?, २ पण्णरसविधा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं भर- हेहिं पंचहिं एरवएहिं पंचहिं महाविदेहेहिं, ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आयरिया मिलेच्छा, एवं जहा पण्णवणापदे जाव सेत्तं आयरिया, सेत्तं गब्भवक्कंतिया, सेत्तं मणुस्सा॥ (सू० ११३)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! हयकर्णमनुष्याणां हयकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! एकोरुकद्वीपस्य पूर्वस्माच्चरमान्ताद् उत्तरपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं चत्वारि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्तादपि चतुर्योजनशतान्तरे दाक्षिणात्यानां हयकर्णमनुष्याणां हयकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, स च चत्वारि योजनशतान्यायामविष्कम्भेन द्वादश पञ्चषष्ठानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, शेषं यथैकोरुकमनुष्याणां। एवमाभाषिकद्वीपस्य पूर्वस्माच्चरमान्ता-दक्षिणपूर्वस्यां दिशि चत्वारि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे गजकर्णमनुष्याणां गजकर्णो द्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्। नाङ्गोलिकद्वीपस्य पश्चिमाच्चर-मान्तादक्षिणपश्चिमेन चत्वारि योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्यात्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशतान्तरे गोकर्णमनुष्याणां गोकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्। वैशालिकद्वीपस्य पश्चिमाच्चरमान्ताद् उत्तरपश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रमवगाह्य चत्वारि योजनशतानि अत्रान्तरे क्षुल्लहिमवद्दंष्ट्राया उपरि जम्बूद्वीपवेदिकान्ताच्चतुर्योजनशता-न्तरे दाक्षिणात्यानां शष्कुलीकर्णमनुष्याणां शष्कुलीकर्णद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, आयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं हयकर्णद्वीपवत्, पद्म-वरवेदिकावनषण्डमनुष्यादिस्वरूपं च समस्तमेकोरुकद्वीपवत्। एवमेतेनाभिलापेनामीषां हयकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु पञ्च योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य पञ्चयोजनशतायामविष्कम्भा एकाशीत्यधिकपञ्चदशयोजनशतपरिक्षेपाः पद्मव-रवेदिकावनषण्डमण्डितवाह्यप्रदेशा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात्पञ्चयोजनशतप्रमाणान्तरा आदर्शमुखमेण्ढमुखायोमुखगोमुखनामानश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—हयकर्णस्य परत आदर्शमुखो गजकर्णस्य परतो मेण्ढमुखो गोकर्णस्य परतोऽयोमुखः शष्कुलीकर्णस्य परतो गोमुखः।

एतेषामप्यादर्शमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो भूयोऽपि यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं लवणसमुद्रं षट् षड् योजनशतान्यवगाह्य
पड्योजनशतायामविष्कम्भाः सप्तनवत्यधिकाष्टादशयोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनषण्डमण्डितपरिसरा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात् षड्यो-
जनशतप्रमाणान्तरा अश्वमुखहस्तिमुखसिंहमुखव्याघ्रमुखनामानश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—आदर्शमुखस्य परतोऽश्वमुखः, मेण्ढमु-
खस्य परतो हस्तिमुखः, अयोमुखस्य परतः सिंहमुखः, गोमुखस्य परतो व्याघ्रमुखः। एतेषामश्वमुखादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो य-
थाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं सप्त सप्त योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य सप्तयोजनशतायामविष्कम्भास्त्रयोदशाधिकद्वाविंशतियोज-
नशतपरिरयाः पद्मवरवेदिकावनषण्डसमवगूढाः जम्बूद्वीपवेदिकान्तात्सप्तयोजनशतप्रमाणान्तरा अश्वकर्णहरिकर्णाकर्णकर्णप्रावरणनामा-
नश्चत्वारो द्वीपा बोध्याः, तद्यथा—अश्वमुखस्य परतोऽश्वकर्णः हस्तिमुखस्य परतो हरिकर्णः सिंहमुखस्य परतोऽकर्णः व्याघ्रमुखस्य परतः
कर्णप्रावरणः, तत एतेषामप्यश्वकर्णादीनां चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकमष्टौ अष्टौ योजनशतानि लवण-
समुद्रमवगाह्याष्टयोजनशतायामविष्कम्भा एकोनत्रिंशदधिकपञ्चविंशतियोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनखण्डमण्डितपरिसरा जम्बू-
द्वीपवेदिकान्तादष्टयोजनशतप्रमाणान्तरा उल्कामुखमेघमुखविद्युन्मुखविद्युद्दन्ताभिधानाश्चत्वारो द्वीपा वक्तव्याः, तद्यथा—अश्वकर्णस्य
परत उल्कामुखः हरिकर्णस्य परतो मेघमुखः अकर्णस्य परतो विद्युन्मुखः कर्णप्रावरणस्य परतो विद्युद्दन्तः; एतेषामप्युल्कामुखादीनां
चतुर्णां द्वीपानां परतो यथाक्रमं पूर्वोत्तरादिविदिक्षु प्रत्येकं नव नव योजनशतानि लवणसमुद्रमवगाह्य नवनवयोजनशतायामविष्कम्भाः
पञ्चचत्वारिंशदधिकाष्टाविंशतियोजनशतपरिक्षेपाः पद्मवरवेदिकावनखण्डसमवगूढा जम्बूद्वीपवेदिकान्तात् नवयोजनशतप्रमाणान्तरा
घनदन्तलष्टदन्तगूढदन्तशुद्धदन्तनामानश्चत्वारो द्वीपाः, तद्यथा—उल्कामुखस्य परतो घनदन्तः मेघमुखस्य परतो लष्टदन्तः विद्युन्मु-

स्तस्य परतो गूढदन्तः विशुद्धदन्तस्य परतः शुद्धदन्तः। एतेषामेव द्वीपानामवगाहायामविष्कम्भपरिरयपरिमाणसङ्ग्रहगाथाषट्कमाह—"पढमंमि तिन्नि उ सया सेसाण सउत्तरा नव उ जाव। ओगाहं विक्खंभं दीवाणं परिरयं वोच्छं ॥ १ ॥ पढमचउक्कपरिरया बीयचउक्कस्स परिरओ अहिओ। सोलेहिं तिहि उ जोयणसएहिं एमेव सेसाणं ॥ २ ॥ एगोरुयपरिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपण्णाइं। बारस पण्णट्ठाइं हयकण्णाणं परिक्खेवो ॥ ३ ॥ पणरस एक्कासीया आयंसमुहाण परिरओ होइ। अट्ठार सत्तनउया आसमुहाणं परिक्खेवो ॥ ४ ॥ बावीसं तेराइं परिक्खेवो होइ आसकन्नाणं। पणुवीस अउणतीसा उक्कामुहपरिरओ होइ ॥ ५ ॥ दो चेव सहस्साइं अट्ठेव सया हवंति पणयाला। घणदंतदीवाणं विसेसमहिओ परिक्खेवो ॥ ६ ॥" व्याख्या—प्रथमे द्वीपचतुष्के चिन्त्यमाने त्रीणि योजनशतान्यवगाहनां—लवणसमुद्रावगाहं विष्कम्भं च, विष्कम्भग्रहणादायामोऽपि गृह्यते तुल्यपरिमाणत्वात्, जानीहि इति क्रियाशेषः, शेषाणां द्वीपचतुष्कानां शतोत्तराणि त्रीणि त्रीणि शतानि अवगाहनाविष्कम्भं तावज्जानीयाद् यावन्नव शतानि, तद्यथा—द्वितीयचतुष्के चत्वारि शतानि, तृतीये पञ्च शतानि, चतुर्थे षट् शतानि, पञ्चमे सप्त शतानि, षष्ठेऽष्टौ शतानि, सप्तमे नव शतानि, अत ऊर्द्ध्वं द्वीपानामेकोरुकप्रभृतीनां 'परिरयं' परिरयप्रमाणं वक्ष्ये। प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति—'पढमचउक्के'त्यादि, 'प्रथमचतुष्के परिरयात्' प्रथमद्वीपचतुष्के परिरयपरिमाणात् द्वितीयचतुष्कस्य—द्वितीयद्वीपचतुष्टयस्य परिरयः—परिरयपरिमाणमधिकः षोडशैः षोडशोत्तरैस्त्रिभिर्योजनशतैः, 'एवमेव' अनेनैव प्रकारेण शेषाणां 'द्वीपानां' द्वीपचतुष्कानां परिरयपरिमाणमधिकं पूर्वपूर्वचतुष्कपरिरयपरिमाणादवसातव्यम्, एतदेव चैतेन दर्शयति—'एकोरुये'त्यादि 'एकोरुकपरिक्षेपे' एकोरुकोपलक्षितप्रथमद्वीपचतुष्कपरिक्षेपे नव शतानि एकोनपञ्चाशानि—एकोनपञ्चाशदधिकानि। ततस्त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'हयकण्णाण'मिति वचनात् हयकर्णप्रमुखाणां द्वितीयानां चतुर्णां

द्वीपानां परिक्षेपो भवति, स च द्वादश योजनशतानि पञ्चषष्टानि–पञ्चषष्ट्यधिकानि । तत्रापि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आयंसमुहाणं'ति आदर्शमुखप्रमुखाणां तृतीयानां चतुर्णां द्वीपानां परिरयपरिमाणं भवति, तच्च पञ्चदश योजनशतान्येकाशीत्यधिकानि । ततो भूयोऽपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आसमुहाणं'ति अश्वमुखप्रभृतीनां चतुर्थानां चतुर्णां द्वीपानां परिक्षेपः, तद्यथा–अष्टादश योजनशतानि सप्तनवतानि–सप्तनवत्यधिकानि । तेष्वपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'आसकण्णाणं'ति अश्वकर्णप्रमुखाणां पञ्चानां चतुर्णां द्वीपानां परिक्षेपो भवति, तद्यथा–द्वाविंशतियोजनशतानि त्रयोदशानि–त्रयोदशाधिकानि । ततो भूयोऽपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'उल्कामुखपरिरयः' उल्कामुखषष्ठद्वीपचतुष्कपरिरयपरिमाणं भवति, तद्यथा–पञ्चविंशतियोजनशतानि एकोनत्रिंशानि–एकोनत्रिंशदधिकानि । ततः पुनरपि त्रिषु योजनशतेषु षोडशोत्तरेषु प्रक्षिप्तेषु 'घनदन्तद्वीपस्य' (पानां) घनदन्तप्रमुखसप्तमद्वीपचतुष्कस्य परिक्षेपः, तद्यथा–द्वे सहस्रे अष्टौ शतानि पञ्चचत्वारिंशानि–पञ्चचत्वारिंशदधिकानि 'विसेसमाहिओ' इति किञ्चिद्विशेषाधिकः अधिकृतः परिक्षेपः, पञ्चचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषाधिकानीति भावार्थः, इदं च पदमन्तेऽभिहितत्वात्सर्वत्राप्यभिसम्बन्धनीयं, तेन सर्वत्रापि किञ्चिद्विशेषाधिकमुक्तरूपं परिरयपरिमाणमवसातव्यं । तदेवमेते हिमवति पर्वते चतसृषु विदिक्षु व्यवस्थिताः सर्वसङ्ख्ययाऽष्टाविंशतिः, एवं हिमवत्तुल्यवर्णप्रमाणपद्मह्रदप्रमाणायामविष्कम्भावगाहपुण्डरीकह्रदोपशोभिते शिखरिण्यपि पर्वते लवणोदार्णवजलसंस्पर्शादारभ्य यथोक्तप्रमाणान्तराश्चतसृषु विदिक्षु एकोरुकादिनामानोऽक्षूणापान्तरालायामविष्कम्भा अष्टाविंशतिसङ्ख्या द्वीपा वेदितव्याः, तथा चाह—"कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?, गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं सिहरिपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ

लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता तत्थ णं उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे नामं दीवे पण्णत्ते" इत्यादि सर्वं तदेव, नवरमुत्तरेण विभाषा कर्त्तव्या, सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः, उपसंहारमाह—'सेत्तमंतरदीवगा'ते एतेऽन्तरद्वीपकाः । अकर्म्मभूमकाः कर्म्मभूमकाश्च यथा प्रज्ञापनायां प्रथमे प्रज्ञापनाख्ये पदे तथैव वक्तव्या यावत् 'सेत्तं चरित्तारिया सेत्तं मणुस्सा' इति पदम्, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यत इति, उपसंहारमाह—'सेत्तं मणुस्सा' त एते मनुष्याः ॥ तदेवमुक्ता मनुष्याः, सम्प्रति देवानभिधित्सुराह—

से किं तं देवा ?, देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया (सू० ११४) से किं तं भवणवासी?, २ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—असुरकुमारा जहा पण्णवणापदे देवाणं भेओ तहा भाणितव्वो जाव अणुत्तरोववाइया पंचविधा पण्णत्ता, तंजहा—विजयवेजयंत जाव सव्वट्ठसिद्धगा, सेत्तं अणुत्तरोववातिया ॥ (सू० ११५) कहि णं भंते ! भवणवासिदेवाणं भवणा पन्नत्ता ?, कहि णं भंते ! भवणवासी देवा परिवसंति ?, गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं जहा पण्णवणाए जाव भवणवासाइता, त(ए)त्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं भवणावाससयसहस्सा भवंतित्तिमक्खाता, तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति—असुरा नाग सुवन्ना य जहा पण्णवणाए जाव विहरंति ॥ (सू० ११६) कहि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा प०?, पुच्छा, एवं जहा पण्णवणाठाणपदे

जाव विहरंति ॥ कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं असुरकुमारदेवाणं भवणा पुच्छा, एवं जहा ठाणपदे जाव चमरे, तत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति जाव विहरति ॥ (सू० ११७)

'से किं त' मित्यादि, अथ के ते देवाः ?, सूरिराह—देवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भवनवासिनो वानमन्तरा ज्योतिष्का वैमानिकाः, अमीषां च शब्दानां व्युत्पत्तिर्यथा प्रज्ञापनाटीकायां तथा वेदितव्या ॥ 'से किं त'मित्यादि, अथ के ते भवनवासिनः ?, सूरिराह—भवनवासिनो दशविधाः प्रज्ञप्ताः, एवं देवानां प्रज्ञापनागतप्रथमप्रज्ञापनाख्यपद इव तावद्भेदो वक्तव्यो यावत्सर्वार्थदेवा इति ॥ सम्प्रति भवनवासिनां देवानां भवनवसनप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते !' इत्यादि, क भदन्त ! भवनवासिनां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि ?, क भदन्त ! भवनवासिनो देवाः परिवसन्ति ?, भगवानाह—गौतम ! 'इमीसे णं'मित्यादि, 'अस्याः' प्रत्यक्षत उपलभ्यमानाया यत्र वयमास्महे रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'असीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायाः' अशीत्युत्तरम्—अशीतिसहस्राधिकं योजनशतसहस्रं बाहल्यं—पिण्डभावो यस्याः सा तथा, तस्या उपर्येकं योजनसहस्रमवगाह्याधस्तादेकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा मध्ये 'अट्ठसत्तरे' अष्टसप्ततिसहस्राधिके योजनशतसहस्रे, 'अत्र' एतस्मिन् स्थाने भवनवासिनां देवानां सप्त भवनकोटयो द्विसप्ततिर्भवनावासशतसहस्राणि भवन्तीति आख्यातानि मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, तत्र सप्तकोट्यादिभावनैवं—चतुःषष्टिः शतसहस्राणि भवनानामसुरकुमाराणां चतुरशीतिः शतसहस्राणि नागकुमाराणां द्विसप्ततिः शतसहस्राणि सुवर्णकुमाराणां षण्णवतिः शतसहस्राणि वायुकुमाराणां, द्वीपकुमारादीनां षण्णां प्रत्येकं षट्सप्ततिः शतसहस्राणि भवनानां, ततः सर्वसङ्ख्यया यथोक्तं भवनसङ्ख्यानं भवति । 'ते णं भवणा' इत्यादि, तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, णमिति वाक्यालङ्कारे भवनानि बहिः 'वृत्तानि' वृत्ताकाराणि अन्तः

समचतुरस्राणि अधस्तलभागेषु पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितानि, 'भवणवण्णओ भाणियव्वो जहा ठाणपदे जाव पडिरूवा' इति, उक्तप्रकारेण भवनवर्णको भणितव्यो यथा प्रज्ञापनायां द्वितीये स्थानाख्ये पदे, स च तावद् यावत् 'पडिरूवा' इति पदं, स चैवम्—"उक्किण्णंतरविउलगंभीरखायपरिखा पागारट्टालयकवाडतोरणपडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया अजोज्झा सयाजया सयागुत्ता अडयालकोट्टरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरअमरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरसमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगन्धवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडियसद्दसंपणदिया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा" इति, अस्य व्याख्या—उत्कीर्णमिव उत्कीर्णं अतीव व्यक्तमिति भावः, उत्कीर्णमन्तरं यासां खातपरिखानां ता उत्कीर्णान्तराः किमुक्तं भवति ?—खातानां परिखाणां च स्पष्टवैविक्त्योन्मीलनार्थमपान्तराले महती पाली समस्तीति, खातानि च परिखाश्च खातपरिखाः उत्कीर्णान्तरा विपुला—विस्तीर्णा गम्भीरा—अलब्धमध्यभागाः खातपरिखा येषां भवनानां परितस्तानि उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखानि, खातपरिखाणां चायं प्रतिविशेषः—परिखा उपरि विशालाऽधः सङ्कुचिता, खातं तूभयत्रापि सममिति, 'पागारट्टालककवाडपडिदुवारदेसभागा' इति प्रतिभवनं प्राकारेषु अट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वाराणि—अट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वाररूपा देशभागा—देशविशेषा येषु तानि प्राकाराट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, तत्राट्टालकाः—प्राकारस्योपरि भृत्याश्रयविशेषाः कपाटानि—प्रतोलीद्वारसत्कानि, एतेन प्रतोल्यः

सर्वत्र सूचिता अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि—प्रतीतानि, तानि च प्रतोलीद्वारेषु, प्रतिद्वाराणि—मूलद्वारापान्तरालवर्तीनि लघुद्वाराणि। तथा 'जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया' इति यन्त्राणि—नानाप्रकाराणि शतघ्न्यो—महायष्टयो महाशिला वा याः पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि

सर्वत्र सूचिता अन्यथा कपाटानामसम्भवात्, तोरणानि—प्रतीतानि, तानि च प्रतोलीद्वारेषु, प्रतिद्वाराणि—मूलद्वारापान्तरालवर्त्तीनि लघुद्वाराणि। तथा 'जंतसयग्घिमुसलमुसंढिपरिवारिया' इति यन्त्राणि—नानाप्रकाराणि शतघ्न्यो—महायष्ट्यो महाशिला वा याः पातिताः सत्यः पुरुषाणां शतानि घ्नन्ति मुशलानि—प्रतीतानि मुषण्ढयः—शस्त्रविशेषास्तैः परिवारितानि—समन्ततो वेष्टितानि अत एवायोध्यानि—परैर्योद्धुमशक्यानि अयोध्यत्वादेव 'सदाजयानि' सदा—सर्वकालं जयो येषु तानि सदाजयानि सर्वकालं जयवन्तीति भावः, तथा सदा—सर्वकालं गुप्तानि प्रहरणैः पुरुषैश्च योद्धृभिः सर्वतः—समन्ततो निरन्तरं परिवारिततया परेषामसहमानानां मनागपि प्रवेशासम्भवात् 'अडयालकोट्ठरइया' इति अष्टाचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तिकलिताः कोष्ठका—अपवरका रचिताः स्वयमेव रचनां प्राप्ता येषु तान्यष्टाचत्वारिंशत्कोष्ठकरचितानि, सुखादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथाऽष्टाचत्वारिंशद्भेदभिन्नविच्छित्तयः कृता वनमाला येषु तानि अष्टचत्वारिंशत्कृतवनमालानि, अन्ये त्वभिदधति—अडयालशब्दो देशीवचनात् प्रशंसावाची, ततोऽयमर्थः—'प्रशस्तकोष्ठकरचितानि प्रशस्तकृतवनमालानी'ति तथा 'क्षेमाणि' परकृतोपद्रवरहितानि, 'शिवानि' सदा मङ्गलोपेतानि, तथा किङ्कराः—किङ्करभूता येऽमरास्तैर्दण्डैः कृत्वा उपरक्षितानि—सर्वतः समन्ततो रक्षितानि किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि, 'लाउल्लोइयमहिया' इति लाइयं नाम यद्भूमेर्गोमयादिना उपलेपनम् 'उल्लोइयं' कुड्यानां मालस्य सेटिकादिभिः संमृष्टीकरणं लाइयोल्लोइयाभ्यां महितानि—पूजितानि लाइयोल्लोइयमहितानि, तथा गोशीर्षेण—गोशीर्षनामकेन चन्दनेन सरसरक्तचन्दनेन च दर्दरेण—बहलेन चपेटाप्रकारेण वा दत्ताः पञ्चाङ्गुलयस्तला—हस्तका येषु तानि गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि, तथा उपचिता—निवेशिताः चन्दनकलशा—मङ्गल्यकलशा येषु तानि उपचितचन्दनकलशानि, 'चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा'

इति चन्दनघटैः—चन्दनकलशैः सुकृतानि शोभितानीति तात्पर्यार्थः यानि तोरणानि तानि चन्दनघटसुकृतानि तोरणानि प्रतिद्वारदेशभागं—द्वारदेशभागे येषु तानि चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, तथा **'आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा'** इति आ—अवाङ् अधोभूमौ सक्त—आसक्तो भूमौ लग्न इत्यर्थः ऊर्द्धं सक्त उत्सक्तः उल्लोचतले उपरि संवद्ध इत्यर्थः विपुलो—विस्तीर्णो वृत्तो—वर्त्तुलः **'वग्घारिय'** इति प्रलम्बितो माल्यदामकलापः—पुष्पमालासमूहो येषु तानि आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्तप्रलम्बितमाल्यदामकलापानि, तथा पञ्चवर्णेन सुरभिणा—सुरभिगन्धेन मुक्तेन—क्षिप्तेन पुष्पपुञ्जलक्षणेनोपचारेण—पूजया कलितानि पञ्चवर्णसुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि, तथा कालागुरुः—प्रसिद्धः प्रवरः—प्रधानः कुन्दुरुष्कः—चीडा तुरुष्कं—सिल्हकं कालागुरुश्च प्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्के च कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्काणि तेषां धूपस्य यो मघमघायमानो गन्ध उद्धूत—इतस्ततो विप्रसृतस्तेनाभिरामाणि—रमणीयानि कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपमघमघायमानगन्धोद्धुताभिरामाणि, तथा शोभनो गन्धो येषां ते सुगन्धाः ते च ते वरगन्धाश्च—वासाः सुगन्धवरगन्धास्तेषां गन्धः स एष्वस्तीति सुगन्धवरगन्धगन्धिकानि **'अतोऽनेकस्वरा'**दितीकप्रत्ययः, अत एव गन्धवर्त्तिभूतानि, सौरभ्यातिशयाद् गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पानीति भावः, तथाऽप्सरोगणानां सङ्घः—समुदायस्तेन सम्यग्—रमणीयतया विकीर्णानि—व्याप्तानि अप्सरोगणसङ्घविकीर्णानि, तथा दिव्यानामातोद्यानां—वेणुवीणामृदङ्गानां ये शब्दास्तैः संप्रणदितानि—सम्यक्श्रोत्रमनोहारितया प्रकर्षेण सर्वकालं नदितानि—शब्दवन्ति दिव्यत्रुटितशब्दसंप्रणदितानि सर्वरत्नमयानि—सर्वात्मना सामस्त्येन रत्नमयानि न त्वेकदेशेन सर्वरत्नमयानि—समस्तरत्नमयानि अच्छानि—आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छानि श्लक्ष्णानि—श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिष्पन्नानि श्लक्ष्णदलनिष्पन्नपटवत् लण्हानि—मसृणानि घुण्टितपटवत् **'घट्ठा'** इति घृष्टानीव घृष्टानि खरशानया पाषाणप्रतिमावत्, **'मट्ठा'**

इति मृष्टानीव मृष्टानि सुकुमारशानया पाषाणप्रतिमावदेव, अत एव नीरजांसि स्वाभाविकरजोरहितत्वात् **'निर्मलानि'** आगन्तुकमलासम्भवात् **'निष्पङ्कानि'** कलङ्कविकलानि कर्दमरहितानि वा **'निक्कंकडच्छाया'** इति निष्कङ्कटा—निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेति भावार्थः छाया—दीप्तिर्येषां तानि निष्कङ्कटच्छायानि **'सप्रभाणि'** स्वरूपतः प्रभावन्ति **'समरीचीनि'** वहिर्विनिर्गतकिरणजालानि **'सोद्द्योतानि'** वहिर्व्यवस्थितवस्तुस्तोमप्रकाशकराणि **'प्रासादीयानि'** प्रसादाय—मनःप्रसत्तये हितानि मनःप्रसत्तिकारीणीति भावः, तथा **'दर्शनीयानि'** दर्शनयोग्यानि यानि पश्यतश्चक्षुषी न श्रमं गच्छत इति भावः, **'अभिरूवा'** इति अभि—सर्वेषां द्रष्टृणां मनःप्रसादानुकूलतयाऽभिमुखं रूपं येषां तानि अभिरूपाणि—अत्यन्तकमनीयानीत्यर्थः अत एव **'पडिरूवा'** इति प्रतिविशिष्टं रूपं येषां तानि प्रतिरूपाणि, अथवा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं येषां तानि प्रतिरूपाणि ॥ तदेवं भवनस्वरूपमुक्तमिदानीं यत्पृष्टं 'क भदन्त ! भवनवासिनो देवाः परिवसन्ती'ति तत्रोत्तरमाह—**'तत्थ णं वहवे भवणवासी देवा परिवसंति असुरा नागा भेदो भाणियव्वो जाव विहरंति एवं जा ठाणपदे वत्तव्वया सा भाणियव्वा जाव चमरेणं असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ'** इति, 'तत्र' तेष्वनन्तरोदितस्वरूपेषु भवनेषु वहवो भवनवासिनो देवाः परिवसन्ति, तानेव जातिभेदत आह—**'असुरा नागा'** इत्यादि यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठः—"असुरा नाग सुवण्णा विज्जू अग्गी य दीव उदही य दिसिपवणथणियनामा दसहा एए भवणवासी ॥ १ ॥ चूडामणिमउडरयणा १ भूसणनागफण २ गरुल ३ वइर ४ पुण्णकलसअंकउप्फेस ५ सीह ६ हयवर ७ गय ८ मगरंक- ९ वरवद्धमाण १० निजुत्तचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढीया महज्जुइया महायसा महावला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया अंगयकुंडलमट्ठगंडतलकण्णा पीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमालामउली (मउडा) कल्लाणगपवरवत्थप-

रिद्धिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणवरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पहाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा, ते णं तत्थ साणं २ भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं २ अग्गमहिसीणं साणं २ अणीयाणं साणं साणं अणियाहिवईणं साणं २ आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽऽहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति'' अस्य व्याख्या—'असुराः' असुरकुमाराः, एवं नागकुमाराः सुवर्णकुमारा विद्युत्कुमारा अग्निकुमारा द्वीपकुमारा उदधिकुमारा दिक्कुमाराः पवनकुमाराः स्तनितकुमाराः, 'दशधा' दशप्रकाराः 'एते' अनन्तरोदिता असुरकुमारादयो भवनवासिनो यथाक्रमं चूडामणिमुकुटरत्नभूषणनियुक्तनागस्फटादिविचित्रचिह्नगताश्च, तथाहि—असुरकुमारा भवनवासिनश्चूडामणिमुकुटरत्नाः, चूडामणिर्नाम मुकुटे रत्नं चिह्नभूतं येषां ते तथा, नागकुमारा भूषणनियुक्तनागस्फटारूपचिह्नधराः, सुवर्णकुमाराः भूषणनियुक्तगरुडरूपचिह्नधराः, विद्युत्कुमाराः भूषणनियुक्तवज्ररूपचिह्नधराः, वज्रं नाम शक्रस्यायुधं, अग्निकुमारा भूषणनियुक्तपूर्णकलशरूपचिह्नधराः, द्वीपकुमारा भूषणनियुक्तसिंहरूपचिह्नधराः, उदधिकुमारा भूषणनियुक्तहयवररूपचिह्नधारिणः, दिक्कुमारा भूषणनियुक्तगजरूपचिह्नधारिणः, वायुकुमारा भूषणनियुक्तमकररूपचिह्नधराः, स्तनितकुमारा भूषणनियुक्तवर्द्धमानकरूपचिह्नधारिणः, भूषणमत्र मुकुटो द्रष्टव्योऽन्यत्र 'मउडवरवद्धमाणनिजुत्तचित्तचिंधगया' इति पाठदर्शनाद्, वर्द्धमानकं—शरावसंपुटं, पुनः सर्वे कथम्भूताः? इत्याह—'सुरूपाः' शोभनं रूपं येषां ते तथा, अत्यन्तकमनीय-

रूपा इत्यर्थः, 'महिड्डिया महज्जुइया महायसा महावला महाणुभागा महासोक्खा' इति प्राग्वत्, 'हारविराइयवच्छा' इति हारैर्विराजितं वक्षो येषां ते हारविराजितवक्षसः, 'कडगतुडियथंभियभुया' इति कटकानि—कलाचिकाभरणानि त्रुटितानि—बाहुरक्षकास्तैः स्तम्भिताविव स्तम्भितौ भुजौ येषां ते कटकत्रुटितस्तम्भितभुजाः, तथाऽङ्गदानि—बाहुशीर्षाभरणविशेषरूपाणि कुण्डले—कर्णाभरणविशेषरूपे, तथा मृष्टौ—मृष्टीकृतौ गण्डौ—कपोलौ यैस्तानि मृष्टगण्डानि कर्णपीठानि—आभरणविशेषरूपाणि धारयन्तीत्येवंशीला अङ्गदकुण्डलमृष्टगण्डकर्णपीठधारिणः, तथा विचित्राणि— नानारूपाणि हस्ताभरणानि येषां ते विचित्रहस्ताभरणाः, तथा 'विचित्तमालामउलिमउडा' इति, विचित्रा माला—कुसुमस्रग् मौलौ—मस्तके मुकुटं च येषां ते विचित्रमालामौलिमुकुटाः, तथा कल्याणकं—कल्याणकारि प्रवरं वस्त्रं परिहितं यैस्ते कल्याणकवस्त्रपरिहिताः, सुखादिदर्शनान्निष्ठान्तस्यात्र पाक्षिकः परनिपातः, तथा कल्याणकं—कल्याणकारि यत् प्रवरं माल्यं—पुष्पदाम यच्चानुलेपनं तद्धरन्तीति कल्याणकप्रवरमाल्यानुलेपनधराः, तथा भास्वरा—देदीप्यमाना बोन्दिः—शरीरं येषां ते भास्वरबोन्दयः, तथा प्रलम्बत इति प्रलम्बा या वनमाला तां धरन्तीति प्रलम्बवनमालाधराः, दिव्येन 'वर्णेन' कृष्णादिना 'दिव्येन गन्धेन' सुरभिणा 'दिव्येन स्पर्शेन' मृदुस्निग्धादिरूपेण दिव्येन शक्तिविशेषमपेक्ष्य संहननेनेव संहननेन न तु साक्षात्संहननेन, देवानां संहननासम्भवात्, संहननं हि अस्थिरचनात्मकं, न च देवानामस्थीनि सन्ति, तथा चोक्तं प्रागेव—"देवा असंघयणी तेसिं नेव सिरा" इत्यादि, 'दिव्येन संस्थानेन' समचतुरस्ररूपेण भवधारणीयशरीरस्य, तेषामन्यसंस्थानासम्भवात्, 'दिव्यया ऋद्ध्या' परिवारादिकया 'दिव्यया द्युत्या' इष्टार्थसंप्रयोगलक्षणया, 'द्यु अभिगमने' इतिवचनात् 'दिव्यया प्रभया' भवनावासगतया 'दिव्यया छायया' समुदायशोभया 'दिव्येनार्चिषा' स्वशरीरगतरत्नादितेजोज्वालया 'दिव्येन तेजसा' शरीरप्रभवेन 'दिव्यया

लेश्यया' देहवर्णसुन्दरतया दश दिशः 'उद्द्योतयन्तः' प्रकाशयन्तः 'पभासेमाणा' इति शोभयन्तस्ते भवनवासिनो देवा णमिति वाक्यालङ्कारे 'तत्र' स्वस्थाने 'साणं साणं'ति स्वेषां स्वेषामात्मीयात्मीयानां भवनावासशतसहस्राणां स्वेषां स्वेषां सामानिकसहस्राणां स्वेषां त्रायस्त्रिंशकानां स्वेषां स्वेषां लोकपालानां स्वासां स्वासाम् 'अग्रमहिषीणा' पट्टराज्ञीनां स्वेषां स्वेषामनीकानां स्वेषां स्वेषामनीकाधिपतीनां स्वेषां स्वेषामात्मरक्षदेवसहस्राणाम्, अन्येषां च बहूनां स्वस्वभवनावासनगरीवास्तव्यानां भवनवासिनां देवानां देवीनां च 'आहेवच्च'मित्यादि, अधिपतेः कर्म्म आधिपत्यं रक्षेत्यर्थः, सा च रक्षा सामान्येनापि (आ)रक्षकेणेव क्रियते तत आह—पुरस्य पतिः पुरपतिस्तस्य कर्म्म पौरपत्यं, सर्वेषामात्मीयानामग्रेसरत्वमिति भावः, तच्चाग्रेसरत्वं नायकत्वमन्तरेणापि नायकनियुक्ततथाविधगृहचिन्तकसामान्यपुरुषस्येव भवति ततो नायकत्वप्रतिपत्त्यर्थमाह—'स्वामित्वं' स्वमस्यास्तीति स्वामी तद्भावो नायकत्वमित्यर्थः, तदपि च नायकत्वं कथञ्चित्पोषकत्वमन्तरेणापि भवति यथा हरिणयूथाधिपतेर्हरिणस्य, तत आह—'भर्तृत्वं' पोषकत्वमत एव महत्तरकत्वं, तदपि महत्तरकत्वं कस्यचिदाज्ञाविकलस्यापि संभवति यथा कस्यचिद्वणिजः स्वदासदासीवर्गं प्रति, तत आह—'आणाईसरसेणावच्चं' आज्ञया ईश्वर आज्ञेश्वरः सेनायाः पतिः सेनापतिः आज्ञेश्वरश्चासौ सेनापतिश्च आज्ञेश्वरसेनापतिस्तस्य कर्म्म आज्ञेश्वरसेनापत्यं स्वस्वसैन्यं प्रत्यद्भुतमाज्ञाप्राधान्यमिति भावः कारयन्तोऽन्यैर्नियुक्तकैः पुरुषैः पालयन्तः स्वयमेव, महता रवेणेति योगः, 'आहय' इति आख्यानकप्रतिबद्धानि यदिवा 'अहतानि' अव्याहतानि नित्यानुबन्धीनीति भावः ये नाट्यगीते नाट्यं—नृत्यं गीतं—गानं यानि च वादितानि तन्त्रीतलतालत्रुटितानि तन्त्री—वीणा तलौ—हस्ततलौ तालः—कंसिका त्रुटितानि—वादित्राणि, तथा यश्च घनमृदङ्गः पटुना पुरुषेण प्रवादितः, तत्र घनमृदङ्गो नाम घनसमानध्वनिर्यो मृदङ्गः, तत एतेषां द्वन्द्वस्तेषां रवेण 'दिव्यान्' दिवि भवान् प्रधानानिति भावः, भो-

गार्हा भोगाः—शब्दादयो भोगभोगास्तान् भुञ्जमानाः 'विहरन्ति' आसते ॥ "कहि णं भंते! असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पन्नत्ता?, कहि णं भंते! असुरकुमारा देवा परिवसंति?, एवं जा ठाणपए वत्तव्वया सा भाणियव्वा जाव चमरे एत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसति जाव विहरति" क भदन्त! असुरकुमाराणां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि?, तथा क भदन्त! असुरकुमारा देवाः परिवसन्ति?, 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण या स्थानपदे वक्तव्यता सा भणितव्या यावच्चमरः असुरकुमारेन्द्रः असुरकुमारराजा परिवसति यावद्विहरतीति, सा चैवम्—"गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हिट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं चोसट्ठी भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किन्नंतरविउलगम्भीर—खायपरिहा जाव पडिरूवा, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, एत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति काला लोहियक्खबिंबोट्ठा धवलपुप्फदंता असियकेसा वामेयकुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता ईसिसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवरपरिहिया पढमं वयं च समइक्कंता बिइयं च असंपत्ता भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा तलभंगयतुडियवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढिया महज्जुइया महाजसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति, चमरबलिणो य एत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा नीलगुलियगवलपगासा वियसियसयवत्तनिम्मलईसिसियरत्ततंबनयणा गरुलाययउज्जुतुंगनासा उवचियसिलप्पवाल-

बिंबफलसन्निभाधरोट्ठा पंडुरससिसगलविमलनिम्मल (दहिघण) संखगोखीरकुंदधवलमुणालियादंतसेढी हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा अंजणघणमसिणरुयगरमणिज्जनिद्धकेसा वामेयकुंडलधरा जाव पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं जाव भुंजमाणा विहरंति ॥ कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता ?, कहि णं भंते! दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्समोगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा तहेव जाव पडिरूवा, तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति काला लोहियक्खा तहेव भुंजमाणा विहरंति, चमरे य एत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमारराया परिवसइ काले महानीलसरिसे जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरइ" ॥ इति, इदं प्रायः समस्तमपि सुगमं नवरं 'काला लोहियक्ख' इत्यादि, 'कालाः' कृष्णवर्णाः 'लोहियक्खबिंबोट्ठा' लोहिताक्षरत्नवद् बिम्बवच्च—बिम्बीफलवद् ओष्ठौ येषां ते लोहिताक्षबिम्बोष्ठाः आरक्तौष्ठा इति भावः, धवलाः पुष्पवत् सामर्थ्यात्कुन्दकलिका इव दन्ता येषां ते धवलपुष्पदन्ताः, असिताः—कृष्णाः केशा येषां ते असितकेशाः, दन्ताः केशाश्चामीषां वैक्रिया द्रष्टव्या न स्वाभाविकाः, वैक्रियशरीरत्वात्, 'वामेयकुण्डलधराः' एककर्णावसक्तकुण्डलधारिणः, तथाऽऽर्द्रेण—सरसेन चन्दनेनानुलिप्तं गात्रं यैस्ते

आर्द्रचन्दनानुलिप्तगात्राः, तथा ईषत्—मनाक् 'शिलिन्ध्रपुष्पप्रकाशानि' शिलिन्ध्रपुष्पसदृशवर्णानि 'असंक्लिष्टानि' अत्यन्तसुखजनकतया मनागपि सङ्क्लेशानुत्पादकत्वात् 'सूक्ष्माणि' मृदुलघुस्पर्शानि अच्छानि चेति भावः वस्त्राणि प्रवरं सुशोभं यथा भवति एवं परिहिताः—परिहितवन्तः प्रवरवस्त्रपरिहिताः, तथा वयः प्रथमं—कुमारत्वलक्षणमतिक्रान्तास्तत्पर्यन्तवर्तिन इत्यर्थः, यत आह—द्वितीयं च—मध्यलक्षणं वयोऽसंप्राप्ताः, एतदेव व्यक्तीकरोति—'भद्रे' अतिप्रशस्ये यौवने वर्त्तमानाः 'तलभंगयतुडियवरभूसणनिम्मलमणिरयणमंडियभुया' तलभङ्गका—बाह्वाभरणविशेषाः त्रुटितानि—बाहुरक्षकाः, अन्यानि च यानि वराणि भूषणानि बाह्वाभरणानि तेषु ये निर्म्मला मणयः—चन्द्रकान्ताद्या यानि रत्नानि—इन्द्रनीलादीनि तैर्मण्डितौ भुजौ येषां ते तथा, तथा दशभिर्मुद्राभिर्मण्डितौ अग्रहस्तौ येषां ते (दशमुद्रा) मण्डिताग्रहस्ताः, 'चूडामणिचित्तचिंधगया' चूडामणिः—चूडामणिनामकं चित्रम्—अद्भुतं चिह्नं गतं—स्थितं येषां ते चूडामणिचित्रचिह्नगताः, चमरबलिसामान्यसूत्रे 'कालाः' कृष्णवर्णाः, एतदेवोपमानतः प्रतिपादयति—'महानीलसरिसा' महानीलं यत्किमपि वस्तुजातं लोके प्रसिद्धं तेन सदृशाः, एतदेव व्याचष्टे—नीलगुटिका—नील्या गुटिका गवलं—माहिषं शृङ्गं तयोरिव प्रकाशः—प्रतिभा येषां ते नीलगुटिकागवलप्रकाशाः, तथा विकसितशतपत्रमिव निर्मले ईषद्देशविभागेन सिते रक्ते ताम्रे च नयने येषां ते विकसितशतपत्रनिर्म्मलेषत्सितरक्तताम्रनयनाः, तथा गरुडस्येवायता—दीर्घा ऋज्वी—अकुटिला तुङ्गा—उन्नता नासा—नासिका येषां ते गरुडायतर्जुतुङ्गनासाः, तथा ओयवियं—तेजितं यत् शिलाप्रवाहं—विद्रुमं रत्नं यच्च बिम्बफलं तत्सन्निभोऽधरः—ओष्ठो येषां ते तथा, तथा पाण्डुरं न तु सन्ध्याकालभावि आरक्तं शशिशकलं—चन्द्रखण्डं, तदपि च कथम्भूतमित्याह—विमलं—रजसा रहितं कलङ्कविकलं वा तथा निर्म्मलो यो दधिघनः शङ्खो गोक्षीरं यानि कुन्दानि—कुन्दकुसुमानि दकरजः—पानीयकणा मृणालिका च तद्वद् धवला दन्तश्रे-

णिर्येपां ते तथा, विमलशब्दस्य विशेष्यात्परनिपातः प्राकृतत्वात्, तथा हुतवहेन—वैश्वानरेण निर्ध्मातं सत् यद् जायते धौतं—निर्म्मलं तप्तम्—उत्तप्तं तपनीयम् आरक्तं सुवर्णं तद्वद्रक्तानि तलानि—हस्तपादतलानि तालुजिह्वे च येपां ते हुतवहनिर्ध्मातधौततप्ततपनीयरक्ततलतालुजिह्वाः, तथाऽञ्जनं—सौवीराञ्जनं घनः—प्रावृट्कालभावी मेघस्तद्वत् कृष्णाः रुचकवद्—रुचकरत्नवद् रमणीयाः स्निग्धाश्च केशा येषां ते अञ्जनघनकृष्णरुचकरमणीयस्निग्धकेशाः, शेपं प्राग्वत् ॥ चमरसूत्रे 'तिण्हं परिसाण'मित्युक्तं ततः पर्षद्विशेषपरिज्ञानाय सूत्रमाह—

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररन्नो कति परिसातो पं० ?, गो०! तओ परिसातो पं०, तं०—समिता चंडा जाता, अब्भितरिता समिता मज्झे चंडा बाहिं च जाया ॥ चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरपरिसाए कति देवसाहस्सीतो पण्णत्ताओ ?, मज्झिमपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?, बाहिरियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स २ अब्भितरपरिसाए चउवीसं देवसाहस्सीतो पण्णत्ताओ, मज्झिमिताए परिसाए अट्ठावीसं देव०, बाहिरिताए परिसाए बत्तीसं देवसा० ॥ चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरिताए कति देविसता पण्णत्ता ?, मज्झिमियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?, बाहिरियाए परिसाए कति देविसता पण्णत्ता ?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसता पं० मज्झिमियाए परिसाए तिन्नि

देवि० बाहिरियाए अड्ढाइज्जा देवि०। चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए० बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? अब्भिंतरियाए परि० देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परि० देवीणं केवतियं० बाहिरियाए परि० देवीणं के०?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परि० देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पं० मज्झिमाए परिसाए देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए देवाणं दिवड्ढं पलि० अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए देवीणं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता बाहिरियाए परि० देवीणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति?—चमरस्स असुरिंदस्स तओ परिसातो पण्णत्ताओ, तंजहा—समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया?, गोयमा! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भिंतरपरिसा देवा वाहिता हव्वमागच्छंति णो अव्वाहिता, मज्झिमपरिसाए देवा वाहिता हव्वमागच्छंति अव्वाहितावि, बाहिरपरिसा देवा अव्वाहिता हव्वमागच्छंति, अदुत्तरं च णं गोयमा! चमरे असुरिंदे असुरराया अन्नयरेसु उच्चावएसु कज्जकोडुंबेसु समुप्पन्नेसु अब्भिंतरियाए परिसाए सद्धिं संमइसंपुच्छणाबहुले विहरइ मज्झिमपरिसाए सद्धिं पयं एवं पवंचेमाणे २

विहरति बाहिरियाए परिसाए सद्धिं पयंडेमाणे २ विहरति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ— चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ समिया चंडा जाता, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाता (सू० ११८) ॥

'चमरस्स ण'मित्यादि, चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य 'कति' कियत्सङ्ख्याकाः पर्षदः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह— गौतम! तिस्रः पर्षदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—समिता चण्डा जाता, तत्राभ्यन्तरिका पर्षत् 'समिता' समिताभिधाना, एवं मध्यमिका चण्डा बाह्या जाता ॥ 'चमरस्स ण'मित्यादि, चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि कति देवसह- स्राणि प्रज्ञप्तानि?, मध्यमिकायां पर्षदि कति देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, बाह्यायां पर्षदि कति देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह— गौतम! चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि चतुर्विंशतिर्देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, मध्यमिकायामष्टाविंशतिर्देवसह- स्राणि, बाह्यायां द्वात्रिंशद्देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ 'चमरस्स णं भंते'! इत्यादि, चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्या- भ्यन्तरिकायां पर्षदि कति देवीशतानि प्रज्ञप्तानि? मध्यमिकायां पर्षदि कति देवीशतानि प्रज्ञप्तानि? बाह्यायां पर्षदि कति देवीशतानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! अभ्यन्तरिकायां पर्षदि अर्द्धतृतीयानि देवीशतानि प्रज्ञप्तानि, मध्यमिकायां पर्षदि त्रीणि देवीशतानि प्रज्ञप्तानि, बाह्यायां पर्षदि अर्द्धचतुर्थानि देवीशतानि प्रज्ञप्तानि ॥ 'चमरस्स णं भंते!' इत्यादि, चमरस्य भदन्त! असुरेन्द्रस्यासुरकु- मारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? मध्यमिकायां पर्षदि देवानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, एवं बाह्यपर्षद्विषयमपि प्रश्नसूत्रं वक्तव्यं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, एव मध्यमिकाबाह्यपर्ष-

द्विषये अपि प्रश्नसूत्रे वक्तव्ये, भगवानाह—गौतम! चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानामर्द्धतृतीयानि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, मध्यमिकायां पर्षदि देवानां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता, बाह्यायां पर्षदि देवानां द्व्यर्द्धं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां द्व्यर्द्धपल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, मध्यमिकायां पर्षदि देवीनां पल्योपमं स्थितिः, प्रज्ञप्ता, बाह्यायां पर्षदि देवीनामर्द्धपल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, इह भूयान् वाचनाभेद इति यथाऽवस्थितसूत्रे पाठनिर्णयार्थं सुगममपि सूत्रमक्षरसंस्कारमात्रेण विव्रियते। सम्प्रत्यभ्यन्तरिकादिव्यपदेशकारणं पिपृच्छिषुरिदमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते? चमरस्य असुरकुमारराजस्य तिस्रः पर्षदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा समिता चण्डा जाता, अभ्यन्तरा समिता मध्यमिका चण्डा बाह्या जाता भगवानाह—गौतम! चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरकुमारराजस्याभ्यन्तरपर्षत्का देवाः 'वाहिता' आहूताः 'हव्वं' शीघ्रमागच्छन्ति नो 'अव्वाहिता' अनाहूताः, अनेन गौरवमाह, मध्यमपर्षद्रा देवा आहूता अपि शीघ्रमागच्छन्ति अनाहूता अपि, मध्यमप्रतिपत्तिविषयत्वात्, बाह्यपर्षद्रा देवा अनाहूताः शीघ्रमागच्छन्ति, तेषामाकारणलक्षणगौरवानर्हत्वात्, 'अदुत्तरं च ण'मित्यादि, 'अथोत्तरम्' अथान्यद् अभ्यन्तरत्वादिविषये कारणं गौतम! चमरोऽसुरेन्द्रोऽसुरकुमारराजोऽन्यतरेषु 'उच्चावचेषु' शोभनाशोभनेषु 'कज्जकोडुंबेसु' इति कौटुम्बिकेषु कार्येषु कुटुम्बे भवानि कौटुम्बानि स्वराष्ट्रविषयाणीत्यर्थः तेषु कार्येषु समुत्पन्नेषु अभ्यन्तरिकया पर्षदा सार्द्धं संमतिसंप्रश्नबहुलश्चापि विहरति, सन्मत्या—उत्तमया मत्या यः संप्रश्नः—पर्यालोचनं तद्बहुलश्चापि 'विहरति' आस्ते, स्वल्पमपि प्रयोजनं प्रथमतस्तया सह पर्यालोच्य विदधातीति भावः, मध्यमिकया पर्षदा सार्द्धं यदभ्यन्तरिकया पर्षदा सह पर्यालोच्य कर्त्तव्यतया निश्चितं पदं 'तत्पपञ्चयन् विहरति' एवमिदमस्माभिः पर्यालोचितमिदं कर्त्तव्यमन्यथा दोष इति विस्तारयन्नास्ते, बाह्यया पर्षदा सह यदभ्यन्तरिकया पर्षदा सह पर्यालोचितं

मध्यमिकया सह गुणदोषप्रपञ्चकथनतो विस्तारितं पदं तत् 'प्रचण्डयन् प्रचण्डयन् विहरंति' आज्ञाप्रधानः सन्नवश्यं कर्त्तव्यतया निरूपयन् तिष्ठति, यथेदं युष्माभिः कर्त्तव्यमिदं न कर्त्तव्यमिति, तदेवं या एकान्ते गौरवमेव केवलमर्हति यया च सहोत्तममतित्वात्स्वल्पमपि कार्यं प्रथमतः पर्यालोचयति सा गौरवविषये पर्यालोचनायां चात्यन्तमभ्यन्तरा वर्त्तते इत्यभ्यन्तरिका, या तु गौरवार्हा पर्यालोचितं चाभ्यन्तरिकया पर्षदा सह अवश्यकर्त्तव्यतया निश्चितं न तु प्रथमतः सा किल गौरवे पर्यालोचनायां च मध्यमे भागे वर्त्तत इति मध्यमिका, या तु गौरवं न जातुचिदप्यर्हति न च यया सह कार्यं पर्यालोचयति केवलमादेश एव यस्मै दीयते सा गौरवानर्हा पर्यालोचनायाश्च बहिर्भावे वर्त्तत इति बाह्या। तदेवमभ्यन्तरिकादिव्यपदेशनिबन्धनमुक्तं, सम्प्रत्येतदेवोपसंहरन्नाह—'से एएण(तेण)ट्ठेण'मित्यादि पाठसिद्धं, यानि तु समिया चंडा जाता इति नामानि तानि कारणान्तरनिबन्धनानि, कारणान्तरं च ग्रन्थान्तरादवसातव्यं, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"चउवीस अट्ठवीसा बत्तीससहस्स देव चमरस्स। अद्धुट्ठा तिन्नि तहा अड्ढाइज्जा य देविसया ॥१॥ अड्ढाइज्जा य दोन्नि य दिवड्ढपलियं कमेण देवठिई। पलियं दिवड्ढमेगं अद्धो देवीण परिसासु ॥ २ ॥"

कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं भवणा पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव बली, एत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसति जाव विहरति ॥ बलिस्स णं भंते! वयरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसा, तंजहा—समिया चंडा जाया, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाया। बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए कति देवसहस्सा? मज्झिमियाए परिसाए कति देवसहस्सा

जाव बाहिरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता?, गोयमा! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परिसाए वीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए चउवीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अट्ठावीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्ध-पंचमा देविसता, मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि देविसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसता पण्णत्ता, बलिस्स ठितीए पुच्छा जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स २ अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धुट्ठ-पलिओवमा ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए तिन्नि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, बाहिरि-याए परिसाए देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं दो पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, सेसं जहा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो ॥ (सू० ११९)

'कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता' इत्यादि, क्व भदन्त! उत्तराणामसुरकुमाराणां भवनानि प्रज्ञप्तानि? इत्येवं यथा प्रज्ञापनायां द्वितीये स्थानाख्ये पदे तथा तावद्वक्तव्यं यावद्बलिः, अत्र वैरोचनेन्द्रो वैरोचनराजः परि-वसति, तत ऊर्द्ध्वमपि तावद्वक्तव्यं यावद्विहरति, तच्चैवम्—"कहि णं भंते! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबु-

दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरे जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणवाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव विहरंति, बली य एत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसइ काले महानीलसरिसे जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ तीसाए भवणवाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हमणियाहिवईणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरइ" समस्तमिदं प्राग्वत् ॥ सम्प्रति पर्षन्निरूपणार्थमाह—'बलिस्स णं भंते!' इत्यादि प्राग्वत्, नवरमिदमत्र देवदेवीसङ्ख्यास्थितिनानात्वम्—"वीस उ चउवीस अट्ठावीस सहस्साण (होंति) देवाणं। अद्धपणचउद्धुट्ठा देविसय बलिस्स परिसासु ॥ १ ॥ अद्धुट्ठ तिण्णि अड्ढाइज्जाइं (होंति) पलियदेवठिई। अड्ढाइज्जा दोण्णि य दिवड्ढ देवीण ठिइ कमसो ॥ २ ॥"

कहि णं भंते! नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव दाहिणिल्लावि पुच्छियव्वा जाव धरणे इत्थ नागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसति जाव विहरति॥ धरणस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कति परिसाओ? पं०, गोयमा! तिण्णि परिसाओ, ताओ चेव जहा चमरस्स। धरणस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररन्नो अब्भितरियाए परिसाए कति देवसहस्सा पन्नत्ता?, जाव बाहिरियाए परिसाए कति देवीसता पण्णत्ता?, गोयमा! धरणस्स णं

णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए सट्ठिं देवसहस्साइं मज्झिमियाए परिसाए सत्तरिं देवसहस्साइं बाहिरियाए असीतिदेवसहस्साइं अब्भिंतरपरिसाए पण्णत्तरं देविसतं पण्णत्तं मज्झिमियाए परिसाए पण्णासं देविसतं पण्णत्तं बाहिरियाए परिसाए पणवीसं देविसतं पण्णत्तं । धरणस्स णं रन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! धरणस्स रण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं सातिरेगं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं सातिरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं चउभागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो जहा चमरस्स ॥ कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं जहा ठाणपदे जाव विहरति ॥ भूयाणंदस्स णं भंते! णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्ण-

त्ताओ?, मज्झिमियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ?, बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? अब्भिंतरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?, गोयमा! भूयाणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए पन्नासं देवसहस्सा पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए सर्ट्ठिं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए सत्तरि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, अब्भिंतरियाए परिसाए दो पणवीसं देविसयाणं पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए दो देवीसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए पण्णत्तरं देविसयं पण्णत्तं। भूयाणंदस्स णं भंते! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? जाव बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?, गोयमा! भूताणंदस्स णं अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं देसूणं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अत्थो जहा चमरस्स, अवसेसाणं वेणु-

देवादीणं महाघोसपज्जवसाणाणं ठाणपदवत्तव्वया णिरवयवा भाणियव्वा, परिसातो जहा धरणभूताणंदाणं (सेसाणं भवणवईणं) दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स उत्तरिल्लाणं जहा भूताणंदस्स, परिमाणंपि ठितीवि ॥ (सू० १२०)

'कहि णं भंते! नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?' इत्यादि, क भदन्त! नागकुमाराणां देवानां भवनानि प्रज्ञप्तानि?, एवं यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये द्वितीयपदे तथा वक्तव्यं यावद् दाक्षिणात्या अपि प्रष्टव्या यावद्धरणोऽत्र नागकुमारेन्द्रो नागकुमारराजः परिवसति यावद्विहरति, तच्चैवम्—"कहि णं भंते! नागकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं नागकुमाराणं देवाणं चुलसी भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे नागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया महज्जुतिया, सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति, धरणभूयाणंदा एत्थ दुवे नागकुमारिंदा नागकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति। कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं

भवणा पन्नत्ता, एत्थ णं वहवे दाहिणिल्ला 'नागकुमारा परिवसंति महिड्ढीया जाव विहरंति, धरणे एत्थ नागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसइ महिड्ढीए जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं छण्हं सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं छण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउवीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च वहूणं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति" पाठसिद्धं ॥ सम्प्रति पर्षन्निरूपणार्थमाह—'धरणस्स णं भंते!' इत्यादि, प्राग्वत्, नवरमत्राभ्यन्तरपर्षदि षष्टिर्देवसहस्राणि मध्यमिकायां सप्ततिर्देवसहस्राणि वाह्यायामशीतिर्देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चसप्ततं देवीशतं, 'मज्झिमियाए परिसाए पण्णासं देविसतं पण्णत्तं' मध्यमिकायां पर्षदि पञ्चाशं देवीशतं वाह्यायां पञ्चविंशं देवीशतं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां स्थितिः सातिरेकमर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायामर्द्धपल्योपमं वाह्यायां देशोनमर्द्धपल्योपमं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां स्थितिर्देशोनमर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायां सातिरेकं चतुर्भागपल्योपमं वाह्यायां चतुर्भागपल्योपमं, शेषं प्राग्वत् ॥ **'कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं नागकुमाराणं भवणा पण्णत्ता जहा ठाणपदे जाव विहरइ'त्ति**, क भदन्त! उत्तराणां नागकुमाराणां भवनानि प्रज्ञप्तानि? इत्यादि यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये पदे तथा वक्तव्यं यावद्विहरतीति पदं, तच्चैवम्—'कहि णं भंते! उत्तरिल्ला नागकुमारा परिवसन्ति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं नागकुमाराणं चत्तालीसं भवणावाससयसहस्सा हवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा वाहिं वट्टा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं जाव विहरंति, भूयाणंदे एत्थ नागकुमारिंदे नाग-

कुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव पभासेमाणे, से णं चत्तालीसाए भवणावाससयसहस्साणं सेसं तं चेव जाव विहरइ' इति निगदसिद्धं ॥ पर्षन्निरूपणार्थमाह—'भूयाणंदस्स ण'मित्यादि प्राग्वत् नवरमत्राभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चाशद्देवसहस्राणि मध्यमिकायां षष्टिर्देवसहस्राणि बाह्यायां सप्ततिर्देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चविंशे द्वे देवीशते मध्यमिकायां परिपूर्णे द्वे देवीशते बाह्यायां पञ्चसप्ततं देवीशतं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां स्थितिर्देशोनं पल्योपमं मध्यमिकायां सातिरेकमर्द्धपल्योपमं बाह्यायामर्द्धपल्योपमं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां स्थितिरर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायां देशोनमर्द्धपल्योपमं बाह्यायां सातिरेकं चतुर्भागपल्योपमं, शेषं प्राग्वत् । 'अवसेसाणं वेणुदेवाईणं महाघोसपज्जवसाणाणं ठाणपयवत्तव्वया भाणियव्वा' इति, 'अवशेषाणां' नागकुमारराजव्यतिरिक्तानां वेणुदेवादीनां महाघोषपर्यवसानानां स्थानाख्यप्रज्ञापनागतद्वितीयपदवक्तव्यता भणितव्या, सा चैवम्—"कहि णं भंते! सुवन्नकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए-असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं बावत्तरी भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया सेसं जहा ओहियाणं जाव विहरंति, वेणुदेवे वेणुदाली एत्थ दुवे सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव विहरंति । कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं भवणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसयसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे

जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं भवणा पण्णत्ता, एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा परिवसंति, वेणुदेवे एत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्ढिए जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ अट्ठत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं जाव विहरति ।" पर्षद्वक्तव्यताऽपि धरणवन्निरवशेषा वक्तव्या । 'कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं भवणा पन्नत्ता? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा, एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया जाव विहरंति, वेणुदाली य एत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्ढिए जाव पभासे०, (से णं) तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं सेसं जहा नागकुमाराणं।" पर्षद्वक्तव्यताऽपि भूतानन्दवन्निरवशेषा वक्तव्या । यथा सुवर्णकुमाराणां वक्तव्यता भणिता तथा शेषाणामपि वक्तव्या, नवरं भवननानात्वमिन्द्रनानात्वं परिमाणनानात्वं चैताभिर्गाथाभिरनुगन्तव्यम्—"चउसट्ठी असुराणं चुलसीई चेव होइ नागाणं । बावत्तरिं सुवण्णे वाउकुमाराण छन्नउई ॥१॥ दीवदिसाउदहीणं विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं । छण्हंपि जुयलयाणं बावत्तरिमो सयसहस्सा ॥ २ ॥ चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीसं ३ च सयसहस्साइं । पण्णा ४ चत्तालीसा १० दाहिणतो होंति भवणाइं ॥ ३ ॥ तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं ३ चेव सयसहस्साइं । छायाला ४ छत्तीसा १० उत्तरतो होंति भवणाइं ॥ ४ ॥ चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकंत ४ अग्गिसीहे ५ य । पुण्णे ६ जलकंते या अमिए ८ लंबे य ९ घोसे य १० ॥ ५ ॥ बलि १ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हरिस्सह ४ अग्गिमाणव

५ विसिट्ठे ६ । जलप्पभ अमियवाहण ८ पभंजणे ९ चेव महघोसे १० ॥ ६ ॥ चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं । सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥ ७ ॥" पर्षद्वक्तव्यताऽपि दाक्षिणात्यानां धरणवत्, उत्तराणां भूतानन्दवत्, तथा चाह— "परिसाओ सेसाणं भवणवईणं दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स, उत्तरिल्लाणं जहा भूयाणंदस्से"ति ॥ तदेवं भवन(पति)वक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति वानमन्तरवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! वाणमंतराणं देवाणं भवणा (भोमेज्जा णगरा) पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव विहरंति ॥ कहि णं भंते! पिसायाणं देवाणं भवणा पण्णत्ता?, जहा ठाणपदे जाव विहरंति, कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं पिसायकुमाराणं जाव विहरंति काले य एत्थ पिसायकुमारिंदे पिसायकुमारराया परिवसति महड्ढिए जाव विहरति ॥ कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—ईसा तुडिया दढरहा, अब्भिंतरिया ईसा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया दढरहा । कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ? जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता?, गो० कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररायस्स अब्भिंतरियपरिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ मज्झिमपरि-

साए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियपरिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ अब्भिंतरियाए परिसाए एगं देविसतं पण्णत्तं मज्झिमियाए परिसाए एगं देविसतं पण्णत्तं बाहिरियाए परिसाए एगं देविसतं पण्णत्तं। कालस्स णं भंते! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता? जाव बाहिरियाए देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिंतरपरिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परि० देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परि० देवाणं सातिरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भंतरपरि० देवीणं सातिरेगं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमपरि० देवीणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरपरिसाए देवीणं देसूणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमपरिसाए देवीणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरपरिसाए देवीणं देसूणं चउब्भागपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो जो चेव चमरस्स, एवं उत्तरस्सवि, एवं णिरंतरं जाव गीयजसस्स ॥ (सू० १२१)

'कहि णं भंते! वाणमंतराणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता?' क भदन्त! वानमन्तराणां देवानां भौमेयानि नगराणि प्रज्ञ-

ग्रानि ?, 'जहा ठाणपदे जाव विहरंति' इति, यथा स्थानाख्ये प्रज्ञापनायां द्वितीये पदे तथा वक्तव्यं यावद्विहरन्तीति, तत्रैवं—"गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठावि एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं वाणमन्तराणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जा नगरावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया उक्किण्णंतरविउलगंभीरखायपरिहा पागारट्टालयकवाडतोरणपडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घिमुसलमुसुंढिपरियरिया अयोज्झा सयाजया सयागुत्ता अडयालकोट्ठरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणददरदिन्नपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुन्दुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा परिवसंति, तंजहा—पिसाया भूया जक्खा रक्खसा किंनरा किंपुरिसा भुयगपतिणो महाकाया गंधव्वगणा य निउणगंधव्वगीयरमणा अणपन्निपणपन्निय इसिवाइय भूयवाइय कंदिय महाकंदिया य कुहंडपयंगदेवा चंचलचवलचित्तकीलणदवप्पिया गहिरहसियगीयणच्चणरई वणमालामेलमउडकुंडलसच्छंदविउव्वियाभरणचारुभूसणधरा सव्वोउयसुरहिकुसुमरइयपलंबसोहंतकंतवियसंतचित्तवणमालरइयवच्छा कामकामा कामरूवदेहधारी नाणाविहवण्णरागवरवत्थचित्तलगनियंसणा विविहदेसनेवत्थगहियवेसा पमुइयकंदप्पकलहकेलिकोलाहलप्पिया हासबोलबहुला असिमोग्गरसत्तिहत्था अणेगमणिरयणविविह (निजुत्त) चित्तचिंधगया

सुरूवा महिड्ढिया महायसा जाव महासोक्खा हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भोमेज्जनगरावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणीयाणं साणं २ अणीयाहिवईणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव भुंजमाणा विहरंति" प्रायः सुगमं, नवरं 'भुयगवइणो महाकाया' इति, महाकाया—महोरगाः, किंविशिष्टाः? इत्याह—भुजगपतयः, 'गन्धर्वगणाः' गन्धर्वसमुदायाः, किंविशिष्टाः? इत्याह—'निपुणगन्धर्वगीतरतयः' निपुणाः—परमकौशलोपेता एवं गन्धर्वा—गन्धर्वजातीया देवाखेयां यद् गीतं तत्र रतिर्येषां ते तथा, एते व्यन्तराणामष्टौ मूलभेदाः, इमे चान्येऽवान्तरभेदा अष्टौ—'अणपन्निय'इत्यादि, कथम्भूता एते षोडशापीत्यत आह—'चंचलचवलचित्तकीलणदवप्पिया' चञ्चला—अनवस्थितचित्तास्तथा चलचपलम्—अतिशयेन चपलं यच्चित्रं—नानाप्रकारं क्रीडनं यश्च चित्रो—नानाप्रकारो द्रवः—परिहासस्तौ प्रियौ येषां ते चलचपलचित्रक्रीडनद्रवप्रियाः, ततश्चञ्चलशब्देन विशेषणसमासः, तथा 'गहिरहसियगीयनच्चणरई' इति गम्भीरेषु हसितगीतनर्तनेषु रतिर्येषां ते तथा, तथा 'वणमालामेडमउलकुंडलसच्छंदविउव्वियाभरणभूसणधरा' इति वनमाला—वनमालामयानि आमेलमुकुटकुण्डलानि, आमेलः—आपीडशब्दस्य प्राकृतलक्षणवशाद् आपीडः—शेखरकः, तथा स्वच्छन्दं विकुर्वितानि यानि आभरणानि तैश्चारु भूषणं—मण्डनं तद्धरन्तीति वनमालाऽऽपीडमुकुटकुण्डलस्वच्छन्दविकुर्विताभरणचारुभूषणधराः, लिङ्गादिलादच्, तथा सर्वर्त्तुकैः—सर्वर्त्तुभाविभिः सुरभिकुसुमैः सुरचिताः—शोभनं निर्वर्त्तिताः तथा प्रलम्बत इति प्रलम्बा शोभत इति शोभमाना कान्ता—कमनीया विकसन्ती—अमुकुलिता अम्लानपुष्पमयी चित्रा—नानाप्रकारा वनमाला रचिता वक्षसि यैस्ते सर्वर्त्तुकसुरभिकुसुमरचितप्रलम्बशोभमानकान्तविकसच्चित्रवनमालारचितवक्षसः, तथा कामं

—स्वेच्छया गमो येषां ते कामगमाः—स्वेच्छाचारिणः, कचित् 'कामकामाः' इति पाठः, कामेन—स्वेच्छया कामो—मैथुनसेवा येषां ते
कामकामा अनियतकामा इत्यर्थः, तथा कामं—स्वेच्छया रूपं येषां ते कामरूपास्ते च ते देहाश्च कामरूपदेहास्तान् धरन्तीत्येवंशीलाः
कामरूपदेहधारिणः, स्वेच्छाविकुर्वितनानारूपदेहधारिण इत्यर्थः, तथा नानाविधैर्वर्णै रागो—रक्तता येषां तानि नानाविधवर्णरागाणि
वराणि—प्रधानानि चित्राणि—नानाविधानि अद्भुतानि वा (वस्त्राणि) चेल्ललकानि—देशीवचनाद् देदीप्यमानानि निर्यंसणं—परिधानं येषां ते
नानाविधवर्णरागवरवस्त्रचेल्ललकनिवसनाः तथा विविधैर्देशनेपथ्यैर्गृहीतो वेषो यैस्ते विविधदेशनेपथ्यगृहीतवेषाः, 'पमुइयकंदप्पक-
लहकेलिकोलाहलप्पिया' कन्दर्पः—कामोद्दीपनं वचनं चेष्टा च कलहो—राटिः केलिः—क्रीडा कोलाहलो—बोलः कन्दर्पकलहकेलिको-
लाहलाः प्रिया येषां ते कन्दर्पकलहकेलिकोलाहलप्रियाः, ततः प्रमुदितशब्देन सह विशेषणसमासः, 'हासबोलबहुला' इति हास-
बोलौ बहुलौ—अतिप्रभूतौ येषां ते हासबोलबहुलाः, तथाऽसिमुद्गरशक्तिकुन्ता हस्ते येषां ते असिमुद्गरशक्तिकुन्तहस्ताः, 'प्रहरणात् सप्तमी
चे'ति सप्तम्यन्तस्य पाक्षिकः परनिपातः, 'अणेगमणिरयणविविहनिजुत्तचित्तचिंधगया' इति, मणयः—चन्द्रकान्ताद्या रत्नानि—
कर्केतनादीनि अनेकैर्मणिरत्नैर्विविधं—नानाप्रकारं नियुक्तानि विचित्राणि—नानाप्रकाराणि चिह्नानि गतानि—स्थितानि येषां ते तथा, शेषं
प्राग्वत् ॥ 'कहि णं भंते! पिसायाणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता?' क भदन्त! पिशाचानां देवानां भौमेयानि नगराणि
प्रज्ञप्तानि? इत्यादि, 'जहा ठाणपदे जाव विहरंति' यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये पदे तथा वक्तव्यं यावद्विहरन्तीति पदं, तच्चैवं—
"कहि णं भंते! पिसाया देवा परिवसंति? गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं
जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जन-

गरावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं भोमेज्जनगरा वाहिं वट्टा जो ओहिओ भोमेज्जनगरवण्णतो सो भाणियव्वो जाव पडिरूवा, एत्थ णं पिसायाणं भोमेज्जनगरा पण्णत्ता, तत्थ णं वहवे पिसाया देवा परिवसंति महिड्डिया जहा ओहिया जाव विहरंति" सुगमं, "कालमहाकाला य एत्थ दुवे पिसाइंदा पिसायरायाणो परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति, कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं भोमेज्जा नगरा० वाहिं वट्टा जो ओहिओ भोमेज्जनगरवण्णतो सो भाणियव्वो जाव पडिरूवा, एत्थ णं पिसायाणं भोमेज्जनगरा पण्णत्ता। कहि णं भंते! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सवाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठावि एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता, तत्थ णं वहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति, काले य तत्थ पिसाइंदे पिसायराया परिवसति महिड्डिए जाव पभासेमाणे, से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जनगरावाससयसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च वहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमन्तराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरति" पाठसिद्धं ॥ सम्प्रति पर्षन्निरूपणार्थमाह—'कालस्स णं भंते! पिसायइंदस्स पिसायरन्नो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—ईसा तुडिया दढरहा अब्भितरिया ईसा' इत्यादि सर्वं प्राग्वत्, नवरमत्राभ्यन्तरिकायामष्टौ देवसहस्राणि मध्यमिकायां दश देवसहस्राणि वाह्यायां द्वादश देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि एकं देवीशतं मध्यमिकायामप्येकं देवीशतं वाह्यायामप्येकं देवीशतं, अभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां स्थितिरर्द्धपल्योपमं मध्यमिकायां देशोनमर्द्ध-

पल्योपमं वाह्यायां सातिरेकचतुर्भागपल्योपमं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां सातिरेकं चतुर्भागपल्योपमं मध्यमिकायां चतुर्भागपल्योपमं वाह्यायां देशोनं चतुर्भागपल्योपमं, शेषं प्राग्वत्। "कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं पिसायाणं भोमेज्जा नगरा पण्णत्ता?, कहि णं भंते! उत्तरिल्ला पिसाया देवा परिवसंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया तहेव उत्तरिल्लाणंपि, नवरं मन्दरस्स उत्तरेणं, महाकाले इत्थ पिसाइंदे पिसायराया परिवसति जाव विहरति" पाठसिद्धं, पर्षद्वक्तव्यताऽपि कालवत्, "एवं जहा पिसायाणं तहा भूयाणवि जाव गंधव्वाणं नवरं इंदेसु नाणत्तं भाणियव्वं, इमेण विहिणा—भूयाणं सुरूवपडिरूवा, जक्खाणं पुण्णभद्दमाणिभद्दा, रक्खसाणं भीममहाभीमा, किंनराणं किंनरकिंपुरिसा, किंपुरिसाणं सप्पुरिसमहापुरिसा, महोरगाणं अइकायमहाकाया, गंधव्वाणं गीयरईगीयजसा—'काले य महाकाले सुरूवपडिरूवपुण्णभद्दे य। अमरवइमाणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे ॥ १ ॥ किंनरकिंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे। अइकायमहाकाए गीयरई चेव गीयजसे ॥ २ ॥" सुगमम्, पर्षद्वक्तव्यताऽपि कालवन्निरन्तरं वक्तव्या यावद्गीतयशसः॥ तदेवमुक्ता वानमन्तरवक्तव्यता सम्प्रति ज्योतिष्काणामाह—

कहि णं भंते! जोइसियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! जोतिसिया देवा परिवसंति?, गोयमा! उप्पिं दीवसमुद्दाणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो सत्तणउए जोयणसते उड्ढं उप्पतित्ता दसुत्तरसया जोयणबाहल्लेणं, तत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोतिसियविमाणावाससतसहस्सा भवंतीतिमक्खायं, ते णं विमाणा अद्धकविट्ठकसंठाणसंठिया एवं जहा ठाणपदे जाव चंदमसूरिया य तत्थ णं जोतिसिंदा जोतिसरायाणो

परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति ॥ सूरस्स णं भंते! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—तुंबा तुडिया पेचा, अब्भिंतरया तुंबा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया पेचा, सेसं जहा कालस्स परिमाणं, ठितीवि। अट्ठो जहा चमरस्स। चंदस्सवि एवं चेव ॥ (सू० १२२)

'कहि णं भंते! जोइसियाण'मित्यादि, क भदन्त! ज्योतिष्काणां देवानां विमानानि प्रज्ञप्तानि? क भदन्त! ज्योतिष्का देवाः परिवसन्ति?, भगवानाह—गौतम! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् रुचकोपलक्षितात् 'सप्तनवतिशतानि' सप्तनवत्यधिकानि योजनशतान्यूर्द्धमुत्प्लुत्य—उत्प्लुत्याऽतिक्रम्य दशोत्तरयोजनशतबाहल्ये तिर्यगसङ्ख्येयेऽसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणे ज्योतिर्विषये 'अत्र' एतस्मिन् प्रदेशे ज्योतिष्काणां देवानां तिर्यगसङ्ख्येयानि ज्योतिष्कविमानशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, तानि च विमानान्यर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितानि, अत्राक्षेपपरिहारौ चन्द्रप्रज्ञप्तिटीकायां सूर्यप्रज्ञप्तिटीकायां सङ्ग्रहणिटीकायां चाभिहिताविति ततोऽवधार्यौ, 'सव्वफालियामया' सर्वात्मना स्फटिकमयानि सर्वस्फटिकमयानि 'जहा ठाणपदे जाव चंदमसूरिया एत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसरायाणो परिवसंति महिड्डिया जाव विहरंति' यथा प्रज्ञापनायां स्थानाख्ये द्वितीये पदे तथा वक्तव्यं यावच्चन्द्रसूर्यौ, द्वावत्र ज्योतिष्केन्द्रौ ज्योतिष्कराजानौ परिवसतस्ततोऽप्यूर्द्धं यावद्विहरन्तीति, एतच्चैवं—"अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव विविहमणिकणगरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागछत्तातिछत्तकलिया तुंगा गगणतलमभिलंघमाणसिहरा जालंतररयणा पंजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयवत्तपोंडरीया तिलगरयणद्धचंदचित्ता नाणामणिमयदामालंकिया अंतो बहिं च

सण्हा तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं जोइसियाणं विमाणा पण्णत्ता, एत्थ णं जोइसिया देवा परिवसंति, तंजहा—बिहस्सती चंदसूरा सुक्कसणिच्छरा राहू धूमकेउबुहा अंगारका तत्ततवणिज्जकणगवण्णा जया तहा जोइसंमि चारं चरंति केऊ य गइरतीया अट्ठावीसइविहा य नक्खत्तदेवगणा नाणासंठाणसंठिया य पंचवण्णा य तारगाओ ठियलेसाचारिणो अविस्सामममंडलगई पत्तेयनामंकपायडियचिंधमउडा महिड्ढिया जाव पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाहिवईणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति, चंदिमसूरिया य एत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसियरायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं जोइसियविमाणावाससयसहस्साणं चउण्हं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति" इति, अभ्युद्गता—आभिमुख्येन सर्वतो गता उत्सृता—प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा—दीप्तिस्तया सितानि—धवलानि अभ्युद्गतोत्सृतप्रभासितानि, तथा विविधानां मणिकनकरत्नानां या भक्तयो—विच्छित्तिविशेषास्ताभिश्चित्राणि—आश्चर्यभूतानि विविधमणिकनकभक्तिचित्राणि, 'वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागच्छत्ताइच्छत्तकलिया' वातोद्धूता—वायुकम्पिता विजयः—अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्त्यभिधाना याः पताकाः, अथवा विजय इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो विजयवैजयन्त्यः—पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः छत्रातिच्छत्राणि—उपर्युपरि स्थितानि छत्राणि तैः कलितानि वातोद्धूतविजयवैजयन्ती-

पताकाछत्रातिच्छत्रकलितानि 'तुङ्गानि' उच्चानि, तथा गगनतलम्—अम्बरतलमनुलिखन्—अभिलङ्घयन् शिखरं येषां तानि गगनतलानुलिखच्छिखराणि, तथा जालानि—जालकानि तानि च भवनभित्तिषु लोकप्रतीतानि, तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि यत्र तानि जालान्तररत्नानि, तथा पञ्जराद् उन्मीलितवद् यथा हि किल किमपि वस्तु पञ्जराद्—वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद् बहिष्कृतमत्यन्तमनष्टच्छायत्वात् शोभते तथा तान्यपि विमानानीति भावः, तथा मणिकनकानां सम्बन्धिनी स्तूपिका—शिखरं येषां तानि मणिकनकस्तूपिकानि, ततः पूर्वपदाभ्यां सह विशेषणसमासः, तथा विकसितानि यानि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च द्वारादिषु प्रतिकृतित्वेन स्थितानि तिलकाश्च—भित्त्यादिषु पुण्ड्राणि रत्नमयाश्चार्द्धचन्द्रा द्वारादिषु तैश्चित्राणि विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नार्द्धचन्द्रचित्राणि, तथा नानामणिमयीभिर्दामभिरलङ्कृतानि नानामणिमयदामालङ्कृतानि, तथाऽन्तर्वहिश्च श्लक्ष्णानि—मसृणानि, तथा तपनीयं—सुवर्णविशेषस्तन्मय्या रुचिराया वालुकायाः—सिकतायाः प्रस्तटः—प्रतरो येषु तानि तपनीयरुचिरवालुकाप्रस्तटानि, तथा सुखस्पर्शानि शुभस्पर्शानि वा शेषं प्राग्वद् यावद् 'वहस्सइचंदा' इत्यादि, बृहस्पतिचन्द्रसूर्यशुक्रशनैश्चरराहुधूमकेतुबुधाङ्गारकाः तप्ततपनीयकनकवर्णाः—ईषद्रक्तकनकवर्णाः, तथा ये ग्रहा ज्योतिष्के—ज्योतिश्चक्रे चारं चरन्ति केतवः ये च वाह्यद्वीपसमुद्रेष्वगतिरतिकाः ये चाष्टाविंशतिविधा नक्षत्रदेवगणास्ते सर्वेऽपि नानाविधसंस्थानसंस्थिताः चशब्दात्तप्ततपनीयकनकवर्णाश्च, तारकाः पञ्चवर्णाः, एते च सर्वेऽपि स्थितलेश्या—अवस्थिततेजोलेश्याकाः, तथा ये चारिणः—चाररतास्तेऽविश्राममण्डलगतिकाः, तथा सर्वेऽपि प्रत्येकं नामाङ्केन—स्वस्वनामाङ्कपातेन प्रकटित चिह्नं मुकुटो येषां ते प्रत्येकं स्वनामाङ्कप्रकटितमुकुटचिह्नाः, किमुक्तं भवति ?—चन्द्रस्य स्वमुकुटे चण्द्रमण्डलं लाञ्छनं स्वनामाङ्कप्रकटितं सूर्यस्य सूर्यमण्डलं ग्रहस्य ग्रहमण्डलं नक्षत्रस्य नक्षत्रमण्डलं तारकस्य तारकाकारमिति, शेषं प्राग्वत् ॥ पर्षन्निरूपणार्थमाह

—'सूरस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा! तिन्नि परिसाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—तुंबा तुडिया पेषा, अब्भिंतरिया तंबा मज्झिमिया तुडिया बाहिरिया पेषा, सेसं जहा कालस्स, अट्ठो जहा चमरस्स, चन्दस्सवि एवं चेव' पाठसिद्धं ज्योतिष्कास्तिर्यग्लोक इति तिर्यग्लोकप्रस्तावाद्वीपसमुद्रवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! दीवसमुद्दा? केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा? केमहालया णं भंते! दीवसमुद्दा? किंसंठिया णं भंते! दीवसमुद्दा? किमाकारभावपडोयारा णं भंते! दीवसमुद्दा णं पन्नत्ता?, गोयमा! जंबुदीवाइया दीवा लवणादीया समुद्दा संठाणतो एकविहविधाणा वित्थारतो अणेगविधविधाणा दुगुणादुगुणे पडुप्पाएमाणा २ पवित्थरमाणा २ ओभासमाणवीचीया बहुउप्पलपउमकुमुदणलिणसुभगसोगंधियपोंडरीयमहापोंडरीयसतपत्तसहस्सपत्तपप्फुल्लकेसरोवचिता पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता अस्सिं तिरितलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा सयंभुरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ (सू० १२३)

'कहि णं भंते! दीवसमुद्दा' इत्यादि, 'क्व' कस्मिन् णमिति वाक्यालङ्कारे 'भदन्त!' परमकल्याणयोगिन्! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः ?, अनेन द्वीपसमुद्राणामवस्थानं पृष्टं, 'केवइया णं भंते! दीवसमुद्दा' इति 'कियन्तः' कियत्सङ्ख्याका णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः ?, अनेन द्वीपसमुद्राणां सङ्ख्यानं पृष्टं, 'केमहालिया णं भंते! दीवसमुद्दा' इति किं महानालय—आश्रयो व्याप्यक्षेत्ररूपो येषां ते महालयाः किंप्रमाणमहालया णमिति प्राग्वद् द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः ?, किंप्रमाणं द्वीपसमुद्राणां महत्त्वमिति

भावः, एतेन द्वीपसमुद्राणामायामादिपरिमाणं पृष्टं, तथा 'किंसंठिया णं भंते! दीवसमुद्दा' इति किं संस्थितं—संस्थानं येषां ते किं-संस्थिता णमिति पूर्ववद् भदन्त! द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, अनेन संस्थानं पप्रच्छ, 'किमागारभावपडोयारा णं भंते! दीवसमुद्दा पण्णत्ता' इति आकारभावः—स्वरूपविशेषः कस्याकारभावस्य प्रत्यवतारो येषां ते किमाकारभावप्रत्यवताराः, बहुलग्रहणाद्वैयधिकरण्येऽपि समासः, णमिति पूर्ववद्, द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ताः?, किं स्वरूपं द्वीपसमुद्राणामिति भावः, अनेन स्वरूपविशेषविषयः प्रश्नः कृतः, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि, गौतम! जम्बूद्वीपादयो द्वीपा 'लवणादिकाः' लवणसमुद्रादिकाः समुद्राः, अनेन द्वीपानां समुद्राणां चादिरुक्तः, एतच्चापृष्टमपि भगवता कथितमुत्तरत्रोपयोगित्वात् गुणवते शिष्यायापृष्टमपि कथनीयमिति ख्यापनार्थं च, 'संठाणतो' इत्यादि, 'संस्थानतः' संस्थानमाश्रित्य 'एगविहिविहाणा' इति एकविधि—एकप्रकारं विधानं येषां ते एकविधिविधानाः, एकस्वरूपा इति भावः, सर्वेषां वृत्तसंस्थानसंस्थितत्वाद्, 'विस्तारतः' विस्तारमधिकृत्य पुनरनेकविधिविधानाः अनेकविधानि—अनेकप्रकाराणि विधानानि येषां ते तथा, विस्तारमधिकृत्य नानास्वरूपा इत्यर्थः, तदेव नानास्वरूपत्वमुपदर्शयति—'दुगुणादुगुणे पडुप्पाएमाणा २ पवित्थरमाणा' इति, द्विगुणं द्विगुणं यथा भवति एवं प्रत्युत्पद्यमाना गुण्यमाना इत्यर्थः, 'प्रविस्तरन्तः' प्रकर्षेण विस्तारं गच्छन्तः, तथाहि—जम्बूद्वीप एकं लक्षं लवणसमुद्रो द्वे लक्षे धातकीखण्डश्चत्वारि लक्षाणीत्यादि, 'ओभासमाणवीचीया' इति अवभासमाना वीचयः—कल्लोला येषां ते अवभासमानवीचयः, इदं विशेषणं समुद्राणां प्रतीतमेव, द्वीपानामपि च वेदितव्यं, तेष्वपि ह्रदनदीतडागादिषु कल्लोलसम्भवात्, तथा बहुभिरुत्पलपद्मकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रैः 'पप्फुल्ल'त्ति प्रफुल्लैः—विकसितैः 'केसरे'ति केसरोपलक्षितैरुपचिताः—उपचितशोभाका बहूत्पलपद्मकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापौण्डरीकशतपत्रसह-

त्रपत्रप्रफुल्लकेसरोपचिताः, तत्रोत्पलं—गर्दभकं पद्मं—सूर्यविकासि कुमुदं—चन्द्रविकासि नलिनम्—ईषद्रक्तं पद्मं सुभगं—पद्मविशेषः सौग-
न्धिकं—कल्हारं पौण्डरीकं—सिताम्बुजं तदेव बृहत् महापौण्डरीकं शतपत्रसहस्रपत्रे—पद्मविशेषौ पत्रसङ्ख्याकृतभेदौ, 'पत्तेयं २' इति
प्रतिशब्दोऽत्राभिमुख्ये 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' इति च समासस्ततो वीप्साविवक्षायां प्रत्येकशब्दस्य द्विर्वचनं पद्मवरवेदिकापरि-
क्षिप्ताः प्रत्येकं वनखण्डपरिक्षिप्ताश्च 'सयंभूरमणपज्जवसाणा' इति जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः स्वयम्भूरमणद्वीपपर्यवसाना लवणसमुद्रादयः
समुद्राः स्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यवसाना अस्मिन् तिर्यग्लोके यत्र वयं स्थिता असङ्ख्येया द्वीपसमुद्राः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! इह
'अस्सिं तिरियलोए' इत्यनेन स्थानमुक्तम्, 'असंखेज्जा' इत्यनेन सङ्ख्यानं, 'दुगुणादुगुण'मित्यादिना महत्त्वं 'संठाणतो' इत्यादिना
संस्थानम् ॥ सम्प्रत्याकारभावप्रत्यवतारं विवक्षुरिदमाह—

तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे णामं दीवे दीवसमुदाणं अब्भितरिए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसं-
ठिते वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिते वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिते वट्टे पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिते,
एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं
दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसते तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलकं
च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥ से णं एक्काए जगतीए सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते॥
सा णं जगती अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं
विक्खंभेणं उप्पिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया

गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्ववइरामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ सा णं जगती एक्केणं जालकडएणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ से णं जालकडए णं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे (जाव) [घट्ठे मट्ठे णीरए णिम्मले णिप्पंके णिक्कंकडच्छाए सप्पभे [सस्सिरीए] समरीए सउज्जोए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे] पडिरूवे ॥ (सू० १२४)

'तत्थ ण'मित्यादि, 'तत्र' तेषु द्वीपसमुद्रेषु मध्ये 'अयं' यत्र वयं वसामो जम्बूद्वीपो नाम द्वीपः, कथम्भूतः ? इत्याह—सर्वद्वीपसमुद्राणां '**सर्वाभ्यन्तरकः**' सर्वात्मना—सामस्त्येनाभ्यन्तरः सर्वाभ्यन्तर एव सर्वाभ्यन्तरकः, प्राकृतलक्षणात्स्वार्थे कप्रत्ययः, केषां सर्वात्मनाऽभ्यन्तरकः ?, उच्यते, सर्वद्वीपसमुद्राणां, तथाहि—सर्वेऽपि शेषा द्वीपसमुद्रा जम्बूद्वीपादारभ्यागमाभिहितेन क्रमेण द्विगुणद्विगुणविस्तारास्ततो भवति सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरकः, अनेन जम्बूद्वीपस्यावस्थानमुक्तं, '**सव्वखुड्डाग**' इति सर्वेभ्योऽपि शेषद्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लको—लघुः सर्वक्षुल्लकः, तथाहि—सर्वे लवणादयः समुद्राः सर्वे च धातकीखण्डादयो द्वीपा जम्बूद्वीपादारभ्य द्विगुणद्विगुणायामविष्कम्भपरिधयस्ततः शेषद्वीपसमुद्रापेक्षयाऽयं लघुरिति, एतेन सामान्यतः परिमाणमुक्तं, विशेपतस्त्वायामादिगतं परिमाणमग्रे वक्ष्यति, तथा वृत्तोऽयं जम्बूद्वीपो यतस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तैलेन पक्कोऽपूपस्तैलापूपः, तैलेन हि पक्कोऽपूपः प्रायः परिपूर्णवृत्तो भवति न घृतपक्क इति तैलविशेषणं, तस्येव यत्संस्थानं तेन संस्थितस्तैलापूपसंस्थानसंस्थितः, तथा वृत्तोऽयं जम्बूद्वीपो यतो '**रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः**'

रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, एवं
रथस्य—रथाङ्गस्य चक्रस्यावयवे समुदायोपचाराच्चक्रवालं—मण्डलं तस्येव यत् संस्थानं तेन संस्थितो रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, एवं
वृत्तः पुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितः पुष्करकर्णिका—पद्मबीजकोशः वृत्तः परिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः पदद्वयं भावनीयम्, एतेन जम्बू-
द्वीपस्य संस्थानमुक्तम् ॥ सम्प्रत्यायामादिपरिमाणमाह—'एक्कं ण'मित्यादि, एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन, आयामश्च विष्क-
म्भश्च आयामविष्कम्भं, समाहारो द्वन्द्वः, तेन, आयामेन विष्कम्भेन चेत्यर्थः, त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे योजन-
शते सप्तविंशत्यधिके त्रयः क्रोशा अष्टाविंशम्—अष्टाविंशत्यधिकं धनुःशतं त्रयोदशाङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकमित्येतावान्
परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, इदं च परिक्षेपपरिमाणं 'विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरओ होइ ।' इति करणवशात्स्वयमानेतव्यं क्षेत्रस-
मासटीका वा परिभावनीया, तत्र गणितभावनायाः सविस्तरं कृतत्वात् ॥ सम्प्रत्याकारभावप्रत्यवतारप्रतिपादनार्थमाह—'से णं'मि-
त्यादि, 'सः' अनन्तरोक्तायामविष्कम्भपरिक्षेपपरिमाणो जम्बूद्वीपो णमिति वाक्यालङ्कारे एकया जगत्या सुनगरप्राकारकल्पया 'स-
र्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन 'संपरिक्षिप्तः' सम्यग्वेष्टितः ॥ 'सा णं जगई' इत्यादि, सा च जगती ऊर्द्धम्—उच्चैस्त्वे-
नाष्टौ योजनानि मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेन मध्येऽष्टौ उपरि चत्वारि, अत एव मूले विष्कम्भमधिकृत्य विस्तीर्णा, मध्ये सं-
क्षिप्ता त्रिभागोनत्वात्, उपरि तनुका, मूलापेक्षया त्रिभागमात्रविस्तारभावात्, एतदेवोपमया प्रकटयति—'गोपुच्छसंठाणसंठिया'
गोपुच्छस्येव संस्थानं गोपुच्छसंस्थानं तेन संस्थिता गोपुच्छसंस्थानसंस्थिता ऊर्द्धीकृतगोपुच्छाकारा इति भावः, 'सव्ववइरामई' सर्वा-
त्मना—सामस्त्येन वज्रमयी—वज्ररत्नात्मिका 'अच्छा' आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छा 'सण्हा लण्हा' श्लक्ष्णा-श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिष्पन्ना श्ल-
क्ष्णदलनिष्पन्नपटवत् 'लण्हा' मसृणा घुण्टितपटवत् 'घट्ठा' घृष्टा इव घृष्टा खरशानया पाषाणप्रतिमावत् 'मट्ठा' मृष्टा इव मृष्टा सुकु-

मारशानया पाषाणप्रतिमावत् **'नीरजा'** स्वाभाविकरजोरहितत्वात् **'निर्मला'** आगन्तुकमलाभावात् **'निष्पङ्का'** कलङ्कविकला कर्दमरहिता वा **'निक्कंकडच्छाया'** इति निष्कङ्कटा निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेति भावार्थः छाया—दीप्तिर्यस्याः सा निष्कङ्कटच्छाया **'सप्रभा'** स्वरूपतः प्रभावती **'समरीचा'** बहिर्विनिर्गतकिरणजाला, अत एव **'सोद्योता'** बहिर्व्यवस्थितवस्तुस्तोमप्रकाशकरी **'प्रासादीया'** प्रसादाय—मनःप्रसत्तये हिता तत्कारित्वात् प्रासादीया मनःप्रह्लत्तिकारिणीति भावः **'दर्शनीया'** दर्शनयोग्या यां पश्यतश्चक्षुषी श्रमं न गच्छत इति **'अभिरूवा'** इति अभि—सर्वेषां द्रष्टॄणां मनःप्रसादानुकूलतयाऽभिमुखं रूपं यस्याः सा अभिरूपा, अत्यन्तकमनीयेति भावः, अत एव **'प्रतिरूपा'** प्रतिविशिष्टम्—असाधारणं रूपं यस्याः सा प्रतिरूपा, अथवा प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूपं यस्याः सा प्रतिरूपा ॥ **'सा णं जगती'** इत्यादि, **'सा'** अनन्तरोदितस्वरूपा णमिति वाक्यालङ्कारे जगती एकेन **'जालकटकेन'** जालानि—जालकानि यानि भवनभित्तिषु लोकेऽपि प्रसिद्धानि तेषां कटकः—समूहो जालकटको जालकाकीर्णो रम्यसंस्थानप्रदेशविशेषपङ्क्तिरिति भावः, तेन जालकटकेन **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता ॥ **'से णं जालकडए'** इत्यादि, **'सः'** जालकटक ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेनार्द्धयोजनं—द्वे गव्यूते विष्कम्भेन पञ्च धनुःशतानि, किमुक्तं भवति ?—जगत्या प्रायो बहुमध्यभागे सर्वत्र जालकानि तानि च प्रत्येकमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे गव्यूते विष्कम्भतः पञ्चधनुःशतानीति, स च जालकटकः **'सव्वरयणामए'** इति सर्वात्मना रत्नमयः **'अच्छे सण्हे लण्हे जाव पडिरूवे'** इति यावच्छब्दकरणात् 'घट्ठे मट्ठे नीरए निम्मले निप्पंके निक्कंकडच्छाये सप्पभे समरीए सउज्जोए पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे' इति परिग्रहः, एतेषां [ग्रन्थाग्रम् ५०००] पदानामर्थः प्राग्वत् ॥

तीसे णं जगतीए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महई पउमवरवेदिया पं०, सा णं पउमवरवे-

दिया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए जगतीसमिया परिक्खेवेणं सव्वरयणामई० ॥ तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहितक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया कलेवरा कलेवरसंघाडा णाणामणिमया रूवा नाणामणिमया रूवसंघाडा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोतिरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य रययामईओ पट्टियाओ जातरूवमयीओ ओहाडणीओ वइरामयीओ उवरि पुञ्छणीओ सव्वसेए रययामते साणं छादणे॥ सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं (एगमेगेणं गवक्खजालेणं) एगमेगेणं खिंखिणिजालेणं जाव मणिजालेणं (कणयजालेणं रयणजालेणं) एगमेगेणं पउमवरजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभितसमुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणउत्तरागतेहिं वाएहिं मंदागं २ एज्जमाणा २ कंपिज्जमाणा २ लंबमाणा २ पझंझमाणा २ सद्दायमाणा २ तेणं ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणणेव्वुतिकरेणं सद्देणं सव्वतो समंता आपूरेमाणा सिरीए अतीव उवसोभेमाणा उव० चिट्ठंति ॥ तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा गयसंघाडा नरसंघाडा किण्णरसंघाडा किंपुरिससंघाडा महोरगसंघाडा गंधव्वसंघाडा वसहसंघाडा सव्वर-

यणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरिया सउज्जोया पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयपंतीओ तहेव जाव पडिरूवाओ । एवं हयवीहीओ जाव पडिरूवाओ । एवं हयमिहुणाइं जाव पडिरूवाइं ॥ तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमलयाओ नागलताओ, एवं असोग० चंपग० चूयवण० वासंति० अतिमुत्तग० कुंद० सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव सुविहत्तपिंडमंजरिवडिंसकधरीओ सव्वरयणामईओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिम्मलाओ णिप्पंकाओ णिक्कंकडच्छायाओ सप्पभाओ समिरीयाओ सउज्जोयाओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ॥ [तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा] ॥ से केणट्ठेणं (भंते!) एवं वुचइ—पउमवरवेइया पउमवरवेइया?, गोयमा! पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वेदियासु वेतियाबाहासु वेदियासीसफलएसु वेदियापुडंतरेसु खंभेसु खंभबाहासु खंभसीसेसु खंभपुडंतरेसु सूईसु सूईमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडंतरेसु पक्खेसु पक्खबाहासु पक्खपेरंतरेसु बहूइं उप्पलाइं पउमाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं णीरयाइं णिम्मलाइं निप्पंकाइं निक्कंकड-

च्छायाइं सप्पभाइं समिरीयाइं सउज्जोयाइं पासादीयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं
महता २ वासिक्कच्छत्तसमयाइं पण्णत्ताइं समणाउसो!, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ पउमवरवे-
दिया २ ॥ पउमवरवेइया णं भंते! किं सासया असासया?, गोयमा! सिय सासया सिय अ-
सासया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया?, गोयमा! दव्वट्ठयाए
सासता वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासता, से तेणट्ठेणं गोयमा!
एवं वुच्चइ—सिय सासता सिय असासता ॥ पउमवरवेइया णं भंते! कालओ केवच्चिरं होति?,
गोयमा! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सति ॥ भुविं च भवति य भवि-
स्सति य धुवा नियया सासता अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया ॥ (सू० १२५)

'तीसे णं जगतीए' इत्यादि, 'तस्याः' यथोक्तरूपाया जगत्याः 'उपरि' उपरितने तले यो वहुमध्यदेशभागः, सूत्रे एकारान्तता मागधदेशभाषालक्षणानुरोधात् यथा 'कयरे आगच्छइ दित्तरूवे?' इत्यत्र, 'एत्थ ण'मिति 'अत्र' एतस्मिन् वहुमध्यदेशभागे णमिति पूर्ववत् महती एका पद्मवरवेदिका प्रज्ञप्ता मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, सा चोर्द्धमुच्चैस्त्वेनार्द्धयोजनं—द्वे गव्यूते पञ्च धनुःशतानि विष्कम्भेन 'जगतीसमिया' इति जगत्याः समा—समाना जगतीसमा सैव जगतीसमिका 'परिक्षेपेण' परिरयेण यावान् जगत्या मध्यभागे परिरयस्तावान् तस्या अपि परिरय इति भावः, 'सर्वरत्नमयी' सामस्त्येन रत्नात्मिका 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं पाठतोऽर्थतश्च प्राग्वत् ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या णमिति पूर्ववत् पद्मवरवेदिकायाः 'अयं' वक्ष्यमाणः 'एतद्रूपः' एवंस्वरूपः 'वर्णा-

वासः' वर्णः—श्लाघा यथावस्थितस्वरूपकीर्त्तनं तस्यावासो—निवासो ग्रन्थपद्धतिरूपो वर्णावासो वर्णकनिवेश इत्यर्थः 'प्रज्ञप्तः' प्ररूपितः, 'तद्यथेत्यादिना तदेव दर्शयति—'वइरामया नेमा' इति नेमा नाम पद्मवरवेदिकाया भूमिभागादूर्द्धं निष्क्रामन्तः प्रदेशास्ते सर्वे 'वज्रमयाः' वज्ररत्नमयाः, वज्रशब्दस्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यं, रिष्ठमयानि प्रतिष्ठानानि—मूलपादाः 'वेरुलियमया खंभा' इति वैडूर्यरत्नमयाः स्तम्भाः सुवर्णरूप्यमयानि फलकानि लोहिताक्षरत्नात्मिकाः सूचयः फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयास्ते सर्वे 'वइरामया संधी' वज्रमयाः सन्धयः—सन्धिमेलाः फलकानां, किमुक्तं भवति ?—वज्ररत्नापूरिताः फलकानां सन्धयः 'नाणामणिमया कलेवरा' इति नानामणिमयानि कलेवराणि—मनुष्यशरीराणि नानामणिमयाः कलेवरसङ्घाटा—मनुष्यशरीरयुग्मानि नानामणिमयानि रूपाणि—रूपकाणि नानामणिमया रूपसङ्घाटाः—रूपयुग्मानि 'अङ्कामया पक्खा पक्खवाहातो य' इति अङ्को—रत्नविशेषस्तन्मयाः पक्षास्तदेकदेशाः पक्षवाहवोऽपि तदेकदेशभूता एवाङ्कमयाः, आह च मूलटीकाकारः—"अङ्कमयाः पक्षास्तदेकदेशभूताः, एवं पक्षवाहवोऽपि द्रष्टव्या" इति, 'जोईरसामया वंसा वंसकवेल्लुया य' इति ज्योतीरसं नाम रत्नं तन्मया वंशाः—महान्तः पृष्ठवंशाः 'वंशकवेल्लुया य' इति महतां पृष्ठवंशानामुभयतस्तिर्यक् स्थाप्यमाना वंशाः कवेल्लुकानि—प्रतीतानि 'रययामईओ पट्टियाओ' इति रजतमय्यः पट्टिका वंशानामुपरि कम्बास्थानीयाः 'जायरूवमईओ ओहाडणीओ' जातरूपं—सुवर्णविशेषस्तन्मय्यः 'ओहाडणीओ' अवघाटिन्यः आच्छादनहेतुकम्बोपरिस्थाप्यमानमहाप्रमाणकिलिञ्चस्थानीयाः, 'वइरामईओ उवरिं पुंछणीओ' इति 'वज्रमय्यो' वज्ररत्नात्मिका अवघाटनीनामुपरि पुञ्छन्यः—निविडतरच्छादनहेतुश्लक्ष्णतरतृणविशेषस्थानीयाः, उक्तं च मूलटीकाकारेण—"ओहाडणी हीरगहणं महत् क्षुल्लकं तु पुञ्छनी इति, 'सव्वसेए रययामए सा णं छाणे' इति, सर्वश्वेतं रजतमयं

पुञ्छनीनामुपरि कवेल्लुकानामध आच्छादनम् ॥ 'सा ण'मित्यादि, 'सा' एवंस्वरूपा णमिति वाक्यालङ्कारे पद्मवरवेदिका तत्र तत्र प्रदेशे एकैकेन 'हेमजालेन' सर्वात्मना हेममयेन लम्बमानेन दामसमूहेन एकैकेन 'गवाक्षजालेन' गवाक्षाकृतिरत्नविशेषदामसमूहेन एकैकेन 'किङ्किणीजालेन' किङ्किण्यः—क्षुद्रघण्टिकाः एकैकेन घण्टाजालेन, किङ्किण्यपेक्षया किञ्चिन्महत्यो घण्टा घण्टाः, तथा एकैकेन 'मुक्ताजालेन' मुक्ताफलमयेन दामसमूहेन एकैकेन 'मणिजालेन' मणिमयेन दामसमूहेन एकैकेन 'कनकजालेन' कनकं—पीतरूपः सुवर्णविशेषस्तन्मयेन दामसमूहेन एकैकेन रत्नजालेन एकैकेन (वर) पद्मजालेन—सर्वरत्नमयपद्मात्मकेन दामसमूहेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सर्वासु विदिक्षु परिक्षिप्ता, एतानि च दामसमूहरूपाणि हेमजालादीनि जालानि लम्बमानानि वेदितव्यानि, तथा चाह—'ते णं जाला' इत्यादि, तानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, प्राकृते हि लिङ्गमनियतमिति, णमिति पूर्ववत् हेमजालादीनि क्वचित् दामा इति पाठः तत्र ता हेमजालादिरूपा दामान इति व्याख्येयं, 'तवणिज्जलंबूसगा' तपनीयम्—आरक्तं सुवर्णं तन्मयो लम्बूसगो—दाम्नामग्रिमभागे मण्डनविशेषो येषां तानि तपनीयलम्बूसकानि 'सुवण्णपयरगमंडिया' इति पार्श्वतः सामस्त्येन सुवर्णप्रतरकेण—सुवर्णपत्रकेण मण्डितानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि, 'नाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदया' इति नानारूपाणां मणीनां रत्नानां च ये विविधा—विचित्रवर्णा हारा—अष्टादशसरिका अर्द्धहारा—नवसरिकास्तैरुपशोभितः समुदायो येषां तानि, तथा 'ईसिमन्नमन्नमसंपत्ता' इति ईषत्—मनाग् अन्योऽन्यं—परस्परमसंप्राप्तानि—असंलग्नानि पूर्वापरदक्षिणोत्तरागतैर्वातैः 'मंदायं मंदायं' इति मन्दं मन्दम् एज्यमानानि—कम्प्यमानानि 'भृशाभीक्ष्ण्याविच्छेदे द्विः प्राक्तमबादेः' इत्यविच्छेदे द्विर्वचनं यथा पचति पचतीत्यत्र, एवमुत्तरत्रापि, ईषत्कम्पनवशादेव च प्रकर्पत इतस्ततो मनाक् चलनेन लम्बमानानि प्रलम्बमानानि, ततः

परस्परसंपर्कवशतः 'पझंझमाणा पझंझमाणा' इति शब्दायमानानि शब्दायमानानि 'उदारेण' स्फारेण शब्देनेति योगः, स च स्फारशब्दो मनःप्रतिकूलोऽपि भवति तत आह—'मनोज्ञेन' मनोऽनुकूलेन, तच्च मनोऽनुकूलत्वं लेशतोऽपि स्यादत आह—'मनोहरेण' मनांसि श्रोतॄणां हरति—आत्मवशं नयतीति मनोहरः, 'लिहादे'राकृतिगणत्वादच्प्रत्ययः, तेन, तदपि मनोहरत्वं कुतः ? इत्याह—कर्णमनोनिर्वृतिकरेण—'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति वचनाद् हेतौ तृतीया, ततोऽयमर्थः—यतः श्रोतृकर्णयोर्मनसश्च निर्वृतिकरः—सुखोत्पादकस्ततो मनोहरस्तेन, इत्थम्भूतेन शब्देन तान् प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् 'सर्वतः' दिक्षु 'समन्ततः' विदिक्षु आपूरयन्ति शत्रन्तस्य शाविदं रूपं, तत एव 'श्रिया' शोभयाऽतीव उपशोभमानानि उपशोभमानानि तिष्ठन्ति ॥ 'तीसे णं'मित्यादि, तस्याः पद्मवरवेदिकायास्तत्र तत्र देशे २ 'तहिं तहिं' इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे, एतावता किमुक्तं भवति ?—यत्र देशे एकस्तत्रान्येऽपि विद्यन्त इति, वहवे 'हयसंघाडा' हययुग्मानि सङ्घाटशब्दो युग्मवाची यथा साधुसङ्घाट इत्यत्र, एवं गजनरकिंनरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्ववृषभसङ्घाटा अपि वाच्याः, एते च कथम्भूताः ? इत्याह—'सव्वरयणामया' सर्वात्मना रत्नमयाः 'अच्छा' आकाशस्फटिकवदतिस्वच्छाः 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् 'सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा' इत्यादिविशेषणकदम्बकपरिग्रहस्तच्च प्राग्वत् । एते च सर्वेऽपि हयसङ्घाटादयः सङ्घाटाः पुष्पावकीर्णका उक्ताः, सम्प्रत्येतेषामेव हयादीनां पङ्क्त्यादिप्रतिपादनार्थमाह—'एवं पंतीओ वीहीओ एवं मिहुणगा' इति यथाऽमीषां हयादीनामष्टानां सङ्घाटा उक्तास्तथा पङ्क्तयोऽपि वक्तव्या वीथयोऽपि मिथुनकानि च, तानि चैवम्—'तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहुयाओ हयपंतीओ गयपंतीओ' इत्यादि, नवरमेकस्यां दिशि या श्रेणिः सा पङ्क्तिरभिधीयते, उभयोरपि पार्श्वयोरेकैकश्रेणिभावेन यच्छ्रेणिद्वयं सा वीथी, एते च वीथी-

पङ्क्तिसङ्घाटा हयादीनां पुरुषाणामुक्ताः, साम्प्रतमेतेषामेव हयादीनां स्त्रीपुरुषयुग्मप्रतिपादनार्थं 'मिहुणाइं' इत्युक्तम्, उक्तेनैव प्रकारेण हयादीनां मिथुनकानि स्त्रीपुरुषयुग्मरूपाणि वाच्यानि, यथा 'तत्थ तत्थ तहिं २ देसे देसे बहूइं हयमिहुणाइं गयमिहुणाइं' इत्यादि ॥ 'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां णमिति पूर्ववत् पद्मवरवेदिकायां तत्र तत्र देशे २ 'तहिं २' इति तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे, अत्रापि 'तत्थ २ देसे २ तहिं २' इति वदता यत्रैका लता तत्रान्या अपि बह्वयो लताः सन्तीति प्रतिपादितं द्रष्टव्यं, 'बहुयाओ पउमलयाओ' इत्यादि, बह्वयः 'पद्मलताः' पद्मिन्यः 'नागलताः' नागा—द्रुमविशेषाः त एव लतास्तिर्यक्शाखाप्रसराभावात् नागलताः, एवमशोकलताश्चम्पकलता वणलताः, वणाः—तरुविशेषाः, वासन्तिकलता अतिमुक्तकलताः कुन्दलताः श्यामलताः, कथम्भूता एताः? इत्याह—'निच्चं' सर्वकालं षट्स्वपि ऋतुष्वित्यर्थः 'कुसुमिताः' कुसुमानि—पुष्पाणि संजातान्यास्विति कुसुमिताः, तारकादिदर्शनादितप्रत्ययः, एवं नित्यं मुकुलिताः, मुकुलानि नाम कुड्मलानि कलिका इत्यर्थः नित्यं 'लवइयाओ' इति पल्लविताः, नित्यं 'थवइयाओ' इति स्तवकिताः, नित्यं 'गुम्मियाओ' इति गुल्मिताः, स्तबकगुल्मौ गो(गु)च्छविशेषौ, नित्यं गुच्छाः, नित्यं यमलं नाम समानजातीययोर्लतयोर्युग्मं तत्संजातमास्विति यमलिताः, नित्यं 'युगलिताः' युगलं सजातीयविजातीययोर्लतयोर्द्वन्द्वं, तथा 'नित्यं' सर्वकालं फलभारेण नता—ईषन्नता नित्यं प्रणता—महता फलभारेण दूरं नताः, तथा नित्यं 'सुविभक्ते'त्यादि सुविभक्तिकः—सुविच्छित्तिकः प्रतिविशिष्टो मञ्जरीरूपो योऽवतंसकस्तद्धराः—तद्धारिण्यः । एष सर्वोऽपि कुसुमितत्वादिको धर्म एकैकस्या एकैकस्या लताया उक्तः, साम्प्रतं कासाञ्चिल्लतानां सकलकुसुमितत्वादिधर्म्मप्रतिपादनार्थमाह—'निच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगोच्छियविणमियपणमियसुविभत्तपडिमंजरिवडंसगधरीउ' एताश्च सर्वा अपि लता एवंरूपाः, किंरूपाः? इत्याह—'सव्वरयणामईओ' सर्वात्मना

रत्नमय्यः, **'अच्छा सण्हा'** इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ अधुना पद्मवरवेदिकाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं जिज्ञासुः पृच्छति—**'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि, सेशब्दोऽथशब्दार्थः, अथ **'केनार्थेन'** केन कारणेन भदन्त! एवमुच्यते—पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति?, किमुक्तं भवति?—पद्मवरवेदिकेत्येवंरूपस्य शब्दस्य तत्र प्रवृत्तौ किं निमित्तमिति?, एवमुक्ते भगवानाह—गौतम! पद्मवरवेदिकायां तत्र तत्र प्रदेशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे **'वेदिकासु'** उपवेशनयोग्यमत्तवारणरूपासु **'वेदिकाबाहासु'** वेदिकापार्श्वेषु **'वेइयापुडंतरेसु'** इति द्वे वेदिके वेदिकापुटं तेषामन्तराणि—अपान्तरालानि वेदिकापुटान्तराणि तेषु, तथा स्तम्भेषु सामान्यतः तथा **'स्तम्भबाहासु'** स्तम्भपार्श्वेषु **'खंभसीसेसु'** इति स्तम्भशीर्षेषु **'खंभपुडंतरेसु'** इति द्वौ स्तम्भौ स्तम्भपुटं तेषामन्तराणि तेषु **'सूचीषु'** फलकसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयासु तासामुपरीति तात्पर्यार्थः, **'सूइमुहेसु'** इति यत्र प्रदेशे सूची फलकं भित्त्वा मध्ये प्रविशति तत्प्रत्यासन्नो देशः सूचीमुखं तेषु, तथा सूचीफलकेषु—सूचीभिः संबन्धिता ये फलकप्रदेशास्तेऽप्युपचारात्सूचीफलकानि तेषु सूचीनामध उपरि च वर्त्तमानेषु, तथा **'सुईपुडंतरेसु'** इति द्वे सूच्यौ सूचीपुटं तेषामन्तरेषु, पक्षाः पक्षवाहा—वेदिकैकदेशास्तेषु बहूनि **'उत्पलकानि'** गर्दभकानि बहूनि **'पद्मानि'** सूर्यविकासीनि बहूनि **'कुमुदानि'** चन्द्रविकासीनि, एवं नलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्राण्यपि वाच्यानि, एतेषां च विशेषः प्रागेवोपदर्शितः, एतानि कथम्भूतानि? इत्याह—**'सर्वरत्नमयानि'** सर्वात्मना रत्नमयानि, **'अच्छा'** इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् **'महयावासिकछत्तसमाणा'** इति **'महान्ति'** महाप्रमाणानि वार्षिकाणि—वर्षाकाले यानि पानीयरक्षणार्थं कृतानि तानि वार्षिकाणि तानि च तानि छत्राणि च तत्समानानि च प्रज्ञप्तानि हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, **'से एएणट्ठेण'**मित्यादि, तदेतेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति तेषु तेषु यथोक्तरूपेषु

प्रदेशेषु यथोक्तरूपाणि पद्मानि पद्मवरवेदिकाशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमितिभावः, व्युत्पत्तिश्चैवं—पद्मवरा पद्मप्रधाना वेदिका पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिकेति ॥ 'पउमवरवेइया णं भंते! किं सासया?' इत्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववत् किं शाश्वती उताशाश्वती?, आबन्ततया सूत्रे निर्देशः प्राकृतत्वात्, किं नित्या उतानित्येति भावः, भगवानाह—गौतम! स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती—कथञ्चिन्नित्या कथञ्चिदनित्येत्यर्थः, स्याच्छब्दो निपातः कथञ्चिदित्येतदर्थवाची ॥ 'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! 'द्रव्यार्थतया' द्रव्यास्तिकनयमतेन शाश्वती, द्रव्यास्तिकनयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते न पर्यायान्, द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वाद्, अन्यथा द्रव्यत्वायोगाद्, अन्वयित्वाच्च सकलकालभावीति भवति द्रव्यार्थतया शाश्वती, 'वर्णपर्यायैः' तदन्यसमुत्पद्यमानवर्णविशेषरूपैरेवं गन्धपर्यायै रसपर्यायैः स्पर्शपर्यायैः, उपलक्षणमेतत्तदन्यपुद्गलविचटनोच्चटनैश्चाशाश्वती, किमुक्तं भवति?—पर्यायास्तिकनयमतेन पर्यायप्राधान्यविवक्षायामशाश्वती, पर्यायाणां प्रतिक्षणभावितया कियत्कालभावितया वा विनाशित्वात्, 'से एएणट्ठेण'-मित्यादि उपसंहारवाक्यं सुगमं, इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतप्रतिस्थापनार्थमेवमाह—नात्यन्तासत उत्पादो नापि सतो विनाशो, 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत' इति वचनात्, यौ तु दृश्येते प्रतिवस्तु उत्पादविनाशौ तदाविर्भावतिरोभावमात्रं यथा सर्प्पस्योत्फणत्वविफणत्वे, तस्मात्सर्वं वस्तु नित्यमिति ॥ एवं च तन्मतचिन्तायां संशयः—किं घटादिवद्द्रव्यार्थतया शाश्वती उत सकलकालमेवंरूपा? इति, ततः संशयापनोदार्थं भगवन्तं भूयः पृच्छति—'पउमवरवेइया णं'मित्यादि, पद्मवरवेदिका णमिति पूर्ववद् 'भदन्त!' परमकल्याणयोगिन्! 'कियच्चिरं' कियन्तं कालं यावद्भवति?, एवंरूपा कियन्तं कालमवतिष्ठते? इति, भगवानाह—गौतम! न कदाचिन्नासीत्, सर्वदैवासीदिति भावः, अनादित्वात्, तथा न कदाचिन्न भवति, सर्वदैव वर्त्तमानकालचिन्तायां भवतीति

भावः, सदैव भावात्, तथा न कदाचिन्न भविष्यति, किन्तु भविष्यच्चिन्तायां सर्वदैव भविष्यतीति प्रतिपत्तव्यं, अपर्यवसितत्वात्, तदेवं कालत्रयचिन्तायां नास्तित्वप्रतिषेधं विधाय सम्प्रत्यस्तित्वं प्रतिपादयति—'भुविं चे'त्यादि, अभूच्च भवति च भविष्यति चेति, एवं त्रिकालावस्थायित्वाद् 'ध्रुवा' मेर्वादिवद् ध्रुवत्वादेव सदैव स्वस्वरूपे नियता, नियतत्वादेव च 'शाश्वती' शश्वद्भवनस्वभावा, शाश्वतत्वादेव च सततगङ्गासिन्धुप्रवाहप्रवृत्तावपि पौण्डरीकह्रद इवानेकपुद्गलविचटनेऽपि तावन्मात्रान्यपुद्गलोच्चटनसम्भवाद् 'अक्षया' न विद्यते क्षयो—यथोक्तस्वरूपाकारपरिभ्रंशो यस्याः साऽक्षया, अक्षयत्वादेव 'अव्यया' अव्ययशब्दवाच्या, मनागपि स्वरूपचलनस्य जातुचिदप्यसम्भवात्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थिता मानुषोत्तरपर्वताद् बहिः समुद्रवत्, एवं स्वस्वप्रमाणे सदाऽवस्थानेन चिन्त्यमाना नित्या धर्मास्तिकायादिवत् ॥

तीसे णं जगतीए उप्पिं बाहिं पउमवरवेइयाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं जगतीसमए परिक्खेवेणं, किण्हे किण्होभासे जाव अणेगसगडरहजाणजुग्गपरिमोयणे सुरम्मे पासातीए सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे नीरए निप्पंके निम्मले निक्कंकडच्छाए सप्पभे समिरीए सउज्जोए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ॥ तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहानामए—आलिंगपुक्खरेति वा मुइंगपुक्खरेति वा सरतलेइ वा करतलेइ वा आयंसमंडलेति वा चंदमंडलेति वा सूरमंडलेति उरब्भचम्मेति वा उसभचम्मेति वा वराहचम्मेति वा सीहचम्मेति वा वग्घचम्मेति वा विगचम्मेति वा दी-

वितचम्मेति वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते आवडपच्चावडसेढीपसेढीसोत्थियसोवत्थियपूसमाणवद्धमाणमच्छंडकमकरंडकजारमारफुल्लावलिपउमपत्तसागरतरंगवासंतिलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं समिरीएहिं सउज्जोएहिं नाणाविहपंचवण्णेहिं तणेहिं य मणिहिं य उवसोहिए तंजहा—किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं ॥ तत्थ णं जे ते किण्हा तणा य मणी य तेसि णं अयमेतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए—जीमूतेति वा अंजणेति वा खंजणेति वा कज्जलेति वा मसीइ वा गुलियाइ वा गवलेइ वा गवलगुलियाति वा भमरेति वा भमरावलियाति वा भमरपत्तगयसारेति वा जंबुफलेति वा अद्दारिट्ठेति वा पुरिपुट्ठए (ति) वा गएति वा गयकलभेति वा कण्हसप्पेइ वा कण्हकेसरेइ वा आगासथिग्गलेति वा कण्हासोएत्ति वा किण्हकणवीरेइ वा कण्हबंधुजीवएति वा, भवे एयारूवे सिया?, गोयमा! णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं कण्हाणं तणाणं मणीण य इत्तो इट्ठयराए चेव कंततराए चेव पिययराए चेव मणुण्णतराए चेव मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तत्थ णं जे ते णीलगा तणा य मणी य तेसि णं इमेतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए—भिंगेइ वा भिंगपत्तेति वा चासेति वा चासपिच्छेति वा सुएति वा सुयपिच्छेति वा णीलीति वा णीलीभेएति वा णीलीगुलियाति वा सामाएति वा उच्चंतएति वा वणराईइ वा हलहरवसणेइ वा मोरग्गीवाति वा पारेवयगीवाति वा अयसिकुसुमेति वा अंजणकेसिगा-

कुसुमेति वा णीलुप्पलेति वा णीलासोएति वा णीलकणवीरेति वा णीलबंधुजीवएति वा, भवे एयारूवे सिता?, णो इणट्ठे समट्ठे, तेसि णं णीलगाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तत्थ जे ते लोहितगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए—ससकरुहिरेति वा उरब्भरुहिरेति वा णररुहिरेति वा वराहरुहिरेति वा महिसरुहिरेति वा बालिंदगोवएति वा बालदिवागरेति वा संझब्भरागेति वा गुंजद्धराएति वा जातिहिंगुलुएति वा सिलप्पवालेति वा पवालंकुरेति वा लोहितक्खमणीति वा लक्खारसएति वा किमिरागेइ वा रत्तकंबलेइ वा चीणपिट्ठरासीइ वा जासुयणकुसुमेइ वा किंसुअकुसुमेइ वा पालियाइकुसुमेइ वा रत्तुप्पलेति वा रत्तासोगेति वा रत्तकणयारेति वा रत्तबंधुजीवेइ वा, भवे एयारूवे सिया?, नो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं लोहियगाणं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तत्थ णं जे ते हालिद्दगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए—चंपए वा चंपगच्छल्लीइ वा चंपयभेएइ वा हालिद्दाति वा हालिद्दभेएति वा हालिद्दगुलियाति वा हरियालेति वा हरियालभेएति वा हरियालगुलियाति वा चिउरेति वा चिउरंगरागेति वा वरकणएति वा वरकणगनिघसेति वा सुवण्णसिप्पिएति वा वरपुरिसवसणेति वा सल्लइकुसुमेति वा चंपककुसुमेइ वा

कुहुंडियाकुसुमेति वा (कोरंटकदामेइ वा) तडउडाकुसुमेति वा घोसाडियाकुसुमेति वा सुवण्णजूहियाकुसुमेति वा सुहरिन्नयाकुसुमेइ वा [कोरिंटवरमल्लदामेति वा] बीयगकुसुमेति वा पीयासोएति वा पीयकणवीरेति वा पीयबंधुजीएति वा, भवे एयारूवे सिया?, नो इणट्ठे समट्ठे, ते णं हालिद्दा तणा य मणी य एत्तो इट्ठयरा चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ता ॥ तत्थ णं जे ते सुक्किल्लगा तणा य मणी य तेसि णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए—अंकेति वा संखेति वा चंदेति वा कुंदेति वा कुसुमे(मुए)ति वा दयरएति वा (दहिघणेइ वा खीरेइ वा खीरपूरेइ वा) हंसावलीति वा कोंचावलीति वा हारावलीति वा बलायावलीति वा चंदावलीति वा सारतियबलाहएति वा धंतधोयरुप्पपट्टेइ वा सालिपिट्ठरासीति वा कुंदपुप्फरासीति वा कुमुयरासीति वा सुक्कछिवाडीति वा पेहुणमिंजाति वा बिसेति वा मिणालियाति वा गयदंतेति वा लवंगदलेति वा पोंडरीयदलेति वा सिंदुवारमल्लदामेति वा सेतासोएति वा सेयकणवीरेति वा सेयबंधुजीएइ वा, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं सुक्किल्लाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते ॥ तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य केरिसए गंधे पण्णत्ते?, से जहाणामए—कोट्ठपुडाण वा पत्तपुडाण वा चोयपुडाण वा तगरपुडाण वा एलापुडाण वा [किरिमेरिपुडाण वा] चंदणपुडाण वा कुंकुमपुडाण वा उ-

सीरपुडाण वा चंपगपुडाण वा मरुयगपुडाण वा दमणगपुडाण वा जातिपुडाण वा जूहियापुडाण वा मल्लियपुडाण वा णोमालियपुडाण वा वासंतियपुडाण वा केयतिपुडाण वा कप्पूरपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण य णिब्भिज्जमाणाण य कोट्टेज्जमाणाण वा रुविज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा भंडाओ वा भंडं साहरिज्जमाणाणं ओराला मणुण्णा घाणमणणिव्वुतिकरा सव्वतो समंता गंधा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं तणाणं मणीण य एत्तो उ इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव गंधे पण्णत्ते॥ तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य केरिसए फासे पण्णत्ते?, से जहाणामए—आईणेति वा रूएति वा बूरेति वा णवणीतेति वा हंसगब्भतूलीति वा सिरीसकुसुमणिचतेति वा यालकुमुदपत्तरासीति वा, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, तेसि णं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव फासेणं पण्णत्ते॥ तेसि णं भंते! तणाणं पुव्वावरदाहिणउत्तरागतेहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइयाणं वेइयाणं कंपियाणं खोभियाणं चालियाणं फंदियाणं घट्टियाणं उदीरियाणं केरिसए सद्दे पण्णत्ते?, से जहाणामए—सिवियाए वा संदमाणीयाए (वा) रहवरस्स वा सछत्तस्स सज्झयस्स सघंटयस्स सतोरणवरस्स सणंदिघोसस्स सखिंखिणिहेमजालपेरंतपरिखित्तस्स हेमवयखेत्त (चित्तविचित्त) तिणिसकणगनिज्जुत्तदारुयागस्स सुपिणिद्धारकमं-

ढलधुरागस्स कालायससुकयणेमिजंतकम्मस्स आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स कुसलणरच्छेयसारहिसुसंपरिगहितस्स सरसतबत्तीसतोरण(परि)मंडितस्स सकंकडवडिंसगस्स सचावसरपहरणावरणहरियस्स जोहजुद्धस्स रायंगणंसि वा अंतेपुरंसि वा रम्मंसि वा मणिकोट्टिमतलंसि अभिक्खणं २ अभिघट्टिज्जमाणस्स वा णियट्टिज्जमाणस्स वा [परूढवरतुरंगस्स चंडवेगाइद्धस्स] ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुतिकरा सव्वतो समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से जहाणामए—वेयालियाए वीणाए उत्तरमंदामुच्छिताए अंके सुपइट्ठियाए वंदणसारकाणपडिपट्टियाए कुसलणरणारिसंपगहिताए पदोसपच्चूसकालसमयंसि मंदं मंदं एइयाए वेइयाए खोभियाए उदीरियाए ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुतिकरा सव्वतो समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से जहाणामए—किण्णराण वा किंपुरिसाण वा महोरगाण वा गंधव्वाण वा भद्दसालवणगयाण वा नंदणवणगयाण वा सोमणसवणगयाण वा पंडगवणगयाण वा हिमवंतमलयमंदरगिरिगुहसमण्णागयाण वा एगतो सहिताणं संमुहागयाणं समुविट्ठाणं संनिविट्ठाणं पमुदियपक्कीलियाणं गीयरतिगंधव्वहरिसियमणाणं गेज्जं पज्जं कत्थं गेयं पयविद्धं पायविद्धं उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोचियावसाणं सत्तसरसमण्णागयं अट्ठरससुसंपउत्तं छद्दोसविप्पमुक्कं एकारसगुणालंकारं अट्ठगुणोववेयं गुंजंतवंसकुहरोवगूढं

रत्तं तित्थाणकरणसुद्धं मधुरं समं सुललियं सकुहरगुंजंतवंसतंतीसुसंपउत्तं तालसुसंपउत्तं ताल-समं (रयसुसंपउत्तं गहसुसंपउत्तं) मणोहरं मउयरिभियपयसंचारं सुरभिं सुणतिं वरचारुरूवं दिव्वं नट्टं सज्जं गेयं पगीयाणं, भवे एयारूवे सिया?, हंता गोयमा! एवंभूए सिया ॥ (सू० १२६)

'तीसे णं जगतीए' इत्यादि, तस्या णमिति पूर्ववत् जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकाया वहिर्वर्त्ती प्रदेशः 'तत्र' तस्मिन् णमिति पूर्ववत्, महानेको वनषण्डः प्रज्ञप्तः, अनेकजातीयानामुत्तमानां महीरुहाणां समूहो वनषण्डः, आह च मूलटीकाकारः—'एगजाईएहिं रुक्खेहिं वणं अणेगजाईएहिं उत्तमेहि रुक्खेहिं वणसंडे' इति, स चैकैको देशोने द्वे योजने विष्कम्भतो जगतीसमकः 'परिक्षेपेण' परिरयेण। कथम्भूतः? इत्याह—'किण्हे' इत्यादि, इह प्रायो वृक्षाणां मध्यमे वयसि वर्त्तमानानि पत्राणि नीला (कृष्णा)नि तद्योगाद् वनखण्डोऽपि कृष्ण, न चोपचारमात्रात्कृष्ण इति व्यपदेशः किन्तु तथाप्रतिभासनात्, तथा चाह—'कृष्णावभासः' यावति भागे कृष्णानि पत्राणि सन्ति तावति भागे स वनखण्डः कृष्णोऽवभासतेऽतः कृष्णोऽवभासो यस्यासौ कृष्णावभासः, तथा हरितत्वमतिक्रान्तानि कृष्णत्वमसंप्राप्तानि पत्राणि नीलानि तद्योगाद् वनखण्डोऽपि नीलः, न चैतदप्युपचारमात्रेणोच्यते किन्तु तथाऽवभासात्, तथा चाह—नीलावभासः, समासः प्राग्वत्, यौवने तान्येव पत्राणि किशलयत्वं रक्तत्वं चातिक्रान्तानि ईषद्धरितालाभानि पाण्डूनि सन्ति हरितानीत्युपदिश्यन्ते, ततस्तद्योगाद्वनपण्डोऽपि हरितः, न चैतदुपचारमात्रं, किन्तु तथाप्रतिभासोऽप्यस्ति तथा चाह—हरितावभासः, तथा वाल्यादतिक्रान्तानि वृक्षाणां पत्राणि शीतानि भवन्ति ततस्तद्योगाद् वनपण्डोऽपि शीतः, न चासौ न गुणतः किन्तु गुणत एव, तथा चाह—'शीतावभासः' अधोभागवर्त्तिनां व्यन्तराणां देवानां देवीनां च तद्योगे शीतवातसंस्पर्शः ततः स शीतो

वनपण्डोऽवभासते इति, तथा एते कृष्णनीलहरितवर्णा यथा (तः) स्वस्मिन् रूपेऽत्यर्थमुत्कटाः स्निग्धा भण्यन्ते तीव्राश्च ततस्तद्योगाद्वनख-
ण्डोऽपि स्निग्धस्तीव्रश्चोक्तः, न चैतदुपचारमात्रं, किन्तु तथा प्रतिभासोऽपि तत उक्तं स्निग्धावभासस्तीव्रावभास इति, इहावभासो
भ्रान्तोऽपि भवति यथा मरुमरीचिकासु जलावभासः ततो नावभासमात्रोपदर्शनेन यथाऽवस्थितं वस्तुस्वरूपमुक्तं वर्णितं भवति किन्तु
यथास्वरूपप्रतिपादनेन ततः कृष्णत्वादीनां तथास्वरूपप्रतिपादनार्थमनुवादपुरस्सरं विशेषणान्तरमाह—'किण्हे किण्हच्छाये' इत्यादि,
कृष्णो वनखण्डः, कुतः ? इत्याह—कृष्णच्छायः, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मितिवचनाद्धेतौ प्रथमा, ततोऽ-
यमर्थः—यस्मात् कृष्णा छाया—आकारः सर्वाविसंवादितया तस्य तस्मात्कृष्णः, एतदुक्तं भवति—सर्वाविसंवादितया तत्र कृष्ण आकार
उपलभ्यते, न च भ्रान्तावभाससंपादितसत्ताकः सर्वाविसंवादी भवति, ततस्तत्त्ववृत्त्या स कृष्णो न भ्रान्तावभासमात्रव्यवस्थापित इति,
एवं नीलो नीलच्छाय इत्याद्यपि भावनीयं, नवरं शीतः शीतच्छाय इत्यत्र छायाशब्द आतपप्रतिपक्षवस्तुवाची द्रष्टव्यः, 'घणकडिय-
डच्छाए' इति इह शरीरस्य मध्यभागे कटिस्ततोऽन्यस्यापि मध्यभागः कटिरिव कटिरित्युच्यते, कटिस्तटमिव कटितटं घना—अन्या-
न्यशाखाप्रशाखानुप्रवेशतो निविडा कटितटे—मध्यभागे छाया यस्य स घनकटितटच्छायः, मध्यभागे निविडतरच्छाय इत्यर्थः, कचि-
त्पाठः 'घनकडियकडच्छाए' इति, तत्रायमर्थः—कटः सञ्जातोऽस्येति कटितः कटान्तरेणोपरि आवृत इत्यर्थः कटितश्चासौ कटश्च
कटितकटः घना—निविडा कटितकटस्येवाधोभूमौ छाया यस्य स घनकटितकटच्छायः अत एव रम्यो—रमणीयः, तथा महान्—जल-
भारावनतः प्रावृट्कालभावी मेघनिकुरम्बो—मेघसमूहस्तं भूतो—गुणैः प्राप्तो महामेघनिकुरम्बभूतः महामेघवृन्दोपम इत्यर्थः। 'ते णं
पायवा' इत्यादि, 'ते' वनषण्डान्तर्गताः पादपा 'मूलवन्तः' मूलानि प्रभूतानि दूरावगाढानि च सन्त्येषामिति मूलवन्तः, कन्द एपा-

मस्तीति कन्दवन्तः, एवं स्कन्धवन्तस्त्वग्वन्तः शालावन्तः प्रवालवन्तः पत्रवन्तः पुष्पवन्तः फलवन्तो वीजवन्त इत्यपि भावनीयं, तत्र मूलानि—प्रसिद्धानि यानि कन्दस्याधः प्रसरन्ति कन्दास्तेषां मूलानामुपरिवर्त्तिनस्तेऽपि प्रतीताः, स्कन्धः—स्थुडं यतो मूलशाखाः प्रभवन्ति, त्वक्—छल्ली शाला—शाखा प्रवालः—पल्लवाङ्कुरः पत्रपुष्पफलवीजानि सुप्रसिद्धानि, सर्वत्रातिशायने कचिद्भूम्नि वा मतुप्प्रत्ययः, 'अणुपुव्वसुजाइरुइलवट्टभावपरिणया' इति आनुपूर्व्या—मूलादिपरिपाट्या सुष्ठु जाता आनुपूर्वीसुजाता रुचिलाः—स्निग्धतया देदीप्यमानच्छविमन्तः, तथा वृत्तभावेन परिणता वृत्तभावपरिणताः, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च शाखाभिः प्रशाखाभिश्च प्रसृता यथा वर्त्तुलाः संजाता इति, आनुपूर्वीसुजाताश्च ते रुचिराश्च ते च ते वृत्तभावपरिणताश्च आनुपूर्वीसुजातरुचिरवृत्तभावपरिणताः, तथा ते पादपाः प्रत्येकमेकस्कन्धाः, (समासान्तइन्) प्राकृते वाऽस्य स्त्रीत्वमिति 'एगखंधी' इति पाठः, तथाऽनेकाभिः शाखाभिः प्रशाखाभिश्च मध्यभागे विटपो—विस्तारो येषां तेऽनेकशाखाप्रशाखाविटपाः, तथा तिर्यग्बाहुद्वयप्रसारणप्रमाणो व्यामः अनेकैर्नरव्यामैः—पुरुषव्यामैः सुप्रसारितैरग्राह्यः—अप्रमेयो घनो—निविडो विपुलो—विस्तीर्णः स्कन्धो येषां ते अनेकनरव्यामसुप्रसारिताग्राह्यघनविपुलवृत्तस्कन्धाः, तथाऽच्छिद्राणि पत्राणि येषां ते अच्छिद्रपत्राः, किमुक्तं भवति ?—न तेषां पत्रेषु वातदोषतः कालदोषतो वा गड्डरिकादिरीतिरुपजायते, न तेषु पत्रेषु छिद्राणि भवन्तीत्यच्छिद्रपत्राः, अथवा एवं नामान्योऽन्यं शाखाप्रशाखानुप्रवेशात्पत्राणि पत्राणामुपरि जातानि येन मनागप्यपान्तरालरूपं छिद्रं नोपलक्ष्यत इति, तथा चाह—'अविरलपत्ता' इति, अत्र हेतौ प्रथमा ततोऽयमर्थः—यतोऽविरलपत्रा अतोऽच्छिद्रपत्राः, अविरलपत्रा अपि कुतः ? इत्याह—'अवातीनपत्राः' वातीनानि—वातोपहतानि वातेन पातितानीत्यर्थः न वातीनानि अवातीनानि पत्राणि येषां ते तथा, किमुक्तं भवति ?—न तत्र प्रबलो वातः खरपरुषो वाति येन पत्राणि त्रुटित्वा भूमौ

निपतन्ति, ततोऽवातीनपत्रत्वादविरलपत्रा इति, अच्छिद्रपत्रा इत्यत्र प्रथमव्याख्यानपक्षमधिकृत्य हेतुमाह—'**अणईइपत्ता**' न विद्यते ईतिः—गड्डरिकादिरूपा येषां तान्यनीतीनि अनीतीनि पत्राणि येषां ते अनीतिपत्राः, अनीतिपत्रत्वाच्चाच्छिद्रपत्राः, '**निद्धुयजरढपंडुरपत्ता**' इति निर्द्धूतानि—अपनीतानि जरठानि पाण्डूनि पत्राणि येभ्यस्ते निर्द्धूतजरठपाण्डुपत्राः, किमुक्तं भवति?—यानि वृक्षस्थानि जरठानि पाण्डूनि पत्राणि तानि वातेन निर्द्धूय निर्द्धूय भूमौ पात्यन्ते भूमेरपि च प्रायो निर्द्धूय निर्द्धूयान्यत्रापसार्यन्त इति, '**नवहरियभिसंतपत्तंधयारगंभीरदरसणिज्जा**' इति नवेन—प्रत्यग्रेण हरितेन—नीलेन भासमानेन—स्निग्धत्वचा दीप्यमानेन पत्रभारेण—दलसञ्चयेन यो जातोऽन्धकारस्तेन गम्भीरा—अलब्धमध्यभागाः सन्तो दर्शनीया नवहरितभासमानपत्रान्धकारगम्भीरदर्शनीयाः, तथा उपविनिर्गतैः—निरन्तरविनिर्गतैर्नवतरुणपल्लवैः तथा कोमलैः—मनोज्ञैरुज्ज्वलैः—शुद्धैश्चलद्भिः—ईषत्कम्पमानैः किशलयैः—अवस्थाविशेषोपेतैः पल्लवविशेषैः तथा सुकुमारैः प्रवालैः—पल्लवाङ्कुरैः शोभितानि वराङ्कुराणि—वराङ्कुरोपेतानि अग्रशिखराणि येषां ते उपविनिर्गतनवतरुणपत्रपल्लवकोमलोज्ज्वलचलत्किशलयसुकुमारप्रवालशोभितवराङ्कुराग्रशिखराः, इहाङ्कुरप्रवालयोः कालकृतावस्थाविशेषाद्विशेषो भावनीयः, '**निच्चं कुसुमिया निच्चं मउलिया निच्चं लवइया निच्चं थवइया निच्चं गोच्छिया निच्चं जमलिया निच्चं जुयलिया निच्चं विणमिया निच्चं पणमिया निच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगोच्छियजमलियजुगलियविणमियपणमियसुविभत्तप(पिं)डिमंजरिवडंसगधरा**' इति पूर्ववत्, तथा शुकबर्हिणमदनशलाकाकोकिलकोरकभिङ्गारककोंडलजीवंजीवकनन्दीमुखकपिलपिङ्गलाक्षकारण्डवचक्रवाककलहंससारसाख्यानामनेकेषां शकुनगणानां मिथुनैः—स्त्रीपुंसयुग्मैर्विचरितं—इतस्ततो गतं यच्च शब्दोन्नतिकम्—उन्नतशब्दकं मधुरस्वरं च नादितं—लपितं येषु ते तथा, अत एव सुरम्याः—सुष्ठु रमणीयाः, अत्र शुकाः—कीराः बर्हिणो—मयूरा मदनशलाका—

शारिका कोकिलाऽपि चक्रवाककलहंससारसाः—प्रतीताः, शेषास्तु जीवविशेषा लोकतो वेदितव्याः, तथा संपिण्डिताः—एकत्र पिण्डीभूता दृप्ता—मदोन्मत्ततया दर्प्पाध्माता भ्रमरमधुकरीणां पहकराः—सङ्घाताः, 'पहकरओरोहसंघाया' इति देशीनाममालावचनात्, यत्र ते संपिण्डितदृप्तमधुकरभ्रमरमधुकरीपहकराः, तथा परिलीयमानाः—अन्यत आगत्यागत्य श्रयन्तो मत्ताः षट्पदाः कुसुमासवलोलाः—किञ्जल्कपानलम्पटा मधुरं गुमगुमायमानाः गुञ्जन्तश्च—शब्दविशेषं च विदधाना देशभागेषु तस्मिन् तस्मिन् देशभागे येषां ते परिलीयमानमत्तषट्पदकुसुमासवलोलमधुरगुमगुमायमानगुञ्जन्तदेशभागाः, गमकत्वादेवमपि समासः, ततो भूयः पूर्वपदेन सह विशेषणसमासः, तथाऽभ्यन्तराणि—अभ्यन्तरवर्त्तीनि पुष्पाणि फलानि च पुष्पफलानि येषां ते तथा, 'वाहिरपत्तच्छन्ना' इति वहिःपत्रैश्छन्ना—व्याप्ता वहिःपत्रछन्नाः, तथा पत्रैश्च पुष्पैश्च 'अवच्छन्नपरिच्छन्ना' अत्यन्तमाच्छादिताः, तथा 'नीरोगाः' रोगवर्जिताः 'अकण्टकाः' कण्टकरहिताः, नैतेषु मध्ये वव्वूलकादिवृक्षाः सन्तीति भावः, तथा स्वादूनि फलानि येषां ते स्वादुफलाः, तथा स्निग्धानि फलानि येषां ते स्निग्धफलाः, तथा प्रत्यासन्नैर्नानाविधैः—नानाप्रकारैर्गुच्छैः—वृन्ताकीप्रभृतिभिर्गुल्मैः—नवमालिकादिभिर्मण्डपैः—द्राक्षामण्डपकैरुपशोभिता नानाविधगुच्छगुल्ममण्डपकशोभिताः, तथा विचित्रैः—नानाप्रकारैः शुभैः—मङ्गलभूतैः केतुभिः—ध्वजैर्बहुला—व्याप्ता विचित्रशुभकेतुवहुलाः, तथा 'वाविपुक्खरिणीदीहियासु य निवेसियरम्मजालघरगा' वाप्यः—चतुरस्राकारास्ता एव वृत्ताः पुष्करिण्यः यदिवा पुष्कराणि विद्यन्ते यासु ताः पुष्करिण्यः दीर्घिका—ऋजुसारिण्यः वापीपुष्करिणीषु दीर्घिकासु च सुष्ठु निवेशितानि रम्याणि जालगृहकाणि येषु ते वापीपुष्करिणीदीर्घिकासुनिवेशितरम्यजालगृहकानि, तथा पिण्डिता सती निर्हारिमा—दूरे विनिर्गच्छन्ती पिण्डिमनीर्हारिमा तां सुगन्धि—सद्गन्धिकां शुभसुरभिभ्यो गन्धान्तरेभ्यः सकाशान्मनोहरा शुभसुरभिमनोहरा तां

च 'महया' इति प्राकृतत्वाद्वितीयार्थे तृतीया महतीमित्यर्थः, गन्धघ्राणिं यावद्भिर्गन्धपुद्गलैर्गन्धविषये घ्राणिरुपजायते तावती गन्धपुद्गलसंहतिरुपचाराद् गन्धघ्राणिरित्युच्यते तां निरन्तरं मुञ्चन्तः, तथा 'सुहसेउकेउबहुला' इति शुभाः—प्रधानाः सेतवो—मार्गा आलवालपाल्यो वा केतवो—ध्वजा बहुला—अनेकरूपा येषां ते तथा, 'अणेगरहजाणजुग्गसिवियसंदमाणिपडिमोयणा' इति, तथा रथा द्विविधाः—क्रीडारथाः सङ्ग्रामरथाश्च, यानानि सामान्यतः, शेषाणि वाहनानि, युग्यानि—गोल्लविषयप्रसिद्धानि द्विहस्तप्रमाणानि वेदिकोपशोभितानि जम्पानानि शिविकाः—कूटाकारेणाच्छादिता जंपानविशेषाः स्यन्दमानिकाः—पुरुषप्रमाणा जम्पानविशेषाः, अनेकेषां रथादीनामधो विस्तीर्णत्वात् प्रतिमोचनं येषु ते तथा, 'पासाइया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तस्स णं वणसंडस्से'त्यादि, तस्य णमिति पूर्ववद् वनषण्डस्य 'अन्तः' मध्ये बहुसमः सन् रमणीयो बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, किंविशिष्टः? इत्याह—'से जहा नामए' इत्यादि, 'तत्' सकललोकप्रसिद्धं यथेति दृष्टान्तोपदर्शने नामेति शिष्यामन्त्रणे 'ए' इति वाक्यालङ्कारे 'आलिंगपुक्खरेइ वा' इति आलिङ्गो—मुरजो वाद्यविशेषस्तस्य पुष्करं—चर्म्मपुटकं तत् किलात्यन्तसममिति तेनोपमा क्रियते, इतिशब्दाः सर्वेऽपि स्वस्वोपमाभूतवस्तुपरिसमाप्तिद्योतकाः वाशब्दाः समुच्चये मृदङ्गो—लोकप्रतीतो मर्दलस्तस्य पुष्करं मृदङ्गपुष्करं परिपूर्णं—पानीयेन भृतं तडागं—सरस्तस्य तलं—उपरितनो भागः सरस्तलं 'करतलं' प्रतीतं, चन्द्रमण्डलं च यद्यपि तत्त्ववृत्त्या उत्तानीकृतकपित्थाकारपीठप्रासादापेक्षया वृत्तालेखमिति तद्गतो दृश्यमानो भागो न समतलस्तथाऽपि प्रतिभासते समतल इति तदुपादानम्, आदर्शमण्डलं सुप्रसिद्धम्, 'उरब्भचम्मेइ वे'त्यादि, अत्र सर्वत्रापि 'अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते' इति विशेषणयोगः, उरभ्रः—ऊरणः वृषभवराहसिंहव्याघ्रछगलाः प्रतीताः द्वीपी—चित्रकः, एतेषां प्रत्येकं चर्म्म अनेकैः शङ्कुप्रमाणैः कीलकसहस्रैः—महद्भिः कीलकैरताडितं प्रायो

मध्यक्षामं भवति न समतलं तथारूपतडाकासम्भवात् अतः शङ्कुग्रहणं, विततं—वितर्तीकृतं ताडितमिति भावः, यथाऽत्यन्तं बहुसमं भवति तथा तस्यापि वनषण्डस्यान्तर्बहुसमो भूमिभागः, पुनः कथम्भूतः? इत्याह—'नाणाविहपंचवन्नेहिं मणीहिं तणेहि य उवसोभिए' इति योगः, नानाविधा—जातिभेदान्नानाप्रकारा ये पञ्चवर्णा मणयस्तृणानि च तैरुपशोभितः, कथम्भूतैर्मणिभिः? इत्याह—'आवडे'त्यादि, आवर्तादीनि मणीनां लक्षणानि, तत्रावर्त्तः प्रतीत एकस्यावर्त्तस्य प्रत्यभिमुख आवर्त्तः प्रत्यावर्त्तः श्रेणिः—तथाविधबिन्दुजातादेः पङ्क्तिः तस्याश्च श्रेणेर्या विनिर्गताऽन्या श्रेणिः सा प्रश्रेणिः स्वस्तिकः प्रतीतः सौवस्तिकपुष्पमाणवौ—लक्षणविशेषौ लोकात्प्रत्येतव्यौ वर्द्धमानकं—शरावसंपुटं मत्स्यकाण्डकमकराण्डके—प्रतीते 'जारमारे'ति लक्षणविशेषौ सम्यग्मणिलक्षणवेदिनो लोकाद्वेदितव्यौ, पुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीलतापद्मलताः प्रतीतास्तासां भक्त्या—विच्छित्त्या चित्रम्—आलेखो येषु ते आवर्त्तप्रत्यावर्त्तश्रेणिप्रश्रेणिस्वस्तिकसौवस्तिकपुष्पमाणववर्धमानकमत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारपुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीपद्मलताभक्तिचित्रास्तैः, किमुक्तं भवति?—आवर्त्तादिलक्षणोपेतैः, तथा सच्छायैः सती—शोभना प्रभा—कान्तिर्येषां ते सत्प्रभास्तैः 'समरीएहिं'ति समरीचिकैः—बहिर्विनिर्गतकिरणजालसहितैः 'सोद्द्योतैः' बहिर्व्यवस्थितप्रत्यासन्नवस्तुस्तोमप्रकाशकरोद्द्योतसहितैः, एवंभूतैर्नानाजातीयैः पञ्चवर्णैर्मणिभिस्तृणैश्चोपशोभितः, तानेव पञ्च वर्णानाह—'तंजहा कण्हे' इत्यादि ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र तेषां पञ्चवर्णानां मणीनां तृणानां च मध्ये णमिति वाक्यालङ्कारे ये ते कृष्णा मणयस्तृणानि च, ये इत्येव सिद्धे ये ते इति वचनं भाषाक्रमार्थं, तेषां णमिति पूर्ववत् 'अयम्' अनन्तरमुद्दिश्यमानः 'एतद्रूपः' अनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—'जीमूत' इति 'जीमूतः' बलाहकः, स चेह प्रावृट्प्रारम्भसमये जलभृतो वेदितव्यः,

तस्यैव प्रायोऽतिकालिमसम्भवात्, इतिशब्द उपमाभूतवस्तुनामपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्द उपमानान्तरापेक्षया समुच्चये, एवं सर्वत्रे-तिवाशब्दौ द्रष्टव्यौ, 'अञ्जनं' सौवीराञ्जनं रत्नविशेषो वा 'खञ्जनं' दीपमल्लिकामलः 'कज्जलं' दीपशिखापतितं 'मषी' तदेव कज्जलं ताम्रभाजनादिषु सामग्रीविशेषेण घोलितं मषीगुलिका—घोलितकज्जलगुटिका, कचित् 'मसी इति मसीगुलिया इति वे'ति न दृश्यते, गवलं—माहिषं शृङ्गं तदपि चोपरितनत्वग्भागापसारणेन द्रष्टव्यं, तत्रैव विशिष्टस्य कालिम्नः सम्भवात्, तथा तस्यैव माहिषशृङ्गस्य निबिडतरसारनिर्वर्त्तिता गुडिका गवलगुडिका 'भ्रमरः' प्रतीतः 'भ्रमरावली' भ्रमरपङ्क्तिः 'भ्रमरपतङ्गसारः' भ्रमरपक्षान्तर्गतो विशिष्टकालिमोपचितः प्रदेशः 'जम्बूफलं' प्रतीतम् 'आर्द्रारिष्टः' कोमलकाकः 'परपुष्टः' कोकिलः गजो गजकलभश्च प्रतीतः 'कृष्णसर्पः' कृष्णवर्णसर्प्पजातिविशेषः 'कृष्णकेसरः' कृष्णवकुलः 'आकाशथिग्गलं' शरदि मेघविनिर्मुक्तमाकाशखण्डं तद्ध्यत्कृष्णमतीव प्रतिभातीति तदुपादानं, कृष्णाशोककृष्णकणवीरकृष्णबन्धुजीवाः अशोककणवीरबन्धुजीववृक्षभेदाः, अशोकादयो हि पञ्चवर्णा भवन्ति ततः शेषवर्णव्युदासार्थं कृष्णग्रहणम्, एतावत्युक्ते गौतमो भगवन्तं पृच्छति—'भवे एयारूवे' इति भवेन्मणीनां तृणानां च कृष्णो वर्ण. 'एतद्रूपः' जीमूतादिरूपः?, भगवानाह—गौतम! 'नायमर्थः समर्थः' नायमर्थ उपपन्नो यदुतैवंभूतः कृष्णो वर्णो मणीनां तृणानां च, किन्तु ते कृष्णा मणयस्तृणानि च 'इतः' जीमूतादेः 'इष्टतरका एव' कृष्णवर्णेनाभीप्सिततरका एव, तत्र किञ्चिद्कान्तमपि केषाञ्चिदिष्टतरं भवति ततोऽकान्तताव्यवच्छित्त्यर्थमाह—'कान्ततरका एव' अतिस्निग्धमनोहारिकालिमोपचिततया जीमूतादेः कमनीयतरका एव, अत एव 'मनोज्ञतरकाः' मनसा ज्ञायन्ते—अनुकूलतया स्वप्रवृत्तिविषयीक्रियन्त इति मनोज्ञा—मनोऽनुकूलास्ततः प्रकर्षविवक्षायां तरप्प्रत्ययः, तत्र मनोज्ञतरमपि किञ्चिन्मध्यमं भवति ततः सर्वोत्कर्षप्रतिपादनार्थमाह—'मनआपतरका एव' द्र-

द्रष्टॄणां मनांसि आप्नुवन्ति—प्राप्नुवन्ति आत्मवशतां नयन्तीति मनआपास्ततः प्रकर्षविवक्षायां तरप्प्रत्ययः, प्राकृतत्वाच्च पकारस्य मकारे मणामतरा इति भवति । तथा 'तत्थ णं'मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां तृणानां च मध्ये ये ते नीला मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—'भृङ्गः' कीटविशेषः पक्ष्मलः भृङ्गपत्रं—तस्यैव भृङ्गाभिधानस्य कीटविशेषस्य पक्ष्म 'शुकः' कीरः 'शुकपिच्छं' शुकस्य पत्रं 'चापः' पक्षिविशेषः 'चापपिच्छं' चापपक्षः 'नीली' प्रतीता 'नीलीभेदः' नीलीच्छेदः 'नीलीगुलिया' नीलीगुटिका 'श्यामाकः' धान्यविशेषः 'उच्चंतगे वा' इति 'उच्चन्तगः' दन्तरागः 'वनराजी' प्रतीता हलधरो—बलदेवस्तस्य वसनं हलधरवसनं तच्च किल नीलं भवति, सदैव तथास्वभावतया हलधरस्य नीलवस्त्रपरिधानात्, मयूरग्रीवापारापतग्रीवाऽतसीकुसुमबाणकुसुमानि प्रतीतानि, अत ऊर्द्ध क्वचित् 'इंदनीलेइ वा महानीलेइ वा मरगतेइ वा' तत्र इन्द्रनीलमहानीलमरकता रत्नविशेषाः प्रतीताः, अञ्जनकेशिका—वनस्पतिविशेषस्तस्याः कुसुममञ्जनकेशिकाकुसुमं 'नीलोत्पलं' कुवलयं नीलाशोकनीलकणवीरनीलबन्धुजीवा अशोकादिवृक्षविशेषाः, 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वद् व्याख्येयम् । तथा 'तत्थ णं'मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां मध्ये ये ते लोहिता मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम शशकरुधिरमुरभ्र—ऊरणस्तस्य रुधिरं वराहः—शूकरस्तस्य रुधिरं मनुष्यरुधिरं महिषरुधिरं च प्रतीतं, एतानि हि किल शेषरुधिरेभ्यो लोहितवर्णोत्कटानि भवन्ति तत एतेषामुपादानं, 'बालेन्द्रगोपकः' सद्योजात इन्द्रगोपकः, स हि प्रवृद्धः सन्नीषत्पाण्डुरक्तो भवति ततो बालग्रहणम्, इन्द्रगोपकः—प्रथमप्रावृट्कालभावी कीटविशेषः 'बालदिवाकरः' प्रथममुद्गच्छन् सूर्यः 'सन्ध्याभ्ररागः' वर्षासु सन्ध्यासमयभावी अभ्ररागः गुञ्जा—लोकप्रतीता तस्या अर्द्धे रागो गुञ्जार्द्धरागः, गुञ्जाया हि अर्द्ध-

मतिरक्तं भवति अर्द्धमतिक्रमणं ततो गुञ्जार्द्धग्रहणं, जपाकुसुमकिंशुककुसुमपारिजातकुसुमजात्यहिङ्गुलकाः—प्रतीताः 'शिलाप्रवालं' प्रवालनामा रत्नविशेषः प्रवालाङ्कुरः तस्यैव रत्नविशेषस्य प्रवालाभिधस्याङ्कुरः, स हि प्रथमोद्गतत्वेनात्यन्तरक्तो भवति ततस्तदुपादानं, लोहिताक्षमणिर्नाम रत्नविशेषः, लाक्षारसकृमिरागरक्तकम्बलचीनपिष्टराशिरक्तोत्पलरक्ताशोकरक्तकणवीररक्तबन्धुजीवाः प्रतीताः 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां तृणानां च मध्ये ये हरिद्रा मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपो 'वर्णावासः' वर्णकविशेषः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—चम्पकः सामान्यतः सुवर्णचम्पको वृक्षः 'चम्पकच्छल्ली' सुवर्णचम्पकत्वक् 'चम्पकभेदः' सुवर्णचम्पकच्छेदः 'हरिद्रा' प्रतीता 'हरिद्राभेदः' हरिद्राच्छेदः 'हरिद्रागुलिका' हरिद्रासारनिर्वर्त्तिता गुलिका 'हरितालिका' पृथ्वीविकाररूपा प्रतीता 'हरितालिकाभेदः' हरितालिकाच्छेदः 'हरितालिकागुलिका' हरितालिकासारनिर्वर्त्तिता गुटिका 'चिकुरः' रागद्रव्यविशेषः 'चिकुराङ्गरागः' चिकुरसंयोगनिमित्तो वस्त्रादौ रागः, वरकनकस्य—जात्यसुवर्णस्य यः कषपट्टके निघर्षः स वरकनकनिघर्षः, वरपुरुषो—वासुदेवस्तस्य वसनं वरपुरुषवसनं, तद्धि किल पीतमेव भवतीति तदुपादानम्, अ(स)ल्लकीकुसुमं लोकतोऽवसेयं 'चम्पककुसुमं' सुवर्णचम्पककुसुमं 'कूष्माण्डीकुसुमं' पुष्पफलीकुसुमं कोरण्टकः—पुष्पजातिविशेषस्तस्य दाम कोरण्टकदाम तडवडा आउली तस्याः कुसुमं तडवडाकुसुमं घोषातकीकुसुमं सुवर्णयूथिकाकुसुमं च प्रतीतं सुहरिण्यका—वनस्पतिविशेषस्तस्याः कुसुमं सुहरिण्यकाकुसुमं बीयको—वृक्षः प्रतीतस्तस्य कुसुमं बीयककुसुमं पीताशोकपीतकणवीरपीतबन्धुजीवाः प्रतीताः 'भवे एयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ ण' मित्यादि, तत्र तेषां मणीनां तृणानां च मध्ये ये ते शुक्ला मणयस्तृणानि च तेषामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'से जहा नाम ए' इत्यादि, स यथा नाम—'अङ्कः' रत्न-

विशेषः शङ्खचन्द्रकुमुदोदकरजोदधिवनक्षीरक्षीरपूरक्रोञ्चावलिहारावलिहंसावलिवलाकावलयः प्रतीताः 'चन्द्रावली' तडागादिषु जलमध्यप्रतिविम्बितचन्द्रपङ्क्तिः 'सारइयवलाहगेइ वा' इति शारदिकः—शरत्कालभावी वलाहको—मेघः 'धंतधोयरुप्पपट्टेइ वे'ति, ध्मातः—अग्निसंपर्केण निर्मलीकृतो धौतो—भूतिखरण्टितहस्तसन्मार्जनेनातिनिशितीकृतो यो रूप्यपट्टो—रजतपत्रं स ध्मातधौतरूप्यपट्टः, अन्ये तु व्याचक्षते—ध्मातेन—अग्निसंयोगेन यो धौतः—शोधितो रूप्यपट्टः स ध्मातरूप्यपट्टः, शालिपिष्टराशिः—शालिक्षोदपुञ्जः कुन्दपुष्पराशिः कुमुदराशिश्च प्रतीतः, 'सुक्कछेवाडियाइ वा' इति छेवाडी नाम—वल्लादिफलिका, सा च कचिद्देशविशेषे शुष्का सती शुक्ला भवति ततस्तदुपादानं, 'पेहुणमिंजियाइ वा' इति पेहुणं—मयूरपिच्छं तन्मध्यवर्त्तिनी मिञ्जा पेहुणमिञ्जिका सा चातिशुक्लेति तदुपन्यासः, विसं—पद्मिनीकन्दः मृणालं—पद्मतन्तुः, गजदन्तलवङ्गदलपुण्डरीकदलश्वेतकणवीरश्वेतवन्धुजीवाः प्रतीताः, 'भवेयारूवे' इत्यादि प्राग्वत् ॥ तदेवमुक्तं वर्णस्वरूपं, सम्प्रति गन्धस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—'तेसि णं मणीणं तणाण य' इत्यादि, तेषां मणीनां तृणानां च कीदृशो गन्धः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—'से जहा नाम ए' इत्यादि, प्राकृतत्वात् 'से' इति वहुवचनार्थः, ते यथा नाम गन्धा अभिनिःश्रवन्तीति सम्वन्धः, कोष्ठं—गन्धद्रव्यं तस्य पुटाः कोष्ठपुटास्तेषां, वाशब्दाः सर्वत्रापि समुच्चये, इहैकस्य पुटस्य न तादृशो गन्ध आयाति द्रव्यस्याल्पत्वात् ततो वहुवचनं, तगरमपि गन्धद्रव्यम्, 'एलाः' प्रतीताः 'चोयगं' गन्धद्रव्यं चम्पकदमनककुङ्कुमचन्दनोशीरमरुवकजातीयूथिकामल्लिकास्नानमल्लिकाकेतकीपाटलानवमालिकावासकर्पूराणि प्रतीतानि नवरमुशीरं—वीरणीमूलं स्नानमल्लिका—स्नानयोग्यो मल्लिकाविशेषः एतेषामनुवाते—आघ्रायकविवक्षितपुरुषाणामनुकूले वाते वाति सति 'उब्भिज्जमानाम्' उद्घाट्यमानानां, चशब्दः सर्वत्रापि समुच्चये, 'निर्भिद्यमानानां' नितरां—अतिशयेन भिद्यमानानां 'कोट्टिज्जमाणाण वा'

इति, इह पुटैः परिमितानि यानि कोष्ठादिगन्धद्रव्याणि तान्यपि परिमेये परिमाणोपचारात्कोष्ठपुटानीत्युच्यन्ते तेषां **'कुट्टयमानानाम्'** उदूखले कुट्टयमानानां **'रुविज्जमाणाण वा'** इति श्लक्ष्णखण्डीक्रियमाणानाम्, एतच्च विशेषणद्वयं कोष्ठादिद्रव्याणामवसेयं, तेषामेव प्रायः कुट्टनश्लक्ष्णखण्डीकरणसम्भवात्, न तु यूथिकादीनाम्, **'उक्किरिज्जमाणाण वा'** इति क्षुरिकादिभिः कोष्ठादिपुटानां कोष्ठादिद्रव्याणां वा उत्कीर्यमाणानां **'विक्खरिज्जमाणाण वा'** इति **'विकीर्यमाणानाम्'** इतस्ततो विप्रकीर्यमाणानां **'परिभुज्जमाणाण वा'** परिभोगायोपभुज्यमानानां, क्वचित्पाठः **'परिभाएज्जमाणाण वा'** इति, तत्र **'परिभाज्यमानानां'** पार्श्ववर्त्तिभ्यो मनाग् २ दीयमानानां **'भंडाओ भंडं साहरिज्जमाणाण वा'** इति **'भाण्डात्'** स्थानादेकस्माद् अन्यद् भाण्डं—भाजनान्तरं संह्रियमाणानाम् **'उदाराः'** स्फाराः, ते चामनोज्ञा अपि स्युरत आह—**'मनोज्ञाः'** मनोऽनुकूलाः, तच्च मनोज्ञत्वं कुतः ? इत्याह—**'मनोहराः'** मनो हरन्ति—आत्मवशं नयन्तीति मनोहराः, यतस्ततो मनोहरत्वं कुतः ? इत्याह—घ्राणमनोनिर्वृतिकराः, एवंभूताः **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन गन्धाः **'अभिनिःस्रवन्ति'** जिघ्रतामभिमुखं निस्सरन्ति, एवमुक्ते शिष्यः पृच्छति—**'भवे एयारूवे'** इत्यादि प्राग्वत् ॥ तेषां मणीनां तृणानां च कीदृशः स्पर्शः प्रज्ञप्तः ?, भगवानाह—गौतम ! **'से जहा नाम ए'** इत्यादि, तद्यथा—**'अजिनकं'** चर्म्ममयं वस्त्रं रूतं च प्रतीतं **'बूरः'** वनस्पतिविशेषः **'नवनीतं'** म्रक्षणं हंसगर्भतूली शिरीषकुसुमनिचयश्च प्रतीतः **'बालकुमुदपत्तरासीइ वे'**ति बालानि—अचिरकालजातानि यानि कुमुदपत्राणि तेषां राशिर्बालकुमुदपत्रराशिः, क्वचित् बालकुसुमपत्रराशिरिति पाठः, **'भवे एयारूवे'** इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तेसि णं भंते !'** इत्यादि, तेषां भदन्त ! तृणानां पूर्वापरदक्षिणोत्तरागतैर्वातैः **'मन्दायं मन्दाय'**मिति मन्दं मन्दम् **'एजितानां'** कम्पितानां **'व्येजितानां'** विशेषतः कम्पितानाम्, एत-

देव पर्यायशब्देन व्याचष्टे—कम्पितानां तथा '**चालितानाम्**' इतस्ततो विक्षिप्तानाम्, एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे—स्पन्दितानां तथा '**संघट्टितानां**' परस्परं घर्षयुक्तानां, कथं घट्टिताः? इत्याह—'**क्षोभितानां**' स्वस्थानाच्चालितानां, स्वस्थानाच्चालनमपि कुतः? इत्याह—'**उदीरितानाम्**' उत्प्रावल्येनेरितानां—प्रेरितानां, कीदृशः शब्दः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—'**गोयमे**' त्यादि, गौतम! स यथानामकः—शिविकाया वा स्पन्दमानिकाया वा रथस्य वा, तत्र शिविका—जम्पानविशेषरूपा उपरिच्छादिता कोष्ठाकारा, तथा दीर्घो—जम्पानविशेषः पुरुषस्य स्वप्रमाणावकाशदायी स्यन्दमानिका, अनयोश्च शब्दः पुरुषोत्पाटितयोः क्षुद्रहेमघण्टिकादिचलनवशतो वेदितव्यः, रथश्चेह सङ्ग्रामरथः प्रत्येयो, न क्रीडारथः, तस्यामेतन्नविशेषणानामसंभवात्, तस्य च फलकवेदिका यस्मिन् काले (यः) पुरुषस्तदपेक्षया कटिप्रमाणाऽवसेया, तस्य च रथस्य विशेषणान्यभिधत्ते—'**सच्छत्तस्से**'त्यादि, सच्छत्रस्य सध्वजस्य '**सघण्टाकस्य**' उभयपार्श्वावलम्बिमहाप्रमाणघण्टोपेतस्य सपताकस्य सह तोरणवरं—प्रधानं तोरणं यस्य स सतोरणवरस्तस्य सह नन्दिघोषो—द्वादशतूर्यनिनादो यस्य स सनन्दिघोषस्तस्य, तथा सह किङ्किणीभिः—क्षुद्रघण्टाभिर्वर्त्तन्त इति सकिङ्किणीकानि यानि हेमजालानि—हेममयदामसमूहास्तैः सर्वासु दिक्षु पर्यन्तेषु—वहिःप्रदेशेषु परिक्षिप्तो—व्याप्तः सकिङ्किणीकहेमजालपर्यन्तपरिक्षिप्तस्तस्य, तथा हैमवतं—हिमवत्पर्वतभावि चित्रविचित्रं—मनोहारिचित्रोपेतं तैनिशं—तिनिशदारुसम्बन्धि कनकनियुक्तं—कनकविच्छुरितं दारु—काष्ठं यस्य स हैमवतचित्रविचित्रतैनिशकनकनियुक्तदारुस्तस्य, सूत्रे च द्वितीयककारः स्वार्थिकः पूर्वस्य च दीर्घे प्राकृतत्वात्, तथा सुष्ठु—अतिशयेन सम्यक् पिनद्धमरकमण्डलं धूश्च यस्य स सुपिनद्धारकमण्डलधूष्कस्तस्य, तथा **कालायसेन**—लोहेन **सुष्ठु**—अतिशयेन कृतं **नेमेः**—वाह्यपरिधेर्यन्त्रस्य च—अरकोपरि फलकचक्रवालस्य कर्म्म यस्मिन् स कालायससुकृतनेमियन्त्रकर्म्मा तस्य, तथा **आकीर्णा**—गुणैर्व्याप्ता ये **वराः**—प्रधा-

नास्तुरगास्ते सुष्ठु—अतिशयेन सम्यक् प्रयुक्ता—योत्रिता यस्मिन् स आकीर्णवरतुरगसुसंप्रयुक्तः, प्राकृतत्वाद् बहुव्रीहावपि निष्ठान्तस्य परनिपातः, तथा सारथिकर्म्मणि ये कुशला नरास्तेषां मध्येऽतिशयेन छेको—दक्षः सारथिस्तेन सुष्ठु सम्यक्परिगृहीतस्य, तथा 'सरसयबत्तीसतोणमंडियस्स' इति शराणां शतं प्रत्येकं येषु तानि शरशतानि तानि च तानि द्वात्रिंशत्तोणानि च—बाणाश्रयाः शरशतद्वात्रिंशत्तोणानि तैर्मण्डितः शरशतद्वात्रिंशत्तोणमण्डितः, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम तानि द्वात्रिंशच्छरशतभृतानि तूणानि रथस्य सर्वतः पर्यन्तेष्ववलम्बितानि यथा तानि तस्य सङ्ग्रामायोपकल्पितस्यातीव मण्डनाय भवन्तीति, तथा कङ्कटं—कवचं सह कङ्कटं यस्य स सकङ्कटः सकङ्कटोऽवतंसः—शेखरो यस्य स सकङ्कटावतंसस्तस्य, तथा सह चापं येषां ते सचापा ये शरा यानि च कुन्तभल्लिमुषण्ढिप्रभृतीनि नानाप्रकाराणि यानि च कवचखेटकप्रमुखाणि आवरणानि तैर्भृतः—परिपूर्णः, तथा योधानां युद्धं तन्निमित्तं सद्यः प्रगुणीभूतो यः स योधयुद्धसज्जः, ततः पूर्वपदेन सह विशेषणसमासः, तस्येत्थंभूतस्य राजाङ्गणे अन्तःपुरे वा रम्ये वा मणिकुट्टिमतले—मणिबद्धभूमितले अभीक्ष्णमभीक्ष्णं मणिको(कु)ट्टिमतलप्रदेशे राजाङ्गणप्रदेशे वा 'अभिघट्टिज्जमाणस्से'ति अभिघट्टयमानस्य वेगेन गच्छतो ये उदारा—मनोज्ञाः कर्णमनोनिर्वृतिकराः सर्वतः समन्तात् शब्दा अभिनिस्सरन्ति, 'भवे एयारूवे सिया' इति 'स्यात्' कथञ्चिद् भवेद् एतद्रूपस्तेषां मणीनां तृणानां च शब्दः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थः, पुनरपि गौतमः प्राह—स यथा नामकः—प्रातः सन्ध्यायां देवतायाः पुरतो या वादनायोपस्थाप्यते सा किल मङ्गलपाठिका तालाभावे च वाद्यते इति वितालेः—तालाभावे भवतीति वैतालिकी तस्या वैतालिक्या—वीणाया 'उत्तरामन्दा मुच्छियाए' इति मूर्छनं मूर्छा सा संजाताऽस्या इति मूर्च्छिता उत्तरमन्दया—उत्तरमन्दाभिधानया मूर्च्छनया—गान्धारस्वरान्तर्गतया सप्तम्या मूर्च्छिता उत्तरमन्दामूर्च्छिता, किमुक्तं भवति ?—गान्धारस्वरस्य सप्त मू-

च्छेना भवन्ति, तद्यथा—"नंदी य खुड्डिमा पूरिमा य चोत्थी अ सुद्धगंधारा। उत्तरगन्धाराविय हवई सा पंचमी मुच्छा ॥ १ ॥ सुहुमुत्तरआयामा छट्ठी सा नियमसो उ बोद्धव्वा। उत्तरमंदा य तहा हवई सा सत्तमी मुच्छा ॥ २ ॥" अथ किंस्वरूपा मूर्च्छेनाः ?, उच्यते, गान्धारादिस्वरूपामोचनेन गायतोऽतिमधुरा अन्यान्यस्वरविशेषा यान् कुर्वन्नास्तां श्रोतॄन् मूर्च्छितान् करोति किन्तु स्वयमपि मूर्च्छित इव तान् करोति, यदिवा स्वयमपि साक्षान्मूर्च्छां करोति, तथा चोक्तम्—"अन्नन्नसरविसेसे उप्पायंतस्स मुच्छणा भणिया। कत्तावि मुच्छितो इव कुणए मुच्छं व सोवेति ॥ १ ॥" गान्धारस्वरान्तर्गतानां च मूर्च्छेनानां मध्ये सप्तमी उत्तरमन्दाभिधाना मूर्च्छेना किलातिप्रकर्षप्राप्ता ततस्तदुत्पादनया च मुख्यवृत्त्या वादयिता मूर्च्छितो भवति, परमभेदोपचारात् वीणाऽपि मूर्च्छितेत्युक्ता, साऽपि यद्यङ्के सुप्रतिष्ठिता न भवति ततो न मूर्च्छेनाप्रकर्षं विदधाति तत आह—अङ्के—स्त्रियाः पुरुषस्य वा उत्सङ्गे सुप्रतिष्ठितायाः, तथा कुशलेन—वादननिपुणेन नरेण पुरुषेण नार्या वा सुष्ठु—अतिशयेन सम्यग् गृहीतायाः, तथा चन्दनस्य सारः चन्दनसारस्तेन निर्मापितो यः कोणो—वादनदण्डस्तेन परिघट्टितायाः—संस्पृष्टायाः 'पच्चूसकालसमयंसि' इति 'प्रत्यूषकालसमये' प्रभातवेलायां, क्वचित् 'पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि' इति पाठस्तत्र प्रदोषसमये प्रातःसमये चेत्यर्थः, 'मन्दं मन्दं' शनैः शनैः 'एजितायाः' चन्दनसारकोणेन मनाक् कम्पितायाः 'व्येजितायाः' विशेषतः कम्पितायाः, एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे—चालितायास्तथा घट्टितायाः, ऊर्द्ध्वाधोगच्छता चन्दनसारकोणेन गाढतरं वीणादण्डेन सह तन्त्र्याः स्पृष्टाया इत्यर्थः, तथा 'स्पन्दितायाः' नखाग्रेण स्वरविशेषोत्पादनार्थमीषच्चालितायाः 'क्षोभितायाः' मूर्च्छां प्रापितायाः ये 'उदाराः' मनोज्ञाः कर्णमनोनिर्वृतिकराः सर्वतः समन्ताच्छब्दा अभिनिस्सरन्ति, 'स्यात्' कथञ्चिद् भवेदेतद्रूपस्तेषां तृणानां मणीनां च शब्दः ?, भगवानाह—नायमर्थः समर्थः, पुनरपि गौतमः प्राह—स यथा नामकः—किंनराणां वा

किंनरादयो व्यन्तरविशेषाः, तेषां कथम्भूतानाम्? किंपुरुषाणां वा महोरगाणां वा गन्धर्वाणां वा, वाशब्दाः सर्वेऽपि विकल्पार्थाः,
किंपुरुषाणां वा महोरगाणां वा गन्धर्वाणां वा, वाशब्दाः सर्वेऽपि विकल्पार्थाः, किंनरादयो व्यन्तरविशेषाः, तेषां कथम्भूतानाम्?
इत्याह—'भद्रशालवनगतानां वा' इत्यादि, तत्र मेरोः समन्ततो भूमौ भद्रशालवनं प्रथममेखलायां नन्दनवनं शिरसि चूलिकायाः पा-
श्वेषु सर्वतः पण्डकवनं 'महाहिमवंतमलयमन्दरगिरिगुहासमन्नागयाणं' इति महाहिमवान्—हैमवतक्षेत्रस्योत्तरतः सीमाकारी वर्ष-
धरपर्वतः, उपलक्षणं शेषवर्षधरपर्वतानां, मलयपर्वतस्य मन्दरगिरेश्च—मेरुपर्वतस्य च गुहा समन्वागतानां, वाशब्दा विकल्पार्थाः, एतेषु
हि स्थानेषु प्रायः किंनरादयः प्रमुदिता भवन्ति तत एतेषामुपादानम्, 'एगतो सहियाणं'ति एकस्मिन् स्थाने सहितानां—समुदितानां
'समुहागयाणं'ति परस्परसंमुखागतानां—संमुखं स्थितानां, नैकोऽपि कस्यापि पृष्ठं दत्त्वा स्थित इत्यर्थः, पृष्ठदाने हर्षविघातोत्पत्तेः,
तथा 'समुविट्ठाणं' सम्यक् परस्परानाबाधया उपविष्टाः समुपविष्टास्तेषां समुपविष्टानां, तथा 'संनिविट्ठाण'मिति सम्यक् स्वशरीराना-
बाधया न तु विषमसंस्थानेन निविष्टाः संनिविष्टास्तेषां, 'पमुइयपक्कीलियाणं'ति प्रमुदिताः—प्रहर्षं गताः प्रक्रीडिताः—क्रीडितुमारब्ध-
वन्तस्ततो विशेषणसमासस्तेषां, तथा गीते रतिर्येषां ते गीतरतयो गन्धर्वं—नाट्यादि तत्र हर्षितमनसो गन्धर्वहर्षितमनसस्ततः पूर्वपदेन
विशेषणसमासस्तेषां गद्यादिभेदादष्टविधं गेयं, तत्र गद्यं यत्र स्वरसञ्चारेण गद्यं गीयते, यत्र तु पद्यं—वृत्तादि गीयते तत्पद्यं, यत्र
कथिकादि गीयते तत्कथ्यं, पदबद्धं यदेकाक्षरादि यथा ते ते इत्यादि, पादबद्धं यद् वृत्तादिचतुर्भागमात्रे पदे बद्धम्, 'उक्खित्ताय'—
मिति उक्षिप्तकं प्रथमतः समारभ्यमाणं, दीर्घत्वं ककारात्पूर्वं प्राकृतत्वात्, एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यं, 'प्रवृत्तकं' प्रथमसमारम्भादूर्द्ध्वमाक्षे-
पपूर्वकप्रवर्त्तमानं 'मंदाय'मिति मन्दकं मध्यभागे सकलमूर्च्छनादिगुणोपेतं मन्दं मन्दं संचरन्, तथा 'रोइयावसाणं'ति रोचितं—
सम्यग्भावितमवसानं यस्य तद् रोचितावसानं, शनैः शनैः प्रक्षिप्यमाणस्वरं यस्य गेयस्यावसानं तद् रोचितावसानमिति भावः, तथा

'सप्तस्वरसमन्वागतं' सप्त स्वराः षड्जादयः, उक्तञ्च—"सज्जे रिसह गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे। धेवए चेव नेसाए, सरा सत्त वियाहिया ॥ १ ॥" ते च सप्त स्वराः पुरुषस्य स्त्रिया वा नाभीतः समुद्भवन्ति 'सत्त सरा नाभीतो' इति पूर्वमहर्षिवचनात्, तथाऽष्टभी रसैः—शृङ्गारादिभिः सम्यक् प्रकर्षेण युक्तमष्टरससम्प्रयुक्तं, तथा एकादश अलङ्काराः पूर्वान्तर्गते स्वरप्राभृते सम्यगभिहिताः, तानि च पूर्वाणि सम्प्रति व्यवच्छिन्नानि ततः पूर्वेभ्यो लेशतो विनिर्गतानि यानि भरतविशाखिलप्रभृतीनि तेभ्यो वेदितव्याः, 'छद्दोसविप्पमुक्कं'ति षड्भिर्दोषैर्विप्रमुक्तं षड्दोषविप्रमुक्तं, ते च षड् दोषा अमी—'भीयं दुयमुप्पिच्छं उत्तालं कागस्सरमणुणासं च'। उक्तञ्च—"भीयं दुयमुप्पिच्छरथमुत्तालं च कमसो मुणेयव्वं। काकस्सरमणुनासं छद्दोसा होंति गेयस्स ॥ १ ॥" तत्र 'भीतम्' उत्रस्तं, किमुक्तं भवति ?—यदुत्रस्तेन मनसा गीयते तद्भीतपुरुषनिबन्धनधर्म्मानुवृत्तत्वाद्भीतमुच्यते, 'द्रुतं' यत्त्वरितं गीयते, 'उप्पिच्छं' नाम आकुलम्, उक्तञ्च—"आहित्थं उप्पिच्छं च आउलं रोसभरियं च" अस्यायमर्थः—आहित्थमुप्पिच्छं च प्रत्येकमाकुलं रोषभृतं वोच्यत इति, आकुलता च श्वासेन द्रष्टव्या तथा पूर्वसूरिभिर्व्याख्यानात्, उक्तञ्च मूलटीकायाम्—"उप्पिच्छं श्वासयुक्त"मिति, तथा उत्—प्राबल्येनातितालमस्थानतालं वा उत्तालं, श्लक्ष्णस्वरेण काकस्वरं, सानुनासिकमनुनासं, नासिकाविनिर्गतस्वरानुगतमिति भावः, तथा 'अट्ठगुणोववेय'मिति अष्टभिर्गुणैरुपेतमष्टगुणोपेतं, ते चाष्टावमी गुणाः—पूर्णं रक्तमलङ्कृतं व्यक्तमविपु(घु)ष्टं मधुरं समं सललितं च, तथा चोक्तम्—"पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहेव अविपु(घु)ट्ठं। महुरं समं सललियं अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥ १ ॥" तत्र यत्स्वरकलाभिः पूर्णं गीयते तत्पूर्णं, गेयरागानुरक्तेन यद् गीयते तद्रक्तम्, अन्योऽन्यस्वरविशेषकरणेन यदलङ्कृतमेव गीयते तदलङ्कृतम्, अक्षरस्वरस्फुटकरणतो व्यक्तं, विस्वरं क्रोशतीव विपु(घु)ष्टं न विघुष्टमविपु(घु)ष्टं, मधुरस्वरेण गीयमानं मधुरं कोकिलारुत-

वत्, तालवंशस्वरादिसमनुगतं समं, तथा यत्स्वरघोलनाप्रकारेण ललतीव तत् सह ललितेनेति सललितं, यदिवा यच्छ्रोत्रेन्द्रियस्य शब्दस्पर्शनमतीव सूक्ष्ममुत्पादयति सुकुमारमिव च प्रतिभासते तत् सललितम् ॥ इदानीमेतेषामेवाष्टानां गुणानां मध्ये कियतो गुणान् अन्यच्च प्रतिपिपादयिषुराह—'रत्तं तिट्ठाणकरणसुद्ध'मित्यादि, 'रक्तं' पूर्वोक्तस्वरूपं तथा च 'त्रिस्थानकरणशुद्धं' त्रीणि स्थानानि—उरःप्रभृतीनि तेषु करणेन—क्रियया शुद्धं त्रिस्थानकरणशुद्धं, तद्यथा—उरःशुद्धं कण्ठशुद्धं शिरोविशुद्धं च, तत्र यदि उरसि स्वरः स्वभूमिकानुसारेण विशालो भवति तत उरोविशुद्धं, स एव यदि कण्ठे वर्त्तितो भवति अस्फुटितश्च ततः कण्ठविशुद्धं, यदि पुनः शिरः प्राप्तः सन् सानुनासिको भवति ततः शिरोविशुद्धं, यदिवा यद् उरःकण्ठशिरोभिः श्लेष्मणाऽव्याकुलितैर्विशुद्धैर्गीयते तद् उरःकण्ठशिरोविशुद्धत्वात्त्रिस्थानकरणविशुद्धं, तथा सकुहरो गुञ्जन् यो वंशो यत्र तन्त्रीतलताललयग्रहसुसंप्रयुक्तं भवति सकुहरे वंशे गुञ्जति तन्त्र्यां च वाद्यमानायां यत्तन्त्रीस्वरेणाविरुद्धं तत् सकुहरगुञ्जद्वंशतन्त्रीसुसंप्रयुक्तं, तथा परस्पराहतहस्ततालस्वरानुवर्त्ति यद् गीतं तत्तालसुसंप्रयुक्तं, यत् मुरजकंसिकादीनामातोद्यानामाहतानां यो ध्वनिर्यश्च नृत्यन्त्या नर्त्तक्याः पादोत्क्षेपस्तेन समं तत्तालसुसंप्रयुक्तं, तथा शृङ्गमयो दारुमयो वंशमयो वाऽङ्गुलिकोशस्तेनाहतायास्तन्त्र्याः स्वरप्रकारो लयस्तमनुसरद् गेयं लयसुसंप्रयुक्तं, तथा यः प्रथमं वंशतन्त्र्यादिभिः स्वरो गृहीतस्तन्मार्गानुसारि ग्रहसुसंप्रयुक्तं, तथा 'महुर'मिति मधुरं प्राग्वत्, तथा 'सम'मिति तालवंशस्वरादिसमनुगतं समं सललितं प्राग्वद् अत एव मनोहरं, पुनः कथम्भूतम्? इत्याह—'मउयरिभियपयसंचारं' तत्र मृदु—मृदुना स्वरेण युक्तं न निष्ठुरेण तथा यत्र स्वरोऽक्षरेषु—घोलनास्वरविशेषेषु संचरन् रागेऽतीव प्रतिभासते स पदसञ्चारो रिभितमुच्यते मृदुरिभितपदेषु गेयनिबद्धेषु सञ्चारो यत्र गेये तत् मृदुरिभितपदसञ्चारं, तथा 'सुरइं' इति शोभना रतिर्यस्मिन् श्रोतॄणां तत्सुरति, तथा शोभना नतिः

रचनातोऽवसाने यस्मिन् तत्सुनति, तथा वरं—प्रधानं चारु—विशिष्टचङ्गिमोपेतं रूपं—स्वरूपं यस्य तद् वरचारुरूपं 'दिव्यं' प्रधानं नृत्यं गेयं प्रगीतानां—गानानुसारध्वनिव(म)तां यादृशः शब्दोऽतिमनोहरो भवति 'स्यात्' कथञ्चिद् भवेद् एतद्रूपस्तेषां तृणानां मणीनां च शब्दः?, एवमुक्ते भगवानाह—गौतम! स्यादेवंभूतः शब्द इति ॥

तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे खुड्डा खुड्डियाओ वावीओ पुक्खरिणीओ गुंजालियाओ दीहियाओ (सरसीओ) सरपंतियाओ सरसरपंतीओ विलपंतीओ अच्छाओ सण्हाओ रयतामयकूलाओ वइरामयपासाणाओ तवणिज्जमयतलाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडाओ णवणीयतलाओ सुवण्णसुब्भ(ज्झ) रययमणिवालुयाओ सुहोयारासुउत्ताराओ णाणामणितित्थसुबद्धाओ चारु(चउ)क्कोणाओ समतीराओ आणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछण्णपत्तभिसमुणालाओ बहुउप्पलकुमुयणलिणसुभगसोगंधितपोंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तफुल्लकेसरोवइयाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिलपुण्णाओ परिहत्थभमंतमच्छकच्छभअणेगसउणमिहुणपरिचरिताओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेदियापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ अप्पेगतियाओ आसवोदाओ अप्पेगतियाओ वारुणोदाओ अप्पेगतियाओ खीरोदाओ अप्पेगतियाओ घओदाओ अप्पेगतियाओ [इक्खु]खो(दो)दाओ (अमयरससमरसोदाओ) अप्पेगतियाओ पगतीए उदग(अमय)रसेणं पण्णत्ताओ पासाइयाओ ४, तासि णं खुड्डि-

याणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ २ देसे २ तहिं २ जाव बहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता ।
तेसि णं तिसोवाणपडिरूवाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया नेमा
रिट्ठामया पतिट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पामया फलगा वइरामया संधी लोहितक्ख-
मईओ सूईओ णाणामणिमया अवलंबणा अवलंबणबाहाओ ॥ तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं
पुरतो पत्तेयं २ तोरणा पं० ॥ ते णं तोरणा णाणामणिमयखंभेसु उवणिविट्ठसण्णिविट्ठा
विविहमुत्तंतरोवइता विविहतारारूवोवचिता ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्ण-
ररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवइरवेदियापरिगताभिरामा विज्जाहर-
जमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्समालणीया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयण-
लेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासातिया ४ ॥ तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा
पण्णत्ता—सोत्थियसिरिवच्छणंदियावत्तवद्धमाणभद्दासणकलसमच्छदप्पणा सव्वरतणामया
अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झया नीलचामर-
ज्झया लोहियचामरज्झया हारिद्दचामरज्झया सुक्किलचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइर-
दंडा जलयामलगंधीया सुरूवा पासाइया ४ ॥ तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता पडागा-
इपडागा घंटाजुयला चामरजुयला उप्पलहत्थया जाव सयसहस्सवत्तहत्थगा सव्वरयणामया

अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तासि णं खुड्डियाणं वावीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वया णियइपव्वया जगतिपव्वया दारुपव्वयगा दगमंडवगा दगमंचका दगमालका दगपासायगा ऊसडा खुल्ला खडहडगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसु णं उप्पायपव्वतेसु जाव पक्खंदोलएसु बहवे हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं उसभासणाइं सीहासणाइं पउमासणाइं दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं णीरयाइं णिम्मलाइं निप्पंकाइं निक्कंकडच्छायाइं सप्पभाइं सम्मिरीयाइं सउज्जोयाइं पासादीयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं ॥ तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं तहिं बहवे आलिघरा मालिघरा कयलिघरा लयाघरा अच्छणघरा पेच्छणघरा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गब्भघरगा मोहणघरगा सालघरगा जालघरगा कुसमघरगा चित्तघरगा गंधव्वघरगा आयंसघरगा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सम्मिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ तेसु णं आलिघरएसु जाव आयंसघरएसु बहूइं हंसासणाइं जाव दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं ॥ तस्स णं वणसंडस्स तत्थ तत्थ देसे २ तहिं

ताहिं बहवे जाइमंडवगा जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा णवमालियामंडवगा वासंतीमंडवगा दधिवासुयामंडवगा सूरिल्लिमंडवगा तंबोलीमंडवगा मुद्दियामंडवगा णागलयामंडवगा अतिमुत्तमंडवगा अप्फोलामंडवगा मालुयामंडवगा सामलयामंडवगा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं जाव पडिरूवा ॥ तेसु णं जातीमंडवएसु बहवे पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता, तंजहा—हंसासणसंठिता कोंचासणसंठिता गरुलासणसंठिता उण्णयासणसंठिता पणयासणसंठिता दीहासणसंठिता भद्दासणसंठिता पक्खासणसंठिता मगरासणसंठिता उसभासणसंठिता सीहासणसंठिता पउमासणसंठिता दिसासोत्थियासणसंठिता पं०, तत्थ बहवे वरसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया पण्णत्ता समणाउसो! आइण्णगरूयबूरणवणीततूलफासा मउया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीदंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीलंति मोहंति पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ तीसे णं जगतीए उप्पिं अंतो पउमवरवेदियाए एत्थ णं एगे महं वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेणं वेइयासमएणं परिक्खेवेणं किण्हे किण्होभासे वणसंडवण्णओ (मणि)तणसद्दविहूणो णेयव्वो, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्टंति रमंति

ललंति कीडंति मोहंति पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कंताणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ॥ (सू० १२७)

'तस्स णं वणसंडस्से'त्यादि, तस्य णमिति वाक्यालङ्कारे वनखण्डस्य मध्ये तत्र तत्र देशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे 'वहूईओ' इति वह्वयः 'खुड्डा खुड्डियाओ' इति क्षुल्लिकाः क्षुल्लिका लघवो लघव इत्यर्थः, 'वाप्यः' चतुरस्राकाराः 'पुष्करिण्यः' वृत्ताकाराः अथवा पुष्कराणि विद्यन्ते यासु ताः पुष्करिण्यः 'दीर्घिकाः' सारिण्यस्ता एव वक्रा गुञ्जालिकाः, वहूनि केवलकेवलानि पुष्पावकीर्णकानि सरांसि, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, वहूनि सरांसि एकपङ्क्त्या व्यवस्थितानि सरःपङ्क्तिस्ता वह्वयः सरःपङ्क्तयः, तथा येषु सरस्सु पङ्क्त्या व्यवस्थितेषु कूपोदकं प्रणालिकया संचरति सा सरःसरःपङ्क्तिस्ता वह्वयः सरःसरःपङ्क्तयः, तथा विलानीव विलानि—कूपास्तेषां पङ्क्तयो विलपङ्क्तयः, एताश्च सर्वा अपि कथम्भूताः ? इत्याह—'अच्छा' स्फटिकवद्बहिर्निर्म्मलप्रदेशाः 'श्लक्ष्णाः' श्लक्ष्णपुद्गलनिष्पादितबहिःप्रदेशाः, तथा रजतमयं—रूप्यमयं कूलं यासां ता रजतमयकूलाः, तथा समं—अगर्त्तासद्भावतोऽविषमं तीरं तीरावर्त्तिजलापूरितं स्थानं यासां ताः समतीराः, तथा वज्रमयाः पाषाणा यासां ता वज्रमयपाषाणाः, तथा तपनीयं—हेमविशेषस्तपनीयं—तपनीयमयं तलं—भूमितलं यासां तास्तपनीयतलाः, तथा 'सुवण्णसुज्झरययवालुयाओ' इति सुवर्णं—पीतकान्तिहेम सुज्झं—रूप्यविशेषः रजतं—प्रतीतं तन्मय्यो वालुका यासु ताः सुवर्णसुज्झरजतवालुकाः, 'वेरुलियमणिफालिहपडलपच्चोयडाओ य'त्ति वैडूर्यमणिमयानि स्फाटिकपटलमयानि प्रत्यवतटानि तटसमीपवर्त्तिनोऽत्युन्नतप्रदेशा यासां ता वैडूर्यमणिस्फटिकपटलप्रत्यवतटाः 'सुहोयारासुउत्तारा' इति सुखेनावतारो—जलमध्ये प्रवेशनं यासु ताः स्ववताराः तथा सु—सुखेन उत्तारो—जलमध्याद्बहिर्विनिर्गमनं यासु ताः

सुखोत्तारा: ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः '**नाणामणितित्थसुबद्धाओ**' इति नानामणिभिः—नानाप्रकारैर्मणिभिस्तीर्थानि सुबद्धानि यासां ता नानामणितीर्थसुबद्धाः, अत्र बहुव्रीहावपि क्तान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात्प्राकृतशैलीवशाद्वा, '**चउक्कोणाओ**' इति चत्वारः कोणा यस्यां सा चतुष्कोणाः एतच्च विशेषणं वापीः कूपांश्च प्रति द्रष्टव्यं, तेषामेव चतुष्कोणत्वसम्भवात् न शेषाणां, तथा **आनुपूर्व्वेण**—क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण सुष्ठु—अतिशयेन यो जातो **वप्रः**—केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरं—अलब्धस्थानं शीतलं जलं यासु ता आनुपूर्व्यसुजातवप्रगम्भीरशीतलजलाः '**संछण्णपत्तभिसमुणालाओ**' संछन्नानि—जलेनान्तरितानि पत्रविसमृणालानि यासु ताः संछन्नपत्रविसमृणालाः, इह विसमृणालसाहचर्यात्पत्राणि—पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि, बिसानि—कन्दा मृणालानि—पद्मनालाः, तथा बहुभिरुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रकेसरफुल्लोपचिताः, तथा षट्पदैः—भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि च यासु ताः षट्पदपरिभुज्यमानकमलाः, तथाऽच्छेन—स्वरूपतः स्फटिकवच्छुद्धेन विमलेन—आगन्तुकमलरहितेन सलिलेन पूर्णा अच्छविमलसलिलपूर्णाः, तथा '**पडिहत्था**' अतिरेकिताः अतिप्रभूता इत्यर्थः "पडिहत्थमुद्धुमायं अहिरेइयं च जाण आउण्णं" इति वचनात्, उदाहरणं चात्र—"घणपडिहत्थं गयणं सराइं नवसलिलसुद्ध(उद्धु)मायाइं । अहिरेइयं महं उण चिंताएँ मणं तुहं विरहे ॥ १ ॥" इति, भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यत्र ताः पडिहत्थभ्रमन्मत्स्यकच्छपाः, तथाऽनेकैः—शकुनमिथुनकैः प्रविचरिता—इतस्ततो गमनेन सर्वतो व्याप्ता अनेकशकुनमिथुनकप्रविचरिताः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, एता वाप्यादयः सरस्सरःपङ्क्तिपर्यवसानाः प्रत्येकं प्रत्येकमिति, एकमेकं प्रति प्रत्येकम्, अत्राभिमुख्ये प्रतिशब्दो न वीप्साविवक्षायां, पश्चात्प्रत्येकशब्दस्य द्विर्वचनमिति, पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं वनषण्डपरिक्षिप्ताश्च, '**अप्पेगतियाओ**' इत्यादि, अपिर्बोढार्थे बाढमेकका:—काश्चन

वाप्यादय आसवमिव—चन्द्रहासादिपरमासवमिव उदकं यासां ता आसवोदकाः, अप्येकका वारुणस्य वारुणसमुद्रस्येव उदकं यासां ता वारुणोदकाः, अप्येकका: क्षीरमिवोदकं यासां ताः क्षीरोदकाः, अप्येकका घृतमिवोदकं यासां ता घृतोदकाः, अप्येकका: क्षोद इव—इक्षुरस इव उदकं यासां ताः क्षोदोदकाः, अप्येकका अमृतरससमरसमुदकं यासां ता अमृतरससमरसोदकाः, अप्येकका अमृतरसेन स्वाभाविकेन प्रज्ञप्ताः, 'पासाईया(ओ)' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत्, तासां क्षुल्लिकानां यावद्बिलपङ्क्तीनां प्रत्येकं २ चतुर्दिशि चत्वारि, एकैकस्यां दिशि एकैकभावात्, 'त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि' प्रतिविशिष्टं रूपं येषां तानि प्रतिरूपकाणि त्रयाणां सोपानानां समाहारस्त्रिसोपानं त्रिसोपानानि च तानि प्रतिरूपकाणि चेति विशेषणसमासः, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, तानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणाम् 'अयं' वक्ष्यमाणः 'एतद्रूपः' अनन्तरं वक्ष्यमाणस्वरूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'वज्रमयाः' वज्ररत्नमया 'नेमाः' भूमेरूर्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशाः 'रिष्ठमयाः' रिष्ठरत्नमयाः 'प्रतिष्ठानाः' त्रिसोपानमूलपादा वैडूर्यमयाः स्तम्भाः सुवर्णरूप्यमयानि **फलकानि**—त्रिसोपानाङ्गभूतानि वज्रमयानि वज्ररत्नापूरिताः **सन्धयः**—फलकद्वयापान्तरालप्रदेशाः लोहिताक्षमय्यः **सूच्यः**—फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयाः नानामणिमया अवलम्ब्यन्ते इति अवलम्बना—अवतरतामुत्तरतां चालम्बने हेतुभूता अवलम्बनबाहातो विनिर्गताः केचिदवयवाः 'अवलंवणबाहाओ' इति अवलम्बनबाहा अपि नानामणिमयाः, अवलम्बनबाहा नाम उभयोः उभयोः पार्श्वयोरवलम्बनाश्रयभूता भित्तयः, 'पासाईयाओ' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'-मित्यादि, तेषां त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां प्रत्येकं प्रत्येकं तोरणानि प्रज्ञप्तानि, तेषां च तोरणानामयमेतद्रूपो 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—'ते णं तोरणा नाणामणिमया' इत्यादि, तानि तोरणानि नानामणिमयानि, **मणयः**—चन्द्रकान्तादयः, विविध म-

णिमयानि, नानामणिमयेषु स्तम्भेषु 'उपविट्ठानि' सामीप्येन स्थितानि, तानि च कदाचिच्चलानि अथवाऽपद्पतितानि वाऽऽशङ्क्येरन् तत आह—सम्यग्—निश्चलतयाऽपद्परिहारेण च निविष्टानि ततो विशेषणसमासः उपविष्टसन्निविष्टानि 'विविहमुत्तंतरोचिया' इति विविधा—विविधविच्छित्तिकलिता मुक्ता—मुक्ताफलानि 'अंतरे'ति अन्तराशब्दोऽगृहीतवीप्सोऽपि सामर्थ्याद्वीप्सां गमयति, अन्तरा २ 'ओचिया' आरोपिता यत्र तानि तथा, 'विविहताराख्वोवचिया' इति विविधैस्तारारूपैः—तारिकारूपैरुपचितानि, तोरणेषु हि शोभार्थं तारका निबध्यन्ते इति लोकेऽपि प्रतीतं इति विविधतारारूपोपचितानि, 'ईहामिगउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिंनर-रुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता' इति ईहामृगा—वृका व्यालाः—श्वापदभुजगाः, ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहग-व्यालकिंनररुरुसरभकुञ्जरवनलतापद्मलतानां भक्त्या—विच्छित्त्या विचित्रं—आलेखो येषु तानि तथा, स्तम्भोद्गताभिः—स्तम्भोपरिवर्तिनीभिर्वज्ररत्नमयीभिर्वेदिकाभिः परिगतानि सन्ति यानि अभिरमणीयानि तानि स्तम्भोद्गतवज्रवेदिकापरिगताभिरामाणि, तथा 'विज्जाहरजंतजुत्ताविव अच्चीसहस्समालिणीया' इति विद्याधरयोर्यद् यमलं—समश्रेणीकं युगलं—द्वन्द्वं विद्याधरयमलयुगलं तेषां यन्त्राणि—प्रपञ्चास्तैर्युक्तानीव, अर्चिषां सहस्रैर्मालनीयानि—परिवारणीयानि अर्चिःसहस्रमालनीयानि, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम प्रभासमुदायोपेतानि येनैवं संभावनोपजायते यथा नूनमेतानि न स्वाभाविकप्रभासमुदयोपेतानि किन्तु विशिष्टविद्याशक्तिमत्पुरुषविशेषप्रपञ्चयुक्तानीति, 'रूवगसहस्सकलिया' इति रूपकाणां सहस्राणि रूपकसहस्राणि तैः कलितानि रूपकसहस्रकलितानि 'भिसमाणा' इति दीप्यमानानि 'भिब्भिसमाणा' इति अतिशयेन दीप्यमानानि 'चक्खुल्लोयणलेसा' इति चक्षुः कर्तृ लोकने—अवलोकने लिसतीव—दर्शनीयत्वातिशयतः श्लिष्यतीव यत्र तानि चक्षुर्लोकनलेसानि 'सुहफासा' इति शुभस्पर्शानि सशोभाकानि रूपाणि यत्र तानि सश्रीकरूपाणि,

'पासाइया' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसिं तोरणाणं उवरिं अट्ठट्ठमंगले'त्यादि सुगमं, नवरं 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् 'घट्ठा मट्ठा नीरया' इत्यादिपरिग्रहः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानामुपरि बहवः 'कृष्णचामरध्वजाः' कृष्णचामरयुक्ता ध्वजाः कृष्णचामरध्वजाः एवं बहवो नीलचामरध्वजा लोहितचामरध्वजा हारिद्रचामरध्वजाः शुक्लचामरध्वजाः, कथम्भूता इत्याह एते सर्वेऽपि? इति, अत आह—'अच्छा' आकाशस्फटिकवदतिनिर्मलाः 'कृष्णाः' कृष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापिता 'रूप्यपट्टा' इति रूप्यो—रूप्यमयो वज्रमयस्य दण्डस्योपरि पट्टो येषां ते रूप्यपट्टाः 'वइरदंडा' इति वज्रो—वज्ररत्नमयो दण्डो रूप्यपट्टमध्यवर्त्ती येषां ते वज्रदण्डाः, तथा जलजानामिव—जलजकुसुमानां पद्मादीनामिवामलो—निर्म्मलो न तु कुद्रव्यगंधसम्मिश्रो यो गन्धः स विद्यते येषां ते जलजामलगन्धिका 'अतः अनेकस्वरा'दितीकप्रत्ययः, अत एव सुरम्याः, 'पासादीया' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानामुपरि बहूनि 'छत्रातिच्छत्राणि' छत्रात्—लोकप्रसिद्धादेकसङ्ख्याकादतिशायीनि द्विसङ्ख्यानि त्रिसङ्ख्यानि वा छत्रातिच्छत्राणि, बहवः पताकाभ्यो—लोकप्रसिद्धाभ्योऽतिशायिन्यो दीर्घत्वेन विस्तारेण च पताकाः पताकातिपताकाः, बहूनि घण्टायुगलानि बहूनि चामरयुगलानि बहवः 'उत्पलहस्तकाः' उत्पलाख्यजलजकुसुमसमूहविशेषाः, एवं पद्महस्तका बहवो नलिनहस्तका बहवः सुभगहस्तका बहवः सौगन्धिकहस्तका बहवः पुण्डरीकहस्तका बहवः शतपत्रहस्तकाः बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः, उत्पलादीनि प्रागेव व्याख्यातानि, एते च छत्रातिच्छत्रादयः सर्वेऽपि सर्वरत्नमयाः 'जाव पडिरूवा' इति यावत्करणात् 'अच्छा सण्हा लण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकपरिग्रहः ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां क्षुल्लिकानां वापीनां यावद्बिलपङ्क्तीनाम्, अत्र यावच्छब्दात् पुष्करिण्यादिपरिग्रहः, अपान्तरालेषु तत्र तत्र देशे तस्यैव देशस्य तत्र तत्रैकदेशे बहव उत्पातपर्वता—यत्रागत्य बहवो व्यन्तरदेवा देव्यश्च विचित्रक्रीडानिमित्तं वैक्रियशरीरमारचयन्ति

'नियइपव्वया' इति **नियत्या**—नैयत्येन पर्वता नियतिपर्वताः, क्वचित् **'निययपव्वया'** इति पाठस्तत्र **नियताः**—सदा भोग्यत्वेनावस्थिताः पर्वता नियतपर्वताः, यत्र वानमन्तरा देवा देव्यश्च भवधारणीयेन वैक्रियशरीरेण प्रायः सदा रममाणा अवतिष्ठन्ते इति भावः, **'जगतीपर्वतकाः'** पर्वतविशेषाः **'दारुपर्वतकाः'** दारुनिर्मापिता इव पर्वतकाः **'दगमंडवगा'** इति **'दकमण्डपकाः'** स्फटिकमण्डपकाः, उक्तं च **मूलटीकायां**—"दकमण्डपकाः स्फाटिकमण्डपका" इति, एवं दकमञ्चका दकमालका दकप्रासादाः, एते च दकमण्डपादयः केचित् **'ऊसडा'** इति उत्सृता उच्चा इत्यर्थः, केचित् **'खुड्डा'** इति क्षुल्ला लघवः क्वचित् **'खडख(ह)डगा'** इति लघव आयताश्च, तथा अन्दोलकाः पक्ष्यन्दोलकाश्च, तत्र यत्रागत्य मनुष्या आत्मानमन्दोलयन्ति ते अन्दोलका इति लोके प्रसिद्धाः, यत्र तु पक्षिण आगत्यात्मानमन्दोलयन्ति ते पक्ष्यन्दोलकाः, ते चान्दोलकाः पक्ष्यन्दोलकाश्च तस्मिन् वनषण्डे तत्र तत्र प्रदेशे वानमन्तरदेवदेवीक्रीडायोग्या बहवः सन्ति, ते चोत्पातपर्वतादयः कथम्भूताः? इत्याह—**'सर्वरत्नमयाः'** सर्वात्मना रत्नमयाः, **'अच्छा सण्हा'** इत्यादि विशेषणजातं पूर्ववत् ॥ **'तेसु ण'**मित्यादि, तेषु उत्पातपर्वतेषु यावत्पक्ष्यन्दोलकेषु, यावत्करणान्नियतिपर्वतकादिपरिग्रहः, बहूनि हंसासनानि तत्र येषामासनानामधोभागे हंसा व्यवस्थिता यथा सिंहासने सिंहाः तानि हंसासनानि, एवं क्रौञ्चासनानि गरुडासनानि च भावनीयानि, उन्नतासनानि नाम यानि उच्चासनानि प्रणतासनानि—निम्नासनानि दीर्घासनानि—शय्यारूपाणि **भद्रासनानि** येषामधोभागे पीठिकाबन्धः पक्ष्यासनानि येषामधोभागे नानास्वरूपाः पक्षिणः, एवं मकरासनानि सिंहासनानि च भावनीयानि, **पद्मासनानि**—पद्माकाराणि आसनानि **'दिसासोवत्थियासणाणि'** येषामधोभागे दिक्सौवस्तिका आलिखिताः सन्ति, अत्र यथाक्रममासनानां सङ्ग्राहिका सङ्ग्रहणिगाथा—"हंसे १ कोंचे २ गरुडे ३ उण्णय ४ पणए य ५ दीह ६ भद्दे य ७ । पक्खे ८ मयरे ९

तथा वर्त्तन्त इति भावः 'क्रीडन्ति' यथासुखमितस्ततो गमनविनोदेन गीतनृत्यादिविनोदेन वा तिष्ठन्ति 'मोहन्ति' मैथुनसेवां कुर्वन्ति, इत्येवं 'पुरा पोराणाण'मित्यादि, 'पुरा' पूर्वं प्राग्भवे इति भावः कृतानां कर्म्मणामिति योगः, अत एव पौराणानां सुचीर्णानां—सुचरितानामितिभावः, इह सुचरितजनितं कर्म्मापि कार्ये कारणोपचारात्सुचरितमिति विवक्षितं, ततोऽयं भावार्थः—विशिष्टतथाविधधर्म्मानुष्ठानविषयाप्रमादकरणक्षान्त्यादिसुचरितानामिति, तथा सुपराक्रान्तानाम्, अत्रापि कारणे कार्योपचारात् सुपराक्रान्तजनितानि कर्माण्येव सुपराक्रान्तानि इत्युक्तं भवति, सकलसत्त्वमैत्रीसत्यभाषणपरद्रव्यानपहारसुशीलादिरूपसुपराक्रमजनितानामिति, अत एव शुभानां—शुभफलानाम्, इह किञ्चिदशुभफलमपीन्द्रियमतिविपर्यासात् शुभफलमाभाति ततस्तात्त्विकशुभत्वप्रतिपत्त्यर्थमस्यैव पर्यायशब्दमाह—'कल्याणानां' तत्त्ववृत्त्या तथाविधविशिष्टफलदायिनाम्, अथवा कल्याणानाम्—अनर्थोपशमकारिणां, कल्याणं—कल्याणरूपं फलविपाकं 'पच्चणुभवमाणा' प्रत्येकमनुभवन्तः—'विहरन्ति' आसते ॥ तदेवं पद्मवरवेदिकाया बहिर्यो वनखण्डस्तद्वक्तव्यतोक्ता, सम्प्रति तस्या एव पद्मवरवेदिकाया अर्वाग् जगत्या उपरि यो वनखण्डस्तद्वक्तव्यतामभिधित्सुराह—'तीसे णं जगतीए' इत्यादि, तस्या जगत्या उपरि पद्मवरवेदिकाया 'अन्तः' मध्यभागे अत्र महानेको वनषण्डः प्रज्ञप्तः 'देसोणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेण'मित्यादि सर्वं बहिर्वनखण्डवदविशेषेण वक्तव्यं, नवरमत्र मणीना तृणानां च शब्दो न वक्तव्यः, पद्मवरवेदिकान्तरिततया तथाविधवाताभावतो मणीनां तृणानां च चलनाभावतः परस्परसंघर्षाभावात्, तथा चाह—"वणसंडवण्णतो सद्दवज्जो जाव विहरंति" इति ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीपस्य द्वारसङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा— ॥ २०१ ॥

विजये वेजयंते जयंते अपराजिए ॥ (सू० १२८) कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजये नामं दारे पण्णत्ते ?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाधाए जंबुद्दीवे दीवे पुरच्छिमपेरंते लवणसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीताए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजये णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेए वरकणगथूभियागे ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलतपउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गतवइरवेदियापरिगताभिरामे विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ते इव अच्चीसहस्समालिणीए रूवगसहस्सकलिते भिसिमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे वण्णो दारस्स (तस्सिमो होइ) तं०—वइरामया णिम्मा रिट्ठामया पतिट्ठाणा वेरुलियामया खंभा जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकोट्टिमतले हंसगब्भमए एलुए गोमेज्जमते इंदक्खीले लोहितक्खमईओ दारचिडाओ जोतिरसामते उत्तरंगे वेरुलियामया कवाडा वइरामया संधी लोहितक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया समुग्गगा वईरामई अग्गलाओ अग्गलपासाया वइरामई आवत्तणपेढिया अंकुत्तरपासते णिरंतरितघणकवाडे भित्तीसु चेव भित्तीगुलिया छप्पण्णा तिण्णि होंति गोमाणसी तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठियसालिभंजिया वइरामए कूडे रययामए उ-

रसेहे सव्वतवणिज्जमए उल्लोए णाणामणिरयणजालपंजरमणिवंसगलोहितक्खपडिवंसगरयतभोम्मे अंकामया पक्खबाहाओ जोतिरसामया वंसा वंसकवेल्लुगा य रयतामयी पट्टिताओ जायरूवमती ओहाडणी वइरामयी उवरि पुच्छणी सव्वसेतरययमए च्छायणे अंकमतकणगकूडतवणिज्जथूभियाए सेते संखतलविमलणिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणिगरप्पगासे तिलगरयणद्धचंदचित्ते णाणामणिमयदामालंकिए अंतो य बहिं च सण्हे तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडे सुहप्फासे सस्सिरीयरूवे पासातीए ४ ॥ विजयस्स णं दारस्स उभयो पासिं दुहतो णिसीहियाते दो दो चंदणकलसपरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा चंदणकयचच्चागा आवद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा महता महता महिंदकुंभसमाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहतो णिसीहिआए दो दो णागदंतपरिवाडीओ, ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसितहेमजालगवक्खजालखिंखिणीघंटाजालपरिक्खित्ता अब्भुग्गता अभिणिसिट्ठा तिरियं सुसंपगहिता अहेपण्णगद्धरूवा पण्णगद्धसंठाणसंठिता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महता महया गयदंतसमाणा प० समणाउसो ! ॥ तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धवग्घारितमल्लदामकलावा जाव सुक्किलसुत्तबद्धवग्घारियमल्लदामकलावा ॥ ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा

सुवण्णपतरगमंडिता णाणामणिरयणविविधहारद्धहार (उवसोभितसमुदया) जाव सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ॥ तेसि णं णागदंतकाणं उवरिं अण्णाओ दो दो णागदंतपरिवाडीओ पण्णत्ताओ, तेसि णं णागदंतगाणं मुत्ताजालंतरूसिया तहेव जाव समणाउसो ! । तेसु णं णागदंतएसु बहवे रयतामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रयणामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामतीओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ सुगंधवरगंधगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं तप्पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ अतीव अतीव सिरीए जाव चिट्ठंति ॥ विजयस्स णं दारस्स उभयतो पासिं दुहतो णिसीधियाए दो दो सालिभंजियापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठिताओ सुपयट्ठियाओ सुअलंकिताओ णाणागारवसणाओ णाणामल्लपिणट्टि(द्धि)ओ मुट्ठीगेज्झमज्झाओ आमेलगजमलजुयलवट्टिअब्भुण्णयपीणरचियसंठियपओहराओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिदुविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लितग्गसिरयाओ ईसिं असोगवरपादवसमुट्ठिताओ वामहत्थगहितग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खविद्धिएहिं लूसेमाणीतो इव चक्खुल्लोयणलेसाहिं अण्णमण्णं खिज्जमाणीओ इव पुढविपरिणामाओ सासयभावमुव-

गताओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमनिडालाओ चंदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोएमाणीओ विज्जुघणमरीचिसूरदिप्पंततेयअहियरसंनिकासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ ४ तेयसा अतीव अतीव सोभेमाणीओ सोभेमाणीओ चिट्ठंति ॥ विजयस्स णं दारस्स उभयतो पासिं दुहतो णिसीहियाए दो दो जालकडगा पण्णत्ता, ते णं जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहओ णिसीधियाए दो दो घंटापरिवाडिओ पण्णत्ताओ, तासि णं घंटाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—जंबूणतमतीओ घंटाओ वइरामतीओ लालाओ णाणामणिमया घंटापासगा तवणिज्जमतीओ संकलाओ रयतामतीओ रज्जूओ ॥ ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ मेहस्सराओ हंसस्सराओ कोंचस्सराओ णंदिस्सराओ णंदिघोसाओ सीहस्सराओ सीहघोसाओ मंजुस्सराओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ सुस्सरणिग्घोसाओ ते पदेसे ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणनिव्वुइकरेण सद्देण जाव चिट्ठंति ॥ विजयस्स णं दारस्स उभओपासिं दुहतो णिसीधिताए दो दो वणमालापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणमालाओ णाणादुमलताकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलसोभंतसस्सिरीयाओ पासाईयाओ ते पएसे उरालेणं जाव गंधेणं आपूरेमाणीओ जाव चिट्ठंति (सू० १२९) ॥

'जंबुद्दीवस्स णं भंते!' इत्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति प्राग्वत् भदन्त! द्वीपस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरच्छिमेणं'ति पूर्वस्यां दिशि पञ्चचत्वारिंशद्-योजनसहस्रप्रमाणया 'अबाधया' अपान्तरालेन यो जम्बूद्वीपस्य 'पुरच्छिमे पेरंते' इति पूर्वः पर्यन्तो लवणसमुद्रपूर्वार्द्धस्य 'पच्चत्थिमेणं'ति पश्चिमे भागे शीताया महानद्या उपरि 'अत्र' एतस्मिन् प्रदेशे जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्, अष्टौ योजनानि उच्चैस्त्वेन चत्वारि योजनानि विष्कम्भेन, 'तावइयं चेव पवेसेणं'ति तावन्त्येव चत्वारीत्यर्थः योजनानि प्रवेशेन, कथम्भूतमित्यर्थः, 'सेए' इत्यादि, 'श्वेतं' श्वेतवर्णोपेतं बाहुल्येनाङ्करत्नमयत्वात् 'वरकणगथूभियाए' इति वरकनका—वरकनकमयी स्तूपिका—शिखरं यस्य तद् वरकनकस्तूपिकाकम्, 'ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गयवरवेइयापरिगयाभिरामे विज्जाहरजमलजुगलजंतजुत्ते इव अच्चीसहस्समालणीए रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे' इति विशेषणजातं प्राग्वत्। 'वण्णो दारस्स तस्सिमो होइ' इति 'वर्णः' वर्णकनिवेशो द्वारस्य 'तस्य' विजयाभिधानस्य 'अयं' वक्ष्यमाणो भवति, तमेवाह—'तंजहे'त्यादि, तद्यथा—वज्रमया नेमा—भूमिभागादूर्द्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशा रिष्ठमयानि प्रतिष्ठानानि—मूलपादाः 'वेरुलियरुइलखंभे' इति वैडूर्या—वैडूर्यरत्नमया रुचिराः स्तम्भा यस्य तद् वैडूर्यरुचिरस्तम्भं 'जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकुट्टिमतले' इति जातरूपेण—सुवर्णेनोपचितैः—युक्तैः प्रवरैः—प्रधानैः पञ्चवर्णैर्मणिभिः—चन्द्रकान्तादिभिः रत्नैः—कर्केतनादिभिः कुट्टिमतलं—बद्धभूमितलं यस्य तत्तथा 'हंसगब्भमए एलुगे'

इति हंसगर्भो—रत्नविशेषस्तन्मय एलुको—देहली 'गोमेज्जमयइंदकीले' इति गोमेयकरत्नमय इन्द्रकीलो लोहिताक्षरत्नमय्यौ द्वारपिण्डौ(चेट्यौ)—द्वारशाखे 'जोइरसामए उत्तरंगे' इति ज्योतीरसमयमुत्तरङ्ग—द्वारस्योपरि तिर्यग्व्यवस्थितं काष्ठं वैडूर्यमयौ कपाटौ लोहिताक्षमय्यो—लोहिताक्षरत्नात्मिकाः सूचयः—फलकद्वयसम्बन्धविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीयाः 'वइरामया संधी' वज्रमयाः 'सन्धयः' सन्धिमेलाः फलकानां, किमुक्तं भवति ?—वज्ररत्नापूरिताः फलकानां सन्धयः, 'नानामणिमया समुग्गया' इति समुद्गका इव समुद्गकाः—सूतिकागृहाणि तानि नानामणिमयानि 'वइरामया अग्गला अग्गलपासाया' अर्गलाः—प्रतीताः अर्गलाप्रासादा यत्रार्गला नियम्यन्ते, आह च मूलटीकाकारः—"अर्गलाप्रासादा यत्रार्गला नियम्यन्ते" इति, एतौ द्वावपि वज्ररत्नमयौ, 'रययामयी आवत्तणपेढिया' इति आवर्त्तनपीठिका यत्रेन्द्रकीलिका, उक्तं च मूलटीकायाम्—"आवर्त्तनपीठिका यत्रेन्द्रकीलको भवति" 'अंकुत्तरपासाए' इति अङ्का अङ्करत्नमया उत्तरपार्श्वा यस्य तद् अङ्कोत्तरपार्श्वं 'निरंतरियघणकवाडे' इति निर्गता अन्तरिका—लध्वन्तररूपा ययोस्तौ निरन्तरिकौ अत एव घनौ कपाटौ यस्य तन्निरन्तरघनकपाटं 'भित्तिसु चेव भित्तिगुलिया छप्पण्णा तिन्नि होंति' इति तस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्भित्तिषु—भित्तिगता भित्तिगुलिकाः—पीठकसंस्थानीयास्तिस्रः षट्पञ्चाशतः—षट्पञ्चाशत्त्रिकप्रमाणा भवन्ति, 'गोमाणसिया तत्तिया' इति गोमानस्यः—शय्याः 'तत्तिया' इति तावन्मात्राः षट्पञ्चाशत्त्रिकसङ्ख्याका इत्यर्थः, 'नानामणिरयणवालरूवगलीलट्ठियसालभंजियाए' इति इदं द्वारविशेषणं, नानामणिरत्नानि—नानामणिरत्नमयानि व्यालरूपकाणि लीलास्थितशालभञ्जिकाश्च—लीलास्थितपुत्रिकाश्च यस्य तत्तथा 'वइरामए कूडे' वज्रमयो—वज्ररत्नमयः कूटो—माडभागः रजतमय उत्सेधः—शिखरम्, आह च मूलटीकाकारः—"कूडो—माडभाग उच्छ्रयः—शिखर"मिति, केवलं शिखरमत्र तस्यैव माडभागस्य सं-

बन्धि द्रष्टव्यं न द्वारस्य, तस्य प्रागेवोक्तत्वात्, 'सव्वतवणिज्जमए उल्लोए' सर्वात्मना तपनीयमय उल्लोक:—उपरिभागः 'नानामणि-रयणजालपंजरमणिवंसगलोहियक्खपडिवंसगरययभोमे' इति, मणयो—मणिमया वंशा येषां तानि मणिमयवंशकानि लोहिताक्षा—लोहिताक्षमयाः प्रतिवंशा येषां तानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि रजता—रजतमयी भूमिर्येषां तानि रजतभूमानि, प्राकृतत्वात्समासान्तो मकारस्य च द्वित्वं, मणिवंशकानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि रजतभूमानि नानामणिरत्नानि—नानामणिरत्नमयानि जालपञ्जराणि—गवाक्षापरपर्यायाणि यस्मिन् द्वारे तत्तथा, पदानामन्यथोपनिपातः प्राकृतत्वात्, 'अंकमया पक्खा पक्खबाहाओ जोईरसामया वंसा वंस-कवेल्लुगा य रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरिपुंछणीओ सव्वसेयरययामए छा(य)णे' इति पद्मवर-वेदिकावद्भावनीयम्, 'अंकमयकणगकूडतवणिज्जथूभियागे' इति अङ्कमयं—बाहुल्येनाङ्करत्नमयं पक्षबाहादीनामङ्करत्नात्मकत्वात् कनकं—कनकमयं कूटं—शिखरं यस्य तत् कनककूटं तपनीया—तपनीयमयी स्तूपिका—लघुशिखररूपा यस्य तत्तपनीयस्तूपिकाकं, ततः पदत्रयस्य पदद्वयमीलनेन कर्म्मधारयः, एतेन यत् प्राक् सामान्यत उत्क्षिप्तं 'सेए वरकणगथूभियागे' इति तदेव प्रपञ्चतो भावितमिति। सम्प्रति तदेव श्वेतत्वमुपसंहारव्याजेन भूय उपदर्शयति—'सेए' श्वेतं, श्वेतत्वमेवोपमया द्रढयति—'संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययनिगरप्पगासे' इति विमलं—विगतमलं यत् शङ्खतलं शङ्खस्योपरितनो भागो यश्च निर्मलो दधिघनो—घनीभूतं दधिगोक्षीरफेनो रजतनिकरश्च तद्वत्प्रकाशः—प्रतिमता यस्य तत्तथा, 'तिलगरयणद्धचंदचित्ते' इति तिलकरत्नानि—पुण्ड्रविशेषास्तैरर्द्धचन्द्रैश्च चित्राणि—नानारूपाणि तिलकार्द्धचन्द्रचित्राणि, क्वचित् 'संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययनियरप्पगा-सद्धचंदचित्ता' इति पाठस्तत्र पूर्ववत् पृथक् पृथग् व्युत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्पदद्वयस्य २ कर्मधारयः, 'नाणामणिदामालंकिए' नाना-

मणयो—नानामणिमयानि दामानि—मालास्तैरलङ्कृतं नानामणिदामालङ्कृतम् अन्तर्बहिश्च 'श्लक्ष्णं' श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापितं 'तवणिज्जवालुयापत्थडे' इति तपनीयाः—तपनीयमय्यो या वालुकाः—सिकतास्तासां प्रस्तटः—प्रस्तारो यस्मिन् तत्तथा, 'सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत् ॥ 'विजयस्स णं दारस्से' त्यादि, विजयस्य णमिति प्राग्वत् द्वारस्य उभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन 'दुहतो' इति द्विधातो द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां, नैषेधिकी—निषीदनस्थानम्, उक्तं च मूलटीकाकारेण—"नैषेधिकी निषीदनस्थान"मिति प्रत्येकं द्वौ द्वौ चन्दनकलशौ प्रज्ञप्तौ, ते च चन्दनकलशाः 'वरकमलपइट्ठाणा' इति वरं—प्रधानं यत्कमलं तत्प्रतिष्ठानं—आधारो येषां ते वरकमलप्रतिष्ठानाः, तथा सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णाश्चन्दनकृतचर्चाकाः—चन्दनकृतोपरागाः 'आविद्धकंठेगुणा' इति आविद्धः—आरोपितः कण्ठे गुणो—रक्तसूत्ररूपो येषु ते आविद्धकण्ठेगुणाः, कण्ठेकालवत्सप्तम्या अलुक्, 'पउमुप्पलपिहाणा' इति पद्ममुत्पलं च यथायोगं पिधानं येषां ते पद्मोत्पलपिधानाः 'सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् 'महयामहया' इति अतिशयेन महान्तो महेन्द्रकुम्भसमानाः, कुम्भानामिन्द्र इन्द्रकुम्भो, राजदन्तादिदर्शनादिन्द्रशब्दस्य पूर्वनिपातः, महांश्चासौ इन्द्रकुम्भश्च तस्य समाना महेन्द्रकुम्भसमाना—महाकलशप्रमाणाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्य उभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन द्विधातो नैषेधिक्यां द्वौ द्वौ 'नागदन्तकौ' नर्कुटकौ अङ्कुटकावित्यर्थः प्रज्ञप्तौ, ते च नागदन्तका 'मुत्ताजालंतरूसियहेमजालगवक्खजालखिंखिणीजालपरिक्खित्ता' इति मुक्ताजालानामन्तरेषु यानि उत्सृतानि—लम्बमानानि हेमजालानि—हेममयदामसमूहाः यानि च गवाक्षजालानि—गवाक्षाकृतिरत्नविशेषदामसमूहाः यानि च किङ्किणी—क्षुद्रघण्टा किङ्किणीजालानि—क्षुद्रघण्टा(सङ्घाता)स्तैः परिक्षिप्ताः—सर्वतो व्याप्ताः 'अब्भुग्गया' इति अभिमुखमुद्गता अभ्युद्गता अग्रिमभागे मनाग् उन्नता

इति भावः **'अभिनिसिट्ठा'** इति अभिमुखं—बहिर्भागाभिमुखं निसृष्टाः अभिनिसृष्टाः **'तिरियं सुसंपग्गहिया'** इति तिर्यग्—भित्तिप्रदेशे सुष्ठु अतिशयेन सम्यग्—मनागप्यचलनेन परिगृहीताः सुसंपरिगृहीताः **'अहेपन्नगद्धरूवा'** इति अधः—अधस्तनं यत्पन्नगस्य—सर्पस्यार्द्धं तस्येव रूपं—आकारो येषां ते तथा अधःपन्नगार्द्धवदतिसरला दीर्घाश्चेति भावः, एतदेव व्याचष्टे—**'पन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः'** अधःपन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः **'सव्ववइरामया'** सर्वात्मना वज्रमयाः **'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा'** इति प्राग्वत्, **'महयामहया'** इति अतिशयेन **'गजदन्तसमानाः'** गजदन्ताकाराः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसु णं नागदंतएसु'** इत्यादि, तेषु च नागदन्तकेषु बहवः कृष्णसूत्रे बद्धाः **'वग्घारिया'** इति अवलम्बिताः **'माल्यदामकलापाः'** पुष्पमालासमूहा बहवो नीलसूत्रबद्धा माल्यदामकलापाः, एवं लोहितहारिद्रशुक्लसूत्रबद्धा अपि वाच्याः ॥ **'ते णं दामा'** इत्यादि, तानि दामानि **'तवनिज्जलंबूसगा'** इति तपनीयः—तपनीयमयो लम्बूसगो—दाम्नामग्रिमभागे प्राङ्गणे लम्बमानो मण्डनविशेषो गोलकाकृतिर्येषां तानि तपनीयलम्बूसकानि **'सुवण्णपयरगमंडिया'** इति पार्श्वतः सामस्त्येन सुवर्णप्रतरेण—सुवर्णपत्रकेण मण्डितानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि **'नानामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदया'** इति नानारूपाणां मणीनां रत्नानां च ये विविधा—विचित्रवर्णा हारा—अष्टादशसरिका अर्द्धहारा—नवसरिकास्तैरुपशोभितः समुदायो येषां तानि तथा 'जाव सिरीए अतीव उवसोभेमाणा चिट्ठंति' अत्र यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—'ईसिमण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायमेइज्जमाणा पलंबमाणा पलंबमाणा पझंभ(झंझ)माणा पझंभ(झंझ)माणा ओरालेणं मणुन्नेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणा आपूरेमाणा सिरीए उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ।' एतच्च प्रागेव पद्मवरवेदिकावर्णने व्याख्यातमिति भूयो न व्याख्यायते ॥ **'तेसि णं नागदं-**

ताण'मित्यादि, तेषां नागदन्तानामुपरि अन्यौ द्वौ नागदन्तकौ प्रज्ञप्तौ, ते च नागदन्तकाः 'मुत्ताजालंतरूसियहेमजालगवक्खजाल' इत्यादि प्रागुक्तं सर्वं द्रष्टव्यं यावद् गजदन्तसमानाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'तेसु णं णागदंतएसु' इत्यादि, तेषु नागदन्तकेषु बहूनि रजतमयानि सिक्ककानि प्रज्ञप्तानि, तेषु च रजतमयेषु सिक्ककेषु बहवो 'वेडूर्यरत्नमय्यो' वैडूर्यरत्नात्मिकाः 'धूपघट्यो' धूपघटिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च धूपघटिकाः 'कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामा' कालागुरुः प्रसिद्धः प्रवरः—प्रधानः कुन्दुरुष्कः—चीडा तुरुष्कं—सिल्हकं कालागुरुश्च प्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्के च कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्काणि तेषां धूपस्य यो मघमघायमानो गन्ध उद्धुत—इतस्ततो विप्रसृतस्तेनाभिरामाः कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूममघमघायमानगन्धोद्धुताभिरामाः, तथा शोभनो गन्धो येषां ते सुगन्धास्ते च ते वरगन्धास्तेषां गन्धः स आस्वस्तीति सुगन्धवरगन्धिकाः 'अतोऽनेकस्वरादि'तीकप्रत्ययः, अत एव गन्धवर्त्तिभूताः—सौरभ्यवर्त्तिभूताः सौरभ्यातिशयाद् गन्धद्रव्यगुटिकाकल्पाः 'उदारेण' स्फारेण 'मनोज्ञेन' मनोऽनुकूलेन, कथं मनोऽनुकूलत्वम्? अत आह—घ्राणमनोनिर्वृतिकरेण हेतौ तृतीया यतो घ्राणमनोनिर्वृतिकरस्ततो मनोज्ञस्तेन गन्धेन तान् प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् आपूरयन्त्य आपूरयन्त्यः अत एव श्रियाऽतीव शोभमानास्तिष्ठन्ति ॥ 'विजयस्स णं दारस्से'त्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन द्विधातो—द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां द्वे द्वे शालभञ्जिके प्रज्ञप्ते, ताश्च शालभञ्जिका लीलया ललिताङ्गनिवेशरूपया स्थिता लीलास्थिताः 'सुपइट्ठियाओ' इति सुष्ठु—मनोज्ञतया प्रतिष्ठिताः सुप्रतिष्ठिताः 'सुअलंकियाओ' इति सुष्ठु—अतिशयेन रमणीयतयाऽलङ्कृताः स्वलङ्कृताः 'नाणाविहरागवसणाओ' इति नानाविधो—नानाप्रकारो रागो येषां तानि नानाविधरागाणि तानि वसनानि—वस्त्राणि संवृततया यासां ता नानाविधरागवसनाः 'रत्तावंगाओ' इति रक्तोऽपाङ्गो—नयनोपान्तं यासां वा रक्तापाङ्गाः 'असिय-

केसीओ' इति असिता:—कृष्णा: केशा यासां ता असितकेश्य: 'मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ' मृदव:—कोमला विशदा—निर्म्मला: प्रशस्तानि—शोभनानि अस्फुटितलप्रभृतीनि लक्षणानि येषां ते प्रशस्तलक्षणा: संवेल्लितं—संवृतमग्रं येषां शेखरककरणात् ते संवेल्लिताग्रा: शिरोजा:—केशा यासां ता मृदुविशदप्रशस्तलक्षणसंवेल्लिताग्रशिरोजा: 'नाणामल्लपिणद्धाओ' इति नानारूपाणि माल्यानि—पुष्पाणि पिनद्धानि—आविद्धानि यासां ता नानामाल्यपिनद्धा:, निष्ठान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात्, 'मुट्ठिगेज्झसुमज्झा' इति मुष्टिग्राह्यं सुष्ठु—शोभनं मध्यं—मध्यभागो यासां ता मुष्टिग्राह्यसुमध्या: 'आमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुण्णयपीणरइयसंठियपओहराओ' पीनं—पीवरं रचितं संस्थितं—संस्थानं यकाभ्यां तौ पीनरचितसंस्थितौ आमेलक—आपीड: शेखरक इत्यर्थ: तस्य यमलं—समश्रेणीकं युगलं तद्वत् वर्त्तितौ—बद्धस्वभावावुपचितकठिनभावाविति भाव: अभ्युन्नतौ पीनरचितसंस्थितौ च पयोधरौ यासां तास्तथा, 'ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ' इति ईषत्—मनाक् अशोकवरपादपे समवस्थिता—आश्रिता ईषदशोकवरपादपसमवस्थिता:, तथा वामहस्तेन गृहीतमग्रं शालाया:—शाखाया अर्थादशोकपादपस्य यकाभिस्ता वामहस्तगृहीताग्रशाला:, 'ईसिं अद्धऽच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीओ विवे'ति ईषत्—मनाग् 'अद्धं'तिर्यग्वलितम् अक्षि येषु कटाक्षरूपेषु चेष्टितेषु तैर्मुष्णन्त्य इव सुरजनानां मनांसि 'चक्खुल्लोयणलेसेहि य अण्णमण्णं विज्झेमाणीओ इव' अन्नमन्नं—परस्परं चक्षुषां लोकनेन—अवलोकनेन लेशा:—संश्लेषास्तैर्विध्यमाना इव, किमुक्तं भवति ?—एवं नाम तास्तिर्यग्वलिताक्षिकटाक्षै: परस्परमवलोकमाना अवतिष्ठन्ते यथा नूनं परस्परसौभाग्यासहनतस्तिर्यग्वलिताक्षिकटाक्षै: परस्परं खिद्यन्त इवेति 'पुढविपरिणामाओ' इति पृथिवीपरिणामरूपा: शाश्वतभावमुपागता विजयद्वारवत् 'चंदाणणाओ' इति चन्द्रवद् आननं—मुखं यासां ताश्चन्द्रानना: 'चंदविलासिणीओ' इति चन्द्रवन्मनोहरं

विलसन्तीत्येवंशीलाश्चन्द्रविलासिन्यः 'चंदद्धसमनिडालाओ' इति चन्द्रार्द्धेन—अष्टमीचन्द्रेण समं—समानं ललाटं यासां ताश्चन्द्रार्द्धसमललाटाः 'चंदाहियसोमदंसणाओ' इति चन्द्रादप्यधिकं सोमं—सुभगं कान्तिमद्दर्शनं—आकारो यासां तास्तथा, उल्का इव द्योतमानाः 'विज्जुघणमरीचिसूरदिप्पंततेयअहियतरसन्निकासाओ' इति विद्युतो ये घना—बहुलतरा मरीचयस्तेभ्यो यच्च सूर्यस्य दीप्यमानमनावृतं तेजस्तस्मादप्यधिकतरः सन्निकाशः—प्रकाशो यासां तास्तथा 'सिंगारागारचारुवेसाओ' इति शृङ्गारो—मण्डनभूषणाटोपस्तत्प्रधान आकार—आकृतिर्यासां ताः शृङ्गाराकाराः चारु वेषो—नेपथ्यं यासां ताश्चारुवेषास्ततः कर्म्मधारये शृङ्गाराकारचारुवेषाः 'पासाईयाओ' इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'विजयस्स णं दारस्से'त्यादि, विजयस्य द्वारस्य उभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन 'द्विधातो' द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां द्वौ द्वौ जालकटकौ प्रज्ञप्तौ, 'ते णं जालकडगा'इत्यादि, ते च जालकटकाकीर्णा रम्यसंस्थानाः प्रदेशविशेषाः 'सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ 'विजयस्से'त्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्यां द्वे द्वे घण्टे प्रज्ञप्ते, तासां च घण्टानामयमेतद्रूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—जाम्बूनदमय्यो घण्टाः वज्रमय्यो लालाः नानामणिमया घण्टापार्श्वाः तपनीयमय्यः शृङ्खला यासु ता अवलम्बितास्तिष्ठन्ति रजतमय्यो रज्जवः ॥ 'ताओ णं घंटाओ' इत्यादि, ताश्च घण्टाः 'ओघस्वराः' ओघेन—प्रवाहेण स्वरो यासां ता ओघस्वराः, मेघस्येवातिदीर्घः स्वरो यासां ता मेघस्वराः, हंसस्येव मधुरः स्वरो यासां ता हंसस्वराः, एवं क्रौञ्चस्वराः, सिंहस्येव प्रभूतदेशव्यापी स्वरो यासां ताः सिंहस्वराः, एवं दुन्दुभिस्वरा नन्दिस्वराः, द्वादशतूर्यसङ्घातो नन्दिः, नन्दिवद् घोषो—निनादो यासां ता नन्दिघोषाः, मञ्जुः—प्रियः स्वरो यासां ता मञ्जुस्वराः, एवं मञ्जुघोषाः, किं बहुना ?, सुस्वराः सुस्वरघोषाः,

'ओरालेण'मित्यादि प्राग्वत् ॥ 'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्यां द्वे द्वे वनमाले प्रज्ञप्ते, ताश्च वनमाला नानाद्रुमाणां नानालतानां च ये किशलयरूपा अतिकोमला इत्यर्थः पल्लवास्तैः समाकुलाः—सम्मिश्राः 'छप्पयपरिभुज्जमाणसोभंतसस्सिरीया' इति षट्पदैः परिभुज्यमाना सती शोभमाना षट्पदपरिभुज्यमानशोभमाना अत एव सश्रीका ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, 'पासाईया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहतो णिसीहियाए दो दो पगंठगा पण्णत्ता, ते णं पगंठगा चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं दो जोयणाइं बाहल्लेणं सव्ववइरामता अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं पयंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडिंसगा चत्तारि जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसितपहसिताविव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागच्छत्तातिछत्तकलिया तुंगा गगणतलमभिलंघमाण(णुलिहंत)सिहरा जालंतररयणपंजरुम्मिलितव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयवत्तपोंडरीयतिलकरयणद्धयंदचित्ता णाणामणिमयदामालंकिया अंतो य बाहिं च सण्हा तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडगा सुह(ह)फासा सस्सिरीयरूवा पासातीया ४ ॥ तेसि णं पासायवडेंसगाणं उल्लोया पउमलता जाव सामलयाभत्तिचित्ता सव्वतवणिज्जमता अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं पासायवडिंसगाणं पत्तेयं पत्तेयं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा-

णामए आलिंगपुक्खरेति वा जाव मणीहिं उवसोभिए, मणीण गंधो वण्णो फासो य नेयव्वो ॥ तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ, तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं २ सीहासणे पण्णत्ते, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–तवणिज्जमया चक्कवाला रयतामया सीहा सोवण्णिया पादा णाणामणिमयाइं पायवीढगाइं जंबूणयमताइं गत्ताइं वतिरामया संधी नाणामणिमए वेच्चे, ते णं सीहासणा ईहामियउसभ जाव पउमलयभत्तिचित्ता ससारसारोवइयविविहमणिरयणपायपीढा अच्छरगमिउमसूरगनवतयकुसंतलिचसीहकेसरपच्चुत्थताभिरामा उयचियखोमदुगुल्लयपडिच्छयणा सुविरचितरयत्ताणा रत्तंसुयसंवुया सुरम्मा आईणगरुयबूरणवनीततूलमउयफासा मउया पासाईया ४॥ तेसि णं सीहासणाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं विजयदूसं पण्णत्ते, ते णं विजयदूसा सेता संखकुंददगरयअमतमहियफेणपुंजसन्निकासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं विजयदूसाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामया अंकुसा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु पत्तेयं २ कुंभिक्का मुत्तादामा पण्णत्ता, ते णं कुंभिक्का मुत्तादामा अन्नेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चप्पमाणमेत्तेहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता,

ते णं दामा तवणिज्जलंबूसका सुवण्णपयरगमंडिता जाव चिट्ठंति, तेसि णं पासायवडिंसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता सोत्थिय तधेव जाव छत्ता ॥ (सू० १३०)

'**विजयस्स ण**'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्यां द्वौ द्वौ प्रकण्ठकौ प्रज्ञप्तौ, प्रकण्ठको नाम पीठविशेषः, आह च **मूलटीकाकारः**—"प्रकण्ठौ पीठविशेषौ," **चूर्णिकारस्त्वेवमाह**—"आदर्शवृत्तौ पर्यन्तावनतप्रदेशौ पीठौ प्रकण्ठावि"ति, ते च प्रकण्ठकाः प्रत्येकं चत्वारि योजनानि '**आयामविष्कम्भेन**' आयामविष्कम्भाभ्यां द्वे योजने बाहल्येन '**सव्ववइरामया**' इति सर्वात्मना ते प्रकण्ठका वज्रमयाः '**अच्छा सण्हा य**' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ '**तेसि णं पकंठयाण**'मित्यादि, तेषां च प्रकण्ठकानामुपरि प्रत्येकं प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, प्रासादावतंसको नाम प्रासादविशेषः, उक्तं च **मूलटीकायां**—"प्रासादावतंसकः प्रासादविशेष" इति, व्युत्पत्तिश्चैवम्—प्रासादानामवतंसक इव—शेखरक इव प्रासादावतंसकः, ते च प्रासादावतंसकाः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्याम्, '**अब्भुग्गयमूसियपहसियाविवे**'ति अभ्युद्गता—आभिमुख्येन सर्वतो विनिर्गता उत्सृता—प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा तया सिता इव—बद्धा इव तिष्ठन्तीति गम्यते, अन्यथा कथमिव तेऽत्युच्चा निरालम्बास्तिष्ठन्तीति भावः, अथवा प्रबलश्वेतप्रभापटलया प्रहसिताविव प्रकर्षेण हसिताविव, तथा '**विविहमणिरयणभत्तिचित्ता**' विविधा अनेकप्रकारा ये मणयः—चन्द्रकान्ताद्या यानि च रत्नानि—कर्केतनादीनि तेषां भक्तिभिः—विच्छित्तिभिश्चित्रा—नानारूपा आश्चर्यवन्तो वा नानाविधमणिरत्नभक्तिविचित्राः '**वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागछत्तातिछत्तकलिया**' वातोद्धूता—वायुकम्पिता विजयः—अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्तीनामानो (नाम्न्यो) याः पताकाः, अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो

विजयवैजयन्त्यः पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः, छत्रातिछत्राणि—उपर्युपरिस्थितान्यातपत्राणि तैः कलिता वातोद्धूतविजयवैजयन्तीपताकाछत्रातिच्छत्रकलिताः 'तुङ्गाः' उच्चा उच्चैस्त्वेन चतुर्योजनप्रमाणत्वात्, अत एव 'गगणतलमणुलिहन्तसिहरा' इति, गगनतलम्—अम्बरम् अनुलिखन्ति—अभिलङ्घयन्ति शिखराणि येषां ते गगनतलानुलिखच्छिखराः, तथा जालानि—जालकानि यानि भवनभित्तिषु लोके प्रतीतानि तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि येषु ते जालान्तररत्नाः, सूत्रे चात्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, तथा पञ्जराद् उन्मीलिता इव—बहिष्कृता इव, यथा हि किल किमपि वस्तु वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद् बहिष्कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायं भवति एवं तेऽपि प्रासादावतंसका इति भावः, तथा मणिकनकानि—मणिकनकमय्यः स्तूपिकाः—शिखराणि येषां ते मणिकनकस्तूपिकाः, तथा विकसितानि यानि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन स्थितानि तिलकरत्नानि भित्त्यादिषु पुण्ड्रविशेषा अर्द्धचन्द्राश्च द्वारादिषु तैश्चित्रा—नानारूपा आश्चर्यभूता विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकार्द्धचन्द्रचित्राः अन्तर्बहिश्च (नाना—अनेकप्रकारा ये चन्द्रकान्ताद्या मणयस्तन्मयानि—तत्प्रधानानि यानि दामानि—पुष्पमालास्तैरलङ्कृताः) 'श्लक्ष्णाः' मसृणाः, तथा तपनीयं—सुवर्णविशेषस्तन्मय्या वालुकायाः प्रस्तटं—प्रतरो येषु ते तपनीयवालुकाप्रस्तटाः 'सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां च प्रासादावतंसकानाम् 'उल्लोकाः' उपरितनभागाः पद्मलताभक्तिचित्रा अशोकलताभक्तिचित्राश्चम्पकलताभक्तिचित्राश्चूतलताभक्तिचित्रा वनलताभक्तिचित्रा वासन्तिकलताभक्तिचित्राः सर्वात्मना तपनीयमयाः 'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां प्रासादावतंसकानामन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहा नामए आलिंगपुक्खरे इ वा' इत्यादि समस्तं भूमिवर्णनं मणीनां वर्णपञ्चकसुरभिगन्धशुभस्पर्शवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि,

तेषां प्रासादावतंसकानामन्तर्बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं (मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका योजनमायामविष्कम्भेन अष्ट योजनानि बाहल्येन सर्वरत्नमय्यो यावत्प्रतिरूपाः तासां मणिपीठिकानामुपरि) सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तेषां च सिंहासनानामयमेतद्रूपो 'वर्णावासो' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–रजतमयाः सिंहा तैरुपशोभितानि सिंहासनानि 'सौवर्णिकाः' सुवर्णमयाः पादाः तपनीयमयानि चक्कलानि–पादानामधःप्रदेशाः भवन्ति [मुक्तानानामणिमयानि पादानामधःप्रदेशाः] प्रयुक्ता, नानामणिमयानि 'पादशीर्षकाणि' पादानामुपरितना अवयवविशेषा जाम्बूनदमयानि गात्राणि ईषदच्छाः 'वज्रमयाः' वज्ररत्नापूरिताः 'सन्धयः' गात्राणां सन्धिमेला नानामणिमयं 'वेच्चं' व्यूतं वानमित्यर्थः, आह च चूर्णिकृत्—"वेच्चे वाणकतेण"मित्यादि, तानि च सिंहासनानि ईहामृगऋषभतुरगनरमकरव्यालकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवनलतापद्मलताभक्तिचित्राणि 'ससारसारोवचियविविहमणिरयणपादपीढा' इति, सारसारैः–प्रधानप्रधानैर्विविधैर्मणिरत्नैरुपचितैः पादपीठैः सह यानि तानि तथा, प्राकृतत्वाच्च उपचितशब्दस्यान्तरुपन्यासः, 'अच्छरमउयमसूरगनवतयकुसन्तलित्तकेसरपच्चत्थुयाभिरामा' इति, आस्तरकं–आच्छादनं मृदु येषां मसूरकाणां तानि आस्तरकमृदूनि, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, नवा त्वग् येषां ते नवत्वचः कुशान्ता–दर्भपर्यन्ताः, नवत्वचश्च ते कुशान्ताश्च नवत्वक्कुशान्ताः प्रत्यग्रत्वगदर्भपर्यन्तरूपाणि लतिकोमलानि लित्तानि–नम्र(मन)शीलानि च केसराणि, क्वचित् सिंहकेसरेति पाठस्तत्र सिंहकेसराणीव केसराणि मध्ये मसूरकाणां तानि नवत्वक्कुशान्तचिह्न(लित्त)केसराणि, सिंहकेसरेति पाठपक्षे एकस्य केसरशब्दस्य शाकपार्थिवादिदर्शनाल्लोपः, आस्तरकमृदुभिर्मसूरकैर्नवत्वक्कुशान्तलिच(त्त)केसरैः प्रत्यवस्तृतानि–आच्छादितानि सन्ति यानि अभिरामाणि तानि तथा, विशेषणपूर्वापरनिपातो यादृच्छिकः प्राकृतत्वात्, 'आईणगरुयबूरनवणीयतूलफासा' इति आजिनकं—

चर्म्ममयं वस्त्रं तच्च स्वभावादतिकोमलं भवति रूतं—कर्पासपक्ष्म वूरो—वनस्पतिविशेषः नवनीतं—म्रक्षणं तूलं—अर्कतूलं तेषामिव स्पर्शो येषां तानि तथा, तथा सुविरचितं रजस्त्राणं प्रत्येकमुपरि येषां तानि सुविरचितरजस्त्राणानि 'उवचिय(खोम)दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे' इति उपचितं—परिकर्म्मितं यत्क्षौमं दुकूलं—कार्पासिकं वस्त्रं तत्प्रतिच्छादनं—रजस्त्राणस्योपरि द्वितीयमाच्छादनं प्रत्येकं येषां तानि तथा, तत उपरि 'रत्तंसुयसंवुया' इति रक्तांशुकेन—अतिरमणीयेन रक्तेन वस्त्रेण संवृतानि—आच्छादितानि रक्तांशुकसंवृतानि अत एव सुरम्याणि 'पासाइया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां च सिंहासनानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं विजयदूष्यं—वस्त्रविशेषः प्रज्ञप्तः, आह च मूलटीकाकारः—"विजयदूष्यं वस्त्रविशेष" इति । 'ते णं'मित्यादि, तानि च विजयदूष्याणि 'शङ्खकुन्ददकरजोऽमृतमथितफेनपुञ्जसन्निकाशानि' शङ्खः प्रतीतः कुन्देति—कुन्दकुसुमं दकरजः—उदककणाः अमृतस्य—क्षीरोदधिजलस्य मथितस्य यः फेनपुञ्जो—डिण्डीरोत्करस्तत्सन्निकाशानि—तत्समप्रभाणि, पुनः कथम्भूतानि ? इत्यत आह—'सव्वरयणामया' सर्वात्मना रत्नमयानि 'अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा' इति विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ 'तेसि णं'मित्यादि, तेषां—सिंहासनोपरिस्थितानां विजयदूष्याणां प्रत्येकं प्रत्येकं बहुमध्यदेशभागे वज्रमयाः वज्ररत्नात्मकाः 'अङ्कुशाः' अङ्कुशाकारा मुक्तादामावलम्बनाश्रयभूताः प्रज्ञप्ताः, तेषु च वज्रमयेष्वङ्कुशेषु प्रत्येकं प्रत्येकं 'कुम्भाग्रं' मगधदेशप्रसिद्धं कुम्भप्रमाणमुक्तामयं मुक्तादाम प्रज्ञप्तं, तानि च कुम्भाग्राणि मुक्तादामानि प्रत्येकं प्रत्येकमन्यैश्चतुर्भिः कुम्भाग्रैर्मुक्तादामभिस्तदर्धोच्चप्रमाणमात्रैः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तानि, 'ते णं दामा तवणिज्जलंवूसगा नाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभियसमुदाया ईसिमन्नमन्नमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं

मंदायं मंदायं एइज्जमाणा २ वेइज्जमाणा २ पकंपमाणा पकंपमाणा पझंझमाणा पझंझमाणा ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणनि व्वुइकरेणं ते पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणा सिरीए उवसोभमोणा चिट्ठंति" ॥

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया तहेव जाव अट्ठट्ठमंगलका य छत्तातिछत्ता ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो सालभंजिताओ पण्णत्ताओ, जहेव णं हेट्ठा तहेव ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो णागदंतगा पण्णत्ता, तेणं णागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिया तहेव, तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हे सुत्तवट्ट-वग्घारितमल्लदामकलावा जाव चिट्ठंति ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो हयसंघाडगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, एवं पंतीओ वीहीओ मिहुणगा, दो दो पउमलयाओ जाव पडिरूवाओ तेसि णं तोरणाणं पुरनो (अक्खाअसोवत्थिया सव्वरयणामया अच्छा जाव प-डिरूवा) तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो चंदणकलसा पण्णत्ता, ते णं चंदणकलसा वरकमल-पइट्ठाणा तहेव सव्वरयणामया जाव पडिरूवा समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो भिंगारगा पण्णत्ता वरकमलपइट्ठाणा जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महतामहता म-त्तगयमुहागितिसमाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो आतंसगा पण्ण-त्ता, तेसि णं आतंसगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—तवणिज्जमया पयंठगा वेरु-

लियमया छरुहा (थंभया) वइरामया वरंगा णाणामणिमया वलक्खा अंकमया मंडला अणोघसिय-निम्मलासाए छायाए सव्वतो चेव समणुबद्धा चंदमंडलपडिणिकासा महतामहता अद्धकायसमाणा पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो वइरणाभे थाले पण्णत्ते, ते णं थाला अच्छतिच्छडियसालितंदुलनहसंदट्ठबहुपडिपुण्णा चेव चिट्ठंति सव्वजंबूणतामता अच्छा जाव पडिरूवा महतामहता रहचक्कसमाणा समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो पातीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं पातीओ अच्छोदयपडिहत्थाओ णाणाविधपंचवण्णस्स फलहरितगस्स बहुपडिपुण्णाओ विव चिट्ठंति सव्वरयणामतीओ जाव पडिरूवाओ महयामहया गोकलिंजग-चक्कसमाणाओ पण्णत्ताओ समणाउसो ! ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो सुपतिट्ठगा पण्णत्ता, ते णं सुपतिट्ठगा णाणाविध(पंचवण्ण)पसाहणगभंडविरचिया सव्वोसधिपडिपुण्णा सव्वरयणा-मया अच्छा जाव पडिरूवा॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो मणोगुलियाओ पण्णत्ताओ ॥ तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरुप्पामया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं सुवण्णरुप्पामएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंतगा मुत्ताजालंतरुसिता हेम जाव गयंदगसमाणा पण्णत्ता, तेसु णं वइराम-एसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वायक-रगा पण्णत्ता ॥ ते णं वायकरगा किण्हसुत्तसिक्कगवत्थिया जाव सुक्किलसुत्तसिक्कगवत्थिया सव्वे

वेरुलियामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पण्णत्ता, से जहाणामए—रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडे वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडे साए पभाए ते पदेसे सव्वतो समंता ओभासइ उज्जोवेति तावेइ पभासेति, एवामेव ते चित्तरयणकरंडगा पण्णत्ता वेरुलियपडलपच्चोयडा साए पभाए ते पदेसे सव्वतो समंता ओभासेति ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो हयकंठगा जाव दो दो उसभकंठगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तेसु णं हयकंठएसु जाव उसभकंठएसु दो दो पुप्फचंगेरीओ, एवं मल्लगंधचुण्णवत्थाभरणचंगेरीओ सिद्धत्थचंगेरीओ लोमहत्थचंगेरीओ सव्वरयणामतीओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो पुप्फपडलाइं जाव लोमहत्थपडलाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो सीहासणाइं पण्णत्ताइं, तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तहेव जाव पासातीया ४ ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो रुप्पच्छदाछत्ता पण्णत्ता, ते णं छत्ता वेरुलियभिसंतविमलदंडा जंबूणयकन्निकावइरसंधी मुत्ताजालपरिगता अट्ठसहस्सवरकंचणसलागा दद्दरमलयसुगंधी सव्वोउअसुरभिसीयलच्छाया मंगलभत्तिचित्ता चंदागारोवमा वट्टा ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो चामराओ पण्णत्ताओ, ताओ णं चामराओ (चन्दप्पभवइरवेरुलियनानामणि-

रयणखचियदंडा) णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लिआओ संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसण्णिकासाओ सुहुमरयतदीहवालाओ सव्वरयणामताओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तेसि णं तोरणाणं पुरतो दो दो तिल्लसमुग्गा कोट्ठसमुग्गा पत्तसमुग्गा चोयसमुग्गा तयरसमुग्गा एलासमुग्गा हरियालसमुग्गा हिंगुलयसमुग्गा मणोसिलासमुग्गा अंजणसमुग्गा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ (सू० १३१)

'विजयस्स ण'मित्यादि, विजयस्य द्वारस्योभयोः पार्श्वयोर्द्विधातो नैषेधिक्या द्वे द्वे तोरणे प्रज्ञप्ते, तानि च तोरणानि नानामणिमयानीत्यादि तोरणवर्णनं निरवशेषं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषा तोरणानां पुरतो द्वे द्वे शालभञ्जिके प्रज्ञप्ते, शालभञ्जिकावर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां द्वौ द्वौ नागदन्तकौ प्रज्ञप्तौ, तेषां च नागदन्तकानां वर्णनं यथाऽधस्तादनन्तरमुक्तं तथा वक्तव्यं, नवरमत्रोपरि नागदन्तका न वक्तव्या अभावात् ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वौ द्वौ हयसंघाटकौ द्वौ द्वौ गजसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ नरसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ किन्नरसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ किंपुरुषसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ महोरगसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ गन्धर्वसङ्घाटकौ द्वौ द्वौ वृषभसङ्घाटकौ, एते च कथम्भूताः ? इत्याह—'सव्वरयणामया अच्छा सण्हा' इत्यादि प्राग्वत्, एवं पङ्क्तिवीथीमिथुनकान्यपि प्रत्येकं वाच्यानि ॥ 'तेसिं तोरणाण'मित्यादि, तेषां तोरणानां पुरतो द्वे द्वे पद्मलते यावत्करणाद् द्वे द्वे नागलते द्वे द्वे अशोकलते द्वे द्वे चम्पकलते द्वे द्वे चूतलते द्वे द्वे वासन्तीलते द्वे द्वे कुन्दलते द्वे द्वे अतिमुक्तकलते इति परिग्रहः, द्वे द्वे श्यामलते, एताश्च कथम्भूताः? इत्याह—'निच्चं सुकुमियाओ' इत्यादि यावत्करणात् 'निच्चं मउलिया निच्चं लवइयाओ निच्चं थइयाओ निच्चं गोच्छियाओ निच्चं जमलियाओ निच्चं

मिथ्यात्वसे ही यह जीव भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव जन्मता है। यह बात भी स्वामीने बताई है। जितनी दुर्गतियोंके स्थान यहां बताए हैं, नर्क गति व एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यंत तिर्यंच गति व कुदेव गति इन सबको वही जीव पाता है जो अपने आत्माके ज्ञानसे बाहर है। इसलिये यही बात झलकाई है कि मानवको परम हितकारी आत्मज्ञानका लाभ करना चाहिये जिससे यह जीव सिद्ध-गति पाकर सदाके लिये सुखी होजावे।

अध्यात्म चर्चा हर दशामें सुखदाई है। आत्माके गुणोंके विचारसे यह भाव राग द्वेषकी कालिमासे मुक्त होता है तब निराकुलता आती है, समता प्राप्त होती है, समतामें सदा आनन्दका लाभ होता है। जीवनको सुखदाई बनानेवाली अध्यात्म चर्चा है, हर समय इसीपर लक्ष्य रखना चाहिये।

मुलतान शहर।
भादों वदी २ वी० स० २४६४
ता० २७-८-१९३८

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।



टीकाकारकी प्रशस्ति।

अवध लक्ष्मणपुर बसै, अग्रवाल कुल सार।
विद्वन् मंगलसेनजी, ज्ञानी जिन वृष धार॥ १॥
तिन सुत मक्खनलालजी, पुत्र चार तिन जान।
प्रथम बड़े संतलालजी, तृतीय सु सीतल मान॥ २॥
बत्तिस वय अनुमानमें, घर त्यागा हितकाज।
इत उत भ्रमत स्वधर्म हित, लिखत पढ़त दिन जात॥ ३॥
साठ वर्ष अनुमान वय, दर्षाकाल मंझार।
पुर मुलताने बिराजिया, होवे धर्म विचार॥ ४॥
सुखानन्द जैनी रचित, उपवन शांत महान्।
धर्म ध्यान सहकार है, रहो चित्त उमगान॥ ५॥
जैनी दिग् अम्बर बसे, घर पचास सुख लीन।
मन्दिर बड़ा शिखर सहित, विद्याशाला कीन॥ ६॥
पण्डित अजितकुमारजी, चौथमल्ल वृष लीन।
रामजीदास सभापती, परमानन्द प्रवीण॥ ७॥
दासूराम सुखानन्द, भोलाराम जिनदास।
गुमानचन्द्र शिवनाथजी, आशानन्द प्रकाश॥ ८॥
रंगूराम सु बिहारी, लाल सुधर्मी जान।
संगति वृष धारीनकी, करत बुद्धि अमलान॥ ९॥

श्री तारणस्वामी रचित, चौवीस ठाणा जान।
भाषा टीका लिख दई, होवे जग कल्याण ॥ १० ॥

भादों सुदी द्वितीया दिना, वार शनीश्चर जान।
वीर मुक्त चौविस शतक, चौसठ संवत् मान ॥ ११ ॥

सत्ताईस अगस्ट है, सन् उन्निस अड़तीस।
ग्रन्थ पूर्ण सुखसे किया, नमहु वीर गुण ईश ॥ १२ ॥

अध्यातमके मननको, यह दर्पण अविकार।
जो देखें रुचि लायके, पावें सुख शुचिकार ॥ १३ ॥

मंगल श्री अरहन्त है, मंगल सिद्ध महान्।
मंगल श्री मुनिराज हैं, करहु कर्मकी हान ॥ १४ ॥

